94

[illegible]

ॐ

संपादक – [illegible]

स्व धर्म सर्वस्व

विशम्भर दास

शब्दलोक, मेरठ

प्रथम संस्करण : 1997

मूल्य : 400 रुपये मात्र
प्रकाशक : शब्दलोक, कचहरी रोड, मेरठ
मुद्रक : एस० एन० प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032

॥ हरिः ॐ हर ॥

विषय सूची

उपदेश	विषय	पृष्ठ सं.
	श्रीमंगलाचरण	१
	प्रथम भाग धर्मादेश :	
१	स्वधर्म व्याख्या	३
२	स्वधर्म अर्थात् सनातन धर्म	४
३	संकेत	६
४	धर्मभेद	७
५	धर्मोपदेश पात्र	७
६	आज्ञापालन	११
७	अभिवादन	१५
८	स्वधर्म संस्थापना	१८
९	सम्प्रदाय	१९
१०	संगति	२३
११	धर्म निवास	२७
१२	वस्तु धर्म से लाभ	२७
१३	संयम	२९
१४	यम	३६
१५	नियम	४२
१६	स्वधर्माभिमान	४९
१७	धर्माधर्म अर्थात् पुण्यपाप	५२
१८	धर्माधर्म अर्थात् भावकुभाव	५३
१९	धर्माधर्म अर्थात् कृत्याकृत्य	५७
२०	सनातन धर्म की कसोटी	५८
२१	स्वधर्म अर्थात् हमारा धर्म	५९
२२	कर्मी भेद	६२
२३	परमधर्म अर्थात् परोपकार	६३
२४	स्वधर्म अर्थात् सत्यधर्म	६९
२५	स्वधर्म सदन	७३
२६	धर्म अर्थात् वृत्ति	७६
२७	अन्तःकरण	८०
२८	स्वधर्म अर्थात् स्वमूल्य	८७
२९	स्वधर्म अर्थात् निजस्वभाव	९०
३०	स्वधर्म विश्वास	९२
३१	धर्म अर्थात् प्रकृति	९५
३२	धर्म अर्थात् धर्त्ता	१००
३३	संस्कार	१०१
३४	भाग्य अर्थात् करनी	१०३
३५	भावना	१०५
३६	सत्य और धर्म	१०७
३७	प्रमाण मूलक धर्म	१०८
३८	स्वधर्मसार	११०
	द्वितीय भाग अर्थादेश :	
१	अर्थ	११३
२	जाति	११४
३	वर्णोत्पत्तिसहेतु	१२०
४	वर्ण व्यवस्था	१२८
५	वर्ण धर्म त्यागफल	१३४
६	वर्णरूपी शरीर	१३८
७	अंगदेश का सत्यानाश	१४२
८	वर्णाभावदोष	१४६
९	शिक्षा	१५०
१०	यज्ञ	१५४
११	दान	१६२
१२	गोरक्षा	१६४
१३	वृक्ष रोपण	१६८
१४	कृषि	१७२
१५	व्यापार	१८४

उपदेश	विषय	पृष्ठ सं.
१६	शिल्प	१६१
१७	आश्रम	१६८
१८	ब्रह्मचर्य	२००
१६	गृहस्थाश्रम	२०६
२०	पतिव्रत धर्म	२२०
२१	पुनर्विवाह	२२५
२२	अपेय	२३३
२३	अखाद्य	२३७
२४	व्यायाम	२४३
२५	द्यूत	२४६
२६	तीर्थ	२४८
२७	विधिनिषेध	२५२
२८	सावधान	२५५
२६	मूर्खकी गति	२५८
३०	मनुष्य कौन है ?	२६१
३१	धर्म जाति मतांतर में भूल भुलैया	२६३
३२	जाति वर्णांतर में आँख मिचौली	२६६
३३	वर्ण धर्मांतर में अंधाधुंधी	२८०
३४	वर्णाश्रमांतर में अंधेर	२८५
३५	एक भाषा तथा एक लिपी	३०१
३६	स्त्री शिक्षा	३०३
३७	स्वार्थ सिद्धि	३०६
३८	अर्थसार	३१०
	तृतीय भाग कर्मादेश :	
१	कर्म	३१३
२	निष्कामता	३१६
३	विचार	३२०
४	व्यवस्था	३२२
५	पवित्रापवित्र	३२४

उपदेश	विषय	पृष्ठ सं.
६	यज्ञज्ञान	३२६
७	यजन	३२८
८	तेज	३३०
६	यज्ञ तेज के प्रमाण	३३२
१०	स्पर्श दोष	३३६
११	छाया दोश	३४१
१२	शक्तिच्छेदन दोष	३४२
१३	दिग्विचार	३४३
१४	भूत शुद्धि	३४५
१५	दीक्षा	३४७
१६	मौजी बंधन अर्थात् मेखला	३५०
१७	जटा तथा शिखा	३५१
१८	यज्ञोपवीत	३५७
१६	नित्यकर्म	३६३
२०	प्रातरुत्थानकाल	३६५
२१	प्रात:काले दर्शनीय पदार्था	३६५
२२	भूमिस्पर्शन	३६८
२३	गंडूष	३६६
२४	विण्मूत्रोत्सर्ग विधि	३७१
२५	मृतिका लेपन	३७३
२६	मुखमार्जन	३७६
२७	स्नान	३७६
२८	वस्त्र परिधान	३८३
२६	गोमयादि	३८५
३०	आसन	३८६
३१	भस्म धारण	३६०
३२	माला	३६८
३३	आचमन	४००
३४	प्राणायाम	४०१
३५	कुश पवित्री धारण	४०५
३६	मार्जन	४०७

उपदेश	विषय	पृष्ठ सं.
३७	अघमर्षण	४११
३८	अर्घ्यप्रदान	४१४
३९	परिक्रमा	४१५
४०	सूर्योपस्थान	४१७
४१	अभिषेक	४१९
४२	संध्या	४२१
४३	मुद्रा	४२५
४४	जप	४२६
४५	तप	४२७
४६	व्रत	४२९
४७	तर्पण	४३७
४८	श्राद्धतर्पण	४४०
४९	तिलक	४४५
५०	भोजन	४४९
५१	दीपक	४५२
५२	शयन	४५३
५३	संस्काराः	४५६
५४	कर्मसार	४६३
चतुर्थ भाग मोक्षादेश :		
१	मोक्ष	४६९
२	मोहपंचक	४७०
३	जीवाजी व्यापारी	४७२
४	अंगदेश का जमीदार	४७३
५	शरीर	४७६
६	आवागमन	४७९
७	गति	४८३
८	रूपान्तर	४८६
९	धर्मराज अर्थात् यमराज	४९१
१०	उत्पत्ति स्थिति लय	४९५
११	ईश्वरास्तित्व	५०६
१२	ईश्वरे सृष्टयाभास	५०९

उपदेश	विषय	पृष्ठ सं.
१३	ईश्वर दर्शन	५११
१४	तन्नाम	५१३
१५	ईश्वराराधनावश्यकता	५१८
१६	तद्रूप	५२४
१७	ज्ञानयोग भूमिका	५२६
१८	योग	५२८
१९	स्वरज्ञान	५३७
२०	ईश्वर भक्ति	५४२
२१	मूर्त्ति	५४९
२२	मूर्त्ति प्रभाव	५५२
२३	मन्त्र	५६७
२४	वेद	५७१
२५	मोक्षसार	५८३
पंचम भाग अवतारादेश :		
१	अवतार	५८५
	I दिव्यात्मा	५८५
	II अंश	५८७
	III स्फुरण	५९०
२	पंचायतन	५९४
	I गणेश	५९६
	II शक्ति देवी	५९८
	III विष्णु	६००
	IV शिव	६०२
	V सूर्य	६०४
३	अलंकारावतार	६०८
४	भगवान का विष्णु अवतार	६०९
५	भगवान का ब्रह्मावतार	६११
६	भगवान का रुद्रावतार	६१४
७	भगवान का कूर्मावतार	६१४
८	भगवान का वाराहावतार	६१८
९	भगवान का मत्स्यावतार	६१९

उपदेश	विषय	पृष्ठ सं.
१०	अन्य मत से मत्स्यावतार	६२०
११	नृसिंहावतार	६२१
१२	हरि अवतार	६२३
१३	यज्ञावतार	६२४
१४	धन्वतरि अवतार	६२५
१५	कपिलावतार	६२६
१६	ऋषभावतार	६२७
१७	वामनावतार	६२८
१८	हंसावतार	६३१
१९	मन्वन्तरावतार	६३२
२०	ध्रुवावतार	६३३
२१	नरनारायणावतार	६३५
२२	दत्तात्रेयावतार	६३७
२३	सनकादिकावतार	६३९
२४	हयग्रीवावतार	६४१
२५	पृथु अवतार	६४२
२६	परशुरामावतार	६४६
२७	रामावतार	६५०
२८	कृष्णावतार	६६२
	शिक्षा १	६६२
	शिक्षा २	६६४
	शिक्षा ३	६६६
	शिक्षा ४	६६७
	शिक्षा ५	६६७
	शिक्षा ६	६७०
	शिक्षा ७	६७१
	शिक्षा ८	६७३
	शिक्षा ९	६७४
	शिक्षा १०	६७५

उपदेश	विषय	पृष्ठ सं.
	शिक्षा ११	६७७
	शिक्षा १२	६७८
	शिक्षा १३	६८०
	शिक्षा १४	६८२
	शिक्षा १५	६८४
	शिक्षा १६	६८५
	शिक्षा १७	६८६
	शिक्षा १८	६८८
	शिक्षा १९	६८८
	शिक्षा २०	६८९
२९	मोहिनी अवतार	६९२
३०	व्यासावतार	६९३
३१	बौद्धावतार	६९४
३२	कलंकि अवतार	६९५
३३	अग्नि	६९६
३४	भूगोल	६९७
३५	सप्तद्वीप	६९८
३६	जंबुद्वीप	६९९
३७	प्लक्षद्वीप	७०३
३८	शाल्मलीद्वीप	७०३
३९	कुशद्वीप	७०४
४०	क्रौंचद्वीप	७०४
४१	शाकद्वीप	७०५
४२	पुष्करद्वीप	७०६
४३	परीक्षित	७०७
४४	अवतारसार	७०८
४५	प्रार्थना	७०९
४६	शुद्धि पत्रक	७१०

□

।। हरिः ॐ हर ।।

श्रीमंगलाचरण

दोहा

अखिल जगत को परमगुरु, चिदानंद सतरूप ।
धारि रह्यो चिर चराचर, नमुता धर्म अनूप ।। १ ।।

गुप्त प्रगट जो सनातन, है तव धर्मादेश ।
शरण जान गुरु दीजिये, शिष्यहि सो उपदेश ।। २ ।।

परहित चित नितरत रहै, भक्तन को व्है दास ।
धी प्रेरी सत ज्ञान करि, दे चिर तव पद वास ।। ३ ।।

तू पावन तू विध्नहर, सिद्ध करन सब काज ।
निज शिष्यहि दे भक्तिनिज, करहुं कृपा गुरुराज ।। ४ ।।

स्वधर्मसर्वस्व

अर्थात्

केवल अपना धर्मही, अपना सर्वस एक ।
चित्त तुला धर तौलिये, ज्ञान वाट सो नेक ।। १ ।।

जो हितकर सब प्राणिकर, सत्य धर्म निजकर्म ।
वह केवल यह एक है, मात्र सनातन धर्म ।। २ ।।

जिसे

समझि निरर्थक आजकल, निरादरत बिन अर्थ ।
अर्थ केर अन अर्थ करि, बनत अनर्थी व्यर्थ ।। ३ ।।

उसे

जरा विचार जु लीजिये, तनिक दया कर ताहि ।
क्या वह सचमुच सबहि का, सबकुछ है की नाहिं ।। ४ ।।

क्योंकि

बालक हू को लीजिये, जो हो हित उपदेश ।
अनहित तृणवत त्यागिये, ब्रह्माको आदेश ।। ५ ।।

सज्जनों से निवेदन

दोहा

धर्म अर्थ को कर्म को, मोक्ष जुको अवतार ।
ये पांचों शंका हरै, स्वधर्म सर्वस सार ।। १ ।।

सुजन दयाकर यतनकर, सोधी सर्वस दोष ।
दे अनुमति या कीजिये, स्वधर्म सर्वस कोष ।। २ ।।

जावल हम निजधर्म के, प्रतिकारज को मर्म ।
गुप्त प्रकट कारण सहित, लखि मेटैं निज भर्म ।। ३ ।।

क्योंकि

धर्महि अपनो धर्म है, धर्महि अपनो कर्म ।
धर्महि अपनो मर्म है, धर्महि अपनो वर्म ।। ४ ।।

या बिन करो न भावना, या बिन करो न कर्म ।
कारण सर्वस आपनो, शुद्ध सनातन धर्म ।। ५ ।।

किन्तु

प्रभुको प्रतिभू भूप जग, ताकर करो न द्रोह ।
जो तुम चाहो निज भलो, खल भस्मकता कोह ।। ६ ।।

तन मन धन प्रभु भक्ति सों, करो भला नृप केर ।
तब अपनो व्हैगो भलो, सुनो सुजन मम टेर ।। ७ ।।

।। हरिः ॐ हर ।।

स्वधर्मसर्वस्व

प्रथम भाग–धर्मादेश

उपदेश १

स्वधर्म व्याख्या

प्रश्न–स्वधर्म शब्द किस तरह बना ?

उत्तर-[स्व+धृ+म] के योग से.

प्र०– [स्व] का अर्थ है ?

उ०– स्वयं, स्वतः; स्वाभाविक, प्राकृतिक, सनातन, आपही आप, अपना, आप, निज, [खुद बखुद, कुदरती, खुद, खुदका].

प्र०– [धृ] का अर्थ क्या है ?

उ०– धरना, धारना, धारे रहना, धारे हुए रहना, रखना.

प्र०– [म] का अर्थ क्या है ?

उ०– मर्यादा, योग्यता, योग्य, निश्चय, नित्य, चिरकाल, सत्य, ज्ञान, आनन्द, पुरुषार्थ, शक्ति, तेज, विष, अमृत, यम, काल, मृत्यु, समय, चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु, उपजाना, पालना, नाशना.

प्र०– स्वधर्म किसे कहते हैं ?

उ०– जो सनातन मर्यादादिक को धारे हुए है.

प्र०– धर्म के पर्यायी शब्द क्या हैं ?

उ०– भाव, स्वभाव, गुण, प्रकृति, कर्त्तव्य, करणीय, मूल्य, पानी, पुण्य, उपकार, सुकर्म, न्याय, यम, नियम, संयम, यज्ञ. [फर्ज, मनसब, ड्यूटी, सबाब, तासीर, नेककाम].

प्र०– भाव के पर्यायी शब्द क्या हैं ?

उ०– धर्म, स्वभाव, प्रकृति, मोल, प्रेम, भावना, इच्छा, भक्ति, विश्वास, वृत्ति, विचार, लक्ष, स्फुरण, चेतना, मनोरथ, रुचि, कामना,

सुरति, कांक्षा, आकांक्षा, अभिलाषा, [ईमान, नीयत, ख्याल, इरादा, इष्कलौ, आदत, तासीर, कीमत, दर].

प्र०– कर्त्तव्य के पर्यायी शब्द क्या हैं ?

उ०– करणीय, करने योग्य काम, उचितकर्म, पुरुषार्थ, उद्योग, प्रयत्न, संयम, नियमित कर्म, धर्म [फर्ज, मनसब, ड्यूटी].

छंद

सनातन धर्म स्वधर्म अहै।
सभाव सकृत्य स पुण्यप है ।।
वता प्रतिकूल अधर्मक है।
स भाव सकृत्य स पापज है ।।

उपदेश २

स्वधर्म अर्थात् सनातन धर्म

प्र०– धर्म का अर्थ क्या है ?

उ०– मर्यादा को धारे रहना.

प्र०– वह मर्यादा क्या है ?

उ०– ईश्वरीय सृष्टि नियम, अर्थात् कानून, कुदरत.

प्र०– इसलिये सर्वधर्म क्या हुआ ?

उ०– जो ईश्वरीय सृष्टि नियम के अनुकूल हो अर्थात् जो कानून कुदरत के मुवाफिक हो.

प्र०– इसलिये अधर्म क्या हुआ ?

उ०– जो ईश्वरीय सृष्टि नियम के प्रतिकूल हो अर्थात् जो कानून कुदरत के खिलाफ हो.

प्र०– ईश्वरीय नियम तुला के समान क्यों है ?

उ०– क्योंकि ईश्वरीय सृष्टि नियम रूपी तुलाके अनुकूल तथा प्रतिकूल नामक दो पलड़े हैं, इसलिए जो कुछ उसके अनुकूल तुले उसे स्वधर्म तथा प्रतिकूल तुले उसे अधर्म तत्काल कह सकते हैं; जैसे तृषा निवारणार्थ जलपान स्वधर्म तथा मदिरापान अधर्म सिद्ध होता है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि सभी चराचर जीवों की स्वाभाविक प्यास पानी ही से निवृत्त होती है, न कि मदिरा से; तिसपर जल प्राकृतिक तथा मद्य अप्राकृतिक है, तभी तो ईश्वरेच्छा से इस सृष्टि में जल के असंख्य प्रवाह स्वाभाविक प्रवाहित हो रहे हैं. क्या कोई वैसा एक भी प्राकृतिक मद्य स्रोत दिखा सक्ता है ?

प्र०– अच्छा ! धर्मज्ञान की आवश्यकता क्यों है ?

उ०– क्योंकि अंतको स्वधर्माचरण से सद्गति तथा अधर्माचरण से दुर्गति होती है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! जो जन पिपासा शांति के लिये, जल त्याग, मद्यपान करते हैं, उनकी तृषा घटने के बदले इतनी बढ़ जाती है कि वे उन्मत्त हो, अपने आपको भूल नाना प्रकार के अनर्थ कर, तन, धन, लाज, काज तथा मर्यादादि को गमा बैठते हैं.

प्र०– अच्छा ! वनस्पति को जल अथवा तेजाब में से किसके द्वारा सींचना स्वधर्म है ?

उ०– जल से सींचना स्वधर्म तथा तेजाब से सींचना अधर्म है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि वनस्पतियां जल से उपजती, बढ़ती, पुष्ट होती ठहरती, तथा फल पुष्पादि देती है, इसलिये उन्हें जल द्वारा सींचना प्राकृतिक नियम है, किन्तु जो जल के बदले तेजाब से सींचे, तो वह प्रकृति के विरुद्ध कहा जावेगा. कारण ऐसा करने से वे नष्ट हो जावेंगी, इसी तरह अन्य उदाहरणों द्वारा धर्म निर्णय कर सकते हो.

छन्द

ईश्वरीय सृष्टिनेम । तुल्य वर्तनात धर्म ।
ता विरुद्ध वर्तनेन । व्है अधर्म येन केन ।।

उपदेश 3

संकेत

प्र०– धर्मशास्त्रने किन चिन्होंद्वारा सृष्टिनियम कीअनुकूलता सूचित कीहै?

उ०– प्र, सु, सत, सत्य, विधि, हित, उचित, योग्य, अच्छा आदि द्वारा.

प्र०– धर्मशास्त्रने किनचिन्होंद्वारा सृष्टिनियम कीप्रतिकूलता सूचित कीहै?

उ०– अ, अन, अव, अप, कु, दुर, अयोग्य, मिथ्या, निषेध, बुरा आदि द्वारा

प्र०– तो क्या? जो हमें अच्छालगे उसेधर्म तथा बुरालगे, उसे अधर्म समझें?

उ०– नहीं ! नहीं !! कदापि नहीं !!!

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि ऐसा समझने से अनर्थ भी हो सकता है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह मद्यपिको मद्यपान ही अच्छा लगता है किन्तु सचमुच वह अत्यन्त बुरा कर्म है.

प्र०– तो फिर इन संकेतों द्वारा धर्माधर्म का यथार्थज्ञान कब हो सकता है ?

उ०– केवल उसी दशा में हो सकता है, जब कि उसका उपयोग यथायोग्य किया गया हो; अन्यथा नहीं.

प्र०– इसलिये हमें क्या उचित है ?

उ०– संशयजनक बात की जांच सृष्टिनियम रूपी तराजू से कर लिया कर.

प्र०– कु, सु, आदि सांकेतिक शब्दों की रचना क्यों की गई ?

उ०– बोलने तथा लिखने में विस्तार के रोकने, समय तथा प्रयास के बचाने के लिये.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह ईश्वरीय सृष्टि नियमानुकूल कर्मको सुकर्म तथा उसके प्रतिकूल कर्मको कुकर्म कहने से काम चल जाता है.

सोरठा

जगक्रम के अनुकूल, वही भला है जगत में ।
जो उसके प्रतिकूल, उसे कहैं सब नित बुरा ।। १ ।।
इसे कदा ना भूल, यही नीति सत धर्म पंथ ।
यह वेदों का मूल, नित सज्जन ज्ञानी कहत ।। २ ।।

उपदेश ४

धर्मी भेद

प्र०– धर्म के विचार से मनुष्य के कितने भेद हैं ?

उ०– चार हैं,अर्थात् देवधर्मी, मनुष्यधर्मी,राक्षसधर्मी और पिशाचधर्मी.

प्र०– यहां पर धर्मका क्या अर्थ है ?

उ०– गुण.

प्र०– गुण कितने हैं ?

उ०– तीन हैं, अर्थात सत, रज, तम.

प्र०– देवधर्मी किसे कहते हैं ?

उ०– जो सर्वदा स्वभाव ही से सृष्टिनियम के अनुकूल वर्त्तता है.

प्र०– मनुष्यधर्मी किसे कहते हैं ?

उ०– जो निजहित साधन के अर्थ सृष्टिनियम के अनुकूल चले.

प्र०– राक्षसधर्मी किसे कहते हैं ?

उ०– जो किसी भय के कारण सृष्टिनियम के अनुसार वर्ते.

प्र०– पिशाचधर्मी किसे कहते हैं ?

उ०– जो सृष्टिनियम के अनुसार नहीं चलता, ईश्वर को नहीं मानता, लोकापवाद से नहीं लजाता, ज्ञातिदंड व राजदंड से नहीं डरता एवं सबका निरादरकर यथेच्छ विचरता है, उसे पिशाचधर्मी कहते हैं.

प्र०– पिशाचधर्मी किन नामों से पुकारा जाता है ?

उ०– अनार्य, दस्यु, आततायी, अधर्मी, काफर आदि.

चौपाया

चार तरह के धर्मी सांच । देव मनुज अरु दनुज पिशाच ।। १ ।।
सेवै स्वयं धर्म सो देव । मनुज लोभवश, डरसु अदेव ।। २ ।।
काहु विधिना मान पिशाच । तासिर काटै, नरवर सांच ।। ३ ।।

उपदेश ५

धर्मोपदेश पात्र

प्र०– धर्मशास्त्र ने सनातन धर्मका उपदेश किस तरह दिया ?

उ०– यथार्थ, रोचक तथा भयानक रूप से.

प्र०– यथार्थ उपदेश किसे दिया ?

उ०– देवधर्मी को.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि वह सात्विक, शांत, सुशील, संतोषी, विचारवान्, सत्यग्राही तथा स्वभाव ही से स्वधर्म पर तत्पर होता है, इसलिये धर्मशास्त्र ने उसे ज्यों का त्यों यथार्थ उपदेश दिया.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह पिता अपने पुत्र से कहता है कि यदि बेटा तुम पढ़लोगे तो विद्वान हो जाओगे अर्थात् तुम्हें लौकिक तथा पारलौकिक वस्तु का यथार्थ ज्ञान हो जावेगा.

प्र०– रोचक उपदेश किसे दिया ?

उ०– मनुष्यधर्मी को.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि वह रजोगुणी, लोभी तथा सैलानी है. इसलिये धर्मशास्त्र ने उसे ललचाने के लिये यथार्थ को रोचक बना उपदेश दिया, जिससे वह लालचवश स्वधर्म पाले.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह माता पिता अपने पुत्र से कहते हैं कि हे बेटा ! यदि तुम पढ़लोगे तो विपुल धन सुखादि पावोगे.

प्र०– भयानक उपदेश किसे दिया ?

उ०– राक्षसधर्मी को.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि वह तमोगुणी, क्रोधी तथा निर्दयी होता है. इसलिये उसे डराने के लिये धर्मशास्त्र ने यथार्थ को भयानक बना उपदेश दिया; जिससे वह भयभीत हो स्वधर्म पाले.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह शिक्षक अपने विद्यार्थियों से कहता है कि यदि तुम अपना अभ्यास याद न कर लोगे तो मैं तुम्हें शिक्षा दूंगा, नहीं तो तुम यावज्जीवन दुःख भोगोगे.

प्र०– किन्तु उभय दशा में माता पिता तथा गुरु का यथार्थ उद्देश्य क्या है?

उ०– बालक को विद्वान बनाने का.

प्र०– धर्मशास्त्र ने पिशाचधर्मी को क्या उपदेश दिया ?

उ०– कुछ नहीं.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि पिशाचधर्मी उन्मादी होता है.

प्र०– तो क्या उन्मादी को उपदेश न देना चाहिये ?

उ०– नहीं.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि उसे उपदेश नहीं लगता, किन्तु वह सदुपदेश से अप्रसन्न होकर उपदेशक का अनहित कर्त्ता बन जाता है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह वैद्य स्वाभाविक उन्मादी को औषधि नहीं देता, क्योंकि उसे औषधि किसी तरह गुण नहीं करती. वह उल्टा वैद्य से अप्रसन्न होकर उसके अनहित के लिये तत्पर हो जाता है.

दोहा

बया दीन्ह उपदेशहित, बंदर गयो खिसाय ।
नोच खोज ता घोसलो, जलमें दियो बहाय ।।

प्र०– पिशाच धर्मी के लिये क्या आज्ञा है ?

उ०– राजा उसे दंड दे, सृष्टिनियम के अनुकूल चलावे.

प्र०– यदि वह न चले तो ?

उ०– तो राजा उसे प्राणदंड तक दे सकता है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि पिशाचधर्मियों की वृद्धि से संसार में अशांति फैल जाती है, जिससे निर्दोष प्राणियों को कष्ट पहुंचता है.

प्र०– किसका उपदेश ग्रहण करे ?

उ०– केवल देवधर्मी का

प्र०– देवधर्मी को किस तरह जाने ?

उ०– जिसका संतोषप्रद, सत्यस्वभाव आचरण व कहना सृष्टिनियम के संयम के अनुकूल व सराहनीय तथा सज्जनों द्वारा माननीय हो,

और जो सनातन धर्म का यथार्थ दृढ़ाभिमानी तथा स्वार्थरहित चिर परोपकारी हो वह अवश्य देवधर्मी है.

प्र० – तो क्या मनुष्यधर्मी तथा राक्षसधर्मी का उपदेश ग्रहण न करे ?

उ० – नहीं.

प्र० – क्यों ?

उ० – क्योंकि ये दोनों लोभ क्रोध की अधिकता से सृष्टिनियम के प्रतिकूल हो सकते हैं, इसलिये उनके उपदेश का परिणाम संशयजनक होता है.

प्र० – यदि शंका निवृत्ति हो जाय तो ?

उ० – तो भी उनके स्वाभावानुकूल परिणाम पर लक्ष रखना उचित है.

प्र० – उसका विचार न रखने से क्या होगा ?

उ० – **जिमि गीदड़ की बात मृग, बिन सोचेली मात ।**
फंद्यो जाय छल फंद में, बहु दुख पायो प्रान ॥

प्र० – किसका उपदेश कदापि न सुने ?

उ० – अनजाने तथा पिशाचधर्मी का.

प्र० – पिशाचधर्मी का उपदेश क्यों न सुने ?

उ० – क्योंकि उसका स्वार्थ हो चाहे न हो तो भी वह ओरों को संकट में डालने के लिये सर्वदा तत्पर रहता है और कसम खाना, झूठ बोलकर धोखा देना तथा नाना प्रकार के दुर्गुणों में लिप्त रहना तो उसका नित्यकर्म है, इसलिये कदापि न उसकी बात सुने, न उसके पास खड़ा रहे.

प्र० – जो पिशाचधर्म की बात मानते हैं, उसकी क्या दशा होती है ?

उ० – **जैसी – सिंहबात द्विजने सुनी, लालच वश ली मान ।**
निकट गयो ता सोन हित, सो न लह्यो गो प्रान ॥

प्र० – अनजाने मनुष्य की बात क्यों न माने ?

उ० – क्योंकि जिसका स्वभाव, आचरण, पता, ठिकाना कुछ नहीं देखा उसकी बात पर किस तरह विश्वास किया जाय.

प्र० – यदि उसका वर्ताव अच्छा दिखे तो ?

उ० – बहुत से ठग, पापी अपना मतलब गांठने के लिये बड़े सिद्धज्ञानी पंडित बन जाते हैं अंत में राक्षस पिशाचवत् करनी करते हैं.

प्र०— उसका कोई उदाहरण दो ?

उ०— जैसा – अनजाना खटमल गया, जूं के घर महिमान ।।
सटक गया खुद काटि नृप, गई हनी वो जान ।।

चौपाया

मात्र देवधर्मी उपदेश । गहि वर्ते तस जस उद्देश ।। १ ।।
औरों की सुनले बस बात । सोचि सुफल मनवत करतात ।। २ ।।
तजे पिशाच अजानकु साथ । सुने न इनकी कबहूं बात ।। ३ ।।
चाहे को सौ सौहें खाय । चाहे सोना देय बनाय ।। ४ ।।
चाहे कोऊ सिद्धि बताय । ब्रह्मदेव को देय दिखाय ।। ५ ।।
चाहे जोड़े हाथ रुपाय । करि सेवा धन दे ललचाय ।। ६ ।।
चाहे रोवै या धमकाय । त्रास दयी बहु चित्त दुखाय ।। ७ ।।
चाहे लाभ हानि बल होय । मंत्र दवा करि देरुज खोय ।। ८ ।।
चाहे विद्या हुनर बताय । चाहे अपनो सगो कहाय ।। ९ ।।
तो भी धर्मशून्य की बात । सुने कबहुना धर्म नसात ।। १० ।।

दोहा

मात्र अधर्मी को वही, दे सक धर्मादेश ।
जो है धर्मी स्वयं खुद, न तु नाहक उपदेश ।। १ ।।
उपदेशक के चलने को, देखि चले जो कोय ।
वैसो ही हो जात वो, याते गहु सत जोय ।। २ ।।
कहे कछु अरु करे कछु, मनहि रखे कछु और ।
ता उपदेश न भूल सुन, वो पापी सिर मौर ।। ३ ।।
बात अधर्मी पक्ष की, कदा न माने भूल ।
धोखे का घर अंत को, कहा मंत्र यह मूल ।। ४ ।।

उपदेश ६

आज्ञा पालन

प्र०— किनकी आज्ञा पाले ?

उ०— माता, पिता, गुरु, सुहृद, स्वामी तथा राजा की.

प्र०– माता की आज्ञा क्यों पाले ?

उ०– क्योंकि माता स्वभाव ही से हमारी हितचिंतक है, सिवाय वह नाना प्रकार के कष्ट भोगकर हमारा लालन पालन करती है, देखो ! वह स्वयं क्षुधा, तृषा, उष्ण, शीत, सहलेती है, किन्तु हमें भूखा प्यासा आदि नहीं रहने देती. वह अपनी बीमारी भोग लेती है, किन्तु हमें रोगी देख तुरंत अकुला उठती है, और उसी वक्त हमारी आरोग्यता तथा भलाई के लिये अनेक प्रयत्न करने लगती है, वह हमारे मलमूत्र का असह्य दुख भी भोग लेती है, किन्तु हमें उस कष्ट से बचाती है. कहां तक कहें ! संसारमें माता के समान कोई हित् नहीं. इसलिये उसकी हिताज्ञा पालन करने से हमारा परम हित होगा.

प्र०– पिता की आज्ञा क्यों माने ?

उ०– क्योंकि पिता हमारा पालन पोषण तथा हित करता है, सिवाय हमारे हितके लिये दिन रात उपाय सोचता रहता है. इसलिये उसकी हिताज्ञा पालन करने से हमारा परम हित होगा.

दोहा

मात पिता निज पुत्र का, हित चाहत दिनरात ।
वही हमारे हानि की, क्या ? कहेंगे बात ।। १
सहि दुख नाना कियो बड, दैके मुखको कौर ।
जो ना माने हुक्मता, वो पापी सिर मौर ।। २ ।।

प्र०– गुरु की आज्ञा क्यों माने ?

उ०– क्योंकि गुरु हमें नाना प्रकार की विद्या पढ़ाकर ज्ञानी बनाता है, वह विद्या हमारा सर्वत्र सन्मान कराती, द्रव्य दिलाती, दुःख छुड़ाती तथा जन्म तक काम आती है. इसलिये उसकी हिताज्ञा पालन से हमारा अपार हित होता है.

प्र०– सुहृदका अर्थ क्या है ?

उ०– शुद्ध हृदयवाला अर्थात् सज्जन, मित्र, हितचिंतक, संत.

प्र०– सुहृद की आज्ञा क्यों माने ?

उ०– क्योंकि उसका हृदय शुद्ध होता है इसलिये उसकी आज्ञा पालन से हित होगा.

प्र०– स्वामी की आज्ञा क्यों माने ?

उ०– क्योंकि स्वामी, सेवक का हितचिंतक होता है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि सेवक के हित से स्वामी का हित होता है.

प्र०– राजाज्ञा क्यों माने ?

उ०– क्योंकि वह हित कामना से दिन रात हमारे कुटुम्ब, प्राण, मान तथा संपत्ति की रक्षा करता है और हमें विरुद्धाचरण से तथा अधर्मियों के कष्ट से बचाता और सनातन धर्म पर चलाता है. इसलिये उसकी आज्ञा पालन से हमारा परम हित है.

प्र०– यदि हम किसी की आज्ञा न माने तो ?

उ०– तो वे अप्रसन्न होकर हमारी रक्षा तथा सहायता करना छोड़ देंगे या क्रुद्ध होकर दंड देंगे, इससे हमारा अत्यंत अनहित होगा.

प्र०– आज्ञा पालन से तो हमारी स्वतंत्रता नष्ट होती है ?

उ०– यह तुमारी भूल है, क्योंकि तुम आज्ञा का अर्थ नहीं समझते.

प्र०– आज्ञा का क्या अर्थ है ?

उ०– जो कि (आ)=ब्रह्म, सत्य, मर्यादा, वृद्धि, हित, दिव्य, सब तरह, उत्तम प्रकार; तक, पर्यंत, और (ज्ञा)=ज्ञानदाता, जतानेवाली, उपदेशक, प्रकाशक, दर्शक इसलिये (आज्ञा)=ब्रह्मज्ञानदाता, सत्यज्ञानकर्ता, मर्यादा जतानेवाली, वृद्धिका ज्ञान देनेवाली, हित दर्शानेवाली, दिव्यज्ञान प्रदायिनी, सब प्रकारका ज्ञान देनेवाली, तथा ज्ञान पर्यंत काम आनेवाली है.

प्र०– यह केवल ज्ञान पर्यन्त ही क्यों काम आती है ?

उ०– क्योंकि जिसे अपने कर्तव्य कर्म का परिपूर्ण ज्ञान है, उसे आज्ञा देने की आवश्यकता नहीं पड़ती-या कम पड़ती है.

प्र०– आज्ञा किस हितकारक सत्य मर्यादा का ज्ञान कराती तथा उपदेश देती है ?

उ०– ईश्वरीय सृष्टि के हितकारक सत्य नियमों की मर्यादा का ज्ञान कराके उसके तुल्य दृढ संयम का उपदेश देती है.

प्र०– इसमें भय, लोभ तथा दंड का क्या काम ?

उ०– मनुष्यधर्मी रजोगुणी के लिये लोभ, राक्षसधर्मी तमोगुणी के लिये भय तथा पिशाचधर्मी उन्मादी के लिये दंड दिया जाता है, जिससे वे सृष्टि नियम की मर्यादा के दृढ़ संयमी बने.

प्र०– किसे भय, लोभ तथा दंड नहीं दिया जाता ?

उ०– सत्व गुणी देवधर्मी को.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि वह सत्यग्राही, दयालु तथा संतोषी स्वभाव ही से ईश्वरीय सृष्टि के नियमों की मर्यादा का दृढ संयमी होता है.

प्र०– यदि दंड विधान न होता तो ?

उ०– तो सब आज्ञा भंग करके अवज्ञा करते.

प्र०– इसका क्या तात्पर्य है ?

उ०– कि मनुष्य ईश्वरीय सृष्टि के नियमों की मर्यादा के संयम को त्यागकर विरुद्धाचरणी बन जाते अर्थात् सनातन धर्म को त्यजकर अधर्मी बन जाते.

प्र०– क्यों ?

उ०– **क्योंकि अधर्मीहने बिन, निर्भय हो अधिकाय।**
तिनसो पावै कष्ट सब, सत्य धर्म नस जाय।। १ ।।

प्र०– आज्ञा पालन का सारांश कहिये ?

उ०– **सृष्टिनियम अनुसार हित, अनहित है प्रतिकूल।**
आज्ञा पालन धर्महित, पाप अवज्ञा मूल।। १ ।।
अवज्ञा अनहित खानि है, सृष्टिनियम प्रतिकूल।
प्रान जातहू कीजिये, सृष्टिनियम अनुकूल।। २ ।।

अर्थात्

आज्ञा रक्षत धर्मको, हमको रक्षै धर्म ।
रक्षा से हित होत निज, हितसो सद्गति पर्म ।। १ ।।
हने अवज्ञा धर्मको, हमको हने अधर्म ।
हन हिंसा अनहित करै, वासो दुर्गति पर्म ।। २ ।।
आज्ञा राखत धर्म को, हनी अवज्ञा देत ।
याते आज्ञा पालिये, तजी अवज्ञा चेत ।। ३ ।।

उपदेश ७

अभिवादन

प्र०– अभिवादन किसे कहते हैं ?

उ०– सत्कार सहित यथोचित प्रणामादिक को.

प्र०– किसका अभिवादन करना चाहिये ?

उ०– महानुभावों का.

प्र०– यदि महानुभाव शब्दगत भाव का अर्थ प्रेम मानें तो महानुभावी कौन हुए ?

उ०– माता, पिता, गुरु, स्वामी, सुहृद, राजा तथा भक्तादि.

प्र०– इनका अभिवादन क्यों करें ?

उ०– क्योंकि ये स्वभाव ही से हमारे हितचिंतक हैं.

प्र०– यदि अनुभव से, अनुभाव हुआ माने, तो महानुभावी कौन हुए ?

उ०– विद्वान, ज्ञानी, महात्मा, अनुभवी, सुज्ञ तथा सभ्य पुरुषादि.

प्र०– इनका अभिवादन क्यों करे ?

उ०– क्योंकि इनके प्रसन्न होने से हमें बहुज्ञता प्राप्त होती है. जिसके द्वारा हमारा परम कल्याण हो सकता है.

प्र०– इनके सिवाय और कौन महानुभाव कहाते हैं ?

उ०– भूपति, तेजस्वी, सामर्थ्यवान, ऐश्वर्यवान, वैद्य, प्रतिष्ठावान आदि बड़े जन.

प्र०– अच्छा ! इनका अभिवादन क्यों करे ?

उ०– क्योंकि इनके प्रसन्न होने से हमारा हित तथा अप्रसन्न होने से अनहित हो सकता है.

प्र०– और किनका अभिवादन करना चाहिये ?

उ०– जिनका अनेक लोग या हमारे समाजी, सहवासी या स्वजन, सन्मान तथा अभिवादन करते हों, उनका भी अवश्य अभिवादन करना चाहिये.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि प्रथा या व्यवहार के विरूद्ध चलने से वे सब अप्रसन्न हो जावेंगे, जिससे हमें अपमानित तथा निंदित होना पड़ेगा; आश्चर्य नहीं ? कि कदाचित् हानि तक भी उठाना पड़े.

प्र०– शेषजनों के लिये क्या करे ?

उ०– यथायोग्य रामराम आदि करे, चाहे वे परिचित, चाहे अपरिचित क्यों न हों.

प्र०– क्यों करे ?

उ०– क्योंकि न जाने किस वेष में कौन आ जावे.

प्र०– क्या समझ सबको नमना चाहिये ?

उ०– प्रभुको सर्वव्यापी समझ.

प्र०– जो हमसे मिले या हमारे पास आवे तो हमें क्या उचित है ?

उ०– हमें योग्यतानुसार, उसके सन्मान, अभ्युत्थान तथा अभिवादन आदि का पूर्ण लक्ष रखना चाहिये.

प्र०– यदि हम इस बात पर लक्ष न रखें तो ?

उ०– तो यह हमारी पूर्ण मूर्खता है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि कदाचित् वह आगंतुक इस त्रुटिके द्वारा निज अपमान समझ हमारा अशुभचिंतक बन बैठे.

प्र०– यदि हम स्वयं किसी से मिलें या किसी के यहां जावें तो हमें क्या उचित है ?

उ०– उस दशा में भी हमें उसके सन्मान तथा अभिवादन का पूर्ण लक्ष रखना चाहिये ?

प्र०– यदि हम इस बात पर लक्ष न रखें तो ?

उ०– तो भी हमारी मूर्खता ही है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि इस अपमान द्वारा भी वह हमारा अनहितकारी बन सकता है.

प्र०– यदि कोई हमारी योग्यता पर, उचित सन्मान, अभ्युत्थान तथा अभिवादन न करे तो ?

उ०– तो भी अप्रसन्न न होना चाहिये.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि ऐसी बातों पर अभिमानी पुरुष ही कुपित होते हैं, किन्तु सभ्य शीलवान नहीं.

प्र०– इसलिये क्या उचित है ?

उ०– कि उसका सन्मान आदि और भी अधिक उत्साह के साथ करे.

प्र०– ऐसा करने से उस पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

उ०– वह औरों की दृष्टि से पतित तथा स्वयं लज्जित हो फिर ऐसी त्रुटि कभी न करेगा.

प्र०– इतने पर भी वह सचेत न होतो ?

उ०– तो जब कभी उसे किसी बड़े अभिमानी से काम पड़ेगा, तब वह स्वयं अपनी करनी का बदला पा लेवेगा.

प्र०– यदि किसी ने धर्म या राज मर्यादा संबंधी अपमान किया हो तो ?

उ०– उसका प्रतिकार अवश्य होना चाहिये !

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि यह अपमान अशांति का बीज है.

प्र०– यदि अपराधी शुद्ध अंतःकरण से क्षमा मांगे तो ?

उ०– तो अवश्य क्षमा प्रदान करे.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि प्रजा, पूर्ण विश्वास के साथ क्षमावान का अनुराग करने लगती है, जिसके द्वारा जग में महत्व बढ़ता तथा अनेक लाभ होते हैं.

प्र०– वास्तविक में अभिवादन क्यों किया जाता है ?

उ०– ईश्वर का स्मरणकराने, उसका महत्व दर्शाने तथा परस्पर का प्रेम बढ़ाने के लिये.

दोहा

महानुभावी पूज्यको, अभिवन्दै हररोज।
यथायोग्य सबको करै, स्वागत विधिवत खोज।। १ ।।
नमन कियेते प्रेम बढ़, व्है एका सन्मान।
मदद सधै हित मिस यही, प्रभु सुमिरण गुण ध्यान।। २ ।।
मधुर वचन हित नमनसों, सधत सकल उद्देश।
ना जाने को का समय, आयो धरि का भेष।। ३ ।।

उपदेश ८

स्वधर्म संस्थापना

प्र०– यहां पर स्वधर्म किसे समझें ?

उ०– उसी ईश्वरीय सृष्टि नियमानुकूल प्रवाही सनातन धर्म को.

प्र०– स्वधर्म संस्थापना क्या वस्तु है ?

उ०– हर तरह हर मनुष्य को ईश्वरीय सृष्टि नियमों की मर्यादा का दृढ़ संयमी बनाना ही स्वधर्म संस्थापना है.

प्र०– स्वधर्म संस्थापना का अधिकारी कौन है ?

उ०– जो स्वयं ईश्वरीय सृष्टि नियमानुकूल सचमुच ही तन, मन, वचन, क्रम से वर्त्त रहा हो.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि उपदेशक का प्रभाव तभी पात्रपर पड़ेगा, जबकि वह स्वयं उस शिक्षा का तन, मन, वचन, क्रम से अवलम्बी हो; अन्यथा नहीं.

प्र०— स्वधर्म संस्थापना में राजा का क्या कर्त्तव्य है ?

उ०— कि वह चाहे जिस नीति रीति से दयापूर्वक प्रेम, लोभ, भय दिखा तथा दंड देकर भी विरुद्धाचरणियों को सृष्टि नियमानुसार चलावे.

प्र०— इतने पर भी कोई न चले तो ?

उ०— राजा उसे प्राण दंड तक दे सकता है.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि ऐसा न करने से, विरुद्धाचरणियों की वृद्धि होगी, जिससे पृथ्वी पर महा अनर्थ उपस्थित हो जावेगा, इसलिये उस अमंगल-कारी विष बीज को नसाना ही राजा का मुख्य कर्त्तव्य है.

प्र०— आज तक मैं यह समझता था कि खान, पान, लोभ, भय, छल, बल आदि द्वारा किसी अन्य सम्प्रदा वाले को अपनी सम्प्रदा में मिला लेना ही स्वधर्म है, इसलिये मैं उनकी हानि करना तथा प्राणतक हर लेना भी अपना परम कर्त्तव्य समझता था.

उ०— भाई ! यह तुम्हारी भयंकर भूल थी.

धर्म सनातन थापिये, अधरम को दे खोय ।
दुर इच्छा जड़ काटिये, सद् इच्छा दे बोय ।। १ ।।
हित आज्ञा ना भंगकर, करो न नृपको द्रोह ।
सदा अधर्मी के लिये, अग्निरूपता कोह ।। २ ।।

उपदेश ९

सम्प्रदाय

प्र०— सम्प्रदा के पर्यायी शब्द क्या हैं ?

उ०— मज़हब, दीन, पंथ, समाज.

प्र०— सम्प्रदा का क्या अर्थ है ?

उ०— श्रेष्ठ वस्तु देनेवाली, अर्थात् हित करने वाली.

प्र०— मज़हब, दीन, पंथ का क्या अर्थ है ?

उ०— रास्ता दिखाने वाला या रास्ता.

प्र०– समाज का क्या अर्थ है ?

उ०– समूह, ऐक्यता.

प्र०– सम्प्रदा तो धर्म का नाम है ?

उ०– तो क्या सम्प्रदा में सब धर्मात्मा होते हैं ?

प्र०– नहीं.

उ०– तो क्या फिर उस समाज या सम्प्रदाको जिसमें धर्मी, अधर्मी दोनों सम्मिलित हैं उसे निष्केवल धर्म कहना क्या ठीक है ?

प्र०– तो क्या हम सम्प्रदामें न रहें ?

उ०– अवश्य रहो.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि अपनी समाजी शृंखला से अपने समाजियों की आपस में प्रीति तथा ऐक्यता रहती है, इस कारण अपने समाज में रहने से अपने समाजी भाई हरदशा में अपनी सहायता आदि कर सकते हैं, तथा करते हैं, जिससे अपना परमहित होता है, तथा हो सकता है, इसलिये सम्प्रदा में रहना अपना धर्म अर्थात् कर्त्तव्य है. किन्तु सम्प्रदा का अर्थ स्वधर्म नहीं है, अर्थात् सम्प्रदा शब्द धर्म नहीं है.

प्र०– तो फिर सम्प्रदा किसे कहें ?

उ०– परमहितकारक प्रीति तथा ऐक्यतावर्द्धक समाज को सम्प्रदा कहो.

प्र०– सम्प्रदा का जन्म क्यों होता है ?

उ०– किसी उद्देश के पूरा करने के लिये.

प्र०– सम्प्रदावाले किसे धर्म समझते हैं ?

उ०– प्रचारक के उद्देश को.

प्र०– प्रचारक के कितने उद्देश होते हैं ?

उ०– अनेक.

प्र०– क्या प्रचारकों के सम्पूर्ण उद्देश माननीय होते हैं ?

उ०– केवल उन्हें माननीय समझो, जो सनातनधर्म के अनुसार हैं, किन्तु जो उद्देश उसके प्रतिकूल हों वे समूल त्याज्य हैं.

प्र०– सम्प्रदाय के नियमों में बुराई कहां से आती है ?

उ०– प्रचारकों तथा अध्यक्षों के स्वभाव अर्थात् चालचलन से.

प्र०– हर पंथवालों को क्या उचित है ?

उ०– कि वे अपने २ सामाजिक नियमों की बुराई सुधारें.

प्र०– किस तरह ?

उ०– अर्थात् जो नियम सृष्टिनियम के विरुद्ध हों, उन्हें सानुकूल बनावें.

प्र०– सम्प्रदा में न रहने से क्या हानि ?

उ०– जो किसी भी सम्प्रदा में नहीं है, वह मनुष्य ऐसा है, जैसा धोबी का कुत्ता घरका न घाटका.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि सम्प्रदा में रहने से जो दुःख सुख में सहायता मिलती थी तथा अनेक हितकारक काम बनते थे, वह मार्ग बन्द हो जाता है.

प्र०– यदि कोई अपनी सम्प्रदा त्याग अन्य सम्प्रदा में मिले तो क्या हानि ?

उ०– उसे उन दोनों सम्प्रदा वाले नीच समझते हैं तथा संसार में उसका कोई विश्वास नहीं करता.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि जो अपनी सम्प्रदा त्याग आया, उसे अन्य सम्प्रदा त्यागते तथा धोखा देते क्या देर लगेगी ?

प्र०– जो अपनी सम्प्रदा को त्यागता है, उसकी कैसी दशा होती है ?

उ०– चमगीदड़ वत.

प्र०– उसकी कथा कहिये ?

प्र०– **एक समय पशु पक्षिन केर, भयो महा संग्राम सुमेर ।। १ ।।**
लगी होन जब पक्षी हार, चमगीदड़ मन कीन्ह विचार ।। २ ।।
इन सह रहते ह्वैगो क्लेश, पशुन संगते ना लवलेश ।। ३ ।।
मिल्यो जाय वह पशुके माय खग को भेद जु दियो बताय ।। ४ ।।
भेद पायके पशुगे जीत, पक्षी भगे होय भयभीत ।। ५ ।।

तब सब पशु मिल निश्चय कीन्ह, चमगीदड़ हि गुलामी दीन्ह ॥ ६ ॥
भयो दुखित निज लखी अपमान, तब खग सुखको आयो ध्यान ॥ ७ ॥
पशुभे निर्बल ग्रीष्मकाल, तब बह खग ढिग गोततकाल ॥ ८ ॥
कह्यो तिन्हैं मैं भेद की आस, गयो रह्यो सत रिपु के पास ॥ ९ ॥
बनमें घास रह्यो अब न्यून, याते भये पशू बल सून ॥१०॥
रह्यो सह्यो जो देय जलाय, अपनी जीत तुरत व्है जाय ॥११॥
खगन कह्यो तुम प्रथम जलाय, तब फिर हमसो मिलोजु आय ॥१२॥
उत चमगीदड़ दीन्ही आग, इत खग जीते पशुगे भाग ॥१३॥
खग ढिग आयो वहजा काल, करी निरादर दीन्ह निकाल ॥१४॥
तादिन सों अस गयो लजाय, मुख न दिखायो कबहूं आय ॥१५॥
छिप्यो जाय अंधेरी ठौर, सुकुड़ मुकुड़ मुख मूंदी और ॥१६॥
लटक्यो रहत शून्य खंडार, जहां न पशु पक्षी संचार ॥१७॥
रात पड़े जब ये सब सोंय, तब चमगीदड़ बाहर होय ॥१८॥
उल्लु डाकू यह खुद चोर, ठग वड बगुल उचक्केखोर ॥१९॥
इनके संग रमे सब रात, जौं लौं होत न सूर्य उदात ॥२०॥
पशु पक्षी की सुनी के बात, व्है भयभीत तुरत छिप जात ॥२१॥

दोहा

क्योंकि रह्यो ना योग्य अस, जो मुख तिन्है दिखाय ॥
निज समाज को त्यागनो, ऐसो है दुखदाय ॥

प्र०– इसका तात्पर्य छंदमें कहो ?

उ०– सम्प्रदा सु ऐक्यता स शक्ति तेज हू ।
नित्य ही बढै मिलै सहायता बहू ॥
सम्प्रदा सु संपदा स सर्वदास हू ।
जानि के अनेक लाभ धर्मता रहू ॥

प्र०– भारत में तो सनातन धर्म की मानने वाली अनेक सम्प्रदा हैं ?

उ०– अवश्य हैं. किन्तु वास्तव में सब एक हैं.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि – भारतीय सम्प्रदा सु बीज एक है।
दोष सो अनेक दर्श मूल एक है।।
क्योंकि धर्म, ज्ञान, भाव लक्ष एक है।
देश एक, सीख एक, सर्व एक है।।

उपदेश १०

संगति

प्र०– सं का अर्थ यहां पर क्या है ?

उ०– तद्वत, तदनुसार.

प्र०– गति का क्या अर्थ है ?

उ०– चाल, दशा.

प्र०– संगति का क्या अर्थ है ?

उ०– तद्वतगति, तद्वतचाल, तदनुसार दशा.

प्र०– संगति किसका नाम है ?

उ०– जैसा संग, वैसी गति, उसका नाम संगति.

प्र०– संगति के भेद कहो ?

उ०– सुसंगति और कुसंगति.

प्र०– सुसंगति क्या कहती है ?

उ०– यह कहती है कि केवल सुसंग ही सुगति की जड़ है, अन्य नहीं.

प्र०– इसका स्पष्ट अर्थ क्या है ?

उ०– अर्थात् सुसंग से ही सुचाल तथा सुदशा प्राप्त होती है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जैसे सुगंध द्वारा मृतिका भी सुगंधित हो आदर को प्राप्त होती है.

प्र०– कुसंगति क्या कहती है ?

उ०– यह कहती है कि कुसंग ही कुगति की जड़ है, अन्य नहीं.

प्र०– इसका स्पष्टीकरण क्या है ?

उ०– अर्थात् कुसंग से ही कुचाल तथा कुदशा प्राप्त होती है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जैसे दुर्गंध द्वारा घृत मक्खन भी दुर्गंधित हो अनादर को प्राप्त होता है.

प्र०– सुसंगति कुसंगति मिलना किसके आधीन है ?

उ०– निज इच्छा के.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि सुइच्छा वाले को सुसंगति तथा कुइच्छा वाले को कुसंगति अनायास प्राप्त होती है; अर्थात् जैसे को तैसा संग निज स्वभाव ही से मिलता है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जैसे विद्वान को अनेक विद्वान, सज्जन को अनेक सज्जन, चोर को अनेक चोर, व्यसनी को अनेक व्यसनी, कुकर्मी को अनेक कुकर्मी आदि सर्वत्र जैसे को तैसे अनायास मिल जाते हैं.

प्र०– किनकी संगति करें ?

उ०– केवल देव धर्मियों की.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि इनके सत्संग से हमें सदुपदेश मिलता है, जिससे हमारा परमहित होता है.

प्र०– किनकी संगति न करें ?

उ०– पिशाच धर्मी की.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि इनके कुसंग से अधर्म का उपदेश मिलेगा, जिससे हमारा परम अनहित होगा.

प्र०– किनसे केवल ऊपरी दिखाऊ व्यवहार रक्खें ?

उ०– मनुष्य धर्मी तथा राक्षस धर्मी से.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि मनुष्य धर्मी स्वार्थी, तरंगी और राक्षस धर्मी निर्दयी तथा महा स्वार्थी होते हैं, इसलिये इनसे केवल सुकार्यवाही प्रेम रक्खे, अर्थात् निजहित साधन के लिये ऊपरी रामरामी रक्खे.

प्र०– संगति के मान से मनुष्य कितने प्रकार के हैं ?

उ०– मित्र, शत्रु, उदासीन.

प्र०– मित्र किसे कहते हैं ?

उ०– जो सृष्टि नियम के अनुसार चले, चलावे तथा चलने का उपदेश देकर हरदशा में हित करे, जैसे देवधर्मी.

प्र०– शत्रु किसे कहते हैं ?

उ०– जो सृष्टि नियम के विरुद्ध चले, चलावे तथा चलने का उपदेश देकर हरदशा में अनहित करे, जैसे पिशाचधर्मी.

प्र०– उदासीन किसे कहते हैं ?

उ०– जो किसी का शत्रु और न मित्र है, किन्तु कदाचित् निजका हानि लाभ देख शत्रु तथा मित्र बन जाता है, जैसे मनुष्यधर्मी, राक्षसधर्मी.

प्र०– जो अचल उदासीन रहे तो ?

उ०– उसे महात्मा समझो.

प्र०– संगति का उपदेश कविता में कहिये ?

चौपाया

करो देवधर्मी की प्रीत, यह नित हितप्रद नीत पुनीत ।। १ ।।
उदासीन रहु सबसो शेष, मिलो कार्यवश वद न विशेष ।। २ ।।
कोप देव धर्मी को नीक, किन्तु पिशाच कुप्रेम न ठीक ।। ३ ।।
मनुज दनुज जो रिपु बन जाय, सामादिक सो वह दब जाय ।। ४ ।।
पर पिशाच सब विधि दुखदाय, दबत दबावै दाबै खाय ।। ५ ।।
बोलि मधुर विश्वास कराय, फंदहि फांसी देत नसाय ।। ६ ।।
याको विधिना दर्श दिखाय, यहै सर्प नररूप धराय ।। ७ ।।
यह चाहत सबही को नाश, चाहे दो सुख चाहे त्रास ।। ८ ।।
इससे रहो सदा तुम दूर, जो चाहो सुख यश धनपूर ।। ९ ।।
सौं खा, धनदै, गहिपदरोय, तउ न करौ विश्वास जु कोय ।।१०।।

दोहा

देव हंस सम दुग्ध गुण, लेत गही सतसांच।
गहे जोंक जिमि रक्ततस, दुर्गुण गहत पिशाच ॥१॥
औगुण तजि जो गुण गहै, रहै सुसंगति मांय।
नरतन में वह देव बन, निश्चय सद्गति पाय ॥२॥
गुण तजि जो औगुण गहै, रहै कुसंगति मांय।
वह नररूप पिशाच है, दुर्गति पाय नसाय ॥३॥
यह नर सज्जन संगसो, खुद सज्जन व्है जाय।
दुर्जन संगति सो यही, दुर्गति पाय नसाय ॥४॥

चौपाया

दुग्ध संग जल आदर पाय, मदिरा संग बुरो कहलाय ॥१॥
लोह स्वर्ण व्है पारस संग, लोह संगते सोनो भंग ॥२॥
सीप स्वाति जल मोती होय, अग्नि संग जल रहे न सोय ॥३॥
सींचे नीर नाज उपजाय, उपल गिरे सो जाय नसाय ॥४॥
वायु सुगंधित संग सुगंध, व्है दुर्गन्धित सहित कुगंध ॥५॥
भ्रंग संग व्है भ्रंग जु कीट, खर हय संगहि खच्चर ढीट ॥६॥
कतक संग जल निर्मल होय, मैल संग जल बिगड़ै सोय ॥७॥
नीर संग व्है वस्त्र जु स्वेत, कज्जल कीच संग ना स्वेत ॥८॥
दवा हरे रुज संग सुपथ्य, रोग बढ़ावै संग कुपथ्य ॥९॥
श्रमसो बलवढ़ कसरत संग, श्रम बलहन करि कर्म कुसंग ॥१०॥
कांत संग अय कांत कहाय, हीरो खटमल संग नसाय ॥११॥
पय सेवत बल बुद्धि बढ़ाय, सेवत व्यसन सो जाय बिलाय ॥१२॥
नर विद्या सों चतुर कहाय, ता बिन ता सब मूढ़ बताय ॥१३॥
करत संग भल भलो कहाय, बुरो संग ता देत दुराय ॥१४॥
करत भले का सब विश्वास, खल की रखत न कोऊ आस ॥१५॥

दोहा

सत संगति सद्गति करै, दुर्गति करै कुसंग,
याते संग सु कीजिये, दुष्ट संग करी भंग.

उपदेश ११

धर्म निवास

प्र०— सनातन धर्म कहां रहता है ?

उ०— सब चराचर प्राणी तथा अप्राणी मात्र में.

प्र०— किस तरह ?

उ०— जैसे मिश्री में मिष्टता, अग्नि में दाहकपन.

प्र०— क्या संपूर्ण सृष्टि के पदार्थों का धर्म समान है ?

उ०— नहीं.

प्र०— फिर किनका धर्म समान है ?

उ०— सजातीय पदार्थों का.

प्र०— किनका धर्म असमान है ?

उ०— विजातीय पदार्थों का.

प्र०— निर्जीव पदार्थों में कौनसा तुल्य धर्म विराजता है ?

उ०— उन्हें हित अनहित से सुख दुःख नहीं होता.

प्र०— सजीव पदार्थों में कौनसा तुल्य धर्म विराजता है ?

उ०— वे हित से सुखी तथा अनहित से दुःखी होते हैं.

प्र०— अधर्म कहां रहता है ?

उ०— केवल पिशाचधर्मी अधम पुरूष में

दोहा

सबहि चराचर धर्म सो, मिले सनातन सीक ।
ढूंढ लेहुं निज धर्मको, धर्महि है जगलीक ।।

उपदेश १२

वस्तु धर्म से लाभ

प्र०— सनातन धर्म किससे जाना जाता है ?

उ०— सब चराचर पदार्थों से.

प्र०– पदार्थों का धर्म किस तरह जाना जाता है ?

उ०– अपने अनुभव से तथा योग, विज्ञान, रसायन, शिल्प, आयुर्वेद, प्रकृतिशास्त्र, भूगोल, खगोल, भूगर्भशास्त्र, व्यवहारिक, शारीरिक, मानसिक आदि शास्त्रों के द्वारा जाना जाता है.

प्र०– पदार्थों के धर्म में क्या विशेषता है ?

उ०– वे अपने धर्म को कदापि नहीं त्यागते, किन्तु संयम नियम की दृढ़ प्रतिज्ञा के सहित अपने सनातन धर्म को निबाहते हुए कालक्षेप करते तथा ईश्वर की गुण गरिमा दर्शाते हैं.

प्र०– यदि जड़ पदार्थ अपने-अपने धर्म को त्याग दें तो क्या हो ?

उ०– तब हमारा तो क्या किन्तु सकल संसार का पल भर में प्रलय हो जाय.

प्र०– तो क्या केवल प्राणी अपने धर्म को त्यागते हैं ?

उ०– सब प्राणी नहीं.

प्र०– तो फिर ऐसा कौन प्राणी है, जो अपने धर्म को त्यागता है ?

उ०– केवल पिशाच धर्मी अधम पुरुष.

प्र०– यदि पिशाच धर्मी अधम मनुष्य के समान अन्य प्राणी भी अपने-२ धर्म को त्याग दें तो क्या हो ?

उ०– मनुष्यों का जीना असंभव हो जाय.

प्र०– मनुष्यों द्वारा प्राणि अप्राणि मात्र को क्या लाभ पहुंचता है ?

उ०– सिवाय त्रास के कुछ नहीं.

प्र०– तो क्या वे इस कष्ट से व्याकुल होकर अपने सनातन धर्म को त्याग देते हैं ?

उ०– कदापि नहीं त्यागते.

प्र०– तब तो यह धर्म त्यागी मनुष्य के लिये लज्जा का विषय है ?

उ०–लज्जा का विषय तो क्या घृणा का विषय है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि उसे ईश्वर ने विचारने के लिये बुद्धि दी है, तो भी वह जड़ पदार्थों तथा अज्ञानी जीवों से भी गया बीता हो जाकर संसार में अपमानित तथा दंडित हो दुर्दशा भोगे तो उसे ऐसी दशा में सिवाय धिक्कार के और क्या कहें.

दोहा

सबहि चराचर वस्तुसो, अचल प्रतिज्ञा सीख,
कि वे किमी संयम नियम, पालि रक्खैं जगलीक.

उपदेश १३

संयम

प्र०– यहां पर (सं) का क्या अर्थ है ?

उ०– हर तरह, अच्छी तरह, चारों ओर से, हर तरफ से.

प्र०– यम का अर्थ क्या है ?

उ०– निग्रह, कर्षण, कशिस, आधीन, युक्त, दमन.

प्र०– संयम किसे कहते हैं ?

उ०– सनातन नियम के अनुसार यम का निग्रह करना संयम कहाता है

प्र०– संयम कितने प्रकार का है ?

उ०– अनेक प्रकार का.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि प्रत्येक कार्य के अनुसार उसका संयम न्यारा हो जाता है.

प्र०– स्थूलमान से संयम के कितने भेद हैं ?

उ०– तीन अंगों सहित केवल पांच भेद हैं.

प्र०– उन पांचों के नाम कहिये ?

उ०– विचारादि, श्रवणादि, दर्शणादि, वचनादि, साधनादि.

प्र०– विचारादि संयम किस तरह करे ?

उ०– जिस हितकारक सत्यतत्व की इच्छा या विचार उपजे, उसी तत्व को दृढ़ धारण करे और उसी एक के विचार में वृत्ति लीन करे, किन्तु कदापि अन्यत्र न जाने दे, यही ज्ञान साधन, तत्वविचार तथा सद्भक्ति है.

प्र०– श्रवणादि संयम किस तरह करे ?

उ०– जिस हितकारक सत्य शब्द को सुने, उसी एक को एकाग्र विचारे और उसी एक में वृत्ति को लीन करे, किन्तु किसी अन्य शब्द की ओर कदापि न जाने दे इसी को श्रवण, मनन, निजध्यास कहते हैं.

प्र०– दर्शणादिक संयम किस तरह करे ?

उ०– जिस हितकारक सत्य वस्तु को देखे, उसी एक को दृढ़ धारण करे, और उसी एक के चिंतन में वृत्ति लीन करे, किन्तु किसी अन्य वस्तु की ओर कदापि न जाने दे, इसी को ध्यान, धारणा, समाधि कहते हैं.

प्र०– वचनादिक संयम किस तरह करे ?

उ०– जिस हितकारक सत्य शब्द को कहे, उसी को दृढ़ धारे और तद्वत आजन्म वर्ते, किन्तु कदापि उसके विपरीत इच्छा तक न करे, इसी को सत्य कीर्त्तन जप तथा स्मरण कहते हैं.

प्र०– साधनादिक संयम किस तरह करे ?

उ०– जिस हितकारक सत्य साधन का आरंभ करे, उसी में दृढ़ता के साथ भिड़ा रहे और उसी एक हित साधन में संपूर्ण आयु व्यतीत करे, किन्तु कदापि भूल कर भी इच्छा को अन्यत्र न जाने दे, यही वास्तव में योगत्रयी साधन है.

प्र०– संयम के तीनों अंगों के नाम कहो ?

उ०– भाव, प्रतिज्ञा, अन्तर्मुखत्व.

प्र०– संयम का पहिला अंगभाव क्यों है ?

उ०– क्योंकि विना रुचि के कोई कार्य नहीं हो सकता है.

प्र०– संयम का दूसरा अंग प्रतिज्ञा क्यों है ?

उ०– क्योंकि दृढ़ प्रतिज्ञा के बिना इच्छित कार्य साधन का आस्तित्व नष्ट हो जाता है.

प्र०– संयम का तीसरा अंग अन्तर्मुखत्व क्यों है ?

उ०– क्योंकि अन्तर्मुखत्व के विना इच्छित कार्य साधन की सिद्धि कदापि नहीं होती.

प्र०– अन्तर्मुखत्व किसे कहते हैं ?

उ०– वहिर्मुखत्व को छोड़, आपे में रह, केवल एक ही निश्चित साधन तथा चिंतन में, इच्छा सहित निमग्न हो जाय उसको अन्तर्मुखवृत्ति कहते हैं.

प्र०– वहिर्मुखत्व किसे कहते हैं ?

उ०– आपेको भूल अनेक साधन तथा चिंतन में इच्छा को दौड़ावे, उसे वहिर्मुखवृति कहते हैं.

प्र०– अन्तर्मुखवृत्ति का क्या अर्थ है ?

उ०– इच्छा का मुख भीतर की तरफ.

प्र०– वहिर्मुखवृत्ति का क्या अर्थ है ?

उ०– इच्छा का मुख बाहर की तरफ.

प्र०– यहां पर मुख का क्या अर्थ है ?

उ०– गति, चाल, प्रवाह, लक्ष, दृष्टि.

प्र०– यहां पर अंतर का क्या अर्थ है ?

उ०– अंदर, भीतर, परिणाम गंभीर, गहिरा, आपेमें, सार्थक, एकाग्र.

प्र०– यहां पर वाहिर का क्या अर्थ है ?

उ०– वाहिर, निरर्थक, परिणाम शून्य, ओछा, तुच्छ, चंचल, आपाभूल.

प्र०– इस वहिर्मुखवृत्ति के त्यागने को क्या कहते हैं ?

उ०– वैराग्य.

प्र०– वैराग्य शुद्ध किस शब्द से बना ?

उ०– विराग से.

प्र०– राग का क्या अर्थ है ?

उ०– मोह, लिप्त होना, प्रेम रुचि.

प्र०– विराग का क्या अर्थ है ?

उ०– विशेष राग या राग रहित.

प्र०– वैराग्य किसे कहते हैं ?

उ०– किसी एक सत्य विषय का विशेष राग और शेषका त्याग वैराग्य कहाता है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि जब किसी एक विषय का विशेष प्रेम हो जाता है, तब अन्य विषयों की ओर से इच्छा स्वतः खिच जाती है.

प्र०– संयम कैसा करें ?

उ०– जैसा शुकदेव जी को राजा जनक ने सिखाया.

प्र०– कृपा कर यह कथा कहिये ?

उ०– एक समय श्री शुकदेव मुनि आत्मज्ञान सीखने के लिये महाराजा जनक के पास गये, प्रथम तो महाराज ने मुनिजी की सदाचरण, दृढ़ता, धैर्य आदि की परीक्षा ली, बाद मुनिजी से:—

महाराज– यदि तुम मेरी आज्ञा दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ पालोगे, तो तुम्हें आत्मज्ञान मिलेगा और जो उसमें तनिक भी त्रुटि करोगे तो उसी वक्त तुम्हारा शिरच्छेदन किया जावेगा. क्या यह तुम्हें स्वीकार है ?

मुनिजी– जी हां सर्व प्रकार मान्य है.

महाराज– अच्छा ! यह तेल से पूर्ण कटोरी जो तुम्हारे सन्मुख रक्खी है, अपनी हथेली पर रख, हमारे समग्र शहर को देख आवो किन्तु इस कटोरी में से एक बूंद भी नीचे न गिरने पावे, क्योंकि जब जहां कहीं बिन्दु गिराओगे तो उसी वक्त वहीं पर ये सिपाही तुम्हारा सिर काट देंगे. देखो ! अभी भी सोचलो !

मुनिजी– मैं कदापी न गिरने दूंगा !

इतना कहकर मुनिजी ने वह तेल पूर्ण कटोरी अत्यन्त सावधानी से उठा हथेली पर रख, उसी तरह चले और नंगी तलवार लिये दो सिपाही उनके आगे व दो पीछे हो लिये, उन्होंने मार्ग में नाना प्रकार की बातें बनाई, किन्तु शुकदेवजी ने अपनी दृष्टि कटोरी से तनिक भी न हटाई, और न सावधानी त्यागी, अंत को दिन भर शहर में भटका तथा घुमा फिराकर संध्या के समय महाराज के पास लौटालाये, और शुकदेवजी ने ज्योंकी त्यों तेलपूर्ण कटोरी उनके सन्मुख रख दी. यह देख प्रसन्न हो महाराज ने मुनिजी का बड़ा सत्कार किया.

महाराज– मुनिजी ! कहिये ? हमारे शहर के स्त्री, पुरुष, हाट, वाट, वाग, बगीचे, जलाशय व कोट आदि की रचना कैसी है. और आपने क्या न्यूनाधिक चमत्कारिक बात देखी.

मुनिजी– महाराज ! सिवाय तेल के मुझे तो कुछ भी न दिखा.

महाराज– क्यों ?

मुनिजी– क्योंकि मेरी अचल दृष्टि कटोरी के तेल पर थी.

महाराज– कब तक ?

मुनिजी– उठाने, पकड़े रहने तथा विचरने तक.

महाराज– क्यों ?

मुनिजी– क्योंकि दृष्टि के हटने से तेल ढुल जाता जिससे मेरी प्रतिज्ञा भंग होती तथा मारा जाता.

महाराज– क्या केवल अचल दृष्टि ने तेल की रक्षा की ?

मुनिजी– सावधानी तथा अचलदृष्टि दोनों ने.

महाराज– तो बताइये उस वक्त तुम्हारे अंतःकरण में क्या-क्या विचार उपजे ?

मुनिजी– केवल तेल न ढुलने पावे, इसका लक्ष मात्र था. किन्तु इस बात के तथा अन्य बात के संकल्प विकल्प न उठे.

महाराज– क्यों ?

मुनिजी– क्योंकि अनेक विचारों में इच्छा के दौड़ाने से सावधानी नष्ट हो जाती और चल दृष्टि होने पर तेल का लक्ष न रहता तथा वह ढुल जाता.

महाराज– अच्छा ! तेल किन कारणों से न ढुला ?

मुनिजी– परिणाम पर लक्ष, सावधानी तथा अचलदृष्टि रखने से.

महाराज– सिपाहियों ने तुम्हें क्या-क्या बातें कही ?

मुनिजी– मुझे याद नहीं.

महाराज– क्यों ?

मुनिजी– क्योंकि यदि मैं सुनता तो मेरा लक्ष बहिर्मुख हो जाता जिससे सावधानी नष्ट होकर तेल ढुल जाता.

महाराज– जिस भाव से कटोरी उठाई, पकड़ रक्खी तथा लेकर चले, यही लक्ष सब साधनों में रक्खो.

मुनिजी– उठाना अर्थात आरम्भ करना किसके आधीन है ?

महाराज– भाव अर्थात प्रेम इच्छा के.

मुनिजी– पकड़े रहना अर्थात् धारण करना किसके आधीन है ?

महाराज– दृढ़ प्रतिज्ञा के.

मुनिजी– लेकर विचरना अर्थात् साधन में लगे रहना किसके आधीन है ?

महाराज– अंतर्मुख दृष्टि अर्थात् अंतर्मुख वृत्ति के.

मुनिजी– साधन के इन तीनों अंगों से सिद्धि अर्थात् फल कब मिलता है ?

महाराज– जब परिणामी लक्ष, सावधानी तथा अचल दृष्टि रक्खे, जिसके द्वारा तुम्हारा तेल न ढुला.

मुनिजी– इन तीनों की सिद्धि किसके द्वारा होती है ?

महाराज– उसी वैराग्य से जिसके द्वारा तुमने सिपाहियों की बातों का ख्याल न किया और अंतःकरण में संकल्प विकल्प न उठने देकर वहिर्मुख वृत्ति न होने दी.

मुनिजी– वह वैराग्य तो मारे जाने के भय से हुआ था.

महाराज– तो क्या अब तुम अमर हो गये ?

मुनिजी– जीवन तो क्षणभंगुर है, इसका क्या विश्वास कि कब शरीर त्यागना पड़े.

महाराज– बस ! इसी भय से बहिर्मुखवृत्ति त्याग, वैराग्य ग्रहण कर संयम द्वारा आत्मा को देखो कि वह क्या पदार्थ है, इसी को आत्मज्ञान कहते हैं.

मुनिजी– आत्मज्ञान से क्या लाभ है ?

महाराज– मनुष्य त्रिताप से रहित हो, जन्म मरण के फंदे से छूट, ब्रह्मानंद को अनुभवता हुआ परमानंद को प्राप्त होता है.

मुनिजी– फिर क्यों अनेक संयमी मरणादिक को प्राप्त होते हैं ?

महाराज– केवल वही संयमी मारा जाता है, जिसने शरीररूपी कटोरी में से तेलरूपी वीर्य का विन्दु गिरा दिया.

मुनिजी– अच्छा यह शरीर कब तक रह सकता है ?

महाराज– जबतक वीर्य शरीर में रहता है.

मुनिजी– किस तरह ?

महाराज– जैसे जब तक दीपक में तेल रहता है तब तक दीपक प्रकाशता है.

मुनिजी– वीर्य रहते भी मनुष्य क्यों मर जाता है.

महाराज– जैसे यम नियमयुक्त संयम न रखने से तेल के रहते भी दीपक बुज जाता है.

मुनिजी– वीर्य की रक्षा किस तरह करें ?

महाराज– जिस यम नियम के संयम से तुमने तेल का यम किया, उसी प्रकार यम नियम सहित ब्रह्मचर्य के संयम से वीर्य रक्षा करें.

मुनिजी– यहाँ मारा जाना किसे समझें ?

महाराज– आवागमन रूपी तृयक गति को.

श्री जनकजी महाराज के इस उपदेश के अनुसार चलने से श्री शुकदेवजी मुनि कैवल्यमुक्ति को पाकर ब्रह्मानंद को अनुभवते हुए परमानंद को प्राप्त हुए.

प्र०– शास्त्रों ने तो कर्म से ज्ञान और ज्ञान से मोक्ष होना कहा है, किन्तु आप संयम द्वारा बताते हैं ?

उ०– क्योंकि संयम के बिना किसी कर्म की सिद्धि नहीं होती, इसलिये इसे सब प्रकार के साधन तथा उद्योग का निर्वाहक भी कहते है.

दोहा

बिन यम नियम संयम करे, सब निरफल श्रम जात ।
याते याही साधिये, नतो असंभव बात ।। १ ।।
संयम सब कुछ दैत है, गहि यम नियम दृढ़ाय ।
यह शास्त्रन को सारसत, यही स्वधर्म बताय ।। २ ।।

उपदेश १४

यम

प्र०– यम अर्थात् कर्षण से क्या लाभ ?

उ०– इसकी मर्यादा से अनंत सृष्टियों का अस्तित्व है, इसी द्वारा शांति पूर्वक हर एक पिंड का काम चल रहा है, इसी द्वारा सूर्य प्रकाशता है, वायु चलता, अग्नि प्रकटता, जल वर्षता तथा पृथ्वी आदि लोक गति करते हैं, इसी द्वारा चराचर जीवों की उत्पत्ति, स्थिति, लय होता है, यदि यह यम अपनी मर्यादा त्याग दे तो पलभर में अखिल ब्रह्माडों का प्रलय हो जाय; यह स्वयं सिद्ध सिद्धांत है.

प्र०– इस सिद्धांत से हमें क्या उपदेश मिलता है ?

उ०– कि अवश्य कोई इस यम का उत्पादक, मर्यादा का स्थापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, स्वयं प्रकाशक नियामक है, यह आस्तिक्यं भाव उपजकर इसके देखने तथा इस विषय का सिद्धांत सुनने की प्रबल इच्छा होती है.

प्र०– इसलिये धर्मशास्त्र ने किन बातों का उपदेश दिया ?

उ०– आस्तिक्य ईश्वर भक्ति, तथा सिद्धांत श्रवन का.

प्र०– यम अपनी मर्यादा को नहीं त्यागता, किन्तु उसे शांति तथा शुद्धता-पूर्वक सावधानी से सदा एक रस निवाहता है, इस स्वयंसिद्ध सिद्धांत से हमें क्या उपदेश मिलता है ?

उ०– कि हम भी अपनी सच्चाई, सावधानी, क्षमता, मर्यादा, शांति, शुद्धता, समदृष्टि तथा स्वधर्म को न त्यागें, किन्तु सुविचार तथा लज्जावश दृढ़ प्रतिज्ञ बने रहें.

प्र०– इसलिये धर्मशास्त्र ने किन-किन बातों का उपदेश दिया ?

उ०– स्वधर्म, सत्य, धैर्य, मिताहार, संतोष, लज्जा, सुमति, शौच, दृढ़ व्रत का.

प्र०– सूर्य क्षमता व दया के साथ इसी यम द्वारा धर्मी अधर्मी सबके हित के लिये जल बरसाता है, इससे हमें क्या उपदेश मिलता है ?

उ०– परोपकार, दया, दान, क्षमा, नम्रता, अहिंसा का.

प्र०– ऐसा कोई उदाहरण दो, जिसने यह उपदेश दृढ़ता के साथ ग्रहण किया है ?

उ०– देखो ! वृक्ष परहित के लिये फूलते, उपजते, फलते हैं, अधिक फलवान होने पर अधिक झुक जाते हैं और निजहंता का भी किसी न किसी प्रकार उपकार ही करते हैं, किन्तु कभी अपकार नहीं करते, इसी तरह पृथ्वी भी इन सब गुणों से युक्त है.

प्र०– सब ग्रह यम की मर्यादा स्थिर रखते हुए, सूर्य की ध्रुव परिक्रमा निर्लिप्त मंत्र से कर रहे हैं, इससे हमें क्या उपदेश मिलता है ?

उ०– कि हम भी एक ही सत्कार्य को बारंबार विचारते हुए, वैराग्ययुक्त अचलवृत्ति से करते रहें, तब वह स्वयं सिद्ध होगा.

प्र०– इसलिये शास्त्रों ने किस बात का उपदेश दिया ?

उ०– दृढ़ संयम, वैराग्य, मंत्रजप, निर्लोभता तथा अहिंसा का.

प्र०– यम का अर्थ युक्त करना किसलिये ?

उ०– क्योंकि यम द्वारा कर्षित अनेक परमाणु युक्त हो संसार के सब पदार्थ बनते हैं, जिससे प्राणि मात्र का हित होता है, अर्थात् संयोग के बिना कोई कार्य नहीं बनता.

प्र०– इससे हमें क्या उपदेश मिलता है ?

उ०– कि हम भी आकर्षण शक्ति द्वारा स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न करें अथवा योगाभ्यास करें.

प्र०– ऐक्यता का कोई उदाहरण दो ?

उ०– देखो ! ऐक्यता के कारण परम लघु चींटियां उनके बड़े से बड़े काम को सहज में कर लेती हैं. इसी तरह मधुमक्खियां.

प्र०– यम का अर्थ आधिन किसलिये ?

उ०– क्योंकि यम के आधीन अनंत सृष्टियां निराधार स्थित हैं, और इसी कारण संसार के सब पदार्थ एक दूसरे के आधार पर स्थित हैं.

प्र०– इससे हमें क्या उपदेश मिलता है ?

उ०– कि बड़ों की आज्ञा तथा आधीनता स्वीकारें.

प्र०– यम का अर्थ निग्रह करना किसलिये ?

उ०– क्योंकि कर्षणशक्ति ने अनंत ब्रह्मांड तथा उनके सब कार्यों का निग्रह करके सबको अपनी मर्यादा के स्वाधीन रक्खा है.

प्र०– इसके द्वारा हमें क्या उपदेश मिलता है ?

उ०– कि हम भी सब इंद्रियों सहित अपने कर्तव्यों का निग्रह करके उन सबको अपनी मर्यादा के स्वाधीन रक्खें जिससे संसार में अक्षय मर्यादा बनी रहे.

प्र०– सूर्य अपने ताप के तेज से यम करके वायु चलाता, जल बर्षाता, तथा चराचर जीवों को जन्माता, पालता, नाशता है; इससे हमें क्या उपदेश मिलता है ?

उ०– कि हम भी यम के तेज का तप करें, या योग, यज्ञ, हवन, या कोई तप करें, जिसके द्वारा यम की शक्ति बढ़ने से हमारे अनेक कार्य सिद्ध हों.

प्र०– सब इंद्रियों का निग्रह किस तरह करें ?

उ०– जिस बात तथा कार्य से परोक्ष तथा अपरोक्ष में किसी का जी दुखे अथवा हानि पहुंचे उसे कदापि न सुने, न देखे, न करे, और न उसकी किसी तरह इच्छा करे.

प्र०– इसे दोहे में कहो ?

उ०– **सुनो, लखो, ना कहो मत, करो न वा रुचि भूल ।**
जासे काको हान हो, या उपजे मन शूल ।।

प्र०– ब्रह्मचर्य रक्षण किस तरह हो सकता है ?

उ०– (१) गत विषयों का स्मरण, (२) भोगकी इच्छा, (३) स्त्रीका स्पर्श, (४) स्त्रीसे हंसी, (५) स्त्रीसे एकान्त मिलन, (६) स्त्रीसे बात, (७) स्त्रीका निरक्षण, (८) शृंगार रसमें रुचि इन आठ बातों के त्यागने से.

प्र०– इसे दोहे में कहो !

उ०– **दर्शन, इच्छा, ध्यानतिय, स्पर्श, मिलन एकान्त ।**
बात, हंसी, शृंगाररस, तजे अष्ट मदनान्त ।।

प्र०— मनके निग्रह करने के उपाय दोहे में कहो ?

उ०— **कभी निकम्मा ना रहे, करत रहै कछु काज ।**
मनको यों बिलमाइये, नाहि न करै अकाज ।। १ ।।
दुर इच्छा तज दीजिये, रखो एक सतराग ।
बारंबार विचारके, रहो ध्यान ता पाग ।। २ ।।
सतसंगति में बैठिये, दुर संगति को खोय ।
ज्ञान कथा मन बोरिये, तबहू मन शुचि होय ।। ३ ।।
पवन बिजय त्राटक किये, ध्वनि गहे रसपाय ।
अंतर्मुख वैराग्य मन, संयमसों बस आय ।। ४ ।।

प्र०— मन वश करने का कोई एक उदाहरण दो.

उ०— एक मनुष्य ने एक भूत को प्रसन्न किया, उसने इसके बदले यह वरदान दिया कि जो कुछ तुम काम कहा करोगे, तुरंत कर दिया करुंगा; किन्तु जिस वक्त काम करने को न कहोगे, उस वक्त तुम्हारी अच्छी तरह खबर लूंगा. मनुष्य ने अत्यंत खुश होकर कहा बहुत अच्छा ! और उसे अपने सब कार्य बता दिये; भूतने तुरंत यथायोग्य करके दिखा दिये, और अन्य काम मांगा, किन्तु शेष न रहने से ज्योंही उसे कहाकि अब कुछ काम शेष नहीं है, त्यों ही वह मनुष्य पर चढ़ बैठा और लगा त्रास देने, यह सब दशा आकाश में विचरते हुए एक देवने देख, द्रवीभूत हो, मनुष्य के पास आ, कहाकि मुझे आप लोहे का खंभा तथा एक जंजीर मंगा दो मनुष्य अपना पिंड छुड़ाना चाहता ही था, उसने उसी वक्त भूत से कहा, लादे ? वह शीघ्र ले आया. देवने कहा खंभ गड़वा के इस जंजीर का एक सिरा खंभ से बंधवाओ, और दूसरा भूत के हाथ में दिलाओ, मनुष्य ने भूत से कहकर वैसा ही किया; तब देवने कहा कि इस भूत से एक लाख चक्कर खंभे के चौगिर्द लगाने को कहो, मनुष्य की आज्ञा से उधर भूत खंभे की परिक्रमा करने लगा. इधर देवने मनुष्य से कह दिया कि जब तुम्हें कोई काम बताने को न रहे, तब इस भूत को कह दिया करो (कि जब तक

मैं कोई आज्ञा न दूं, तब तक तुम इस खंभे के चौगिर्द लगातार चक्कर लगाते रहा करो) बस फिर वह तुम्हें दुःख न दे सकेगा. ऐसा कहकर ज्योंही देव जाने लगा, मनुष्य ने उसके पैर पकड़ लिये और सदा निकट रहने के लिए अनेक तरह की खुशामद की, तब देव प्रसन्न हो उसके पास रहने लगा और अपने तेज बल से उस मनुष्य को देवतुल्य बना दिया और भूत भी उसे त्रास न दे सका अर्थात् मन (भूत) को कदापि निकम्मा न रहने दे, क्योंकि निठल्ला रहने से वह दुराचार करने लगता है, इसलिये कोई काम न रहे तब विचार (देव) के संयम नियम के (उपदेश के) अनुसार ईश्वर (खंभ) के नाम (जंजीर) को दृढ़ प्रतिज्ञा से (पकड़कर) निष्काम (निकम्में वक्त में) लगातार जपता रहें (परिक्रमा करता रहे) जिससे मन (भूत) न सता सके और इस बात की भूल न पड़ने के लिये विचार (देव) को सदा पास रक्खे, क्योंकि जब कभी वह मन (भूत) को निरर्थक देखे, तुरंत सुझाकर पूर्ववत काम में लगा दिया करे; जिससे मन (भूत) को फुरसत न मिले, ताकि वह हमें न सता सके.

प्र०— मन के अचल होने से क्या लाभ ?

उ०— मन के अचल होने से ब्रह्मचर्य, प्रभु का ध्यान, दीर्घायु, आरोग्यता, तेज, ज्ञान, बल, सदाचरण तथा जग में सन्मान प्राप्त होता है.

दोहा

व्है सब, जद, मन अचल व्है, ब्रह्मचर्य प्रभु ध्यान ।
अरुज आयुभा ज्ञान बल, सत्य चलन सन्मान ।।

प्र०— धर्मशास्त्र के अनुसार यम के भेद कहो ?

उ०— अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा, धैर्य, मिताहार, शौच.

प्र०— इन्हें यम क्यों कहा ?

उ०— क्योंकि इनका उपदेश सनातन यम (कर्षण शक्ति) की मर्यादा से मिलता है और इनके द्वारा मन इंद्रियों यम होकर सनातन यम की शक्ति प्राप्त होने लगती है, जिससे लाभदायक कार्यों का तथा प्राणी मात्र के चित का यम होकर प्रेम उमगता है, इसलिये इन्हें यम का नाम दिया गया.

प्र०— क्या इन यम के दशों भेदों में नियम की जरूरत नहीं ?

उ०— जरूरत तो है.

प्र०— फिर क्यों केवल इन्हें यम नाम से पुकारा ?

उ०— क्योंकि इनका नियम तो इतना साधारण है, जिसे अज्ञ बालक तथा अन्य जीव भी समझते हैं, किन्तु इनका यम कर लेना हर एक मनुष्य का काम नहीं है, बड़े-बड़े तपस्वी ज्ञानी व पराक्रमी भी इनके यम को भूल गोता खा जाते हैं, अर्थात् इन दशों में नियम की अपेक्षा यम की अत्यंत प्रधानता है; इसलिये इन्हें यम नाम से पुकारा है.

प्र०— हमें यम पालन का उपदेश क्यों दिया गया ?

उ०— धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की सिद्धि के लिये.

प्र०— सदाचरण सिद्धि के लिये यम का सार उपदेश क्या है ?

उ०— **पर तिय समझें मातु सम, पर धन मूत्र समान।**
समझे जो सम जीव सब, यह यम धर्म बखान ।।

प्र०— इंद्रियों आदि का ठीक यम किसके द्वारा होता है ?

उ०— इच्छा (मन) के संयम से.

प्र०— इच्छा (मन) का ठीक संयम किसके द्वारा होता है ?

उ०— सनातन यम के संयम से.

प्र०– वास्तविक में यम क्या वस्तु है ?

उ०– **यमहि धर्म औ यमही कर्षण जगहि रह्यो यह घेरी ।**
यमहि सत्य औ यमही सत्ता यम स्फुरण वह प्रेरी ।।
यमहि काल औ यमही कर्म है यम शक्ति ता केरी ।
प्रकृति माया शास्त्र पुकारे विपुल नाम सो टेरी ।।

दोहा

जाने यम को वश कियो, ताके बस प्रभु आप ।
याते याही साधके, हुजे रहित संताप ।।

उपदेश १५

नियम

प्र०– नियम क्या वस्तु है ?

उ०– नियम स्वयं यम नहीं, किन्तु यह चिर यम की मर्यादा का प्रतिबंधक तथा प्रतिज्ञानकर्त्ता है.

प्र०– नियम के पर्यायी शब्द क्या हैं ?

उ०– प्रतिज्ञा, प्रण, नीति, रीति, पथ, धारा, प्रणाली, मर्यादा, प्रबंध, कानून, कायदा, एक्ट, रूलादि.

प्र०– सनातन यम किसके आधीन है ?

उ०– सनातन नियम के आधीन.

प्र०– सनातन नियम किसके आधीन है ?

उ०– प्रभु इच्छा के आधीन.

प्र०– सनातन यम तथा नियम की उत्पत्ति कब हुई ?

उ०– जब उस चैतन्य प्रभु को स्फुरणा हुई, तब उसकी सत् शक्ति से यम और चित् शक्ति से नियम उपजा.

प्र०– उसकी सत् शक्ति किन नामों से पुकारी जाती है ?

उ०– सत्ता, माया, अविद्या तथा क्रियाशक्ति आदि.

प्र०– उसकी चित् शक्ति किन नामों से पुकारी जाती है ?

उ०– विद्या, भक्ति, चैतन्य शक्ति तथा ज्ञान शक्ति आदि.

प्र०– जब सत्ता में गति उपजी, तब उसका क्या नाम पड़ा ?

उ०– यम, कर्षण, यज्ञ आदि.

प्र०– सत्ता अर्थात् माया कैसी है ?

उ०– जड़ है.

प्र०– उस जड़ शक्ति में गति क्यों उपजी ?

उ०– चित् शक्ति के कारण.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि चेतन्य का धर्म ही स्फुरण शील है.

प्र०– क्यों धर्म है ?

उ०– क्योंकि स्फुरण रहित पदार्थ को जड़ कहते हैं.

प्र०– तो फिर जल, वायु आदि जड़ पदार्थ क्यों स्फुरते हैं ?

उ०– उपरोक्त कर्षण शक्ति की गति से.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि सत् शक्ति जड़ तथा शीतल है, इसके विरुद्ध चित् शक्ति चैतन्य तथा उष्ण है, इस कारण इन दोनों के संकर्षण से गति उपजती है.

प्र०– उस यज्ञरूप सत्ता की कितनी गतियां हैं ?

उ०– तीन हैं अर्थात् आकर्षण, विकर्षण तथा स्थंभन.

प्र०– विकर्षण का अन्य नाम क्या ?

उ०– निराकरण.

प्र०– सनातन नियम का पालन कौन करता है ?

उ०– अखिल संसार.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! आकाश गत समस्त पिंड नियमानुसार गति करते हैं. सूर्य, चंद्र तथा ग्रहों का नियमानुसार उदय अस्त होता है, सब वृक्षादिक नियमानुसार फूलते फलते है, पशु पक्षी भी नियमानुसार

आहार, विहार आदि करते हैं और कहां तक कहें, सकल चराचर विश्व की नियमानुसार ही उत्पत्ति, स्थिति तथा नास्ति होती है, पर तौ भी पिशाच धर्मी को सनातन नियम क्रम त्यागते लज्जा नहीं आती.

प्र०– सनातन नियम पालन कब हो सकता है ?

उ०– जब कि हम विचार पूर्वक उस नियम क्रम के संयमानुसार चिर कर्तव्य परायण रहें.

प्र०– किस बात की प्रतिज्ञा करें ?

उ०– जो काम सृष्टि मियम के अनुकूल हो.

प्र०– दृढ़ प्रतिज्ञा किसे कहते हैं ?

उ०– जिसे सुख मिले, चाहे दुःख अथवा प्राण रहे, चाहे जाय; तौ भी वह धैर्यच्युत हो, अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं होने देता, बल्कि संकट के समय अचल धैर्यवान हो, सावधानी सहित द्विगुण उत्साह के साथ तत्पर हो जाता है.

प्र०– कार्य साधन में किसी प्रकार का व्यतिक्रम न हो, इसलिये क्या करें ?

उ०– कार्यों के अनुसार नियमपत्रक तथा समयपत्रक बना, सदा अपने समक्ष रख, तदनुसार वर्तें.

प्र०– नियमपत्रक किसे कहते हैं ?

उ०– जिसमें नित्य नैमित्तिक कार्यों का साधनक्रम लिखा हो.

प्र०– समयपत्रक किसे कहते हैं ?

उ०– जिसमें उन कार्यों के साधन का समयक्रम लिखा हो.

प्र०– समयपत्रक बनानेमें किस बात पर लक्ष रक्खें ?

उ०– कि उसमें समय इस प्रकार विभक्त हो, जिसमें कार्यक्रम के अनुसार एक पल भी व्यर्थ न जाने पावे.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि समय अनमोल है, गया हुआ धन तो फिर से प्राप्त हो सकता है किन्तु गया हुआ समय फिर नहीं लौटता, यह जीवन क्षणभंगुर है, इसका कुछ भरोसा नहीं, इसलिये जीतेजी, जो कुछ बना, वही बना जानो, नहीं तो अंत को पश्चाताप के सिवाय और कुछ न हाथ लगेगा.

दोहा

क्षणभर भी मत व्यर्थ खो, काल अहै अनमोल ।
मिले वस्तुगत आयुना, कोटि भार धन तोल ।।१।।
जबका तब कारज करो, सचसोची तत्काल ।
नहीं तो फिर पछतावगे, पड़ी कालके गाल ।।२।।

चौपाई

सदा प्रयत्न सकारण कीजे, कदा समय निज व्यर्थ न छीजे ।।१।।
खोय अकारण समय अयतना, कांच गही शठ जस तज रत्ना ।।२।।
गयी घड़ी दे कोउ न दौली, बरु दो कोटि भार धन तौली ।।३।।
मिलसक मोलन छनइक लेशा, काल गहे लख निसदिन केशा ।।४।।
समय जात न लागै बारा, अंतकाल का करहु बिचारा ।।५।।

प्र०– समयपत्रक के अनुसार नियम बद्ध कार्य करना तो कठिन जंचता है ?

उ०– केवल प्रारंभ ही में कठिन जंचता है पर ज्यों २ अभ्यास दृढ़ होता जाता है, त्यों २ कठिनता घटती तथा सरलता बढ़ती जाती है यहां तक कि कुछ काल के पश्चात् ऐसी टेव पड़ जाती है कि तद्वत संयम करना, अत्यंत सुखदाई प्रतीत होने लगता है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि जिस काम के लिये जितना काल निर्मित था, वह उसकी अपेक्षा कम में अत्यन्त शुद्धता तथा सरलतापूर्वक होने लगता है, सिवाय विश्राम तथा अन्य आवश्यक कार्य के लिये भी समय बच रहता है.

प्र०– यदि प्रतिज्ञा के अनुसार कोई कार्य संपन्न न हुआ तो ?

उ०– तो उसे फिर से करे.

प्र०– यदि फिर भी न हुआ तो ?

उ०– तौ भी उसे वारंवार करता ही रहे, अंत को वह अवश्य सुसिद्ध होगा.

गुलाम तद्वत रखते हैं; चौथे उसका कोई विश्वास नहीं करता क्योंकि जिसने स्वधर्म नष्ट किया, उसे परधर्म नष्ट करते क्या देर लगेगी, पांचवें वह अपनी भ्रष्टता छिपाने के लिये तथा अपने समान औरों को नकटा बनाने के लिये छलबल युक्त मधुर उपदेश देकर सबको ललचाता रहता है; और कभी-कभी धोखा देकर तथा बलपूर्वक भी औरों को धर्म भ्रष्ट कर देता है; किन्तु पोल खुल जाने पर अनेक प्रकार से अपमानित हो साथियों सहित महासंकट में फस जाता है; इस तरह का जीना मृत्यु से बढ़ कर दुखदाई है.

प्र०– दूसरे के धर्म में प्रवेश करने से कैसी गति होती है ?

उ०– अन्न तद्वत गति होती है.

प्र०– यह कथा सुनाइये ?

उ०– एक समय अन्नदेव ने स्वधर्म से अप्रसन्न हो, देवधर्म को त्याग मनुष्य धर्म ग्रहण करने के लिये मनुष्य में प्रवेश किया, किन्तु मनुष्य बनने के बदले उसका विष्टा बन लज्जित हुआ तब अपना कलंक मिटाने तथा उन्नति की इच्छा से पशुधर्म ग्रहण करने के लिये, शूकर में प्रवेश किया. किन्तु शूकर बनने के बदले विष्टे का विष्टा बन, अत्यंत दुखित हो मन ही मन कुढ़ने, पछताने तथा सिर धुनने लगा और देव मनुष्य तथा पशु की दृष्टि से पतित हो, अपने अस्तित्व को त्याग मिट्टी में मिल गया, इसी प्रकार स्वधर्म त्यागी की दुर्गति होती है.

प्र०– इसलिये सब धर्मशास्त्रों ने क्या कहा है ?

उ०– **हितकारी निजधर्म है, भयकारी परधर्म ।**
प्राण जातहू राखिये, याते अपनो धर्म ।।

प्र०– स्वधर्माभिमान किस ढंग का रक्खें ?

उ०– जैसे इन्द्रायण, इमली गत कीट रखते हैं.

प्र०– क्यों कर वे धर्माभिमानी हैं ?

उ०– क्योंकि चाहे इन्द्रायण के कीड़े को इमली में रक्खें या चाहे इमली के कीड़े को इन्द्रायण में रक्खें, किन्तु दोनों में से कोई भी धर्म

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि लगातार विचारपूर्वक यम नियम में रत रहने से मन उसी में रंग जाता है.

प्र०– धर्म शास्त्रानुसार नियम के भेद कहो ?

उ०– तप, संतोष, दान, आस्तिक्य, ईश्वरपूजन, सिद्धांत श्रवण, ही मति जप और वृत्त.

प्र०– इन्हें नियम क्यों कहें ?

उ०– क्योंकि इनका उपदेश सनातन यम की मर्यादा अर्थात् नियम से मिलता है.

प्र०– इनसे क्या लाभ है ?

उ०– ये सब कार्यों तथा प्राणिमात्र के मन इंद्रियों का यम करते हैं. जिससे अनेक लाभ होते हैं.

प्र०– क्या इन दशों नियमों में यम की आवश्यकता नहीं पड़ती ?

उ०– अवश्य पड़ती है ।

प्र०– तो फिर क्यों कर इन्हें नियम नाम दिया गया ?

उ०– क्योंकि इन दशों का यम करना तो ढोंगी भी जानते हैं; किंतु कब, कहां, किसलिए, किस तरह इनका यम करना चाहिये; इन नियमों में बड़े २ बुद्धिमान भी त्रुटि कर बैठते हैं, अर्थात् इन दशों में यम की अपेक्षा, नियम की अत्यन्त प्रधानता है; इसलिए इन्हें नियम नाम दिया गया.

प्र०– यम की प्राप्ति, रक्षा तथा वृद्धि किसके द्वारा होती है ?

उ०– नियम तत्परता से.

दोहा

स्वयं प्रकाशक सनातन, सर्व शक्ति सम्पन्न ।
सर्व विज्ञ चैतन्य को, इच्छा में उत्पन्न ।।१।।

भयो नियम चित् शक्ति सों, सत् सो यम भोतीन ।
तिन संयम सो जग भयो, सत् चित् आनंद लीन ।। २ ।।
इच्छा याने स्फुरण सो, भो यम कर्षण तीन ।
वह इच्छा ही नियम है, प्रभु के चिर आधीन ।। ३ ।।
रहे जु नियमाधीन यम, संयम तिन आधीन ।
जाके आधीन तीन ये, ताके सब आधीन ।। ४ ।।
कारणरूपी नियम है, यम है कर्त्तारूप ।
कारज संयमरूप है, प्रभु इच्छा अनुरूप ।। ५ ।।
इच्छा याने भाव तत्, अहै सनातन धर्म ।
सानुकूल कर्तव्यता, सत्य हमारा धर्म ।। ६ ।।
यही सनातन भाव है, यही सनातन कर्म ।
यही सनातन नियमक्रम, यही सनातन धर्म ।। ७ ।।
नियम सनातन भाव है, यम जु सनातन कर्म ।
नियम तुल्य यम होत जस, भाव तुल्य तस कर्म ।। ८ ।।
यम केवट के हाथ में, दयी नियम पतवार ।
बैठी संयम नाव द्रुत, हो भवसागर पार ।। ९ ।।
नियम पंथ, यम पथिक है, संयम है ता चाल ।
प्रेम भाव सो चिर चली, सत पा हन जंजाल ।।१०।।
या बिन प्रभु की भक्ति ना, ध्यान न ज्ञान विचार ।
योग, यज्ञ, जप, मंत्र, तप, सकल अहैं आसार ।।११।।
यही पटल पंचांग विधि, यही श्राप उद्धार ।
यह कीलक की कुंजि है, यही लगावे पार ।।१२।।
नियम अर्थ है, यम विधी, कर्षण है यम अर्थ ।
संयमार्थ बर ढंग युत, रह धारे धर्मार्थ ।।१३।।
सर्वस हू तज दीजिये, रहे नशे बरु प्राण ।
कदा नियम तौ ना तजो, जो चाहो कल्याण ।।१४।।

उपदेश १६

स्वधर्माभिमान

प्र०– वास्तविक स्वधर्माभिमानी कौन है ?

उ०– स्वयं सच्चिदानन्द प्रभु.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– क्योंकि यदि स्वयं उसे स्वधर्माभिमान न होता, तो क्यों कर चराचर जगत को होता.

प्र०– तो क्या सब सजीव, निर्जीव पदार्थ भी स्वधर्माभिमान है ?

उ०– अवश्य.

प्र०– क्या प्रमाण.

उ०– तभी तो हर पदार्थ अपने स्वधर्मवत् फलद्रुप होता है, अन्यथा नहीं.

प्र० –स्वधर्माभिमान किसे कहते हैं ?

उ०– हर दशा में स्वधर्म दृढ़तापूर्वक चिर धारे रहने को.

प्र०– क्यों सदा दृढ़तापूर्वक स्वधर्म धारे रहें ?

उ०– क्योंकि उसके बिना कदापि सद्गति नहीं होती.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि स्वधर्म ही चराचर विश्व को, तथा अखिल विश्व स्वधर्म को सदैव धारे हुए वर्त रहा है, अर्थात् एक स्वधर्म ही हमारा चिर सहकारी है, इसलिये उसकी अनुकूलता, हित तथा प्रतिकूलता, अनहित का कारण है.

प्र०– जिसे स्वधर्माभिमान नहीं, वह कैसा है ?

उ०– वह जीता हुआ भी मरे के समतुल्य है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि जो स्वधर्म नष्ट करता है; वह स्वयं नष्ट हो जाता है.

प्र०– अच्छा ! स्वधर्म खोने से क्या होता है ?

उ०– प्रथम स्वधर्म नष्ट होता है, दूसरे स्वधर्मी घृणा करते हैं, तीसरे जिस धर्म को वह स्वीकारता है, उस धर्म वाले भी उसे नीच समझ

गुलाम तद्वत रखते हैं; चौथे उसका कोई विश्वास नहीं करता क्योंकि जिसने स्वधर्म नष्ट किया, उसे परधर्म नष्ट करते क्या देर लगेगी, पांचवें वह अपनी भ्रष्टता छिपाने के लिये तथा अपने समान औरों को नकटा बनाने के लिये छलबल युक्त मधुर उपदेश देकर सबको ललचाता रहता है; और कभी-कभी धोखा देकर तथा बलपूर्वक भी औरों को धर्म भ्रष्ट कर देता है; किन्तु पोल खुल जाने पर अनेक प्रकार से अपमानित हो साथियों सहित महासंकट में फस जाता है; इस तरह का जीना मृत्यु से बढ़ कर दुखदाई है.

प्र०– दूसरे के धर्म में प्रवेश करने से कैसी गति होती है ?

उ०– अन्न तद्वत गति होती है.

प्र०– यह कथा सुनाइये ?

उ०– एक समय अन्नदेव ने स्वधर्म से अप्रसन्न हो, देवधर्म को त्याग मनुष्य धर्म ग्रहण करने के लिये मनुष्य में प्रवेश किया, किन्तु मनुष्य बनने के बदले उसका विष्टा बन लज्जित हुआ तब अपना कलंक मिटाने तथा उन्नति की इच्छा से पशुधर्म ग्रहण करने के लिये, शूकर में प्रवेश किया. किन्तु शूकर बनने के बदले विष्टे का विष्टा बन, अत्यंत दुखित हो मन ही मन कुढ़ने, पछताने तथा सिर धुनने लगा और देव मनुष्य तथा पशु की दृष्टि से पतित हो, अपने अस्तित्व को त्याग मिट्टी में मिल गया, इसी प्रकार स्वधर्म त्यागी की दुर्गति होती है.

प्र०– इसलिये सब धर्मशास्त्रों ने क्या कहा है ?

उ०– **हितकारी निजधर्म है, भयकारी परधर्म ।**
प्राण जातहू राखिये, याते अपनो धर्म ।।

प्र०– स्वधर्माभिमान किस ढंग का रक्खें ?

उ०– जैसे इन्द्रायण, इमली गत कीट रखते हैं.

प्र०– क्यों कर वे धर्माभिमानी हैं ?

उ०– क्योंकि चाहे इन्द्रायण के कीड़े को इमली में रक्खें या चाहे इमली के कीड़े को इन्द्रायण में रक्खें, किन्तु दोनों में से कोई भी धर्म

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि लगातार विचारपूर्वक यम नियम में रत रहने से मन उसी में रंग जाता है.

प्र०– धर्म शास्त्रानुसार नियम के भेद कहो ?

उ०– तप, संतोष, दान, ग्रास्तिक्य, ईश्वरपूजन, सिद्धांत श्रवण, ह्री मति जप ग्रौर वृत्त.

प्र०– इन्हें नियम क्यों कहें ?

उ०– क्योंकि इनका उपदेश सनातन यम की मर्यादा ग्रर्थात् नियम से मिलता है.

प्र०– इनसे क्या लाभ है ?

उ०– ये सब कार्यों तथा प्राणिमात्र के मन इंद्रियों का यम करते हैं. जिससे ग्रनेक लाभ होते हैं.

प्र०– क्या इन दशों नियमों में यम की ग्रावश्यकता नहीं पड़ती ?

उ०– ग्रवश्य पड़ती है।

प्र०– तो फिर क्यों कर इन्हें नियम नाम दिया गया ?

उ०– क्योंकि इन दशों का यम करना तो ढोंगी भी जानते हैं; किंतु कब, कहां, किसलिए, किस तरह इनका यम करना चाहिये; इन नियमों में बड़े २ बुद्धिमान भी त्रुटि कर बैठते हैं, ग्रर्थात् इन दशों में यम की ग्रपेक्षा, नियम की ग्रत्यन्त प्रधानता है; इसलिए इन्हें नियम नाम दिया गया.

प्र०– यम की प्राप्ति, रक्षा तथा वृद्धि किसके द्वारा होती है ?

उ०– नियम तत्परता से.

दोहा

स्वयं प्रकाशक सनातन, सर्व शक्ति सम्पन्न।
सर्व विज्ञ चैतन्य को, इच्छा में उत्पन्न ।।१।।

उपदेश १७

धर्माधर्म अर्थात् पुण्यपाप

प्र०– पुण्य का क्या अर्थ है ?

उ०– ∵ (प)=पतन से + (उण्य) = रहित करने वाला ∴ (पुण्य) = पतन से रहित करने वाला अर्थात् उन्नत दशा को प्राप्त करने वाला.

प्र०– कौनसा कर्म उन्नत दशा को प्राप्त कराता है ?

उ०– जिसका परिणाम हितकारक हो.

प्र०– पुण्य शब्द किस अर्थ का द्योतक है ?

उ०– उन्नति, लाभ, सद्‌गति, उर्द्ध गति आदि का.

प्र०– पाप का अर्थ क्या है ?

उ०– ∵ (प) = पतन को + (आप) = प्राप्त कराने वाला ∴ (पाप) पतन करने वाला, अर्थात् निकृष्ट दशा को प्राप्त कराने वाला.

प्र०– कौनसा कर्म निकृष्ट दशा प्राप्त कराता है ?

उ०– जिसका परिणाम अनहितकारक हो.

प्र०– पाप शब्द किस अर्थ का द्योतक है ?

उ०– अवन्नति, हानि, दुर्गति; अधोगति आदि का.

दोहा

पतित अवस्था ऊनके, उन्नति पै पहुंचाय ।
अंतहि जो पुनि हित करै, सो सत पुण्य कहाय ॥१॥
पतित दशा में गेरके, उन्नति देत घटाय ।
जासो अनहित अंतको, हो सो पाप कहाय ॥२॥
सद्‌गति, उन्नति, लाभको, द्योतक पुण्य सदाय ।
हानि, अवन्नति, अधोगति, सूचक पाप कहाय ॥३॥

छंद

पुण्यके कहतये, लाभ समझ लागिये ।
पापके कहतये, हानि जान त्यागिये ॥
सूक्ष्म संकेत ये, पुण्य पाप थागिये ।
शास्त्र आदेशये, तौन कर्म पागिये ॥

उपदेश १८

धर्माधर्म अर्थात् भाव कुभाव

प्र०– धर्म किसे कहते हैं ?

उ०– सुइच्छासे कोई काम करे या करने की इच्छा करे, उसे धर्म कहते हैं ?

प्र०– अधर्म किसे कहते हैं ?

उ०– कुइच्छासे कोई काम करे या करने की इच्छा करे, उसे अधर्म कहते हैं.

प्र०– धर्मी किसे कहते हैं ?

उ०– जिसकी सुइच्छा हो.

प्र०– अधर्मी किसे कहते हैं ?

उ०– जिसकी कुइच्छा हो.

प्र०– किसी हितके लिये माता पिताने पुत्रको, गुरुने शिष्यको, स्वामिने सेवकको, पतिने स्त्रीको अपमानित कर दंड दिया; यह क्या है ?

उ०– धर्म.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि सुइच्छासे दिया गया है.

प्र०– एक वैद्यने किसी रोगी का गलता हुआ हाथ, उसे रोग मुक्त करने की कांक्षासे काट डाला; तो क्या हुआ ?

उ०– धर्म.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि उसने वह काम सुइच्छा से किया.

प्र०– एक मनुष्य ने किसी के हाथ में सोने का कड़ा देख उसे काटकर कड़ा ले लिया; यह क्या हुआ ?

उ०– अधर्म.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि उसने यह काम कुइच्छा से किया.

प्र०– एक पागल मनुष्य ने अपनी विक्षिप्त दशा में किसी ओर एक पत्थर फेंका जिसकी अचानक चोट से एक मनुष्य मर गया; तो यह क्या हुआ ?

उ०– न धर्म और न अधर्म.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि अज्ञानी पागल को किसी का हित अनहित करने की इच्छा न थी.

प्र०– किसी मनुष्य ने किसी भय तथा दुःख से बचने के लिये आत्महत्या करली या करने की इच्छा की तो यह क्या हुआ ?

उ०– अधर्म.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि जो आत्महत्या करने को न डरा, वह अन्य की हत्या करने के लिये क्यों कर चूकता, किन्तु बेकाबू होने के कारण जब कुइच्छा सिद्ध न कर सका, तब यह नीच कर्म कर लिया; इसे धर्मशास्त्र ने घोर अधर्म कहा है.

प्र०– जो स्वामी, राजा, धर्म, सज्जन, दीन, दुखी तथा उपकारी की रक्षा के लिए अपना प्राण गमा दे, तो यह क्या होगा ?

उ०– परम धर्म.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि ऐसा कार्य वृहत् सुइच्छा के बिना कदापि नहीं होता.

प्र०– अपनी तथा अन्य की सम्पत्ति तथा प्राण हानि देख उसे बचाने के लिये यदि किसी तरह की सहायता न मिले या कोई उपाय न दिखे ऐसे समय जो कोई हिंसक को मार डाले, तो यह क्या होगा ?

उ०– धर्म.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि हिंसक को कुइच्छा रोकने के लिए, सुइच्छा से काम किया गया.

प्र०– सुनियम तथा सुआज्ञा का न मानना क्या है ?

उ०– अधर्म.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि सुनियम हितेच्छा से बनाए जाते हैं और सुआज्ञा उनके पालन के लिये दी जाती है, उन्हें न मानना सरासर कुइच्छा है.

प्र०– राजाज्ञा न मानना क्या है ?

उ०– महा अधर्म है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि राजाज्ञा हितकर तथा शांतिप्रद होती है, उसे न मानना महा कुइच्छा है.

प्र०– अधर्मियों का पक्ष करना, या उनकी किसी तरह सहायता करना या छिपाना क्या है ?

उ०– अधर्म है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि जिसकी कुइच्छा होगी, वही कुकर्मियों का पक्ष करेगा.

प्र०– एक सिंह नित्यप्रति गौओं को नष्ट करता है, या एक सर्प अनेक मनुष्यों को डस लेता है, उसे मारना धर्म है या अधर्म ?

उ०– धर्म है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि उसे मारने से अनेक प्राणियों की प्राण रक्षा होती है, यही बृहत सुइच्छा है.

प्र०– चोर, शत्रु या किसी ने हमसे अपना अथवा अपने नृप आदि का कोष या अन्य गुप्त हाल पूछा, उसे बता देना; धर्म है या अधर्म ?

उ०– अधर्म है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि उसके द्वारा अपनी अथवा अपने राजा आदि की हानि हो सकती है, इसलिये उन गुप्त बातों का कहना. कुइच्छा का हेतु है.

प्र०– चोरी करना क्या है ?

उ०– अधर्म है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि न्याय द्वारा जिस वस्तु के पाने का हमें अधिकार नहीं, उसे सहसा ग्रहण करना ही कुइच्छा है; सिवाय इसके द्वारा उस पुरुष की आत्मा दुखित होगी, जिसकी वस्तु अपहरण की; उस विचार से भी अधर्म ही प्रमाणित होता है.

प्र०– किसी का स्वधर्म विचलित करना या प्राकृतिक नियम के विरुद्ध चलना तथा चलाना क्या है ?

उ०– अधर्म है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि यही तो कुइच्छा की जड़ तथा अधोगति का कारण है.

प्र०– सद्गति का कारण क्या है ?

उ०– सुइच्छा.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि बिन सदिच्छा के इंद्रियां वश में नहीं आतीं; बिन इन्द्री निग्रह के सद्वर्तन नहीं होता, बिन सद्वर्ताव के सत्संगति नहीं भाती, बिन सत्संगति के सदुपदेश नहीं मिलता, बिना सदुपदेश के स्वधर्म का यथार्थ ज्ञान नहीं होता, बिन उस ज्ञान के कदापि सद्गति नहीं होती, अर्थात् सब सुफलों की जननी केवल सुइच्छा है.

कविता

**शुद्ध मनोरथ के बिन ये सब इंद्रिन ना वश आवत है ।
ता बिन व्हैन सदाचरणी बिन संगति श्रेष्ठ न भावत है ।।
वा बिन सत्य नहीं उपदेश बिना सत सो न दिखावत है ।
ता बिन सद्गति नाहिन पावत सर्वसुचाह दिलावत है ।।**

दोहा

**सद्इच्छा ही धर्म है, दुर्इच्छा ना धर्म ।
सद्इच्छा सतकर्म जड़, दुर्इच्छा दुष्कर्म ।।**

उपदेश १६

धर्माधर्म अर्थात् कृत्याकृत्य

प्र०– सुकर्म अर्थात् हितकर्म किसे कहते हैं ?

उ०– सनातन नियम के अनुसार जिस कार्य के साधने में सुख मिले चाहे अपार दुःख, किन्तु परिणाम सद्गतिदाता हो; उसे हितकार्य कहते हैं.

प्र०– उदाहरण देकर समझाओ ?

उ०– जैसे परोपकार, ब्रह्मचर्य, सदाचरण, व्यायाम, पथ्य, हवन, विद्याभ्यास, कृषि, व्यापार, शिल्प, वृक्षारोपण, पशुपालन, कूपादिखनन, योगाभ्यास आदि यम नियमपूर्वक शुभ कर्मों के संयम में बहुधा परिश्रम सहित थोड़ा बहुत कष्ट अवश्य सहना पड़ता है, किन्तु इनका परिणाम परम हितकारी है; इसलिये इन्हें हितकर्म कहते हैं.

प्र०– कुकर्म अर्थात् अनहित कर्म किसे कहते हैं ?

उ०– सनातन नियम के विरुद्ध जिस कार्य साधन में सुख ही सुख मिले चाहे दुःख, किन्तु परिणाम दुर्गतिकारक हो उसे अनहित कर्म कहते हैं.

प्र०– उदाहरण देकर समझाओ ?

उ०– जैसे हिंसा, अपकार, निन्दा, आलस्य, द्रोह, जारकर्म, चोरी, कुव्यसन, विश्वासघात, घूंस, अत्याचार आदि कुकर्मों के साधन में बहुधा थोड़ा परिश्रम तथा थोड़ा कष्ट होता है, किन्तु इनका परिणाम महाभयंकर अनहितकारी होता है, इसलिये इन्हें अनहित कर्म कहते हैं.

प्र०– जबकि सुकर्म से हित और कुकर्म से अनहित होता है, तौ भी मनुष्य कुकर्मरत होकर अपना अनहित क्यों कर लेता है ?

उ०– क्योंकि जिसे स्वधर्म ज्ञान तथा स्वधर्माभिमान नहीं है, केवल वही सुकर्मों में विशेष परिश्रम, समय तथा द्रव्य खर्च होता देख, अज्ञानवश सहज सिद्ध, क्षणभंगुर सुख के लिये कुकर्म में फंस महादुःखी होता है,

प्र०– सुकर्म अधिक परिश्रम द्वारा तथा कुकर्म सहज ही में क्यों कर सिद्ध हो जाता है ?

उ०– जैसे दर्पण के बनाने में विशेष परिश्रम, समय तथा द्रव्य खर्च होता है, किन्तु तोड़ने में न कुछ द्रव्य और न उतना परिश्रम तथा समय लगता है.

प्र०– क्या कुकर्मी की कुटेव छूट सकती है ?

उ०– अवश्य ! कुइच्छा के त्यागने तथा सुइच्छा के ग्रहण से छूट सकती है किन्तु कुकर्म का कलंक कदापी नहीं छूटता.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह बिंधा हुआ बाण प्रयत्न द्वारा निकाला जाकर घायल का घाव भी अच्छा हो सकता है, किन्तु घाव का दाग कदापी नहीं मिटता, उसी तरह सुइच्छापूर्वक सदाचरण द्वारा कुकर्म की टेव छूट कर, कुकर्मी सुकर्मी भी बन जाता है, किन्तु पिछले किये कुकर्म का कलंक कदापि नहीं छूटता.

दोहा

चाहे बहु सुख दुख मिलै, साधन समय अपार ।
जाको हो परिणाम भलै, तो कहिये हितकार ।।१।।
चाहे प्रतिदिन सुख मिलै, साधन समय अपार ।
बुरो होय परिणाम तो, कहिये अनहितकार ।।२।।
सद इच्छासो कर्मसत्, दुर सो व्है दुष्कर्म ।
या ते इच्छा सत गही, राखो अपनो धर्म ।।३।।

उपदेश २०

सनातन धर्म की कसोटी

प्र०– किस पदार्थ का क्या सनातन धर्म है, इसकी यथार्थ परीक्षा किस तरह हो सकती है ?

उ०– जिसकी अपने सनातन स्वभाव के अनुसार चिर कर्त्तव्यपरायणता हो, उसका वही सत्य सनातन धर्म है.

प्र०– अच्छा ! अग्नि का सनातन स्वभाव क्या है.

उ०– दाहक.

प्र०– अग्नि का सनातन कर्त्तव्य क्या है ?

उ०– दाहक.

प्र०– इसलिये अग्नि का वास्तविक स्वधर्म क्या हुआ ?

उ०– दाहक.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि अग्नि अपने सनातन दाहक स्वभाव के अनुसार चिर कर्त्तव्यपरायण होकर वही दाहक कर्म सम्पादन करता है, इसलिये अग्नि का सत्य सनातन धर्म दाहक हुआ.

प्र०– अधर्म की परीक्षा किस तरह करनी चाहिये ?

उ०– जो अपने चिर सनातन स्वभाव के विरुद्ध वर्ते, वही उसके लिये अधर्म है.

प्र०– यह नियम किस पदार्थ के लिये लागू होता है ?

उ०– अखिल चराचर पदार्थों के लिये.

दोहा

भाव सनातन तुल्य जो, करै कर्म वह धर्म ।
भाव कछू औ कर्म कछु, कहिये ताहि अधर्म ।।

उपदेश २१

स्वधर्म अर्थात् हमारा धर्म

प्र०– हमारा सनातन धर्म अर्थात् स्वभाव क्या है ?

उ०– हितेच्छू.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि प्रत्येक प्राणी निजहित की इच्छा रखता है, किन्तु अनहित की नहीं; इसलिये हित इच्छना प्राणीमात्र का सनातन स्वभाव है.

प्र०– हमारा सनातन धर्म, अर्थात् कर्त्तव्य क्या है ?

उ०– हित साधन,

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि प्राणीमात्र का सनातन स्वभाव हितेच्छू है, इसलिये हित-साधन उनका सनातन कर्त्तव्य है.

प्र०– इसलिये हमारा सत्य सनातन धर्म क्या है ?

उ०– परहित अर्थात् परोपकार हमारा परम धर्म है.

प्र०– क्यों !

उ०– क्योंकि प्राणीमात्र का स्वभाव हितेच्छू होने के कारण वे निज हित-कर्ता से अत्यन्त प्रसन्न हो उसके हितचिंतक बन जाते हैं. इस बात का तुम्हीं निर्णय करो कि हम अकेले अपनी अकेली शक्ति से जिन अनेकों का जितना हित कर सकते हैं; यदि वे अनेक कृतज्ञ प्राणी अपनी अनेक सम्मिलित तथा प्रथक-प्रथक शक्ति से हमारा हित करें तो वह हमारे किये हुए से कई गुणा अधिक होगा, देखो ! औरों का हित करना मानो अपना परमहित करना है, अर्थात् औरों का हित करने से हमारा ही परमहित है, इसलिये परहित करना हमारा परम धर्म है.

प्र०– हमारा अधर्म अर्थात् कुभाव क्या है ?

उ०– अनहितेच्छा.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि कोई प्राणी भी निजअनहित की इच्छा नहीं करता, इसलिये अनहित की इच्छा हमारे सनातन स्वभाव के विरुद्ध है.

प्र०– हमारा अधर्म अर्थात् अकर्त्तव्य क्या है ?

उ०– अनहित साधन.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि प्राणीमात्र हितेच्छू है, इसलिये अनहित साधन उनके सनातन स्वभाव के विरुद्ध होने के कारण अकर्त्तव्य है.

प्र०– इसलिये हमारा महा अधर्म क्या है ?

उ०– पर अनहित अर्थात् अपकार.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि प्राणीमात्र हित से प्रीति, तथा अनहित से घृणा करते हैं. तिस पर यदि हम उनका अनहित करें तो वे हमसे अत्यन्त अप्रसन्न हो हमारे अनहित चिंतक बन जावेंगे, तब अकेले हम, अनेकों के शत्रु बन अपने आपही अपनी हित रक्षा न कर सकेंगे, किन्तु महा संकट में फंसकर अत्यन्त दुखित होंगे; इसलिये किसी को सताना महा अधर्म है.

प्र०– अनेक प्राणी अपना अनहित आपही कर लेते हैं, तौभी हितेच्छा ही स्वाभाविक धर्म क्यों है ?

उ०– क्योंकि आतमहत्या करनेवाले किसी कष्ट तथा भय से छूटने के लिये, और अनेक दुराचारी अपने हित अथवा सुख के लिये ही, अज्ञानवश अधर्म करते हैं; इसलिये हितइच्छा ही प्राणियों का स्वाभाविक धर्म है.

प्र०– तो क्या केवल मनरंजनार्थ कोई कार्य करना स्वधर्म है ?

उ०– नहीं ! नहीं ! ! कदापि नहीं ! ! !

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि सनातन नियम के विरुद्ध सुख नहीं किन्तु सुखाभास है.

प्र०– सुखाभास किसे कहते हैं ?

उ०– जिस तरह विष मिश्रित मिष्टान्न भोजन खाते हुए मन प्रसन्न करता है, किन्तु अंतको प्राणहारक है; उसी तरह जिस आचरण से प्रथम सुखही सुख दिखे, किन्तु अंत को महा दुःख प्राप्त हो, उस मृगजलवत् सुख को सुखाभास कहते हैं.

प्र०– सुखाभास को मृगजलवत् क्यों कहा ?

उ०– क्योंकि जिस तरह तृषा से व्याकुल मृग, मध्यान के ताप से तपी हुई मरु भूमि में, मिथ्या सरोवर तुल्य जलाभास देख, ज्यों-ज्यों उस ओर दौड़ता है, त्यों-त्यों अधिक दुःखित होता जाता है; उसी

तरह मनुष्यरूपी मृग, तरुणतारूपी मध्यान के मदोन्मत्तरूप ताप से तपी हुई, विषयरूपी मरु भूमि में, सकामरूप सरोवर के सुखाभासरूप जलाभास को देख ज्यों-ज्यों उस ओर दौड़ता है; त्यों-त्यों अधिक कष्टित होता जाता है; किन्तु कदापि संतुष्ट नहीं होता.

प्र०– अच्छा ! हित किसे समझे ?

उ०– जो सनातन नियम के अनुसार हो.

प्र०– हितेच्छा किसे कहते हैं ?

उ०– सुइच्छा को.

प्र०– स्वधर्म का रक्षक कौन है ?

उ०– सनातन नियम अर्थात् सत्य धर्म.

दोहा

हित इच्छत हैं प्राणी सब, अनहित चहै न कोय ।
याते हित रुचि राखिये, अनहित रुचि दे खोय ।।१।।
अहै सनातन हित रुची, करू याते हित कर्म ।
पथ विरुद्ध तज दीजिये, मलवत अनहित कर्म ।।२।।
परहित सो हित अति फलै, मेल प्रेम दृढ़ होय ।
याते परहित कीजिये, दया सहित उर गोय ।।३।।
धर्म कहत हैं भाव को, भाव अर्थ है प्रेम ।
यही सनातन धर्म है, तुल्य सनातन नेम ।।४।।
अहै सनातन नियम ही, सत्य धर्म को रूप ।
यह सत इच्छा ईश की, धारत सदा अनूप ।।५।।
हित स्वाभाविक धर्म है, हित साधन कर्त्तव्य ।
परम धर्म परहित अहै, सत्य धर्म मन्तव्य ।।६।।

उपदेश २२

कर्मी भेद

प्र०– कर्त्तव्य के विचार से मनुष्य के भेद कहो ?

उ०– देव, मनुष्य, राक्षस, पिशाच.

प्र०– देव तुल्य कौन है ?

उ०– जो स्वाभाविक निःस्वार्थ, प्राण संकट सहते हुए भी प्रसन्नतापूर्वक परोपकार ही करते हैं ?

प्र०– मनुष्य कहलाने के योग्य कौन हैं ?

उ०– जो निःस्वार्थ, संकट से बच या केवल निज यश के लिये प्रसन्नतापूर्वक परोपकार करते हैं.

प्र०– राक्षसकर्मी कौन हैं ?

उ०– जो भयवश या केवल निज स्वार्थ के लिये ही परोपकार करते हैं.

प्र०– पिशाचकर्मी कौन हैं ?

उ०– जो केवल कुइच्छा सिद्धि के लिये ही परोपकार करते हैं, अन्यथा अपनी हानि सहकर भी औरों का तथा उपकारी का अपकार ही करते हैं.

प्र०– शास्त्र ने पिशाचकर्मी को किन नामों से पुकारा है ?

उ०– कृतघ्न, आततायी, अपकारी, कुकर्मी, दस्यु, अनार्य, काफर आदि.

दोहा

प्राण रहत सुर हित करै, नर निज कष्ट बचाय ।
दनुज स्वार्थ वश हित करै, व्यर्थ पिशाच नशाय ।।

चौपाई

स्वाभाविक सुर है हितकारी, तिमि पिशाच महा अपकारी ।।१।।
कीरत हित नर कर उपकारा, निज स्वारथ हित दनुज बिचारा ।।२।।

उपदेश २३

परमधर्म अर्थात् परोपकार

प्र०– परोपकारी किसे कहते हैं ?

उ०– जो सनातन नियम के अनुसार प्राणीमात्र का उपकार करे, तथा कृतज्ञापूर्वक परोपकारियों की सहायता करे.

प्र०– परोपकार की शिक्षा किसके द्वारा लेनी चाहिये ?

उ०– पृथ्वी, गौ, वृक्ष, सूर्य, चन्द्र, इत्यादि उपकारी पदार्थों द्वारा.

प्र०– उपकार किसे कहते हैं ?

उ०– हित अथवा भलाई को.

प्र०– अपकार किसे कहते हैं ?

उ०– अनहित अर्थात् बुराई को.

प्र०– हमें औरों की भलाई, बुराई का ज्ञान किस तरह हो सकता है ?

उ०– (१) जिस बात से हमारा हित, अनहित हो सकता है, उसी से औरों का होगा. (२) जिस बात से हमें सुख दुःख मिल सकता है, उसी से औरों को मिलेगा.

प्र०– हमें औरों की भलाई, बुराई से क्या वास्ता ?

उ०– (१) जबकि हम औरों की भलाई, बुराई तथा सुख-दुःख की परवाह न करेंगे तो वे भी हमारे हित अनहित तथा सुख-दुःख की क्यों कर परवाह करेंगे ? (२) क्योंकि औरों का हित अनहित करना मानो खुद का हित, अनहित करना है. अर्थात् जैसा वर्ताव हम औरों के साथ करेंगे, वैसा ही वे हमारे साथ करेंगे ?

प्र०– आम तथा बंबूल के बीज के समान उपकार तथा अपकार क्यों है ?

उ०– क्योंकि उपकाररूपी आम के बीज को बोकर सींचने से अनेक फल तथा अपकाररूपी बंबूल के बीज को बोकर सींचने से अनेक कंटक प्राप्त होते हैं.

प्र०– केवल उपकार, अपकार ही अनन्त हित, अनहित का बीज किस-तरह है ?

उ०– जैसे किसी एक बीज के बोने से अनेक बीज प्राप्त होते हैं, और फिर वे बीज अनन्त फल उपजाते हैं.

प्र०– थोड़ासा उपकार अमित फल किस तरह देता है ?

उ०– (१) जैसे थोड़ासा जल तृण देने से गौ अमित फल देती हैं ! (२) जैसे थोड़ासा अन्न जल देने से इंद्रियां अमित परिश्रम सहित हमारे अनेक कार्य सम्पादन करती हैं, (३) जैसे वृक्ष, वनस्पति तथा कृषि केवल सिंचने ही से, हमें अपार लाभ पहुंचाती है, उसी तरह केवल परोपकार द्वारा अनन्त सुफल फलते हैं.

प्र०— प्राणीमात्र हमारे स्वल्प उपकार से परम हितकारी और स्वल्प अपकार से परम अनहितकारी किस तरह हो जाते हैं ?

उ०— जैसे स्वल्प दही देने से सम्पूर्ण दुग्ध, दही बन घृतादि द्वारा हमारा हित करता है, किन्तु स्वल्प विष देने से वही दुग्ध सम्पूर्ण विष बन हमारा अनहितकारी बन जाता है.

प्र०— परोपकार के वंशजों के नाम ?

उ०— प्रेम अर्थात् भाव=पिता, दया=माता, अहिंसा=दाई, प्रीति=लुगाई, क्षमा=बहिन, सत्कार=भाई, दान=दास, नम्रता लज्जा=दासी, निष्काम + निर्लोभ=सखा, परकीर्ति = सखी, सदाचरण = रक्षक, गुणग्राहक=हितू, ऐक्यता=पुत्री तथा हितू=पुत्र है.

प्र०— अपकार के वंशजों के नाम ?

उ०— द्रोह अर्थात् कुभाव = पिता, निर्दयता = माता, हिंसा = दाई, अप्रसन्नता=लुगाई, क्रोध = साला, अपमान=भाई, अहंकार = दास, निर्लज्जता = दासी, लोभ =सखा, निंदा = सखी, दुराचार=रक्षक, छिद्रान्वेषण=हितू, फूट=पुत्री तथा अनहित =पुत्र है.

प्र०— उपकार की संतान के नाशक कौन हैं ?

उ०— अपकार का हर एक वंशज, उपकार के वंशजों का नाशक है.

प्र०— हिंसा किसे कहते हैं ?

उ०— किसी की आत्मा दुखित करने तथा हनन करने को हिंसा कहते हैं.

प्र०— हिंसा किस बात का संकेत करती है ?

उ०— औरों की हिंसा करना, मानो अपनी आप हिंसा करना है.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि यदि हम औरों को दुखित करेंगे, तो क्या वे हमें दुखित न करेंगे ?

प्र०— यदि न कर सकें तो ?

उ०— तो क्या किसी न किसी प्रकार हमारा अनहित न होगा ?

प्र०— मान लो ! यदि न हुआ ?

उ०— तो क्या कोई हमें अच्छा कहेगा.

प्र०– अहिंसा किसे कहते हैं ?

उ०– किसी की आत्मा न दुखाना, तथा हनन न करने को अहिंसा कहते हैं.

प्र०– अहिंसा किस बात का संकेत करती है ?

उ०– औरों की अहिंसा करना मानों अपनी आप अहिंसा है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि यदि हम औरों पर दया करेंगे; तो क्या वे हम पर दया न करेंगे.

प्र०– यदि न करें तो ?

उ०– तो क्या किसी न किसी प्रकार हमारा हित न होगा ?

प्र०– मानों ! यदि न हो ?

उ०– तो क्या कोई हमें बुरा तो न कहेगा ?

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! घोड़े, कुत्ते, सिंह, घड़ियाल आदि प्राणी भी अपने उपकारी से प्रसन्न हो, सहानुभूति दिखाते हैं, और पशु पक्षी आदि निर्बल जीवजंतु भी, सबल अपकारी से अप्रसन्न हो, उसे हनन करने को उद्यत हो जाते हैं.

प्र०– क्या औरों की आत्मा दुखित करना अधर्म है ?

उ०– औरों को दुखित करना तो क्या, किन्तु दुखित प्राणियों की सहायता न करना भी महा अधर्म है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि यदि हम अपने भाई को अग्नि में गिरता देख, न बचावें, तथा गिरा देख, आग से न निकालें या उसे हम खुद अग्नि में झोंक दें या मार डालें तो क्या हमारा पिता हमसे प्रसन्न होगा ? और क्या न्यायाधीश या राजा हमें दंड न देगा और क्या संसार भर हमें अच्छा कहेगा या हमारा कोई हित चाहेगा ? इसलिए अहिंसा परम धर्म, और हिंसा महा अधर्म है.

प्र०– मानो ! संसार में हिंसा, अहिंसा का बदला हमें न मिला ?

उ०– तो क्या वह प्राणीमात्र का परमपिता सच्चा न्यायाधीश जगदीश्वर हमें दंड न देगा ?

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– क्या हमारा सांसारिक राजा अकारण ही किसी का हाथ, किसी का पांव, किसी का सिर काटता, या किसी की आंखें फोड़ता या किसी को दण्ड, और किसी को सम्मानपूर्वक पारितोषिक देता है ?

शि०- कदापि नहीं.

गु०– तो क्या परम न्यायाधीश, परम दयालु हमारे परम पिता ने हम पुत्रों में से किसी को लंगड़ा, किसी को लूला, किसी को काना, किसी को अन्धा, किसी को धनी, किसी को कंगाल, किसी को राजा, किसी को सेवक, किसी को सुखी, किसी को दुखी, किसी को मनुष्य, किसी को पशु आदि अकारण बनाया है ?

शि०- कदापि नहीं.

गु०– इसीलिये हिंसा त्याग, अहिंसा धारो.

प्र०– यदि कोई दुखकारक कार्य करे तो हमें क्या योग्य है ?

उ०– कि हम उस कार्य को युक्तिपूर्वक रोक दें.

प्र०– यदि हमसे न रुक सके तो ?

उ०– तो उसकी हानि जता दें.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह वृक्ष पर बैठा भारद्वाज पक्षी, जब कभी किसी पथिक को सर्पादि हिंसक जंतु की ओर या सर्पादिक को पथिक की ओर जाता हुआ देख लेता है, तब वह फौरन उस ओर उड़-उड़ शब्द-ध्वनि कर-कर बार-बार संकेत द्वारा जताता है; उसी तरह किसी दृष्टांत के संकेत से जता दें.

प्र०– जताने पर जो न माने तो ?

उ०– तो फिर हमें कुछ दोष नहीं.

दोहा

जासे पर को चित दुखे, मत कह मत सुन सोय ।
मत लख, मत चख करे मत, मत ले मत दे कोय ॥१॥
जासे सबको हित फलै, कीजै सोई काज ।
चाहे निज को काज हो, चाहे होय अकाज ॥२॥
सत इच्छा सों हित करै, धर्मी सत्य सुजान ।
दुर इच्छा सो ना करै, रहे जाय बरु प्रान ॥३॥
परहित है निजहित महा, सत एके का बीज ।
सींच प्रेम निष्काम जल, लखो मिलै क्या चीज ॥४॥
अनगिन चींटी प्रेम सो, रहत किमी इक ठाम ।
निज बल सो कै गुण अधिक, सारत हिलमिल काम ॥५॥
एका ये क्या वस्तु को, दे न सके क्या प्रेम ।
याते एका प्रेम सो, गहो चलो चिर नेम ॥६॥
एके से सब तत्वमे, अणु अणु एक मिलाय ।
एके से सब कुछ भया, एका करे सहाय ॥७॥
फूटत सब कछु फूट सो, पात्र हि देय न साय ।
हित जल वामें ना रहे, क्षण में देत रिताय ॥८॥
फूट कूट मुख पाटिये, एके सो झलवाय ।
हित जल भरिये प्रेम सो, फिर कस वह झर जाय ॥९॥
परम धर्म उपकार है, बड़ अधर्म अपकार ।
याते परहित कीजिये, पर पीड़ा तजिकार ॥१०॥
फूट न फोरे वस्तु क्या, ठोरे क्या ना द्रोह ।
हिंसा क्या ना हने नित, नाशे क्या ना कोह ॥११॥

उपदेश २४

स्वधर्म अर्थात् सत्य धर्म

प्र०— सत्य धर्म किसे कहते हैं ?

उ०— उस नित्य निर्विकार अटल सनातन धर्म को.

प्र०— सत्य किसे कहते हैं ?

उ०— जो सदा सर्वत्र एकरस सबका विश्वासनीय तथा आदरणीय है.

प्र०— वास्तविक सत्य क्या वस्तु है ?

उ०— तद्रूप, तद्भाव तथा उस प्रभु की अचल मर्यादा है.

प्र०— सत्य का विश्वास क्यों है ?

उ०— क्योंकि उसके द्वारा किसी को धोखा नहीं होता.

प्र०— जग में किस वस्तु का आदर होता है ?

उ०— जिसके धर्म का विश्वास हो.

प्र०— विश्वास किसका है ?

उ०— केवल सत्य का.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि हम आदरपूर्वक अनेक पदार्थ इसी विश्वास पर संग्रह करते हैं कि वे अपने सनातन धर्मानुसार सत्यकर्त्तव्य का पालन अवश्य करेंगे; अन्यथा नहीं.

प्र०— सत्य का निश्चय किसके द्वारा होता है ?

उ०— स्वधर्म तत्परता से.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि जिसके धर्म में कदापि अन्तर नहीं पड़ता; वही सत्य वस्तु है.

प्र०— अखिल संसार का आधार क्या है ?

उ०— सत्य.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि यदि केवल एक सूर्य ही अपने सत्य धर्म को त्याग दे तो सकल सृष्टि क्षण भर में ही नष्ट हो जाय.

प्र०— सदाचरणी किसे कहते हैं ?

उ०— जो अपने सनातन धर्म में कदापि अन्तर नहीं पड़ने देता अर्थात् जो सनातन यम, नियम के संयमानुकूल ही सदैव वर्तता है.

प्र०— सत्य के वंशज कौन हैं ?

उ०— विचार=पिता, सुइच्छा=माता, न्याय=प्राण, धैर्य=मित्र, स्वधर्माभिमान=भाई, नीति = लुगाई, सत्संगति=दाई, सन्तोष=सखा, शांति=सखी, सदाचरण=सेवक, संयमनियम=रक्षक, ज्ञान=पुत्र तथा सद्गति=पुत्री हैं.

प्र०— सत्य को धर्म क्यों कहते हैं ?

प्र०— क्योंकि सत्य का सबको विश्वास है, इसलिए सदाचरण देख सब सहानुभूति दिखाते हैं; जिसके द्वारा हमारा परमहित हो सकता है.

प्र०— सत्य की शिक्षा किसके द्वारा मिलती है ?

उ०— सनातन नियम के द्वारा ।

प्र०— सत्य धर्म को कौन त्यागता है ?

उ०— केवल पिचाश धर्मी.

प्र०— क्या कोई अन्य भी त्यागता है ?

उ०— नहीं.

प्र०— तो फिर कई पदार्थ धर्म विरुद्ध फल देते, क्यों दिखाई देते हैं ?

उ०— क्योंकि जिन चराचर में धर्मांतर देखा जाता है, वह केवल इसी मनुष्य के अधर्म का फल है.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि वह बिना विचारे व्यर्थ ही अपने सत्य ज्ञान को तिलांजली दे, स्वतः अधर्म रत हो, औरों को भी अधर्मी बना देता है.

प्र०— उसे क्या कहना चाहिये ?

उ०— कृतघ्नी.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि हमें सब चराचर किसी न किसी प्रकार हित पहुंचा रहे हैं; किन्तु यह कृतघ्नी उनके उपकार का तनिक भी लक्ष नहीं रखता.

प्र०— असत्य किसे कहते हैं ?

उ०— जो सदा सर्वत्र अविश्वास तथा अनादर की दृष्टि से देखा जाता है.

प्र०— किसका अनादर होता है ?

उ०— जिसका विश्वास नहीं.

प्र०— किसका विश्वास नहीं ?

उ०— असत्य का.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि जिन पदार्थों के धर्म का हमें विश्वास नहीं; उनका हम कदापि आदर या संग्रह नहीं करते.

प्र०— असत्य का निश्चय किसके द्वारा होता है ?

उ०— स्वधर्म की प्रतिकूलता से.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि जिसकी स्वधर्म के अनुसार कर्त्तव्य परायणता नहीं, वही असत्य वस्तु है.

प्र०— दुराचरणी किसे कहते हैं ?

उ०— जो अपने सनातन धर्म के विरूद्ध अर्थात् उसके संयम नियम के प्रतिकूल वर्तता है.

प्र०— असत्य के वंशज कौन हैं ?

उ०— अविचार = पिता, कुइच्छा = माता, अन्याय = जीवन, अधैर्य = मित्र, स्वधर्म त्याग = भाई, अनीति = लुगाई, कुसंगति = दाई, असंतोष = सखा, अशांति = सखी, दुराचरण = सेवक, स्वेच्छाचार= रक्षक, अज्ञान = पुत्र, दुर्गति = पुत्री है.

प्र०— असत्य भाषण किसे कहते हैं ?

उ०— न कहना, टाल देना, चुप रहना, या विपरीत कहना ही असत्य भाषण कहाता है.

प्र०– असत्य को अधर्म क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि असत्य का सबको अविश्वास है. इसलिये दुराचरण अर्थात् मिथ्याचरण देख सब हमसे घृणा करते हैं; जिसके द्वारा हमारा परम अनहित होता है.

प्र०– यदि कोई घृणा न करे तो ?

उ०– तो भी अपनी हानि किसी न किसी तरह होती है.

प्र०– कदाचित् न हो तो ?

उ०– ऐसा होना कदापि सम्भव नहीं.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि करणी का फल चाहे आज फलै, चाहे कालांतर में, किन्तु फलता है, अवश्य.

प्र०– झूंठ कब तक निभती है ?

उ०– जब तक फल न प्रगटे अर्थात् एक बार धोखा होते ही सब पोल खुल जाती है.

प्र०– झूंठा मनुष्य किसके समान है ?

उ०– पागल कुत्ते या फटी छत के मकान के समान है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि इन दोनों द्वारा कब क्या अनहित होगा, इसका कुछ विश्वास नहीं.

दोहा

सत राख्यो हरिचन्द ने, सत राख्यो श्री राम ।
या सति कीरति दुहुंन की, रही छाय सब धाम ।।१।।
धर्म सनातन शर्करा, मिष्ट सत्यता धर्म ।
हित आदर पावै सदा, निश्चित है ता कर्म ।।२।।
अन्न सभी संग्रह करै, कदान्न करै ना कोय ।
जा निश्चै ता सन गहै, तजै अनिश्चय सोय ।।३।।
नियम सनातन पालिबो, सत्य धर्म कहलाय ।
ता संयम को टारिबो, मिथ्या धर्म सदाय ।।४।।

सत्य नियम यम सत्य प्रभु, सत्य धर्म सत रूप ।
जाके चित नित सत्य बस, ता बस सत्य अनूप ॥५॥
सत संयम यम नियम सत, सत्य धर्म जगदीश ।
जो रक्षेता सत्य को, ता रक्षे सत ईश ॥६॥
सत्य कर्म सत शक्ति जा, सत्य ज्ञान चित् शक्ति ।
धर्म सच्चिदानंद चिर, करु ताकी सदभक्ति ॥७॥
सत शक्तिसों यम भयो, चित् शक्ति सो नेम ।
याते सत चित जो रखे, ता राखै प्रभु तेम ॥८॥
नियम तुल्य यम जगत को, कर्षत ये ता कर्म ।
याते तद्वत वर्तिये, यही सत्य है धर्म ॥९॥
यही सनातन धर्म है, यही सनातन कर्म ।
यही सनातन नियम पथ, यही हमारा धर्म ॥१०॥
सत निश्चै सत आदरै, सत हितप्रद सब केर ।
याते सत को धारियो, सत्य धर्म जग टेर ॥११॥
झूंठ अनिश्चय निरादर, अनहित को है कर्म ।
याते याही कहत चिर, सबही महा अधर्म ॥१२॥

उपदेश २५

स्वधर्म सदन

प्र०— धर्माधर्म का सदन क्या है ?

उ०— अंत:करण.

प्र०— क्या एक ही अंत:करण में धर्म अधर्म दोनों एक संग रह सकते हैं ?

उ०— कदापि नहीं.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि ये दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं.

प्र०– अच्छा ! जिसके अंत:करण में धर्म का निवास है, यदि मनुष्य अधर्म को भी वहां स्थान दे तो क्या होगा ?

उ०– स्वधर्म नष्ट हो, अधर्म हो प्रधान रहेगा.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जैसे दुग्धपूर्ण पात्र में यत् किंचित् विष गिर जाय, तो भी सम्पूर्ण दुग्ध दूषित हो विष बन जाता है.

प्र०– अच्छा ! जिसके अंत:करण में अधर्म का निवास है, यदि वह धर्म दर्शावे या करें, तो क्या होगा ?

उ०– तो भी धर्म नष्ट हो, अधर्म ही प्रधान रहेगा.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जैसे विष के पात्र में दुग्ध रखने से वह भी विष बन जाता है.

प्र०– इसका तात्पर्य क्या है ?

उ०– अर्थात् अधर्मी अधर्म सिद्धि के लिये धर्म की बातें बना दिया करते हैं, किन्तु उनका धर्माभास ही अधर्म वर्धक है.

प्र०– तो क्या अधर्मी कभी स्वधर्मी नहीं हो सकता ?

उ०– हां ! हो भी सकता है.

प्र०– कब ?

उ०– जब समूल सर्वदा के लिये, अधर्म को त्याग दे, तब कदाचित हो सकता है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जैसे विष भांड को अच्छी तरह मांज, धो, पोंछ लेने पर यदि उसमें दुग्ध रखें तो कदाचित् वह न भी बिगड़े.

प्र०– जिसने समूल अधर्म त्याग दिया, तो भी सन्देह क्यों ?

उ०– यदा कदा संस्कार उदय हो जाय.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जैसे साधारण मृतिका पात्र में रखा हुआ विष निकाल, मांज, धो, पोंछ लेने पर भी बहुधा उसमें भरा दुग्ध दूषित हो विष बन जाता है.

प्र०– फिर किस प्रकार अधर्मी मनुष्य स्वधर्मी बन सकता है.

उ०– यदि कुइच्छा को समूल त्याग, उसके संस्कार के बीज, संयम-नियम से उपजे, ज्ञानाग्नि से दग्ध कर दे, तब हो सकता है.

प्र०– क्या ज्ञानाग्नि से दग्ध संस्कार फिर नहीं उपजते ?

उ०– नहीं.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह अग्नि से दग्ध विष के पात्र में रखा हुआ दुग्ध नहीं बिगड़ता, या जैसे भुने हुए चने फिर नहीं ऊगते.

प्र०– तो क्या शुद्ध हुए अधर्मी का विश्वास मानना चाहिये ?

उ०– कदापि नहीं.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि उसके शुद्ध अंतःकरण होने का क्या निश्चय ?

प्र०– यदि वह हमें निश्चय करा दे तो ?

उ०– तो भी विश्वास न मानना चाहिये.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि बहुधा अधर्मी अपना कुकर्म सिद्ध करने के लिये अपने आपको शुद्ध तथा निर्दोष हुआ बताते हैं और निश्चय कराने के लिये कई ज्ञान की बातें बनाते या शपथ खा लेते हैं, किन्तु अन्त को व्याधा के तुल्य करणी करते हैं इसलिये अधर्मी का कदापि विश्वास न करें.

दोहा

दुर इच्छा है सार विष, विषय महा विष जान ।
विष व्यापै तन मात्र में, ये व्याधै मन प्रान ॥१॥
विष केवल इक हानिकर, अतिशय ये कर हान ।
वह नाशै या जन्म को, ये नाशै जन्मान ॥२॥
विष उत्तम उपचार सों, छोड़े निज विस्तार ।
ये ना छूटै काहु विध, बिनसत किये विचार ॥३॥

विषमाहीं पय पात या, पयमाहीं विषपात ।
तऊ, दुग्ध व्है जात विष, अघ तिमि धर्म नसात ।।४।।
विष रंजित मृद पात्र बरु, मांज, पोछ धो लेय ।
तऊ क्वचित पय होत विष, अघ तिमि अघ करि देय ।।५।।
विष रंजित मृद पात्र को, दै पावक विष जार ।
मल, धो, ता पय डार तब, ना व्है कबहुं विकार ।।६।।
संयम कूंची नियम रज, मलो हृदय निज पात्र ।
पोंछि विराग सुधोइये, प्रेम नीर सन्मात्र ।।७।।
संयम घर्षण नियम क्रम, इच्छा ईंधन लाग ।
ज्ञान अग्नि परचाइये, लगा फूंक वैराग ।।८।।
दुर इच्छा तत होमिये, संस्कार सह बीज ।
धरी धर्म उर ध्यान चिर, प्रभु प्रेम रस भींज ।।९।।
कबहुं कुइच्छा भूल के, हृदय न दीजै आन ।
सतचित सो जो यो गहै, ता सम धर्म न आन ।।१०।।

उपदेश २९

धर्म अर्थात् वृत्ति

प्र०— वृत्ति क्या वस्तु है ?

उ०— यह चैतन्य की इच्छा है, जिसे चेतना या स्फुरण भी कहते हैं.

प्र०— वृत्ति की क्या व्याख्या है ?

उ०— जो चैतन्य के आश्रित सदा सर्वत्र सब में वर्तमान रह वर्त्तती रहती है, जिसकी गति चिर अकुंठित है और जिसे सब कुछ होने, लेने, देने, सुनने, जानने, चखने, सूंघने तथा करने आदि का सामर्थ्य है, उसे वृत्ति कहते हैं.

प्र०— वृत्ति में यह अद्भुत शक्ति कहां से आई ?

उ०— चैतन्य से.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि वह स्वयं प्रकाशक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान है.

प्र०— चैतन्य की मुख्य शक्तियां कौनसी हैं ?

उ०— विद्या, अविद्या.

प्र०— विद्या किसे कहते हैं ?

उ०— चैतन्य की ज्ञान शक्ति अर्थात् वृत्ति को.

प्र०— अविद्या किसे कहते हैं ?

उ०— चैतन्य की क्रियाशक्ति, अर्थात् कर्षण को.

प्र०— वृत्ति के कितने भेद हैं ?

उ०— अनन्त नामधारी वृत्ति के भी केवल विद्या, अविद्या नामक दो ही भेद हैं.

प्र०— वृत्ति का नाम विद्या कब होता है ?

उ०— जब वृत्ति अंतर्मुख, अर्थात् चैतन्याभिमुख होती है तब.

प्र०— वृत्ति का नाम अविद्या कब होता है ?

उ०— जब वृत्ति बहिर्मुख, अर्थात् चैतन्य के विमुख होती है तब.

प्र०— क्योंकर वृत्ति चैतन्य के सन्मुख तथा उन्मुख होती है ?

उ०— जब वृत्ति क्रिया शक्ति को स्वाधीन कर वर्त्तती है तब चैतन्य के सन्मुख और जब क्रिया शक्ति के अधीन हो वर्त्तती है तब उन्मुख हो जाती है इसी को ज्ञान, अज्ञान या विद्या, अविद्या कहते हैं.

प्र०— विद्या को ज्ञान शक्ति क्यों कहते हैं ?

उ०— क्योंकि उस वृत्ति को हित अनहित का ज्ञान है.

प्र०— अविद्या अर्थात् कर्षण शक्ति को अज्ञान शक्ति क्यों कहते हैं ?

उ०— क्योंकि उसे हित अनहित का कुछ भी ज्ञान नहीं है, तभी तो यह वृत्ति क्रिया शक्ति के आधीन हो अविद्या कहाती है.

प्र०— आत्मा में वृत्ति किस प्रकार वर्तमान है ?

उ०— जैसे वायु में स्फंद, जल में तरंग.

प्र०— वृत्ति के पर्यायी शब्द क्या हैं ?

उ०— इच्छा, कांक्षा, आकांक्षा, भाव, स्वभाव, भावना, प्रकृति, भक्ति,

कामना, रुचि, लक्ष, धर्म, मूल, गुण, स्फुरणा, आशा, चित, मन, बुद्धि, अहंकार, अभिलाषा, चेतना, ध्यान, मति आदि.

प्र०— जब वृत्ति विकर्षण शक्ति की आधीनता का अहंकार करती है, तब वह किन नामों से पुकारी जाती है ?

उ०— दुरिच्छा चिंता, क्रोध, द्रोह, ईर्षा, भय, व्याकुलता, द्वेष, निन्दा, निर्दयता, तामस, तमोगुण, छल, मृत्यु, निद्रा, गर्व, मद, घमण्ड, निर्लज्जता आदि.

प्र०— आकर्षण शक्ति की आधीनता का अहंकार करने वाली वृत्ति किन नामों से पुकारी जाती है ?

उ०— कामना, काम, मोह, प्रेम, प्रीति, आशक्ति, आतुरता, रति, कीर्ति, स्तुति, मान, रजोगुण, मन, जागृत, तृष्णा, आशा, अभिलाषा, लज्जा आदि.

प्र०— स्थंभन शक्ति के आधीनस्थ अहंकार करने वाली वृत्ति किन नामों से पुकारी जाती है ?

उ०— जड़ता, मूर्खता, अज्ञानता, कायरता, क्लीवता, सुषुप्ति आदि.

प्र०— चैतन्याभिमुख वृत्ति किन नामों से पुकारी जाती है ?

उ०— विद्या, ज्ञान, विज्ञान, विचार, सन्तोष, शांति, दया, क्षमा, धैर्य, नम्रता, उदासीनता, सत्य, बुद्धि, विश्वास, धी, ध्यान, ब्रह्मचर्य साहस, सावधानी, सत्वगुण, लक्ष, धर्म, निरहंकार, तदहंकार तदाकार वृत्ति, मोक्ष, मुक्ति, तुर्या आदि.

प्र०— चैतन्योन्मुख वृत्ति किन नामों से पुकारी जाती है ?

उ०— अविद्या, अज्ञान, अविचार, असत्य, कुमति, सन्देह, निराशा, अधर्म, अन्याय, देहाभिमान, बन्धन, आवागमनादि.

प्र०— जब वृत्ति कर्षण को स्वाधीन कर उससे काम लेती है, तब वे कर्म किन नामों से पुकारे जाते हैं ?

उ०— संयम, नियम, यज्ञ, योग, ब्रह्मयज्ञ, होम, हवन, वैश्वदेव, तपस्या, जप, तप, वृत, उपासना, मंत्र, तीर्थयात्रा, भक्ति, ध्यान, श्रवण, स्मरण, कीर्तन, साधन, धर्म, कर्म, सुकर्म, कर्त्तव्य, दान, विचार, तत्व, ध्यान, समाधि, धारणा, पथ्य, आचार, सदाचार, सत्य, उपकार, अहिंसा सुमार्ग, यत्न, प्रयत्न, उद्योग, अभ्यास, पुरुषार्थ ब्रह्मचर्य आदि.

प्र०— जब वृत्ति कर्षण अर्थात् क्रियाशक्ति के आधीन हो वर्त्तती है, तब तत्कृत कर्म किन नामों से पुकारे जाते हैं ?

उ०— असंयम, अनियम, अविचार, अन्याय, अधर्म, दुराचार, असत्य,

कुमार्ग, कुपथ, कुपथ्य, आलस्य, व्यभिचार, अत्याचार, छल, कपट, अपकार, हिंसा, कुकर्म, अकर्त्तव्य आदि.

प्र०– चैतन्य अपनी क्रियाशक्ति का चालन किसके द्वारा करता है ?

उ०– ज्ञान शक्ति द्वारा.

प्र०– ज्ञान शक्ति द्वारा संचालित, त्रिगुणात्मक क्रिया शक्तिमें क्या-क्यागुणहैं?

उ०– १–आकर्षण शक्ति रजोगुणी हैं, यह आकर्षित मोहित तथा वशीभूत, कर, अखिल विश्व को चैतन्य के आश्रित उपजाती हैं; और ब्रह्मा, ब्रह्माणी, महामाया, माया, महालक्ष्मी, गायत्री आदि कहलाती है.

२–विकर्षण शक्ति तमोगुणी हैं, यह मूर्छित, उच्चाटित तथा संज्ञा रहित कर सम्पूर्ण संसार को चैतन्य के आश्रित संहारती हैं और रुद्र, रुद्राणी, यम, काल, मृत्यु, काली, महाकाली, सावित्री आदि नामों से पुकारी जाती हैं.

३–स्थंभन शक्ति सतोगुणी है, यह भी चैतन्य के आश्रित सबको जीवन, पुष्टि आधार, अमरत्व शक्ति, बल देने, ठहराने तथा पालने वाली है और सरस्वती, महासरस्वती, विष्णु, महाविष्णु आदि नामों से पुकारी जाती है.

प्र०– एक ही कर्षण शक्ति त्रिगुणात्मक क्यों कहाती है ?

उ०– गति के कारण.

प्र०– गति किसके आधीन है ?

प्र०– वृत्ति के.

प्र०– इसलिये हमें क्या उचित है ?

उ०– कि हम भी अपनी क्रिया शक्ति को आधीन रख उसका संचालन केवल ज्ञान शक्ति द्वारा करें.

उ०– एक ही वृत्ति अनेक नाम से क्यों कर पुकारी जाती है ?

उ०– देश, काल, गुण कर्मजनित संस्कारों के संयोग वियोग से.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जैसा एक ही चांवल स्थानादिक के कारण अनेक रूप हो भासता है, अथवा जैसा एक ही जल अनेक रंग के कांच द्वारा देखने से अनेक रंग का प्रतीत होता है.

दोहा

वृत्याधीन ही कर्म है, वृत्ति हृदयाधीन ।
हृदयात्मा को नाम है, वो चैतन स्वाधीन ॥१॥
क्रिया शक्ति जड़ रूप है, वृत्ति चेतन रूप ।
चेतन वश जड़ में गति, राजत नित्य अनूप ॥२॥
क्रिया शक्ति सह वृत्ति को, जा नर ने वश कीन ।
वही मुक्त गुरु जगत को, ताके सब आधीन ॥३॥
जासु क्रिया वश वृत्ति के, सो ज्ञानी प्राचीन ।
चिर सन्मुख चैतन्य के, अंतर वृत्ति लीन ॥४॥
जासु वृत्ति वश क्रिया के, महा अज्ञानी सोय ।
चैतन से उन्मुख रहे, सदा बहिर मुख होय ॥५॥
जो अंतरमुख व्है रहै, कर्षण व्है ता धीन ।
या हेतु द्रुत हूजिये, अंतर वृत्ति लीन ॥६॥
बहिरांतर मुख वृति सो, मिल अज्ञान सुज्ञान ।
प्रथम अविद्या रूप है, परचिर विद्या जान ॥७॥
यह फांदै जग फंद में, वह दै मुक्ति दान ।
ताते गहिये ज्ञान मग, तजि मार्ग अज्ञान ॥८॥

उपदेश २७

अन्तःकरण

प्र०—अन्तःकरण किसे कहते हैं ?

उ०—[१] जो अन्तर्मुख करता है [२] जिसके द्वारा वृत्ति अन्तर्मुख होती है [३] जहां करण का अन्त होता है [४] जो करण का अन्त करता है [५] जिसके द्वारा सब कार्यों का अन्त होता है [६] जो आवागमन का अन्त करता है [७] जिसके द्वारा अन्त तक कार्य किया जाता है, उसे अन्तःकरण कहते हैं.

प्र०– अन्तःकरण तो हृदय को कहते हैं ?

उ०– हृदय दो प्रकार का है, जड़ हृदय, और चैतन्य हृदय, जिनमें से जड़ हृदय तो मांस पिंड का है, जिसको हृदय कमल भी कहते हैं, किन्तु चैतन्य हृदय जो सर्वांग व्यापी है, जिसे हृदय सरोवर भी कहते हैं. केवल उसी चैतन्य हृदय को अन्तःकरण कहते हैं.

प्र०– हृदय शब्द किस तरह बना है ?

उ०– [हृ+द+य] के योग से.

प्र०– [हृ] का क्या अर्थ है ?

उ०– हरना, छीनना, लेना, तोड़ना, विभाग करना.

प्र०– [द] का क्या अर्थ है ?

उ०– देना, बचाना, शोधना, रक्षण.

प्र०– [य] का क्या अर्थ है ?

उ०– वायु, प्राण, जन्म, यश, कीर्ति, मेल, योग, यान, जो, गति, आवागमन.

प्र०– हृदय किसे कहते हैं ?

उ०– दोहा—**मृत्यु जन्म गति योग यश, मति रति सुख दुख ज्ञान ।**
हरै करै लै दै सबै, जो सो हृदय बखान ।।

प्र०– अन्त.करण क्या वस्तु है ?

उ०– दोहा—**शक्तिमान सर्वज्ञ वो, स्वयं प्रकाशक लोय ।**
इच्छा कर्षण शक्ति है, जा चैतन की दोय ।।१।।
वह आत्मा वह हृदय है, वह चैतन वह जीव ।
वही प्राण अन्तःकरण, सब कुछ सबकी नींव ।।२।।

प्र०– तो क्या ब्रह्म और जीव दोनों चैतन्य हैं ?

उ०– अवश्य.

प्र०– फिर दोनों में क्या फर्क है ?

उ०– दोहा—**वो सागर ये बिंदु है, वो सूरज ये रश्मि ।**
ता अंशी के अंश ने, गह्यो भाव है अस्मि ।।१।।
वो चिर अज स्वतंत्र है, सत, चित, आनंद पीव ।
ये कर्षण के वश भयो, जायमान सो जीव ।।२।।

पर वश भूल्यो ज्ञान बल, छिप्यो तेज तम मांहि ।
या ते आवागमन में, पड़्यो विचारत नांहि ।।३।।

प्र०— इस भ्रम को दूर करने के लिये प्रथम क्या करणीय है ?

उ०— अन्त:करण चतुष्टय का विचार.

प्र०— अन्त:करण चतुष्टय किसे कहते हैं ?

उ०— चित, मन, बुद्धि, अहंकार को.

प्र०— आत्मा तो एक है, फिर उसके भेद किस तरह हुए ?

उ०— **दोहा—वृत्ति के हैं नाम सब, ताको कोउ न नाम ।**
जे ते नाम दिखात है, वे ता रुचि के काम ।।

प्र०— चित्त किसे कहते हैं ?

उ०— जब वृत्ति स्फुरती है, अर्थात् किसी वस्तु का चिंतन करती है तब चित्त कहाती है.

प्र०— चित्त का क्या कर्त्तव्य है ?

उ०— केवल चिताना, सुझाना, स्मरण कराना.

प्र०— चित किससे आवृत्त है ?

उ०— तमोगुण से.

प्र०— चित का उदय क्यों होता है ?

उ०— किसी अर्थ के लिये.

प्र०— चित की क्या अवस्था है ?

उ०— सुषुप्ति.

प्र०— चित का क्या स्थान है ?

उ०— नाभि कमल.

प्र०— चित्त किसका अहंकारी है ?

उ०— कारण शरीर का.

प्र०— मन किसे कहते हैं ?

उ०— जब वृत्ति चिंतित वस्तु का मनन करती है, या मान लेती है, तब मन कहाती है.

प्र०– मन का क्या कर्त्तव्य है ?

उ०– वह सत्य असत्य दोनों को मान लेता है, अर्थात् इसका अविचार धर्म है.

प्र०– मन किस गुण से आवृत है ?

उ०– रजोगुण से.

प्र०– मन क्या चाहता है ?

उ०– काम.

प्र०– मन की क्या अवस्था है ?

उ०– स्वप्न.

प्र०– मन का क्या स्थान है ?

उ०– हृदय कमल.

प्र०– मन किसका अहंकारी है ?

उ०– सूक्ष्म शरीर का.

प्र०– बुद्धि किसे कहते हैं ?

उ०– जब वृत्ति मन मानित वस्तु के परिणाम का यथार्थ बोध कराती है तब बुद्धि कहाती है.

प्र०– बुद्धि का क्या धर्म है ?

उ०– सत्यासत्य का विचारपूर्वक निर्णय कर, केवल सत्य को ग्रहण करना.

प्र०– बुद्धि किस गुण से आवृत्त है ?

उ०– सत्व गुण से.

प्र०– बुद्धि का क्या हेतु है ?

उ०– मोक्ष.

प्र०– बुद्धि की क्या अवस्था है ?

उ०– जाग्रत.

प्र०– बुद्धि का क्या स्थान है ?

उ०– मस्तिष्क.

प्र०– मस्तिष्क कहां पर है ?

उ०– मस्तकांतरगत.

प्र०– मस्तिष्क क्या वस्तु है ?

उ०– शुद्ध वीर्य का सार.

प्र०– बुद्धि का जीवन क्या है ?

उ०– मस्तिष्क गत शुद्ध वीर्य सार.

प्र०– इस वीर्य में क्या गुण है ?

उ०– वह कांति, पुष्टि, बल, पराक्रम. आयु, आरोग्यता, बुद्धि, ज्ञान, विचार. संतति, जीवन, सुख, आदि का दाता परम हितकारी है.

प्र०– बुद्धि को किसका अभिमान अर्थात् अहंकार है ?

उ०– स्वयं प्रकाशक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, चैतन्य का.

प्र०– चैतन्य के ज्ञान से क्या लाभ है ?

उ०– मोक्ष प्राप्त होता है.

प्र०– मोक्ष किसे कहते हैं ?

उ०– कर्षण शक्ति को जीत, प्राणी आवागमन से रहित हो ब्रह्मानंद को अनुभवता हुआ तदाकार वृत्ति को प्राप्त होता है.

प्र०– अहंकार किसे कहते हैं ?

उ०– जो वृत्ति मानित या निश्चित कार्य को अविचार या सुविचार द्वारा करती है. वह अहंकार कहाती है.

प्र०– अहंकार क्या वस्तु है ?

उ०– जीव का धर्म है.

प्र०– अहंकार का क्या कर्त्तव्य है ?

उ०– अर्थ, धर्म, काम या मोक्ष के लिए कोई कार्य करना.

प्र०– अहंकार किस गुण से आवृत्त है ?

उ०– रज, तम, सत्व से.

प्र०– अहंकारी की कितनी अवस्था ?

उ०– यह सब अवस्था में उपस्थित रहता है.

प्र०– अहंकार का क्या अर्थ है ?

उ०– केवल मैं या मैं करने वाला.

प्र०— अहंकार किसका अभिमानी है ?

उ०— जीवात्मा का.

प्र०— अहंकार का स्थान क्या है ?

उ०— इसका मुख्य निवास स्वाधिष्ठान चक्र होने पर भी यह सर्वांग में व्यापा हुआ है.

प्र०— किस तरह ?

उ०— जैसे दीवट पर रखा हुआ दीपक संपूर्ण कुटी को प्रकाशता है.

प्र०— किस प्रकार जीवात्मा के सब कार्य सिद्ध होते हैं ?

उ०— प्रथम हृदय में वृत्ति स्फुरित हो, चित्तरूप से किसी कार्य का चिंतन कर उसीका मनरूप से मनन करती, फिर मन मानित का बुद्धि-रूप से निश्चय करके, नन्तर मानित या निश्चित कार्य को कर्षण शक्ति द्वारा अहंकार रूप से कर डालती है.

प्र०— कब वृत्ति मनमानित कार्य को अहंकार से करने लग जाती है ?

उ०— जब बुद्धि निर्बल, निर्जीव या पीड़ित हो तब.

प्र०— किसकी बुद्धि निर्बल या निर्जीव या पीड़ित होती है ?

उ०— जिसका मस्तिष्क शुष्क हो या तद्गत शुद्ध वीर्य पीड़ित द्रवित या चंचल हो, क्योंकि शुद्धवीर्य बुद्धि का जीवनदाता है.

प्र०— ऐसी अवस्था कब होती है ?

उ०— ब्रह्मचर्य के नष्ट होने तथा अकारण असमय वीर्य पतन से.

प्र०— बुद्धि नष्ट होने से क्या हानि ?

उ०— प्राणी मन के आधीन हो नाना प्रकार का कष्ट भोगता रहता है, क्योंकि बुद्धि रूप विद्या और मन रूप अविद्या है.

प्र०— किस प्रकार प्राणी बातें करता है ?

उ०— जिस तरह सरोवर की तली में स्फुरण होते ही, वह स्फुरण ऊपर को खींच, सूत्राकार हो, ऊपर पहुंच, बुदबुद बन प्रकटती है; इसी तरह हृदय रूप सरोवर की स्वाधिष्ठान रूपी तली में स्फुरण रूपी इच्छा होते ही, चिंतन रूप से ऊपर खींच, मनन रूप से सूत्राकार हो, विचार रूप से ऊपर पहुंच, अहंकार रूप, आपसे बुदबुद वत बातें प्रकटता है अर्थात् उच्चारता है.

दोहा

हृदय सरोवर है महा, तासु चार है घाट ।
दुस्तर तीनों घाट है, बुद्धि सीधी बाट ॥१॥
चित चिंतन मन मनन कर, बुद्धि बोधै दै ज्ञान ।
अहंकार सब कछु करै, गहै जिमी अभिमान ॥२॥
कर्षण के आधीन मन, कर्षण बुद्ध्याधीन ।
मन मूंडी धी राखिये, चैतन में लवलीन ॥३॥
धी प्रेरक चैतन्य है, मन प्रेरक अज्ञान ।
मन तज धी सो ध्याइये, होय तुरत कल्यान ॥४॥
मन न विचारत धर्म को, बुद्धी करै विचार ।
जाने मन की ना सुनी, ताको धी दै तार ॥५॥
मन दुर इच्छा जानिये, धी सद इच्छा जान ।
मन चैतन के विमुख है, धी सन्मुख चिर मान ॥६॥
धी सत शक्ति ज्ञान की, मन चित शक्ति मंद ।
चैतन चिर आनंद विभु, वसू सच्चिदानंद ॥७॥
जस बीरज तस होत धी, बुद्धि वीर्याधीन ।
सब विधि बीरज राखिये, शुद्ध शांत बर पीन ॥८॥
शुद्ध भाव सत शक्ति है, चित कर्षण ता केर ।
चैतन परमानंद है, सब कारण त्रय टेर ॥९॥
तीनों से ये जग भया, तीनों मांहि पड़ाव ।
मारे तारे तीन ये, चैतन कर्षण भाव ॥१०॥
तीनों को है जोर सब, तीनों को ना छोर ।
तीनों को है ठौर सब, तीन छोड़ ना और ॥११॥
कर्षण भावाधीन है, भाव चैतना धीन ।
स्वयं सच्चिदानंद वह, सर्वशक्ति ता धीन ॥१२॥
कर्षण को जय कीजिये, चैतन रुख धरि भाव ।
सब कर्मन को नाशि अस, आवागमन भगाव ॥१३॥

तदाकार वृती करी, चैतन को धरि ध्यान ।
ब्रह्मानंदहि अनुभवै, हो चिर मुक्त सुजान ।।१४।।
विचारादि संयम किये, कर्षण वश हो जाय ।
तब मन कर न विटंबना, जस धी चह तस ध्याय ।।१५।।
ब्रह्मचर्य बिन वीर्यना, वीर्य बिना धी नाहिं ।
बुद्धि बिना न विचार व्है, ता बिन हित न कदाहिं ।।१६।।

उपदेश २८

स्वधर्म अर्थात् स्वमूल्य

प्र०– स्वधर्म का अर्थ स्वमूल्य क्यों है ?

उ०– क्योंकि धर्म द्वारा ही हर पदार्थ का मूल्य निर्धारित किया जाता है.

प्र०– किस धर्म द्वारा ?

उ०– उसी अपने स्वाभाविक सनातन धर्म द्वारा.

प्र०– किस तरह ?

उ०– पारस्परिक तुलना वत.

प्र०– अच्छा ! कोई उदाहरण दीजिये ?

उ०– अर्थात् जिस ज्वार की अपेक्षा कृत जिस गेहूं के गुण दूने हों, तो उस ज्वार से उस गेहूं का भाव दूना होगा.

प्र०– गुणों की तुलना किसके द्वारा होती है ?

उ०– वैज्ञानिक परीक्षा द्वारा.

प्र०– अच्छा ! उस परीक्षा द्वारा भाव किस तरह ठहराया जाता है ?

उ०– मानों ! जिस ज्वार से जिस गेहूं में सत तिगुना, चिकनाई चौगुनी मिठास आधी तथा निमक आधा है, तो उस ज्वार से उस गेहूं की कीमत दूनी होगी.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि उस ज्वार के गुणों के अंकों से उस गेहूं के गुणों के अंकों का योग दूना होता है ?

प्र०— रत्नों का मूल्य किस विचार से निर्धारित किया जाता है ?

उ०— रंग, आभा, तौल आदि गुणों के विचार से.

प्र०— मनुष्य का मूल्य किसके द्वारा होता है ?

उ०— उसके सत्य धर्म अर्थात् सद्गुणों द्वारा.

प्र०— किस तरह ?

उ०— जिस तरह जिस पदार्थ में जितने अधिक गुण होते हैं, उसकी उतनी ही अधिक दर होती है; उसी तरह जिस मनुष्य में जितने अधिक सद्गुण होंगे उसकी उतनी ही अधिक कदर होगी.

प्र०— दर के हिसाब से मनुष्य के कितने भेद हैं ?

उ०— दिव्यदर, मध्यमदर, निकृष्टदर और बेकदर.

प्र०— दिव्यदर किसकी होती है ?

उ०— जिसमें स्वभाव से ही सद्गुण निवास करते हैं, तथा जो भारी संकट पड़ने पर भी अपने स्वाभाविक सद्गुण कदापि नहीं त्यागता जिस तरह हीरा तथा स्वर्ण.

प्र०— मध्यमदर किसकी होती है ?

उ०— जिसमें स्वाभाविक सद्गुण तो होते हैं; किन्तु उनकी चिर स्थिरता का कोई निश्चय नहीं जैसे धान्य.

प्र०— किसकी निकृष्ट दर होती है ?

उ०— जिसके अच्छे स्वभाव को दुर्गुण रूपी राक्षस चरने लग गया हो. जिसके द्वारा औरों को हानि पहुंचाने का संदेह हो; उसकी निकृष्ट दर होती है जैसे घुन लगे नाज की.

प्र०— किसकी बे क़दरी होती है ?

उ०— जिसका स्वभाव दुर्गुणों का भंडार हो गया हो, जिसके द्वारा औरों को सिवाय हानि के कदापि लाभ न पहुंच सकता हो; उसकी सर्वत्र सब बे क़दरी करते हैं. जिस तरह कदान्न की.

प्र०— स्वाभाविक सद्गुणों द्वारा मनुष्य को अधिक लाभ कब पहुंचता है ?

उ०— जब वह देश, काल, गुण, कर्म के अनुसार पुरुषार्थ करता हुआ अपने सद्गुणों द्वारा जग का हित करे तभी उसकी अधिक कदर होती है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह व्यापारी देश, काल, गुण, कर्म के अनुसार परिश्रम तथा व्यय का परता देख, व्यापार द्वारा अपार लाभ उठाता है.

प्र०– सद्गुण तथा दुर्गुण किन्हें कहते हैं ?

उ०– जो गुण सृष्टि नियम के सानुकूल हों उन्हें सद्गुण तथा प्रतिकूल हों उन्हें दुर्गुण कहते हैं.

प्र०– अपना सनातन धर्म त्यागना कैसा है ?

उ०– मानों ! अपनी दर अपने हाथों खोना है.

प्र०– दर जाने से क्या होता है ?

उ०– संसार से जिसकी दर गयी, उसका विश्वास जाता रहता है.

प्र०– बिन विश्वास के क्या होता है ?

उ०– उसे कोई अपने जूतों तक के पास बिठाना भी पसंद नहीं करता.

दोहा

धर्म सनातन जिन तजा, तिन त्यागा निज मोल ।
मोल बिना ना तौल जग, तौल बिना ना डौल ।। १ ।।
कदर घटै दरके घटे, दर दर सो भर माहिं ।
दर बिन नर खर सों बुरो, खर दर पर ता नाहिं ।। २ ।।
बढ़ै कदर दरके बढ़े, घटै कदर दर पात ।
याते दर न घटाइये, दर बिन आदर जात ।। ३ ।।
पानी आभा आबरू, कीमत इज्जत मोल ।
सर्वस अपना धर्म है, भाव कदर दर तौल ।। ४ ।।
बिन पानी के मनुज की, कीमत कौड़ी तीन ।
जस मोती की होत जग, बिन पानी दर छीन ।। ५ ।।
जस आभा तस आबरू, तस हीरे को दाम ।
जस पानी तस मोल है, बिन भा मोती बाम ।। ६ ।।
धर्म कसौटी मनुज की, कस आपद ले तौल ।
तब ताको गुण खुलत है, जस सोनो तस मोल ।। ७ ।।

धर्म बिना दर जात है, दर बिन ना विश्वास ।
ता बिन ता ना ठौर दे, को जूते के पास ॥ ८ ॥
धर्म मूल्य है आपनो, मूल्य ही धर्म रखात ।
धर्महि को जो रखत है, तिनको धर्म रखात ॥ ९ ॥
कीमत धर्म स्व कीमती, देत पदारथ चार ।
पर परकी मत मत गहो, जो सुख चहो अपार ॥१०॥

उपदेश २९

स्वधर्म अर्थात् निज स्वभाव

प्र०– स्वभाव कितने प्रकार का है ?

उ०– सत, रज, तम के कारण स्वभाव तीन प्रकार का है. किन्तु उसका प्रत्येक भेद सुइच्छा के योग से, सुस्वभाव और कुइच्छा के योग से दु:स्वभाव कहलाता है.

प्र०– वास्तव में सुस्वभाव तथा दु:स्वभाव किसे कहते हैं ?

उ०– जो स्वभाव सृष्टि नियम के सानुकूल हो उसे सुस्वभाव और जो उसके प्रतिकूल हो, उसे दुस्स्वभाव कहते हैं.

प्र०– इन स्वभावों की परीक्षा किसके द्वारा होती है ?

उ०– इच्छा तथा इंद्रियों के वर्तन द्वारा.

प्र०– जिह्वा द्वारा स्वभाव की परीक्षा ?

उ०– जिह्वा द्वारा आत्मस्तुति, परनिन्दा, वक्र, असत्य तथा कटु भाषण करना दुस्स्वभाव है और विनय, परस्तुति, सरल, सत्य तथा मृदु भाषण करना सुस्वभाव है.

प्र०– कर्ण द्वारा स्वभाव की परीक्षा ?

उ०– कर्ण द्वारा असत्य, परछिद्र तथा परनिन्दा श्रवण करना दुस्स्वभाव है और सत्य परगुण, परकीर्ति सुनना सुस्वभाव है.

प्र०– नेत्र द्वारा स्वभाव की परीक्षा ?

उ०– कुदृष्टि, कुकर्म तथा पर अवगुण अवलोकन करना दुस्स्वभाव है, और सुदृष्टि, सुकर्म तथा परगुण निरक्षण करना सुस्वभाव है.

प्र०– शरीर द्वारा स्वभाव की परीक्षा ?

उ०– शरीर द्वारा ईर्षा, द्वेष, परपीड़न, अपकार, अहंकार, कुकर्म, लोलुपता तथा दुराचरणादि करना दुस्स्वभाव है, और अहिंसा उपकार, नम्रता, सुकर्म तथा सद्वर्तन करना सुस्वभाव है.

प्र०– इच्छा द्वारा स्वभाव की परीक्षा ?

उ०– शील, संतोष, विचार, धैर्य, दया, क्षमा, सहनशक्ति तथा सुइच्छा रखना सुस्वभाव है, और इसके विरुद्ध वर्तना दुस्स्वभाव है.

प्र०– द्विस्वभाव किसे कहते हैं ?

उ०– जो स्वभाव क्षण में अच्छा तथा क्षण में बुरा हो जाय उसे द्विस्वभाव कहते हैं.

प्र०– द्विस्वभावी किसे कहते हैं ?

उ०– जिसका स्वभाव क्षणभंगुर हो, और जो स्वत: को बड़ा तथा अन्य को तुच्छ समझे, ऐसे द्वैतभाव पूर्ण पुरुष को द्विस्वभावी कहते हैं.

प्र०– जो अपनी स्तुति सुन प्रसन्न तथा निन्दा सुन अप्रसन्न होता है वह किस स्वभाव का मनुष्य है ?

उ०– अहंकार प्रकृति का.

प्र०– जो स्त्रियों की तथा नपुंसकों की कटुवाणी सुन प्रसन्न होता या सह सकता है. पर सज्जनों का कैसा ही सदुपदेश नहीं सुन सकता वह कैसा पुरुष है ?

उ०– कामी.

प्र०– जो सज्जन औरों का दुर्गुण देखता है, उसकी क्या दशा होती है ?

उ०– या तो वह स्वयं दुर्गुणों से व्याप्त हो, दुर्जन बन जाता है, या दुष्टों को अपना शत्रु बना महा संकट में फंस जाता है.

प्र०– संसार में चतुर कौन है ?

उ०– एकमात्र शीलवान.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि वह किसी का शत्रु, मित्र न बन, हर प्रकृति वालों से निर्लिप्त रहकर भी सबके साथ नम्रतापूर्वक वर्तता है.

प्र०– इतने पर भी कोई उसका शत्रु मित्र बन, निन्दा स्तुति तथा हानि लाभ करने लग जाय तो ?

उ०– तो भी वह अपनी शीलता नहीं त्यागता.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि वह जानता है कि अखिल विश्व में सत, रज, तम, व्यापा हुआ है, इसी कारण सबका शुद्ध सतोगुणी होना असंभव समझ, वह अपने शील को कदापि नहीं त्यागता.

प्र०– शीलवान का हृदय क्या है ?

उ०– दया, क्षमा, उपकार, धैर्य, संतोष, विचार आदि सद्गुणों का घर है.

दोहा

जिह्वा इन्द्री वश्य कर, इच्छा कर आधीन ।
तब निश्चय तू पायगा, शील स्वभावाचीन ।।१।।
जहं कर्ण तंह नेत्र ये, जहां नेत्र मन तत्र ।
जहं मन तहं तन जात ये, जहं इच्छा सर्वत्र ।।२।।
औरों की निन्दा सदा, महा दुःख को बीज ।
पर पीड़ा निज नाश की, अहै भयंकर चीज ।।३।।
दुस्स्वभाव तजि दीजिये, गहिये शील स्वभाव ।
सत रज तम मय जग लखो, द्वेष न उर में लाव ।।४।।
शील बिना गुण ना लहै, शील बिना ना ज्ञान ।
शील बिना सुख ध्यान ना, ना स्वप्न हु कल्यान ।।५।।

उपदेश ३०

स्वधर्म विश्वास

प्र०– संसार में विश्वास किसका किया जाता है ?

उ०– सत्य का.

प्र०– तो फिर स्वधर्म का विश्वास क्यों करें ?

उ०– क्योंकि हर पदार्थ की स्वधर्म तत्परता ही स्वयं सत्यता की द्योतक है.

प्र०– विश्वास के पर्यायी शब्द क्या हैं ?

उ०– निश्चय, भरोसा, यकीन.

प्र०– विश्वास का अर्थ क्या है ?

उ०– (वि+श्वास) अर्थात् जो विशेष करके सबके अंतर्गत श्वास के समान व्याप्त हो स्थित है.

प्र०– वह क्या पदार्थ है, जो प्रत्येक के अन्तर्गत व्याप्त हो स्थित हैं ?

उ०– स्वधर्म.

प्र०– (विश्वास ही स्वधर्म है) का तात्पर्य क्या है ?

उ०– अर्थात् जो चराचर के अन्तर्गत व्याप्त हो स्थित है, वही स्वाभाविक सनातन धर्म है.

प्र०– (स्वधर्म पर दृढ़ विश्वास करना अपना निज धर्म है) का तात्पर्य क्या है ?

उ०– अर्थात् स्वाभाविक सनातन धर्म पर दृढ़ विश्वास रखना ही अपना मुख्य कर्त्तव्य है.

प्र०– स्वधर्म विश्वास मूलक क्यों है ?

उ०– क्योंकि स्वाभाविक सनातन धर्म सबके अन्तर्गत व्याप्त हो, सदा स्थित रहता है, यही उसकी सत्यता विश्वास का मूल कारण है, इसमें प्रमाण की आवश्यकता नहीं.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि अग्नि में दाहकपन, निम्ब में कटुता होती ही है, यह स्वयं सिद्ध है; इसी तरह प्रत्येक पदार्थ का सनातन धर्म स्वभाव ही से सिद्ध है.

प्र०– किसी ग्रंथ पर विश्वास लाना, कब धर्म समझा जा सकता है ?

उ०– जब कि उसके द्वारा निष्केवल ईश्वरीय सृष्टि नियमानुकूल स्वाभाविक सनातन धर्म की यथार्थ शिक्षा प्राप्त हो सकती हो.

प्र०– कब किसी मनुष्य पर विश्वास लाना, धर्म समझा जा सकता है ?

उ०– जब कि वह सचमुच में छल, छिद्ररहित, तन, मन, धन, वचन क्रम से चिरकाल ईश्वरीय सृष्टि नियमानुकूल वर्त्तता हो; जिसके

उपदेश मात्र से स्वाभाविक सनातन धर्म का दिव्य ज्ञान हो सकता हो, केवल उस पर विश्वास लाना भी स्वधर्म अर्थात् निज कर्त्तव्य है.

प्र०— यम, नियम, संयम, स्वभाव, इच्छा, प्रेम, योग, कर्त्तव्य, लाभ, उन्नति, संगति, सेवा, आज्ञा, शिक्षा, विचार, ज्ञान, व्यवस्था; दान, यज्ञ, जप, तप, वृत, उपदेश, उपासना, ग्रहण, त्याग, पढ़ना, पढ़ाना आदि कर्म कब धर्मरूप समझे जायेंगे ?

उ०— जब कि उन कर्मों का ईश्वरीय सृष्टि नियमानुकूल यथार्थ होने का परिपूर्ण विश्वास हो.

प्र०— तो क्या विश्वास ही फलदायक है ?

उ०— अवश्य.

प्र०— तो क्या जी चाहे उसका विश्वास करना हितप्रद होगा ?

उ०— कदापि नहीं.

प्र०— तो फिर किसके विश्वास से सुफलता होगी ?

उ०— जिसके वास्तविक गुण कर्म का यथार्थ विश्ववास हो चुका हो कि वे सब ईश्वरीय सृष्टि नियमानुकूल ही हैं; उनके स्वीकारने तथा करने से अवश्य सुफलता प्राप्त होगी; अन्यथा नहीं.

प्र०— स्वधर्मरत न होने से क्या होता है ?

उ०— स्वधर्म परायणता के ह्रास से स्वधर्म का विश्वास निज हृदय से दूर भागता है, विश्वास के दूर होते ही हृदय धर्मशून्य हो स्वधर्म का नाश करता है, स्वधर्म के नसते ही जग उसे पतियाता नहीं, पत के नसते ही कोई उसे अपनाता नहीं, बिन अपनाये उसका सर्वनाश होता है.

दोहा

सकल जगत में व्याप्त हो, सत्य धर्म रह राज ।
सत्य बिना विश्वास ना, ता बिन व्है ना काज ॥१॥
धर्म परायणता सदा, सत्य कसौटी जान ।
सत्य बिना विश्वास ना, ता बिन ना सन्मान ॥२॥
सबमें धस व्यापा रहै, सत निश्चय को मूल ।
रहिये ता चिर धर्मरत, स्वप्न हु ता ना भूल ॥३॥

क्योंकि

धर्म परायणता बिना, जाय धर्म विश्वास ।
धर्म केर विश्वास बिन, होत धर्म को नाश ।।१।।
धर्म नसे पत जाय निज, ना को ता पतियाय ।
पत बिन ना अपनात को, बिन अपनाये ढाय ।।२।।

उपदेश ३१

धर्म अर्थात् प्रकृति

प्र०– प्रकृति किसे कहते हैं ?

उ०– उस त्रिगुणात्मक शक्ति को कहते हैं, जो चैतन्य के आश्रित अनन्त सृष्टियों की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय किया करती है.

प्र०– प्रकृति किसका अनुकरण करती है ?

उ०– सनातन गुण कर्म का.

प्र०– प्रकृति का अर्थ क्या है ?

उ०– पहिले किये हुए के अनुसार करने वाली या प्रभु इच्छानुसार करने वाली.

प्र०– प्रकृति किसके तुल्य वर्तती है ?

उ०– देश, काल, गुण, कर्म के संस्कारों के तुल्य.

प्र०– प्रकृति त्रिगुणात्मक क्यों है ?

उ०– वह अपनी आकर्षण शक्ति के कारण रजोगुणी, निराकरण शक्ति के कारण तमोगुणी तथा स्थंभन शक्तिके कारण सतोगुणी हो गई.

प्र०– ये तीनों गुण विशेष करके किन पदार्थों में हैं ?

उ०– वायु में रजोगुण, सूर्याग्नि में तमोगुण और चंद्रजल में सतोगुण विशेष है.

प्र०– इनकी प्रकृति कैसी है ?

उ०– वायुकी वातज, सूर्याग्नि की पित्तज,तथा जलचंद्र की कफज प्रकृति है.

प्र०– इनके किन गुणों से वात, पित्त, तथा कफकी उत्पत्ति हुई ?

उ०– वायुकी स्फुरणशील तथा शुष्क प्रकृति से वात, सूर्याग्नि की उष्ण

तथा तीक्ष्ण प्रकृति से पित्त और जल चन्द्र की शीतल तथा जड़ प्रकृति से कफ की उत्पत्ति हुई.

प्र०– केवल मन द्वारा कब इनकी उत्पत्ति होती है ?

उ०– प्रबल काम की मनोव्यथा द्वारा वात, क्रोध की मनोव्यथा द्वारा पित्त तथा आलस्य की मनोव्यथा द्वारा कफ की उत्पत्ति होती है.

प्र०– किस देश में कौन सा दोष कुपित होता है ?

उ०– रेत और पत्थर वाले देश में वात, कंटक बन वाले देश में पित्त, तथा जल वृक्षों से संयुक्त देश में कफ कुपित होता है.

प्र०– किस काल में कौन सा दोष कुपित होता है ?

उ०– वर्षाकाल में वात, शरद तथा ग्रीष्म में पित्त, और वसंत में कफ कुपित होता है. उसी तरह दिन के तीसरे प्रहर से एक प्रहर रात्रि तक वात, अर्द्ध रात्रि तथा मध्याह्न में पित और ब्रह्म मुहूर्त से प्रात:काल पर्यन्त कफ का वेग होता है, इसी तरह बाल अवस्था में कफ, तरुणाई में पित्त, तथा वृद्धापकाल में वात कुपित होता है.

प्र०– किस अग्नि से कौन सा दोष कुपित होता है ?

उ०– विषमाग्नि से वात, तीव्राग्नि से पित्त, तथा मंदाग्नि से कफ कुपित होता है.

प्र०– किस वायु से कौन सा दोष कुपित होता ?

उ०– नैऋत्य तथा वायव्य के वायु से वात, दक्षिण पश्चिम तथा आग्नेय के वायु से पित्त और उत्तर ईशान्य तथा पूर्व के वायु से कफ कुपित होता है.

प्र०– किस प्रकृति वाले का कैसा शरीर होता है ?

उ०– वात वाले का रुखा, खरदरा, फटा तथा बादी, पित्त वाले का उष्ण, कृश्य, तथा स्वेदयुक्त और कफवाले का शीतल, कोमल, मोटा तथा चिकना शरीर होता है.

प्र०– किस प्रकृति वाले के कैसे नेत्र होते हैं ?

उ०– वात वाले के रुखे तथा नीले, पित्त वाले के लाल, पीले या कुछ हरे, और कफ वाले के गीले, श्वेत तथा चिकने नेत्र होते हैं.

प्र०– किस प्रकृति वाले की कैसी जिह्वा होती है ?

उ०– वात वाले की खुरदरी, रूखी या किंचित हरी, पित्त वाले की लाल, पीली या कुछ नीली और कफ वाले की चिकनी, गीली तथा स्वेत होती है.

प्र०– किस प्रकृति वाले का मुख का स्वाद कैसा होता है ?

उ०– वात वाले का निरस या अरूचिकर, पित्त वाले का कड़ुवा, खट्टा और कफ वाले का मीठा, फीका या खारा होता है.

प्र०– किस प्रकृति वाले का मल कैसा होता है ?

उ०– वात वाले का रूखा या नीला, पित्त वाले का पीला या पतला और कफ वाले का ललाई लिये हुये बंधा हुआ या चिकना होता है.

प्र०– किस प्रकृति वाले का मूत्र कैसा होता है ?

उ०– वात वाले का पतला, रूखा, अधिक मात्रा तथा नीला; पित्तवाले का लाल, पीला तथा थोड़ी मात्रा और कफवाले का गाढ़ा स्वेत तथा चिकना होता है.

प्र०– साध्य असाध्य की क्या परीक्षा है ?

उ०– जिसके मूत्र में तेल की बूंद फैल जाय, वह साध्य; ज्योंकि त्यों ठहर जाय वह याप्य, सिकुड़ जाय या छिन्न-भिन्न हो जाय वह कष्ट साध्य, और डूब जाय या चक्रवत फिरने लगे वह असाध्य जानो.

प्र०– किस प्रकृति वाले की कैसी नाड़ी चलती है ?

उ०– वात वाले की सर्पवत वक्र, पित वाले की द्रुत मेंडकवत और कफ वाले की हंसवत चलती है.

प्र०– वात के लक्षण क्या है ?

उ०– शून्यता, रुक्षता, विवर्णता, पीड़ा, शूलकब्जी, रूद्धता, वधिरता, निद्राभंग, भ्रम, उन्माद, नाद, विस्मरण, आम, विषमाग्नि आदि.

प्र०– पित्त के लक्षण क्या हैं ?

उ०– जलन, दाह, उष्णता, मूर्च्छा, रक्त, अम्लता, कटुता, तड़फ, प्रस्वेद, साधारण निद्रा, तीव्राग्नि आदि.

प्र०– कफ के लक्षण क्या हैं ?

उ०– शीतलता, ठंड, आलस्य, सुस्ती, बहुनिद्रा, जड़ता, खकार, खांसी, कोमलता, मधुरता, फीकापन, खारापन, सूजन, पाक आदि.

प्र०– पित्त कब अम्ल तथा कटु हो जाता है ?

उ०– अर्द्धपक्व हुआ अम्ल तथा दग्ध हुआ कटु हो जाता है.

प्र०– कफ कब मधुर तथा खारा हो जाता है ?

उ०– अर्द्धपक्व हुआ मधुर तथा दग्ध हुआ खारा हो जाता है.

प्र०– वात कब उष्ण तथा शीत हो जाता है ?

उ०– पित्त से मिल उष्ण और कफ से मिल शीत हो जाता है.

प्र०– तीनों का उपचार किनके समान करे ?

उ०– वात का मित्र के समान, पित्त का जमाई के समान और कफ का शत्रु के समान.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह मित्र के साथ स्नेहयुत मीठा, चर्परा वर्ताव किया जाता है, उसी तरह वात रोगी को स्नेह अर्थात् तैलयुत मिठी चर्परी औषधि देवें और जिस तरह जमाई का घृतयुत मधुर सुगन्धित व शीतल पदार्थों तथा मधुर बातों से सत्कार किया जाता है, उसी तरह रक्त या पित्त रोगी का उपचार करे और राजा अपने शत्रु के साथ तीक्ष्ण, कटु, कठोर तथा छलबलयुत वर्ताव करता है, उसी तरह मधुसंयुत या केवल तीक्ष्ण कटु तथा क्षार आदि द्वारा कफ के रोगी का उपचार करे.

प्र०– उपचार में किस बात पर लक्ष रक्खें ?

उ०– वात, पित्त तथा कफ को न घटावे और न बढ़ावे, किन्तु समान करे, जिस तरह जौहरी रत्नों की तौल का पलड़ा सदा समतुल्य रखता है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि केवल इनके घटने या बढ़नेसेही नानाप्रकारके रोग उपजतेहैं.

प्र०– इनके शुद्ध तथा समान होने से क्या लाभ ?

उ०– कफ, अंग प्रत्यंग में कोमलता रखता व अपने रस से अन्नको गीलाकर

कर रस बनाता; पित्त अपने तेज से नेत्र को ज्योतिष्मान करता व उस रस को पचा रक्त आदि बनाता; और वात अपनी गति द्वारा उस रस रक्त आदि को भिन्न-भिन्न मार्ग होकर संपूर्ण शरीर को सींचता व सब प्रकार की गति देता है.

प्र०— सन्निपात की परीक्षा क्या है ?

उ०— जिसमें, वात, पित्त तथा कफ के मिश्रित लक्षण हों या तीनों से न्यारे किसी और ही प्रकार के हों.

प्र०— द्वि दोष किसे कहते हैं ?

उ०— जिसमें वात, पित्त या वात, कफ या कफ, पित्तके मिश्रित लक्षण हों.

प्र०— किस प्रकृति वाले को कैसा स्वप्न पड़ता है ?

उ०— वात वाले को उड़ने का, पित्त वाले को अग्नि, सूर्य तथा प्रकाश का और कफ वाले को जलस्नान तथा तैरने आदि का स्वप्न पड़ता है.

दोहा

प्रथम भये जो कार फल, करती ता अनुरूप ।
उतपति थिति लय अखिलकी, सो प्रभु कृती अनूप ।। १ ।।
वह माटि को पवि करै, पवि को माटि बनाय ।
भाप करै वह तोयकी, बादल कर वर्षाय ।। २ ।।
माटि पाथर द्रव करै, सबकी वाष्प बनाय ।
वाष्प पिंड़को रवि करै, रविसों जगत रचाय ।। ३ ।।
चैतनसों स्फुरण भयो, स्फुरणसों गति तीन ।
वह गति कर्षण रूप है, उष्ण शीत वह पीन ।। ४ ।।
कर्षण रूख गति शीत है, उष्ण जु ता विपरीत ।
थांबै वाहै पिंड़ सब, रवि चन्दानिल नीत ।। ५ ।।
चंद्र दोष सों कफ भयो, पवन दोष सों वात ।
सूर्य दोष सों पित्त व्है, रहै जु सबके गात ।। ६ ।।
इन्हैं बढ़ावै ना कदा, ना दै कदा घटाय ।
सब ही राखै सम सदा, तदा लहै सुखकाय ।। ७ ।।

पित्त बिना ना जलन व्है, ना पिड़ा बिन वात ।
कफ बिन सोजा कास ना, लख बाढ़यो रूज गात ॥ ८ ॥
सन्निपात मरि कुपच औ, विषम प्लेग के मांहि ।
औषध जीवन हेत कर, पर कर भोजन नांहि ॥ ९ ॥
तनबिन धर्मन अर्थ व्है, मोक्ष न भक्ती काम ।
याते तन को राखिये, सब साधन को ठाम ॥१०॥
जस इच्छा तस करनि व्है, जस करनी फल तेम ।
प्रकृति की चिर टेंव ये, यही सनातन नेम ॥११॥
जीव मात्र सब हित चहै, अनहित चहै न कोय ।
प्रकृति सनातन लखि करो, जा फल हितकर सोय ॥१२॥
सृष्टि नियम कृति सनातन, वहि प्रकृति प्रभु केर ।
वही भाव कर्तव्य चिर, वही धर्म ता टेर ॥१३॥

उपदेश ३२

धर्म अर्थात् धर्त्ता

प्र० अखिल चराचर विश्व को कौन धारे हुए है ?

उ०– चैतन्य प्रभु.

प्र०– विश्व को तो सत्ता अर्थात् आकर्षण शक्ति धारे हुए है ?

उ०– किन्तु वही सत्ता चैतन्य का एक धर्म है.

प्र०– सत्ता तो जड़ पदार्थों में भी होती है, जैसे चुम्बक में ?

उ०– किन्तु चुम्बक को जड़त्व के कारण इतना ज्ञान नहीं, कि वह स्वयं अपनी सत्ता से सदा ऐसे विचारणीय अनोखे काम करता रहे, जैसे हम अपनी सत्ता से काम ले सकते हैं, या जिस तरह चैतन्य प्रभु अपनी सत्तासे अनन्त ब्रह्मांडों को धारे हुए अलौकिक कार्यकर रहा है.

प्र०– अच्छा ! तो इस शरीर को कौन धारे हुए है ?

उ०– प्राण.

प्र०— क्या प्रमाण ?

उ०— देखो ? जब प्राण प्रयाण कर जाता है, तब इस शरीर की क्या दशा होती है ?

प्र०— अच्छा इस प्राण को कौन धारे हुए हैं ?

उ०— प्रकृति.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि पूर्वार्जित कर्त्तव्य ही से प्राण को विवश हो यह शरीर धारण करना पड़ता है.

प्र०— क्या प्रमाण है ?

उ०— देखो ! जगत के समग्र कर्मठ अपने-अपने कर्म का बदला पाने ही के लिये कर्त्तव्यपरायण होते और पाते हैं; यदि यह निश्चय न होता, तो कोई भी उद्योग न करता.

प्र०— पूर्वार्जित संस्कार किस रूप में विराजते हैं ?

उ०— स्वभाविक प्रकृति के रूप में परिणित हो विराजते हैं.

प्र०— उस प्रकृति को कौन धारे हुए हैं ?

उ०— चैतन्य आत्मा.

प्र०— किस तरह ?

उ०— जिस तरह फूलों में गंध.

दोहा

देह धरत निज प्राण है, प्राण धरत निज भाव ।
भाव धरत निज आतमा, आतम है सब ठाव ।।१।।
सबको धारे प्रकृति ये, प्रकृति चैतन माहिं ।
वा प्रकृति के धरत ही, आवागमन नसांहि ।।२।।

उपदेश 33

संस्कार

प्र०— संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०— केवल संसर्ग या सहवास आदि द्वारा किसी पदार्थ में किसी अन्य पदार्थ के गुण बस जाने को संस्कार कहते हैं.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह फूलों के संसर्ग से तिल के तैल में सुगंध या छाया के संसर्ग से प्लेट पर अक्स अथवा गायक के गायन के संसर्ग से फोनोग्राफ में गान बस जाता है.

प्र०– हमारी आत्मा में संस्कार क्यों कर आ बसे ?

उ०– भावना, करनी तथा संसर्ग द्वारा.

प्र०– भले बुरे संस्कार आत्मा में किस तरह बसे हैं ?

उ०– जिस तरह पदार्थों में सुगंध दुर्गन्ध बस जाता है.

प्र०– संस्कार कितने हैं ?

उ०– तीन हैं; प्रारब्ध, संचित और क्रियमान.

प्र०– प्रारब्ध किसे कहते हैं ?

उ०– पूर्व जन्मार्जित कर्मों के संस्कार को कहते हैं, जिसका फल इस जन्म में भोगने को है.

प्र०– संचित किसे कहते हैं ?

उ०– इस जन्म के या पूर्व जन्म के अर्जित कर्मों के संस्कार को, जिसका फल कभी भोगना होगा.

प्र०– क्रियमाण किसे कहते हैं ?

उ०– जो कर्म हम वर्तमान काल में कर रहे हैं; उनके संस्कार को.

प्र०– किसी पदार्थ का रूपांतर, अवनति व उन्नति किसके द्वारा होती है.

उ०– संस्कारों के द्वारा.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह गधे के संसर्ग के संस्कार द्वारा घोड़ी से खच्चर जन्मता है, यह इनका रूपांतर घोड़े से नीच, किन्तु गधे से उच्च कोटि का गिना जाता है, अथवा जिस तरह मिट्टी से पत्थर, पत्थर से रेत तथा रेत से कांच बन जाता है.

प्र०– संस्कार किस तरह जन्म जन्मान्तर तक पहुंचते हैं ?

उ०– जिस तरह मीठी तूंबी की जड़ में नीम की कील मार देने से उसके फल कड़वे हो जाते हैं और फिर उसके बीज वंश परम्परा तक

कड़वे ही फल देते हैं क्योंकि नीम के संसर्ग से कटु संस्कार उसमें बस जाता है. इसी तरह हममें बसा हुआ भलाई बुराई का संस्कार जन्म जन्मांतर तक पिंड नहीं छोड़ता.

प्र०– किन संस्कारों के अनुसार फल होता है ?

उ०– हर एक संस्कार क्रम से समयानुसार अपना-अपना फल दर्शाता है, किन्तु जिस कर्म का संस्कार अति बलिष्ट होता है, वह अन्य संस्कारों के फल को दबा, अपना ही फल अधिक दर्शाता है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह हलवे में नमक गिर जाने से शक्कर की अपेक्षा नमक का संस्कार ही प्रबल रहेगा, अथवा जिस तरह जन्म का सदाचारी वृद्धापकाल में यदि दुराचारी हो जाय; तो उसके सदाचार के संस्कार दब जावेंगे.

दोहा

संस्कार बिन होत ना, जग को कोऊ काज ।
याही सों को दुख लहै, को पावै सुखसाज ।।१।।
इच्छा करनी संगही, संस्कार उपजाय ।
जिनसों होय पसार सब, जन्म मरण सुख हाय ।।२।।
संस्कार जैसो उदय, वैसो ही फल देत ।
भलो बुरो ग्रह ज्यों उदय, भलो बुरो त्यों हेत ।।३।।

उपदेश ३५

भाग्य अर्थात् करनी

प्र०– इस संसार में कोई सुखी तथा कोई दुखी क्यों होते हैं ?

उ०– अपनी-अपनी करनी के फलानुरूप.

प्र०– मैं समझता हूं कि जैसा भाग्य में लिखा होता है, केवल वैसा ही फल होता है ?

शि०– भाग्य में लिखता है कौन ?

उ०– ईश्वर.

प्र०– तो फिर परतंत्र जीव करनी क्योंकर कर सकता है ?

उ०– क्योंकि उसे इच्छा और करनी की स्वतन्त्रता प्राप्त है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– क्योंकि सब जीव इच्छानुसार करनी करते हुए तथा तद्वत फल भोगते हुए देखे जाते हैं.

प्र०– यदि इतनी स्वतन्त्रता न दी होती तो ?

उ०– तो पाप का फल उसे भोगना पड़ता या वह अन्यायी कहाता ?

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि कोई भी न्यायाधीश ऐसा नहीं कर सकता है कि पाप करावे खुद और दंड देवे अन्य को.

प्र०– जीव को कितना अधिकार है ?

उ०– केवल उतना ही अधिकार है, जितना वह अपने सामर्थ्य से करने योग्य है.

प्र०– तो फिर भाग्य क्या वस्तु है ? जिसके द्वारा कभी कभी हमें अलभ्य वस्तु प्राप्त हो जाती है ? तथा इच्छित नष्ट हो जाती है ?

उ०– पूर्व जन्म की करनी के संस्कार को ही भाग्य कहते हैं, वह कोई अन्य वस्तु नहीं; उसीके अनुसार आकांक्षित लाभालाभ होता हुआ देखा जाता है.

प्र०– उस जन्म की करनी का फल इस जन्म में किस तरह मिल सकता है?

उ०– जिस तरह गत वर्ष का उत्पन्न किया अन्न, जो भोगने से अवशेष रहा, वह हम इस वर्ष तथा अन्य आगामी वर्षों में भोग सकते हैं.

प्र०– किन्तु पूर्व जन्म की करनी का क्या विश्वास ?

उ०– इसीलिये भाग्य के भरोसे न रह, सदा उद्योग करता रहे, क्योंकि बिना उद्योग के मुंह में दिया हुआ ग्रास भी अनायास पेट में नहीं जा सकता, और पेट भी उद्योग के द्वारा अन्न का रसादि बना संपूर्ण शरीर का भरण पोषण आदि करता है; नहीं तो पलक मारते हमारा जीवन संकट में पड़ जाय.

प्र०– इसलिये क्या उचित है ?

उ०– कि भाग्य के भरोसे कदापि आलसी न बन बैठे, किन्तु सदा उद्योग

करता रहे, क्योंकि पुरुषार्थ बिना आलस्य रूपी पिशाच मनुष्य का सर्वस्व हर, संसार व्यवहार तथा परमार्थ से पतित कर नसा देता है.

दोहा

करनी करता को नहीं, जड़ चैतन जगजीव ।
करनी ही फल देत है, सुख दुख की यह नींव ।।१।।
करनी के आधीन गति, करनी इच्छाधीन ।
इच्छा जीवाधीन है, जीव जु ब्रह्माधीन ।।२।।
करनी इच्छा दोय में, जीवहि कियो स्वतंत्र ।
कर्माधीनहि फल कियो, सत्ता में परतंत्र ।।३।।
याते आलस छांड़िके, पुरुषारथ रत होय ।
परमारथ अरू अरथ को, साधे सत्त पथ जोय ।।४।।

उपदेश ३५

भावना

प्र०– भावना किसे कहते हैं ?

उ०– इच्छा को.

प्र०– भावना की पुत्री कौन है ?

उ०– करनी.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि बिना भावना के कोई भी मानसिक तथा भौतिक कर्म नहीं हो सकता.

प्र०– करनी का पुत्र कौन है ?

उ०– संस्कार.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि मानसिक तथा भौतिक, करनी द्वारा ही संस्कार उपजते हैं.

प्र०– संस्कार का पुत्र कौन है ?

उ०– सकल संसार.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि इस चराचर संसार का हर पदार्थ संयोग, वियोग, देश, काल, गुण, कर्म के संस्कारों द्वारा ही उपजता, ठहरता तथा बिगड़ता रहता है.

प्र०— तो क्या भावना ही सबका कारण है ?

उ०— अवश्य.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि भावना बिन करनी नहीं, करनी बिन संस्कार नहीं, और संस्कार बिन कुछ नहीं हो सकता.

प्र०— किन्तु वह भावना किसके आधीन है ?

उ०— आत्मा के (हमारे).

प्र०— उस भावना को आधीन कर लेने से क्या होती है ?

उ०— सद्गति.

प्र०— उस भावना के आधीन हो जाने से क्या होती है ?

उ०— दुर्गति.

प्र०— तो क्या केवल इस भावना ही के द्वारा जीव अनेक रूपरंग आदि धार लेता है ?

उ०— अवश्य.

प्र०— किस तरह ?

उ०— जिस तरह कीट दृढ़ भावना ही से अपना रूप, रंग, आकार आदि त्याग भ्रंग बन जाता है.

प्र०— ये अनन्त आत्माएं कहां उपस्थित हैं ?

उ०— उस परमात्मारूपी चैतन्य महासागर में.

प्र०— किस तरह ?

उ०— जिस तरह जल में अनन्त जीव उपस्थित है.

प्र०— वह चैतन्य महासागर कहां है ?

उ०— इस पोलाकार शून्य में घनरूप से व्याप्त है, जिसके अन्तर्गत ये अनन्त ब्रह्मांड उपस्थित है.

प्र०– इन अनन्त सृष्टियों का कारण क्या है ?

उ०– उस चैतन्य महा प्रभु की इच्छा.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह इन अनेक भवन, यंत्र, पुल आदि का कारण हमारी इच्छा है.

प्र०– सद्गति तथा दुर्गति कब हो सकती है ?

उ०– जब हमारी भावना ईश्वरीय सृष्टि नियम के अनुकूल हो तब सद्गति, अन्यथा दुर्गति होगी.

दोहा

नाना रूप अरूप औ, नाना काम अकाम ।
करै धरै चिर भावना, केवल ये सब ठाम ॥१॥
संस्कार की मां बड़ी, ये जग को जन्माय ।
याही को है खेल सब, या बिन सबहि नसाय ॥२॥
याते याही बस करो, कीजै नित शुभ काज ।
जासे होवै ज्ञान सत, मिटै जन्म की खाज ॥३॥

उपदेश ३९

सत्य और धर्म

प्र०– यहां सत्य क्या है ?

उ०– जिसकी सत्ता मात्र से चराचर की स्थिति है, वही सत्य है.

प्र०– यहां धर्म क्या है ?

उ०– जो निरन्तर स्वभाव ही से चराचर को धारे हुए और जिसे चराचर धारे हुए है, वही धर्म है.

प्र०– पदार्थों के धर्म का द्योतक क्या है ?

उ०– उनका सनातन स्वाभाविक गुण.

प्र०– पदार्थों में सत्यता कौनसी है ?

उ०– कि वे सदा अपने सनातन धर्म के अनुसार ही फलद्रुप होते हैं.

प्र०— किस धर्म को सत्य कहते हैं ?

उ०— जो अविचल है.

प्र०— किस सत्य को धर्म कहते हैं ?

उ०— जो अपनी अविचल सत्ता को चिर धारे रहे.

प्र०— इस विचार से सत्य नाम किसका है ?

उ०— धर्म की अविचलता का.

प्र०— किस तरह ?

उ०— जिस तरह तेज का धर्म प्रकाश है, किन्तु वह अपने प्रकाशक धर्म को नहीं त्यागता; इस अविचल सत्ता का नाम ही सत्य है.

दोहा

अविचल धर्महि सत्य कह, सत्यहि अविचल धर्म ।
याते अविचल धारिये, सत्य सनातन धर्म ।।

उपदेश ३७

प्रमाण मूलक धर्म

प्र०— प्रमाण का अर्थ क्या है ?

उ०— क्योंकि प्र=सनातन, प्राकृतिक और माण=तौल, विचार इसलिये प्रमाण=प्राकृतिक तौलसे तुला हुआ, या चिर विचारा हुआ; सिद्धांत.

प्र०— धर्म को प्रमाण मूलक क्यों कहें ?

उ०— क्योंकि प्राकृतिक माण ही धर्म का मूल है अर्थात् जिस प्राकृतिक विचार से जिस पदार्थ का यथार्थ निश्चय होता है वही उसका स्वाभाविक धर्म होने का प्रमाण है.

प्र०— इस यथार्थता से क्या होता है ?

उ०— उसके धर्म पर विश्वास उत्पन्न हो जाता है.

प्र०— किस तरह ?

उ०— जिस तरह अग्नि के देखते ही उसके दाहक धर्म का और दाहकत्व से अग्नि होने का विश्वास होता है.

प्र०— यदि यथार्थता में सन्देह हो तो ?

उ०— तो उस धर्म पर क्यों कर विश्वास उपज सकता है.

प्र०— कौनसा धर्म सदा विश्वास मूलक है ?

उ०— केवल सत्य सनातन धर्म (देखो ! उपदेश ३७ वां).

प्र०— इसके विपरीत विश्वास लाने से क्या हुआ ?

उ०— हम अपना प्राकृतिक स्वयं सिद्ध सनातन धर्म भूल चले.

प्र०— इस भूल से क्या हुआ ?

उ०— हमने अपने न्यारे-न्यारे मत का धर्म नाम रख, धर्म की दुहाई मचा, सहस्त्रों दुकानें खोल दी. सिवाय अपना माल चोखा और अन्य का खोटा बता, खुले मैदान डंके पर चोट दे, लगे ढिंढोरा पीटने; कि जो कोई भाई ! हमारे धर्म पर विश्वास लावेगा ! केवल वही स्वर्ग या मोक्ष पावेगा ! ! अन्य नहीं ! ! ! बस क्या था ! यह सुन हमारे समान अंधे भूले भटके ! ! हमारे ग्राहक बन लगे हाथ मलने ! ! !

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि न देखा हमने ! न देखा तुमने ! ! दिखावे कौन ! ! !

प्र०— तो फिर क्यों कर मतवादी ऐसा प्रयत्न करते हैं ?

उ०— केवल अपना-अपना दल सपुष्ट करने के लिये.

प्र०— यह किस लिये ?

उ०— अपने उद्देश्य पूर्ति के लिये.

दोहा

प्रमाण मूलक माण चिर, वस्तु ही धर्म प्रमाण ।
याही सो विश्वासता, या बिन शांति कदान ।।

अर्थात्

प्राकृतिक विचार ही वस्तु के धर्म का सनातन तौल है, और वह प्रामाणिक है, इसीलिये उस प्रामाणिक सनातन तौलसे तुला हुआ वस्तु का धर्मही उस वस्तुके प्रमाणित होनेका मूल कारण है. क्योंकि वह तीनों कालमें एकसा विराजता है; कभी किसीको धोखा नहीं देता, इसी सत्यताके कारण उसका विश्वास है; इसी हेतु उस धर्मको विश्वास मूलक कह सकते हैं, अन्यथा नहीं; क्योंकि इसके विपरीत विश्वास करने से कभी किसी को न शांति प्राप्त हुई और न होगी ?

उपदेश ३८

स्वधर्म सार

जो आप अपनी मर्यादा को आपही धारे हुए हैं, वह स्वधर्म स्वरूपी परमात्मा हमारा वंदनीय है, जिसकी मर्यादा आपही सबको धारे हुए हैं, उसके हम शरण हैं, क्योंकि वह हम सबका आधार अर्थात् सर्वस्व है, उसे हमारा बारम्बार साष्टांग नमस्कार है, जिसकी सत्ता से सबकी स्थिति, चेतना से गति, तथा ज्ञान से आनन्द प्राप्त होता है, वही सच्चिदानन्द स्वधर्मवाला हमारा परम गुरु हम सबको बुद्धि प्रदान करे.

धर्म=मर्यादा को धारना

[१] वह चैतन्य परमात्मा ही स्वयं धर्म कहाता है, क्योंकि वह अपनी मर्यादा को स्वयं धारे हुए है.

[२] वह मर्यादा अर्थात् सत्ता भी धर्म कहाती है. क्योंकि वह चराचर विश्व को धारे हुए है.

[३] वह मर्यादा यम नियम रूप में परिणित हो, नियम के आधार ही से सबका यम अर्थात् निग्रह किये हुए है; इसलिये उस यम तथा नियम को भी धर्म कहते हैं.

[४] वह नियम चराचर में व्याप्त गुण स्वभाव में परिणित हो, सबकी मर्यादा धारे हुए है। इसलिये उस स्वभाव को भी धर्म कहते हैं.

[५] उस यम का हर कर्त्तव्य नियम पथ को धारे हुए है, इसलिये उस कर्त्तव्य को भी धर्म कहते हैं.

[६] यम की उस नियमानुकूल, निश्चित, प्रमाणित तथा फेर बदल न होनेवाली कर्त्तव्यपरायणता को सत्य कहते हैं, किन्तु यम की अचल सत्ता ही सबको धारे हुए है, इसलिये उस सत्य को भी धर्म कहते हैं.

[७] सद्गति के उपाय को पुण्य कहते हैं, किन्तु वह उपाय केवल ईश्वरीय सृष्टि नियम हैं, जो सबको धारे हुए है, इसलिये उस पुण्य को भी धर्म कहते हैं.

[८] धर्म हो सबके तौल, मोल तथा भाव को धारे हुए है, इसलिये उस मूल्य तथा भाव को भी धर्म कहते हैं.

धर्म=स्वभाव

[१] वह चैतन्य स्वभाव ही से अपनी मर्यादा धारे हुए है.

[२] वह मर्यादा रूप सत्ता स्वभाव ही से चराचर विश्व को धारे हुए है.

[३] वह सत्ता से उपजा धर्म रूप यम भी स्वभाव ही से सबका निग्रह कर रहा है.

[४] वह प्राकृतिक नियम भी स्वभाव ही से सबकी मर्यादा धारे हुए है.

[५] स्वभाव ही से यम भी नियमानुसार वर्त्तता है.

[६] स्वभाव ही से सत्य में अविचलता स्थित है.

[७] नियमानुसार वर्त्तनेसे पुण्य रूप सद्‌गति स्वभावही से प्राप्त होती है.

[८] स्वभाव की तुलना से ही पदार्थों का मूल्य निर्धारित किया जाता है, इसलिये उस स्वभाव को भी धर्म कहते हैं.

धर्म=कर्त्तव्य

[१] वह चैतन्य अपनी मर्यादा को धारे हुए है, यह उसका पवित्र कर्त्तव्य है.

[२] चराचर विश्व को धारे रहना ही मर्यादा रूपी सत्ता का कर्त्तव्यहै.

[३] सबका निग्रह करना ही यम का कर्त्तव्य है.

[४] सबकी मर्यादा को धारे रहना ही नियम का कर्त्तव्य है.

[५] नियमानुसार वर्तना ही यम का कर्त्तव्य है.

[६] सब काल अविचलता धारे रहना ही सत्य का कर्त्तव्य है.

[७] नियमानुरूप कर्त्तव्यपरायणता ही पुण्यरूप सद्‌गति का एक मात्र आधार है.

[८] पदार्थों की स्वभावानुरूप कर्त्तव्यपरायणता ही उनके मूल्यका मुख्य कारण तथा आधार है; इसलिये उस कर्त्तव्य को भी धर्म कहते हैं.

धर्म=पुण्य (सद्‌गति)

[१] वह चैतन्य अपनी मर्यादा की गति सदा सर्वत्र एकरस तथा अविचल धारे हुए है, इसलिये सत्य सद्‌गति दाता तथा सबका मूलाधार है.

[२] वह मर्यादा भी स्वसत्तारूप चराचर विश्व को धार कर गति दे रही है.

[३] वह यम भी उस गति के अनुरूप सबका निग्रह करता है.

[४] वह नियम भी उस गति के अनुरूप सदा सर्वत्र एकरस रहता है.

[५] वह यम कभी भूलकर भी उस नियम के विरुद्ध गति करता नहीं.

[६] सत्य की रक्षक भी वही अविचल गति है.

[७] उस गति के अवलंबन बिना कभी सद्‌गति नहीं होती.

[८] पदार्थों के मूल्य की गति उनकी सनातन गति के आधिन है. इसलिये तद्वत गति को सद्‌गति, पुण्य तथा धर्म कहते हैं.

तात्पर्य

देखो! स्वयं परमात्मा अपनी जिस अविचल मर्यादा को जिस तरह धारे हुए है, उसी तरह वह सनातन नियम उस मर्यादा का अनुयायी है, और उस नियम के अनुरूप ही यम भी सबका निग्रह कर रहा है, अर्थात् जिस तरह वह चैतन्य कि मर्यादा अपने धर्म के अनुसार ही स्वभाव, कर्त्तव्य तथा गति को एकरस रखती है, उसी के अनुरूप नियम; और नियम के अनुरूप यम भी अपना स्वभाव, कर्त्तव्य तथा गति रखता है, इसलिये हमें भी उस सनातन मर्यादा के यम नियम के अनुरूप अपना स्वभाव, कर्त्तव्य तथा गति रखना चाहिये, तभी हमारी सद्‌गति होगी ! यही हमारा सत्य धर्म, यही हमारा स्वाभाविक धर्म, यही हमारा परम कर्त्तव्य, यही हमारी परम गति, यही हमारा परमधर्म तथा यही हमारा परम मूल्य है.

दोहा

मर्यादा के नियम वत, मति गति इच्छा कर्म ।
संयम सो दृढ़ राखिबो, सत्य सनातन धर्म ।।१।।

तब व्हैगी सत सद्‌गति, तब व्हैगो सत काम ।
उभयलोक मह ऐक्यता, मन पावै विश्राम ।।२।।

जाने धायो विश्व सब, जा धारे सब कोय ।
हे मन ता दृढ़ धार ले, सत्य धर्म चिर जोर ।।३।।

।। इति श्री परमगुरु प्रेरित स्वधर्मसर्वस्व सारस्य धर्मादेशो नाम प्रथमो भाग: समाप्त: ।।

।। ॐ तत्सब्रह्मार्पणमस्तु ।। शुभं भवतु सर्वस्य ।।

।। हरि: ॐ हर ।।

स्वधर्मसर्वस्व

द्वितीय भाग-अर्थादेश

उपदेश १

अर्थ

प्र०– अर्थ किसे कहते हैं ?

उ०– जिसके द्वारा हमारे सब कार्य सिद्ध होते हों, जो हमें उत्पत्ति, स्थिति, हानि, लाभ, सुख, दु:ख का हेतु तथा हर बात का उपयोग बतावे, जो सबका परिवर्तन करता हुआ, तीनों काल में एकसा बना रहे. जो विचार उपजावे, ज्ञान करावें तथा सबका गुप्तावरण खोल सन्देह रहित कर दे, उसे अर्थ कहते हैं.

प्र०– अर्थ किन प्रश्नों का निर्णय करता है ?

उ०– कौन, क्या, कब, कहां, किसने, किसको, किसके द्वारा, किसके-लिये, किससे, किसका, किसमें, किस पर आदि प्रश्नों का निर्णय करता है.

प्र०– इस अर्थादेश में किन विषयों का वर्णन है ?

उ०– जाति, वर्ण, आश्रम, मत, धर्म तथा इनके सम्बन्धी कर्त्तव्यों का वर्णन है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि इन्हीं के द्वारा हमारी सब प्रकार की अर्थ सिद्धि होती है.

दोहा

किसके द्वारा किसलिये, किसने किसको कोन ।
किसमें किससे कहां पर, क्या कब किसका सो न ।।१।।

उतपति थिति लय लाभ कर, सुखदुख ज्ञान विचार ।
परिवर्तन उपयोग फल, गुप्तवर्म दातार ।।२।।
अर्थ अर्थ ये अर्थ कर, अर्थ बिना सब व्यर्थ ।
हित हित अर्थ विचार लो, सचमुच तजो अनर्थ ।।३।।
जाति वर्ण क्या धर्म मत, क्या आश्रम उद्देश ।
आपस में संबंध क्या, कहता अर्थादेश ।।४।।

अर्थ के पर्यायी शब्द

मतलब कारण धन लिये, द्वारा हित पुरुषार्थ ।
वर्म मर्म तत् सार फल, अर्थ मनोरथ स्वार्थ ।।५।।

उपदेश २

जाति

प्र०– जाति की क्या व्याख्या है ?

उ०– जन्मे हुए को जात कहते हैं इसलिये जाति का अर्थ जन्मे हुओं में से है.

प्र०– ज्ञाति का अर्थ क्या है ?

उ०– जाने हुए को ज्ञात कहते हैं, इसलिये ज्ञाति का अर्थ जाने हुओं में से है अर्थात् जिस जाति में हम जन्मे हैं उसी में जन्मा हुआ जो जाना पहिचाना मनुष्य, उसे ज्ञाति भाई कहेंगे.

प्र०– जबकि हम आप सब मनुष्य हैं, व सबकी उत्पत्ति का हेतु एक ही सा है, व हम सबके अवयव तथा मांस, रक्त, हाड़ आदि भी एक ही से हैं और मनुष्य शब्द भी एक ही जाति का बोधक है, उस दशा में मनुष्य जाति के भेद, प्रभेद होना क्योंकर सम्भव है ?

उ०– देश, काल, गुण, कर्म के प्राकृतिक संस्कारों की सानुकूलता तथा प्रतिकूलता के कारण.

प्र०– किस प्रकार ?

उ०– जिस प्रकार पशु, पक्षी, जलचर, वृक्ष, लता, तृण, धान्य, धातु, पत्थर, मिट्टी आदि के जाति भेद हो गये.

प्र०— सिद्ध करो ?

उ०— देखो ! एक ही चावल जाति देश, काल, गुण, कर्म के प्राकृतिक संस्कारों के कारण अनेक जातियों से विभक्त हो गयी, जैसे राज-भोग, सुआपंखी, आंबामौर, कुमौद, पुण्याशी, सफेद, लाल, काली, पीली, काली नाका, लाल फोतरी, पनसाल, राजोरी, राजोरा, डांगरी सूकली इत्यादि......इसी तरह सबमें........

प्र०— क्या संसार में ऐसा भी कोई पदार्थ है, जिसमें जाति नहीं ?

उ०— सिवाय परब्रह्म के सबकी जाति है; और फिर उस जाति के अन्तर्गत भेद, प्रभेद पाये जाते हैं.

प्र०— क्या प्रमाण ?

उ०— देखो ! वृक्ष शब्द जातिवाचक है, किन्तु उसमें आम, नीम, जामुन बंबूर इत्यादि अनेक भेद है ; और उन भेदों में भी प्रभेद हैं, जैसे आम में लंगड़ा; सोनकलस, नारेलिया, बंगा, सिन्दूरिया, सौफिया इत्यादि......इसी तरह सबमें........।

प्र०— बहुत से आधुनिक विद्वान जाति को तो नहीं मानते ?

उ०— उनसे पूछो कि उन्होंने मर्दुमशुमारी के वक्त अपने नाम के साथ, जाति के खाने में क्या दर्ज किया ?

प्र०— यूरोप आदि महा देशों के निवासी जाति को किसी तरह नहीं मानते?

उ०— ऐसा कहना बड़ी भूल है.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि यदि आप वहां के निवासियों का इतिहास पढ़ते तो ऐसा कदापि न कहते; उनमें जाति भेद तो क्या, पर भेदों में भी अनेक प्रभेद पाये जाते हैं.

प्र०— कब हमारा परमहित हो सकता है ?

उ०— जब हम सब परस्पर सहानुभूति रक्खें.

प्र०— किन्तु परस्पर का दृढ़ प्रेमबन्धन तभी हो सकता है, जब सब जातियां मिलजुल एक हो जायं ?

उ०— कदापि नहीं.

प्र०—क्यों ?

उ०—तो क्या एक जाति में विरोध तथा अन्य जाति में प्रीति नहीं हो सकती ?

प्र०—क्या प्रमाण ?

उ०—देखो ! कुत्ते भी तो एक ही जाति के जीव हैं, फिर क्योंकर एक टुकड़े के कारण परस्पर लड़ मरते हैं ?

प्र०—तो फिर ऐक्यता किसके द्वारा होती है ?

उ०—परोपकार द्वारा.

प्र०—क्या प्रमाण ?

उ०—देखो ! वही स्वजाति द्रोही कुत्ता हमारे दिये एक टुकड़े के कारण हमसे कितनी सहानुभूति रखने लगता है; क्या वह अपनी जाति-पांति का है ?

प्र०—इससे क्या सिद्ध हुआ ?

उ०—कि हर एक प्राणी परोपकार से प्रसन्न हो अपने उपकारी से प्रीति करने लगता है, यहां तक कि इसके द्वारा शत्रु भी मित्र बन जाता है, और अपकार द्वारा स्वयं अपने माता, पिता, भाई, सुहृद भी अप्रसन्न हो शत्रु बन बैठते हैं. तो औरों की क्या कथा; क्योंकि परोपकार की पुत्री ऐक्यता और अपकार की पुत्री फूट है.

प्र०—क्या खानपान द्वारा एक जाति का मनुष्य अन्य जाति का शुद्ध रूप पा सकता है ?

उ०—कदापि नहीं.

प्र०—क्यों ?

उ०—क्योंकि यदि शूकर का भक्ष्य हाथी को या सिंह का भक्ष्य बंदर को खिलाया जाय तो क्या हाथी का शूकर या बंदर का सिंह हो सकता है, और क्या उस दशा में उनको लाभ पहुंच सकता है ?

प्र०—क्या चालचलन का अनुसरण करने से किसी अन्य जाति का शुद्ध स्वरूप प्राप्त हो सकता है ?

उ०—कदापि नहीं.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि यदि हंस की चाल काक या ऊंट की चाल मेंढक चले, तो क्या काक का हंस या मेंढक का ऊंट बन सकता है ?

प्र०— क्या पोषाक द्वारा किसी अन्य जाति का शुद्ध स्वरूप प्राप्त हो सकता है ?

उ०— कदापि नहीं.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि यदि सिंह की खोल कुत्ते को या घोड़े की खोल गधे को पहना दी जाय तो क्या कुत्ते का सिंह या गधे का घोड़ा हो सकता है ? और क्या वह वेष उसे शोभा दे सकता है ?

प्र०— क्या किसी परभाषा का शुद्ध भाषण कर लेने से उस जाति का शुद्ध स्वरूप पा सकता है ?

उ०— कदापि नहीं.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि यदि मनुष्य की बोली तोता या तोते की बोली चंडूल सीख जाय, तो क्या तोते का मनुष्य या चंडूल का तोता बन सकता है ?

प्र०— क्या संयोग द्वारा किसी अन्य जातिका शुद्ध स्वरूप प्राप्त हो सकताहै?

उ०— कदापि नहीं.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि यदि घोड़े का गधी के साथ अथवा गधे का घोड़ी के साथ संयोग कराया जाय, तो क्या शुद्ध घोड़ा या गधा जन्म सकता है ? देखो ! दोनों दशा में जब जन्मेगा तब वही वर्णसंकर खच्चर ही....?

प्र०— खच्चर तो बड़ा उपयोगी जन्तु है, तो क्या ऐसी वर्णसंकरी सृष्टि उपजाना बुरा है ?

उ०— अवश्य.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि यदि कोई आटे में खड़िया, घी में चर्बी, दूध में पानी, तेल में मूत्र, केशर में मांस, कस्तुरी में रक्त या मिट्टी आदि मिला दें; तो क्या कोई इस बात को अच्छा कहेगा ?

प्र०– शि.—कदापि नहीं.

गु.— क्यों ?

शि.—क्योंकि यह प्रकृति के विरुद्धहै, इस प्रकार के मिश्रित पदार्थ बिगड़ जाते हैं तथा उनका सेवन अनेक प्रकार का विकार उपजाता है; इसी कारण उस भेल करने वाले को राजा दंड देता है तथा सर्व साधारण उसका तिरस्कार करते हैं.

उ०– उसी प्रकार ईश्वरीय सृष्टि नियम के विरुद्ध सृष्टि उपजाने से विशुद्ध वर्ण विनष्ट हो जाते हैं, फिर उनका शुद्ध स्वरूप कदापि ढूंढे नहीं मिलता, तथा उनके द्विस्वभाव या विपरीत भाव के कारण पृथ्वी-पर महाअनर्थ उपस्थित होता और सबको दु:ख सागर में मग्न करता है, इसलिये वर्ण संकरी सृष्टि उपजाना घोर अधर्म है.

प्र०– यदि हमें किसी का उपदेश उत्कृष्ट जंचे तो क्या हम उसे न स्वीकारें ?

उ०– उत्तम बातें हर एक की ले लो, किन्तु स्वजाति परिवर्तन का प्रयत्न कदापि मत करो.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि ऐसा करने से सबकी एक जाति तो होती ही नहीं, किन्तु सृष्टि नियम की विरुद्धता से उल्टी वर्णसंकरता आजाती है तथा स्वजाति का भी संसार से लोप हो जाता है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! ईसाई मत को समस्त भूमंडल की कितनी ही जातियों ने स्वीकारा है, किन्तु सबके मिलजुल जाने पर भी समग्र जातियां आजतक एक न हो सकी और न हो सकती हैं, यही हाल बौद्ध तथा मुसलमानी मत आदि का भी है; अलबत्त: कई प्राकृतिक जातियों का सर्वस्था लोप तथा नई विकृत जातियों का प्रादुर्भाव अवश्य हो गया.

प्र०– इससे क्या शिक्षा मिली ?

उ०– कि किसी मत को जाति का रूप देना बुरा है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि इसके द्वारा स्वजाति का लोप, विकृत जाति का प्रादुर्भाव आत्मस्तुति, परनिंदा, कलह, झूंठ, छलछिद्र, हिंसा आदि की वृद्धि होती है. देखो ! हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने भी अपने भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये, पर उन्होंने मत को किसी जाति का रूप नहीं दिया, तभी हम चाहे जिस ऋषि मुनि का मत बलिष्ठ देख, उसी के अनुसार अपना अटका हुआ काम कर लेते हैं या हर काम में उनके मतों का भी कुछ न कुछ लक्ष रखते हैं, तो भी कोई जाति-भाई किसी तरह अनुचित दृष्टि से नहीं देखता, जिस तरह मत को जाति मानने वाले देखते हैं.

प्र०– यदि दो जातियों का देश, काल, गुण, कर्म, संस्कार समान हो, तो वे दोनों जातियां परस्पर मिलजुल एक हो सकती हैं या नहीं ? और उस दशा में उनका शुद्ध रूप स्थिर रह सकता है या नहीं ?

उ०– ऐसी जातियां कहने मात्र को प्रथक हैं, वास्तविक में वह सब एक हैं, बहुधा खानपान या विवाह आदि से भी सम्बन्ध रखती हैं, यदि किसी वादविवाद के कारण प्रथक हो गई हों, तो फिर से उन्हें मिला लेना अयुक्त नहीं.

प्र०– क्या अखिल विश्व के सजीव निर्जीव पदार्थों का देश, काल, गुण, कर्म संस्कार एक हो सकता है ?

उ०– कदापि नहीं.

प्र०– मान लो यदि ऐसा ही हो जाय तो ?

उ०– तो उसे अवश्य सृष्टि में विचित्रता कुछ भी न रहेगी.

प्र०– अशक्य क्यों ?

उ०– क्योंकि–**केवल नर या नार या, केवल रज या बीज ।**
केवल केवल व्हे रहै, उत्पत्ति स्थिति लय छीज ।।

प्र०– प्राकृतिक जाति भेद से क्या लाभ है ?

उ०– **जाति भेद जो होत ना, तो न होत संसार ।**
होती न ये विचित्रता, ना अनुपम विस्तार ।।

प्र०– जो मनुष्य अपने देश, काल, गुण, कर्म, संस्कार के विपरीत अन्य जाति में जा मिलता है, उसका क्या हाल होता है ?

उ०– अन्नदेव तथा चमगादड़वत.

दोहा

जात तजी जो आपनी, मिलै जु परके माय ।
परवश खो स्वानीनता, जगमें नीच कहाय ।।१।।
माता घोड़ी पिता खर, वा सुत अस उपजान ।
जो ना घोड़ा ना गधा, खच्चर नाम धरान ।।२।।
खच्चर सो पुनि होत ना, घोड़ो ना खर सोय ।
तथा वर्ण संकर कदा, ज्यों थो ना त्यों होय ।।३।।
द्वेष करै वह शुद्ध सों, फूट विरोध बढ़ाय ।
दगा कपट छल छिद्र सो, शुचि को दे नसाय ।।४।।
जातिको अभिमान निज, तजो कदा न भूल ।
न तु चमगादड़ अन्नवत, व्है हौ नष्ट समूल ।।५।।
जाति गर्व जो रखत सत, वो उन्नत व्है जात ।
लीजे ढूंढ प्रमाण जग, तब फुर कहिये बात ।।६।।
जाति गर्व जाने तज्यो, ताको रह्यो न नाम ।
लीजे ढूंढ प्रमाण जग, महा हानिकर काम ।।७।।

उपदेश ३

वर्णोत्पत्तिसहेतु

प्र०– वर्णोत्पत्ति किसके द्वारा हुई ?

उ०– ब्रह्माजी के द्वारा.

प्र०– क्यों ?

उ०– सृष्टि विस्तार के अर्थ.

प्र०– किसके द्वारा ?

उ०– प्राकृतिक विभिन्न गुण कर्म के संस्कार द्वारा.

प्र०– प्रारम्भ में किस गुण की प्रधानता द्वारा वर्णोत्पत्ति हुई ?

उ०– सतोगुण की प्रधानता द्वारा.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि प्रारम्भ में ब्रह्माजी सतोगुणी वृत्ति को धार तप में लवलीन हुए थे.

प्र०– इसका फल क्या हुआ ?

उ०– तप के नंतर जो पुत्र ब्रह्माजी ने उपजाये, वे सब तपस्वी बन, परम तप में मग्न हो गये; तथा देव, ऋषि, मुनि कहलाये; किन्तु उन्होंने प्रजा वृद्धि की ओर यथोचित लक्ष न दिया.

प्र०– क्यों ?

उ०– प्रपंच के भय से.

प्र०– तब क्या हुआ ?

उ०– ब्रह्माजी अति संतप्त हुए.

प्र०– संतप्त होने से क्या हुआ ?

उ०– उनमें तमोगुण की प्रधानता हो गयी.

प्र०– जिसका फल क्या हुआ ?

उ०– उन्हें रुद्र नामक महा तमोगुणी पुत्र हुआ, जिसकी तमोगुणी संतान ने पृथ्वी पर महा अनर्थ उपस्थित किया, जो संसार में राक्षक, म्लेच्छ आदि नाम से पुकारी गई.

प्र०– तब ब्रह्माजी ने क्या किया ?

उ०– रुद्र को प्रजोत्पत्ति के कार्य से रोक तप करने भेज दिया, जिस तप के तेज-बल से वे महादेव कहाये.

प्र०– फिर क्या हुआ ?

उ०– इधर स्वयंभू मनु नामक ब्रह्माजी ने तप बल से जाना, कि यह समग्र संसार मनन द्वारा उपजने के कारण मनोमुखी है, इसलिये सृष्टि विस्तार के अर्थ रजोगुण की अधिक आवश्यकता है, यह सोच उन्होंने अपने रजोगुणी मन के मनन द्वारा मानवी सृष्टि उपजायी.

प्र०– उपजाने में किस बात पर ध्यान रक्खा ?

उ०– व्यवस्था क्रम पर.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि उन्हें निज अंग के संयम द्वारा विदित हुआ कि स्वतन अनेक भिन्न-भिन्न अवयवों के मेल से बना है; किन्तु भिन्न-भिन्न अवयत्र अपना भिन्न-भिन्न काम करता हुआ, अखिल शरीर के रक्षण हेतु है; इसलिसे प्रथक-प्रथक कार्य के लिये प्रथक-प्रथक वर्ण व्यवस्था के बिना कदापि मनुष्य का हित सिद्ध न होगा.

प्र०— क्या संयम का प्रभाव संतान पर पड़ सकता है ?

उ०— अवश्य.

प्र०— क्या प्रमाण ?

उ०— देखो ! जब प्रह्लाद गर्भस्थित थे, तब नारद मुनि उनकी माता को नित्य राम भक्ति का महात्म्य सुनाया करते थे, जिसके प्रभाव से प्रह्लाद परम रामभक्त हुए और देखो ! अभिमन्यु जब गर्भस्थित थे तब श्री कृष्णजी ने चक्रव्यूह प्रवेश का वर्णन उनकी माता को सुनाया था, जिस प्रभाव से अभिमन्यु बाल अवस्था ही में असाधारण पराक्रम दिखा सके थे, और देखो ! ऋतुस्नाता स्त्री जिस पुरुष के रूप को चित्त में धारती है, उसी स्वरूप का बालक होता है और जो भाषा माता-पिता की होती है, वही उसके लिये स्वाभाविक है; तथा सहवासके संयम का फल भी तद्वत ही होताहै.

प्र०— ब्रह्माजी ने किसके द्वारा संयम किया ?

उ०— समाधि द्वारा.

प्र०— पहिले किसका संयम किया ?

उ०— प्रणव का.

प्र०— किस तरह ?

उ०— हर पदार्थ या अवयव में प्रणव द्वारा लय प्राप्त कर तद्वत तेज का गुण जानने का प्रयत्न किया.

प्र०— उसके द्वारा क्या लाभ हुआ ?

उ०— कर्ण के अनहद गत संयम से श्रुति, मस्तिष्क गत संयम से स्मृति;

बुद्धिगत संयम से ब्रह्मज्ञान, वेदान्त, विज्ञान, त्रिकालज्ञान, गणित, न्याय, तर्क, धर्म, शास्त्र आदि; नेत्रगत संयम से ज्योतिष, दृश्या-दृश्यज्ञान, नाकगत संयम से आयुर्वेद. स्वास के संयम से सूक्ष्मवेद, तत्वशास्त्र, वायुशास्त्र, महावाक्य, सांख्य योगतत्व आदि; वाणिगत संयम से शब्दशास्त्र, व्याकरण, काव्य, गानादि, दंतगत संयम से कर्मकांडादि प्राप्त हुआ.

प्र०— एतदर्थ क्या किया ?

उ०— उक्त ज्ञान के भाव के संयम द्वारा ब्राह्मण नामक ऐसे दश पुत्रों को उपजाया जो मुख संभूत विद्याओं को अनायास धार सकें; इसलिये सब ब्राह्मण ब्रह्मा का मुख या उसके मुख द्वारा उपजे माने जाते हैं, और वे ही पंचगौड़, पंचद्रविड़ के नाम से प्रख्यात हैं.

प्र०— बाहु आदि के संयम से क्या लाभ हुआ ?

उ०— बाहुगत संयम से पराक्रम, पुरुषार्थ, धनुर्वेद, युद्ध, मलयुद्ध, व्यायाम, हस्तगत संयम से परिचर्या, साह्य, रक्षा, दंड आदि; वक्ष के संयम से शौर्य, धैर्य, हृदयगत संयम के न्याय, नीति आदि का प्रादुर्भाव हुआ.

प्र०— एतदर्थ क्या किया ?

उ०— उक्त ज्ञान के संयम द्वारा क्षत्री नामक ऐसे पुत्र उपजाये जो बाहु-संभूत विद्याओं को स्वभाव ही से धार सकें, इसीलिये क्षत्री ब्रह्मा की भुजा या उसकी भुजा द्वारा उपजे माने जाते हैं; जो कि सूर्यवंशी तथा चंद्रवंशी के नाम से प्रख्यात हैं.

प्र०— उरादि के संयम द्वारा क्या लाभ हुआ ?

उ०— उर अर्थात् पेटगत संयम द्वारा शारीरिक व्यापार, पदार्थ धर्म, उद्योग. प्रकृतिशास्त्र कर्षण, कृषि, इन्द्रियों का निर्वाह, परिचर्या, गर्भाधान आदि शास्त्र; चित्तगत संयम से चिन्तवन, अग्रसोचत्व, नवीन स्फुरणा आदि का प्रादुर्भाव हुआ.

प्र०— एतदर्थ क्या किया ?

उ०— उक्त ज्ञान के संयम द्वारा वैश्य नामक ऐसे पुत्र उपजाये, जो उरादि

प्रभूत विद्याओं को स्वभाव ही से धार सकें इसलिये वैश्य ब्रह्मा का उर अर्थात् पेट कहाता है, या उससे उपजा माना जाता है.

प्र०– पादादि संयम द्वारा क्या लाभ हुआ ?

उ०– वहन, सहन, साह्य, परिश्रम, परिचर्या आदि आधारभूत विद्याओं का ज्ञान हुआ.

प्र०– एतदर्थ क्या किया ?

उ०– उक्त ज्ञान के संयम द्वारा शूद्र नामक पुत्र ऐसे उपजाये, जो पादादि प्रभूत विद्याओं को स्वभाव ही से धार सके; इसलिये शूद्र ब्रह्मा के पैर या पैर से उपजे माने जाते हैं.

प्र०– जबकि चारों एक ही पिता के पुत्र हैं, उस दशा में वर्णभेद क्यों हुआ ?

उ०– ब्रह्माजी के न्यारे न्यारे गुणकर्म के संयम संस्कार के प्रभाव द्वारा स्वभाव ही से इनमें तद्वत न्यारे न्यारे गुणकर्म उदय हो गये, इसी प्रत्यन्तर से वर्णभेद हुआ ऐसा होना स्वभाव सिद्ध है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! एक ही जाति की वनस्पति का बीज न्यारे न्यारे देश, काल, गुण, कर्म के प्रभाव द्वारा न्यारे न्यारे गुण वर्ण वाला हो जाता है; यथा एक ही गौ का दुग्ध भिन्न भिन्न खाद्य द्रव्य के प्रभाव द्वारा भिन्न भिन्न गुण, गंध तथा स्वाद वाला हो जाता है.

प्र०– ब्रह्माजी ने ब्राह्मण को उपदेशक, निरक्षक तथा धर्माध्यक्ष का अधिकार क्यों दिया ?

उ०– क्योंकि ब्राह्मण मुखादि प्रभूत विद्याओं के संयम साधनार्थ, उपजा है; जो कि मुख का काम उपदेश देना, नेत्र का काम निरक्षण करना और कर्ण, नेत्र, नाक व जिह्वा का काम क्रम से शब्द, रूप, गंध, रस या वाणी का निर्णय करना है; इसलिये उपदेशक, निरक्षक तथा धर्माध्यक्ष का अधिकार दिया.

प्र०– ब्राह्मण का कितना अधिकार सब वर्णों पर है ?

उ०– जितना कान, नेत्र, मुख, नाक, जीभ का अधिकार सर्वांग पर है.

प्र०— ब्राह्मण को पठन, पाठन, यजन, याजन तथा दान लेने-देने का अधिकार क्यों दिया गया ?

उ०— क्योंकि मुख का प्रथम काम पठन दूसरा पाठन, तीसरा यजनरूपी भोजन ग्रहण, चौथा याजनरूप उसे दंत से पीसकर जिह्वा द्वारा ढकेलना, पांचवे ग्रास रूपी दान लेना, छठे वह उदर को देना है, इसलिये उक्त अधिकार दिया गया.

प्र०— क्षत्री को वर्ण रक्षा का अधिकार क्यों दिया ?

उ०— क्योंकि हाथों का काम सर्वांग की रक्षा करना है.

प्र०— क्षत्री का कितना अधिकार सब वर्णों पर है ?

उ०— जितना हस्त का अधिकार सर्वांग पर है.

प्र०— क्षत्री को पठन, यजन, दान, दंड रक्षा तथा न्याय का अधिकार क्यों दिया गया ?

उ०— क्योंकि हृदय द्वारा पठन हो सकता है, किन्तु पाठन नहीं, हस्त द्वारा मुख को ग्रासरूपी आहुति या दान दिया जाता है, किन्तु स्वयं भोगा जाता नहीं; इसलिये केवल पठन, यजन, दान का अधिकार दिया गया. परन्तु पाठन, याजन, दान ग्रहण का नहीं; और हाथ सर्वांग को हिंसकों से बचाते, उन्हें दंड देते तथा औरों के मध्यस्थ हो झगड़ा मिटाते हैं; इसलिये रक्षा, दंड तथा न्याय का अधिकार दिया गया.

प्र०— वैश्य को वर्णों का पोषण करने का अधिकार क्यों दिया गया ?

उ०— क्योंकि उदर द्वारा ही सर्वांग का पोषण निर्वाह होता है.

प्र०— वैश्य का कितना अधिकार सब वर्ण पर है ?

उ०— जितना उदर का अधिकार सर्वांग पर है.

प्र०— वैश्य को पठन, यजन, दान, गोरक्षा, कृषि तथा व्यापार का अधिकार क्यों दिया गया ?

उ०— क्योंकि उदर स्थित कुंडलीनगतचित द्वारा चिंतवनरूपी पठन कर सकते हैं; किन्तु मुख बिना किसी को पढ़ा सकते नहीं; उदर स्वयं भुक्त पदार्थों का यजन अर्थात् हवन करता है; किन्तु याजन नहीं;

तथा यजन द्वारा वह सर्वांग को शुद्ध रस कसादि पहुंचाता है किन्तु आप स्वयं चखता नहीं; इसलिये पठन, यजन, दान करने का अधिकार है, पर पाठन, याजन, दान लेने का नहीं. सिवाय यजन द्वारा वह उदर रात-दिन गोरक्षा अर्थात् इन्द्रियों की रक्षा करता, तथा देहरूपी क्षेत्र को रसादि द्वारा सींचता व घर्षण कर्षण द्वारा गर्भ-रूपी भूमि में बीज का वपन कर, कृषि रूप संतति उपजाता तथा अहोरात्र सर्वांग के हित साधन व्यापार में भिड़ा रहकर कभी कोठे में माल रखता, कभी बाहर निकाल देता; इस तरह एक देश के रस कसादि देश-देशान्तर को पहुंचाता रहता है; इसीलिये गोरक्षा कृषि तथा व्यापार का अधिकार दिया गया.

प्र०— ब्याज लेना किसके अन्तरगत है ?

उ०— व्यापार के.

प्र०— किन्तु ब्याज लेना किसके तुल्य है ?

उ०— मल के तुल्य.

प्र०— क्या प्रमाण ?

उ०— देखो ! जब पेट लोभवश धरोड़ रखने या देने का बदला लेना चाहता है, तब उसे केवल ब्याज स्वरूप मल की पोछन पाछन ही मिलती है.

प्र०— ब्याज कब लेना ठीक है ?

उ०— जब ऋणि, अपनी दी हुई थाती के उपभोग द्वारा अवनति से बच, उन्नत दशा को प्राप्त हो चुका हो, तब भी किंचित उपहार स्वरूप लें.

प्र०— किसे उधार देना चाहिये ?

उ०— जो ऋण का सदुपयोग करे.

प्र०— किस ढंग का ब्याज लेना बुरा है ?

उ०— जिसके द्वारा ऋणी की व्यर्थ हानि होती हो या वैसा ब्याज लेना न्याय विरुद्ध हो.

प्र०— शूद्र को केवल परिचर्या का अधिकार क्यों दिया ?

उ०— क्योंकि पैरों की आधारभूत विद्या परिचर्या वहन, सहन, धारण, साह्य परिश्रम आदि है.

प्र०– शूद्र का कितना अधिकार सब वर्णों पर है ?

उ०– जितना पैरों का सम्बन्ध सर्वांग से है; अर्थात् जिस तरह केवल पैरों के बल सर्वांग चलता है, उसी तरह शूद्र के आधार से सब वर्णों का कार्य चलता है.

प्र०– यदि शूद्र अपने कर्म त्याग दे तो क्या होगा ?

उ०– प्रथम तो शूद्र ही अपना वर्णाभिमान त्यागने के कारण समूल नष्ट होगा, किन्तु साथही शेषवर्ण पंगु हो जावेंगे.

प्र०– यदि ब्राह्मण अपने सब कर्म त्याग दे तो क्या होगा ?

उ०– वर्ण व्यवस्था नष्ट हो जायगी. जिस तरह सिर कटने से मनुष्य.

प्र०– यदि क्षत्री अपने सब कर्म त्याग दे तो क्या होगा ?

उ०– सब वर्णों का वही हाल होगा, जैसे भुजा कटने से मनुष्य का.

प्र०– यदि वैश्य अपने सब कर्म त्याग दे तो क्या होगा ?

उ०– सब वर्णों का वही हाल होगा, जैसे पेट के फटने से मनुष्य का.

प्र०– यदि सब वर्ण अपने कुछ कर्म छोड़ दे, तो क्या होगा ?

उ०– बहिरे, काने, अन्धे, नकटे, गूंगे, लूले, डूंडे, कूबड़े, लंगड़े, पंगू आदि वत दशा होगी, किन्तु सब कर्मों के त्याग से सबका सर्वनाश होगा.

प्र०– चारों वर्णों के अन्तर्गत प्रभेद क्यों हुए ?

उ०– क्योंकि हर वर्ण का हर मनुष्य अपने भिन्न-भिन्न कर्म अकेला नहीं कर सकता, इसलिये अपने वर्ण के भिन्न-भिन्न मनुष्य ने अपने भिन्न-भिन्न कर्म स्वीकार लिये, यही प्रभेद का कारण है.

दोहा

विधि के सतगुण सों भये, प्रथम ऋषी मुनि देव ।
मनुज रजोगुण सों सभी, तम सों म्लेच्छ अदेव ।।१।।
ब्रह्मा सों ऋषि मुनि भये, मनु सों मानव धेरण ।
आदम सों भै आदमी, म्लेच्छ असुर हृदेण ।।२।।
जैसा संयम जो करै, वैसा फल ता होय ।
संयम बिन कारज करी, जन्म अकारज खोय ।।३।।
जैसा संयम जो करै, वैसा फल सो भोग ।
संयम बिन कारज करै, उल्टा उपजे रोग ।।४।।

मुख संयम सों विप्र भो, क्षत्री संयमी बाहु ।
उर संयम सों वैश्य भो, संयमि शूद्र पदांहु ।।५।। अर्थात्
ब्राह्मण मुखगत ज्ञान के, क्षत्री भुजगत ज्ञान ।
वैश्य उदरगत शूद्र पद, संयम सों उपजान ।।६।।
पुनि पायो अधिकार तस, निज गुण कारज जैस ।
याते विप्रहि मुख कह्यो, क्षत्री भुज उर वैश्य ।।७।।
शूद्र कहावत चरण हैं, ब्रह्मा केरे दोय ।
याते सब मिल एक तन, एक हिताहित जोय ।।८।।
ब्राह्मण आदिक नाम भे, गुण कारज अनुहार ।
तैसे ही उपनाम भे, शर्मा आदिक चार ।।९।।
एक देह के अंग जस, मुख भुज उर पद चार ।
तस इक आर्य सु वर्ण ये, विप्रादिक उच्चार ।।१०।।
दुखित भये इक अंग के, सबहि दुखित व्है जांय ।
पुनि वाके सुख लहत ही, सभी अंग हुलसांय ।।११।।
याते सुख दुख परस्पर, एक दूसरे हाथ ।
गुण कर्मन में भेद इक, पर फल पावत साथ ।।१२।।
याते कदा न त्यागिये, वर्ण धर्म नीज भूल ।
नातर सब दुख पाइके, नसिहैं सत्य समूह ।।१३।।

उपदेश ४

वर्णव्यवस्था

प्र०— वर्ण किसे कहते हैं ?

उ०— जो वर्णा जाय अर्थात् सराहा जाय उसे वर्ण कहते हैं.

प्र०— व्यवस्था किसे कहते हैं ?

उ०— विशेष अवस्था अर्थात् दिव्य दशा या उन्नत दशा प्राप्त होने के प्रबन्ध को व्यवस्था कहते हैं.

प्र०— वर्ण व्यवस्था किसे कहते हैं ?

उ०— जिस हेतु से ब्रह्माजी ने सराहने योग्य तथा दिव्य दशा प्राप्त होने

के लिये वर्णोत्पत्ति द्वारा सुव्यवस्था की है, उसे वर्ण व्यवस्था कहते हैं.

प्र०– वर्ण व्यवस्थानुसार वर्णों के भेद ?

उ०– ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र.

प्र०– ब्राह्मण में क्या गुण होने चाहिये ?

उ०– ब्रह्म या उन्नति का परिपूर्ण ज्ञान करा देने का दिव्य गुण होना चाहिये.

प्र०– क्षत्री में क्या गुण होना चाहिये ?

उ०– संकट से बचा देने का दिव्य गुण.

प्र०– वैश्य में क्या गुण होना चाहिये ?

उ०– सबका निर्वाह करने का दिव्य गुण.

प्र०– शूद्र में क्या गुण होना चाहिये ?

उ०– सबकी यथोचित सेवा करने का दिव्य गुण.

प्र०– ब्राह्मण का क्या अर्थ है ?

उ०– ब्रह्म या उन्नति का मार्ग जताने वाला.

प्र०– क्षत्री का क्या अर्थ है ?

उ०– क्षतत्राता अर्थात् घाव या कष्ट से रखाने वाला.

प्र०– वैश्य का क्या अर्थ है ?

उ०– व्यापने, निकालने, सींचने तथा फैलाने वाला.

प्र०– शूद्र का क्या अर्थ है ?

उ०– श्रम की रक्षा करने वाला अर्थात् जो स्वयं श्रम करे तथा औरों के श्रम को बचावै या हरै, या पवित्र करनेवाला, शोधक.

प्र०– ब्राह्मण को किन कर्मों का अधिकार दिया गया है ?

उ०– (१) विद्या पढ़ने (२) विद्या पढ़ाने (३) यज्ञ करने (४) यज्ञ-कराने (५) दान देने (६) दान लेने का अधिकार.

प्र०– क्षत्री को किन कर्मों का अधिकार दिया गया है ?

उ०– (१) विद्याध्ययन करने (२) यज्ञ करने (३) दान देने (४) दंड (५) रक्षा (६) न्याय करने का अधिकार.

प्र०– वैश्य को किन कर्मों का अधिकार दिया गया है ?

उ०– [१] विद्या पढ़ने [२] यज्ञ करने [३] दान देने [४] गौरक्षा [५] कृषि [६] वाणिज्य करने का अधिकार.

प्र०– शूद्र को किन कर्मों का अधिकार दिया गया है ?

उ०– केवल शिल्प कला आदि द्वारा सब वर्णों की यथोचित सेवा तन मन बचन क्रम से करना.

प्र०– कर्म अर्थात् कर्त्तव्य के अनुसार इन चारों वर्णों के क्रम से क्या उपनाम है ?

उ०– [१] शर्मा [२] वर्मा [३] धर्मा [४] कर्मा.

प्र०– शर्मा का क्या अर्थ है ?

उ०– [शृ] का अर्थ श्रवण कराना, वृद्धि करना, बढ़ाना है और [म] का अर्थ चिरकाल मर्यादा है, इसलिये शर्मा का अर्थ चिरकाल श्रुति तथा मर्यादा के अनुसार हितोपदेश सुनाने वाला तथा उन्नति के शिखर पर पहुंचाने वाला है.

प्र०– वर्मा का क्या अर्थ है ?

उ०– [वृ] का अर्थ बचाना और [म] का अर्थ चिरकाल, मर्यादा है; इसलिये वर्मा का अर्थ न्याय तया मर्यादा के अनुसार चिरकाल रक्षा करने वाला है; यदि वर्म का अर्थ मर्म, भेद, कवच लिया जावे तो वर्मा का अर्थ गुण दोष के अनुसार यथोचित व्यवस्था करने वाला है.

प्र०– धर्मा का क्या अर्थ है ?

उ०– [धृ] का अर्थ धारना, रखना और [म] का अर्थ चिरकाल, मर्यादा है इसलिये धर्मा का अर्थ धर्म तथा मर्यादा के अनुसार सबका यथोचित निर्वाह करने वाला अथवा सबके धर्म को जानने वाला है.

प्र०– कर्मा का क्या अर्थ है ?

उ०– [कृ] का अर्थ करना और [म] का अर्थ चिरकाल, मर्यादा है; इसलिये कर्मा का अर्थ शिल्पकला तथा मर्यादा के अनुसार चिरकाल उचित कर्म करने वाला है.

प्र०— इस वर्ण व्यवस्था में क्या विचित्रता है ?

उ०— कि अपने-अपने अधिकार के अनुसार परस्पर एक दूसरे के धर्मसूत्र में बंधा हुआ है तथा हरएक आपस में एक दूसरे से किसी न किसी प्रकार सहायता पाता है; यद्यपि गुण कर्मानुसार चारों वर्णों में भेद प्रतीत होता है किन्तु हिताहित में चारों एक हैं; अर्थात् सद्गति दुर्गति सबकी समान है.

प्र०— कब सद्गति तथा दुर्गति हो सकती है ?

उ०— वर्ण व्यवस्थानुकूल वर्त्तन से सद्गति तथा प्रतिकूल वर्त्तन से दुर्गति होती है.

प्र०— किर तरह ?

उ०— जिस तरह एक सैनिक के कारण सम्पूर्ण देश को, एक सभासद के कारण समग्र समाज को तथा एक इन्द्री के कारण अखिल अंग को फल भोगना पड़ता है.

प्र०— किस कारण ब्राह्मण चारों वर्णों का गुरु कहाता है ?

उ०— सुशिक्षा तथा हितोपदेश के कारण.

प्र०— किस दशा में ब्राह्मण चारों वर्णों को आज्ञा दे सकता है तथा चारों वर्ण उसकी आज्ञा मान सकते हैं ?

उ०— सुशिक्षा हितोपदेश तथा कर्म परायणता के कारण.

प्र०— ब्राह्मण किन बातों का उपदेश चारों वर्णों को दे सकता है ?

उ०— केवल उन्हीं के कर्मों का.

प्र०— किस दशा में क्षत्री चारों वर्णों का स्वामी कहाता है ?

उ०— न्याय रक्षा के कारण.

प्र०— किस दशा में क्षत्री चारों वर्णों पर आज्ञा चला सकता है, तथा चारों वर्ण उसकी आज्ञा मान सकते हैं ?

उ०— न्याय रक्षा में.

प्र०— किस बात की आज्ञा क्षत्री चारों वर्णों को दे सकता है ?

उ०— अपने-अपने कर्म परायणता की.

प्र०– किस दशा में वैश्य चारों वर्णों का धर्म पिता कहाता है ?

उ०– सबका निर्वाह तथा पोषण करने के कारण.

प्र०– किस दशा में चारों वर्ण वैश्य के आधीन है ?

उ०– पोषण तथा निर्वाह में.

प्र०– किस दशा में वैश्य, चारों वर्णों का पोषण कर सकता है ?

उ०– उनकी कर्म परायणता के बदले.

प्र०– किसके द्वारा वैश्य, चारों वर्णों का पोषण करता है ?

उ०– पदार्थों के सनातन धर्म के द्वारा.

प्र०– किस दशा में चारों वर्ण शूद्र के आधीन है ?

उ०– हर दशा में.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि शूद्र सब शिल्प कलाजन्य पदार्थों का कर्त्ता है और बिना उन वस्तुओं के संसार का काम नहीं चलता; इसलिये हर दशा में चारों वर्ण शूद्र के आधीन है.

प्र०– किस दशा में शूद्र आज्ञा दे सकता है और चारों वर्ण मान सकते हैं ?

उ०– शिल्प कला तथा सेवा सम्बन्धी प्रबन्ध में.

प्र०– किस क्रम से चारों वर्णों को ब्राह्मण उपदेश दे सकता, क्षत्री रक्ष सकता, वैश्य पोष सकता और शूद्र सेय सकता है ?

उ०– गुण, कर्म तथा धर्म की योग्यता के विचार से.

प्र०– किस बात की और किस दशा में एक वर्ण दूसरे वर्ण को सहायता पहुंचा सकता है ?

उ०– अपने कर्म से सम्बन्ध रखने वाले कार्य में अपने ही कर्म के अनुसार सहायता दे सकता है.

प्र०– किसके द्वारा चारों वर्ण द्रव्योपार्जन कर सकते हैं ? तथा अपनी वृत्ति चला सकते हैं ?

उ०– अपने-अपने कर्मों द्वारा हर एक वर्ण एक दूसरे से द्रव्य ले सकता है, तथा उसके बदले अपनी वृत्ति चला सकता है.

प्र०– जो अपने गुण कर्मों का उल्लंघन करे उसके लिये क्या व्यवहार तथा धर्माज्ञा है ?

उ०– कि उसे ब्राह्मण जाति च्युत करे, क्षत्री दंड दे, वैश्य उसका निर्वाह न करे तथा शूद्र सेवा न करे.

प्र०– यदि वह पतित पुनः कर्त्तव्य परायण हो जाय तो उसके लिये क्या व्यवस्था है ?

उ०– उसके निर्दोष होने पर पुनः जाति में ले लेवे.

प्र०– चारों वर्णों को (क्रम से) वास्तविक क्या उपाधि दी जा सकती है ?

उ०– शिक्षक, रक्षक, पोषक, शोषक.

प्र०– शूद्र को शोषक पदवी क्यों दी ?

उ०– क्योंकि वह सबका श्रम, धन तथा पुण्य शोषता है.

प्र०– इस वर्ण व्यवस्था का क्या हाल है ?

उ०– शूद्र को छोड़ बहुधा सबने अपने-अपने गुण, कर्म त्याग दिये हैं; इसलिये शूद्र धन्यवाद के योग्य है.

दोहा

हितकारी निज धर्म है, भयकारी परधर्म ।
प्राण जात हू राखिये, या ते अपनो धर्म ।।१।।
बालक हूको लीजिये, जो हो हित उपदेश ।
अनहित तृणवत त्यागिये, ब्रह्मा को आदेश ।।२।।
पठ पाठन याजन यजन, लेनो देनो दान ।
ब्राह्मण के षट कर्म ये, पालै विप्र सुजान ।।३।।
पठन यजन करि दान दे, न्याय दंड रखवाय ।
क्षत्री के षट कर्म ये, पालत नृप कहलाय ।।४।।
पठन यजन करि दान दे, कृषी वणिज गोपाल ।
वह षट कर्मी वैश्य है, धर्मी धनी विशाल ।।५।।
शिल्पकला बत कर्म कर, सब वर्णों को सेय ।
वह सज्जन वर शूद्र है, सदा सुखी दुख खेय ।।६।।

उपदेश ५

वर्ण धर्म त्याग फल

प्र०— अपना वर्ण का धर्म परित्याग ने से क्या गति होती है ?

उ०— चर्मकार के पुत्रवत.

प्र०— यह कथा कैसी है, कृपा पूर्वक सुनाइये ?

उ०— मध्य प्रदेश के नीमार जिले के अन्तर्गत एक बुरहानपुर नामक शहर है; वहां एक धनाढ्य चमार रहता था, जिसकी दूकान की दैनिक आय पच्चीस, तीस रुपये थी. किन्तु उसके केवल एकही पुत्र था, उसने बहुत धन व्यय करके अपने पुत्र को अंग्रेजी शिक्षा दिलाई, यहां तक की उसने एम. ए. पास करके विलायत की कई बड़ी परीक्षाएं पास की. किन्तु अपना वर्णधर्म का व्यवसाय न सीखा, वह अवसर पा एक छह सौ रुपये के उच्च पद पर नियुक्त हो गया, इधर माता-पिता का देहान्त हो गया, उधर उसने घर सहित दूकान बेचकर नोट खरीद लिये तथा एक बढ़िया बंगला किराये पर ले लिया, जिसे उसने—

तांबे पीतल के बर्त्तन के बदले चीनी तथा कांच के गिलासों से तथा दीपकके बदले लेम्प वगैरहसे सजाया, बढ़िया से बढ़िया चार घोड़े तथा दो बग्घियां खरीदी घोड़ों की सेवा के लिये दो साईस, बग्घी हांकनेके लिये एक कोचवान, खाना पकानेके लिये दो बावर्ची, घरू हिसाब लिखने के लिये एक क्लर्क, झाड़ू लगाने के लिये एक भंगी, पानी भरने के लिये एक भिस्ती, नितनये कपड़े धोने के लिये एक धोबी, पंखा खींचने के लिये एक कुली, बच्चों के खिलाने पिलाने के लिये दो दाइयां रक्खीं; आराम से दिन कटने लगे, इस बीच में चार पुत्र तथा तीन पुत्रियां भी हो गईं, आप साहेब के पोषाक में रहते थे, साहेब के नाम से पुकारे जाते थे, उन्हें चमार कहने की क्षमता किसी को न थी, किसी के मुख से चकार निकलते ही उसका चमड़ा उड़ा दिया जाता था, कोई भी रिश्तेदार बंगले पर आने

तथा मिलने न पाता था. कदाचित् कोई भूला भटका आ निकलता तो धक्के मारकर निकाला जाता था, दुर्दैव से एक दिन अकस्मात् ज्वर से पीड़ित हो स्त्री बच्चों को अनाधार छोड़ चल बसे. उनके मरते ही आमदनी बंद हो गई, किन्तु खर्च न घटा, क्योंकि संतान के मस्तक में पिता के उच्च पद की बू बस गयी थी, अन्त को अनापशनाप खर्च के कारण नोट फू, फा हो गये, इधर बंगले वाला अपना किराया और उधर नौकर लोग अपनी कई माह की तनख्वाह के लिये लड़ने लगे, निदान पानी के मोल घोड़े बग्गी आदि सामान बेचकर सबको निपटाया, नौकरों ने अपनी राह ली, इधर खाने को न रहा, उधर बंगले वाले ने निकाल बाहर किया, भीख मांगने की नौबत आई, किन्तु भीख भी कठिनता से मिलती थी, कई लोगों ने अपना पेशा करना तथा काम सीखने की सलाह दी, लड़के काम सीखने के लिये रिश्तेदारों के पास गये, किन्तु उन्होंने पहिली बातें सुना, कुत्ते के समान धुतकार दिया, इधर छप्पन का भयंकर अकाल पड़ा, उधर अन्न का मिलना दुश्वार हो गया, हा अन्न ! हा अन्न ! करते हुए आठों प्राणियों ने अत्यन्त कष्ट के साथ अपने-अपने प्राण विसर्जन कर दिये, इस तरह उस धनाढ्य चमार का निर्वंश हो पृथ्वी पर उसका नाम-निशान तक न रहा देखो ! अपने वर्ण धर्म का व्यवसाय त्यागने से उसका कितना भयंकर परिणाम हुआ, यदि वह अपनी जात का धन्धा करता तो क्या यह दशा होती ?

प्र०— यदि दिवाला निकल जाता तो ?

उ०— तौभी उसकी संतान को अपना धन्धा तो याद हो जाता, जिसके द्वारा वे उदर निर्वाह तो कर लेते, तथा दूसरे का मुंह तो ताकना न पड़ता, जिससे अन्त को ऐसा सत्यानाश तो न होता, इसलिये आजकल सैकड़ों भूखों मर रहे हैं.

प्र०— क्या वास्तव में आजकल ऐसा ही हो रहा है ?

उ०— इसमें क्या संदेह है; बहुतायत से हो रहा है, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य,

शूद्र सभी अपने-अपने वर्ण धर्म के व्यवसाय त्याग रहे हैं, देखो? वैद्य, ज्योतिषी, शास्त्री, रसायनी, वेदान्ती, ठाकुर, व्यापारी, किसान, ग्वाल, अहीर, ढीमर, सुथार, दर्जी, सुनार, लुहार, कुम्हार, तेली, तमोली, नाई, धोबी, कलाल, जुलाहे, कोरी, छीपे, काछी, कुरमी आदि अपने-अपने धन्धे छोड़ नौकरी करना अच्छा समझते हैं, अपना धन्धा न आप करते हैं और न अपनी संतान को सीखने तथा करने देते हैं, इसी कारण दिन प्रतिदिन अधोगति को प्राप्त हो रहे हैं, कई कुल नष्ट हो गये, कई हो रहे हैं, और कई होने के लिये उद्यत हैं तथा कई ऐसे मारे-मारे फिरते हैं, जैसे-धोबी का कुत्ता घर का न घाट का.

प्र०— धर्म शास्त्रने अपना खानदानी पेशा न बदलने का दबाव क्यों दिया?

उ०— क्योंकि परंपरा के तुल्य गुण, कर्मों के संस्कार उस संतान में ऐसे बस जाते हैं, जैसे तिल्ली में तेल, सांठे में रस, तथा काष्ट में अग्नि बसा रहता है और वह संयम द्वारा अनायास उपस्थित हो जाता है, तथा परम्परा तक संतान में बसा हुआ चला जाता है, देखो! मधुमक्खी तथा बर्र अपना छत्ता, बया तथा बुलबुल अपना घोंसला, अबाबिल अपना घर और रेशम, अंडी, टसर तथा कोसा अपनी गुफा किस बुद्धिमानी के साथ आप ही बिना सीखे बना लेता है, क्या कोई मनुष्य लाख प्रयत्न करने पर भी इन जीवों के गुण, कर्म के समान बिन सीखे बना सकता है, यह वही के परम्परा के संस्कार संयम का फल है, जो उनकी संतान में आया है, वह आप ही उदय हो जाता है, और भी देखो मनुष्य जिस व्यवसाय को आजन्म विचारपूर्वक करता है, व्यवसाय में पूर्ण दक्षता लाभ करता है, यदि वही जो उसके वंश परम्परा से चला आ रहा है उसे वह आ पूर्वक करे तो बताओ उसकी उन्नति का क्या ठिकाना है, परन्तु जिसके वंश में जो व्यवसाय कभी नहीं हुआ वह कष्ट से भी उतना अच्छा न कर सकेगा और अपने को व्यर्थ

शूद्र सभी अपने-अपने वर्ण धर्म के व्यवसाय तज रहे हैं, देखो ? वैद्य, ज्योतिषी, शास्त्री, रसायनी, वेदान्ती, ठाकुर, व्यापारी, किसान, ग्वाल, अहीर, ढीमर, सुथार, दर्जी, सुनार, लुहार, कुम्हार, तेली, तमोली, नाई, धोबी, कलाल, जुल्हाये, कोरी, छीपे, काछी, कुरमी आदि अपने-अपने धन्धे छोड़ नौकरी करना अच्छा समझते हैं, अपना धन्धा न आप करते हैं और न अपनी संतान को सीखने तथा करने देते हैं, इसी कारण दिन प्रतिदिन अधोगति को प्राप्त हो रहे हैं, कई कुल नष्ट हो गये, कई हो रहे हैं, और कई होने के लिये उद्यत हैं तथा कई ऐसे मारे-मारे फिरते हैं, जैसे-धोबी का कुत्ता घर का न घाट का.

प्र०— धर्म शास्त्रने अपना खानदानी पेशा न बदलने का दबाव क्यों दिया?

उ०— क्योंकि परंपरा के तुल्य गुण, कर्मों के संस्कार उस संतान में ऐसे बस जाते हैं, जैसे तिल्ली में तेल, सांठे में रस, तथा काष्ट में अग्नि बसा रहता है और वह संयम द्वारा अनायास उपस्थित हो जाता है, तथा परम्परा तक संतान में बसा हुआ चला जाता है, देखो ! मधुमक्खी तथा बर्र अपना छत्ता, बया तथा बुलबुल अपना घोंसला, अबाबिल अपना घर और रेशम, अंडी, टसर तथा कोसा अपनी गुफा किस बुद्धिमानी के साथ आप ही बिना सीखे पढ़े बना लेता है, क्या कोई मनुष्य लाख प्रयत्न करने पर भी इन जीवों के गुण, कर्म के समान बिन सीखे बना सकता है, यह वही उनके परम्परा के संस्कार संयम का फल है, जो उनकी संतान में बस गया है, वह आप ही उदय हो जाता है, और भी देखो ! जो मनुष्य जिस व्यवसाय को आजन्म विचारपूर्वक करता है, वह उस व्यवसाय में पूर्ण दक्षता लाभ करता है, यदि वही व्यवसाय जिसके वंश परम्परा से चला आ रहा है उसे वह आजन्म विचार पूर्वक करे तो बताओ उसकी उन्नति का क्या ठिकाणा रहेगा ? किन्तु जिसके वंश में जो व्यवसाय कभी नहीं हुआ वह उसे अत्यन्त कष्ट से भी उतना अच्छा न कर सकेगा और अपने अनमोल आयुष्य को व्यर्थ

खोकर भी न उतना लाभ उठा सकेगा; इसलिए धर्म शास्त्र ने अपने वर्ण के व्यवसाय को न छोड़ने की आज्ञा दी है.

प्र०— यदि उस व्यवसाय द्वारा उदर निर्वाह न हो सके तो क्या करे ?

उ०— उस दशा में अपने देश, काल, गुण, कर्म से सानुकूलता रखने वाले ऐसे किसी व्यवसाय को करले जिससे अपने वर्णाश्रम धर्म में विघ्न न पहुंचे.

प्र०— यदि उस व्यवसाय से अपने वर्णाश्रम धर्म में वाधा उपस्थित हो तो क्या करे ?

उ०— उसे कदापि न करे, चाहे प्राण भी चला जाय तो भी कुछ चिन्ता की बात नहीं.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि वह धर्म शून्य हो, संतान सहित पतित या नष्ट तथा भ्रष्ट हो जायगा. जिसका भयंकर फल तुम सुन चुके हो.

प्र०— क्या कारण है कि आजकल के विद्वान वर्षों तक विद्याध्ययन करके उस बात को नहीं समझते, और अपने वर्ण, आश्रम तथा धर्म को नष्ट कर कष्ट भोग रहे हैं.

उ०— क्योंकि उन्हें वर्णाश्रम धर्म की शिक्षा नहीं मिलती; (यह न्यूनता दूर होनी चाहिये).

प्र०— सिवाय इसके और किसी बात पर ध्यान देना योग्य है ?

उ०— जिस जाति का जो व्यवसाय हो, उसे उसी व्यवसाय की पूरी-पूरी शिक्षा दी जाय. अन्य को नहीं.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि विपरीत करने से सभी वर्णों के सनातन गुण, कर्म, धर्म तथा संस्कार में अन्तर पड़ेगा और ईर्षा, द्वेष, फूट फैलेगी, जिसके द्वारा महा अनर्थ उपस्थित होगा.

प्र०— ईर्षा द्वेषादि क्यों उपजेगा ?

उ०— क्योंकि जब तुम अन्य जाति के व्यवसाय करोगे तो उन्हें यह बात खटकेगी.

प्र०– यदि विद्वान अपने वर्ण के व्यवसाय को करे तो क्या फल निकलता है, उदाहरण देकर समझाओ ?

उ०– वह व्यवसाय उन्नति के शिखर पर पहुंच जाता है, देखो ? देवास में एक लखेरा है. जिसके चार पुत्र हैं, दो पुत्रों ने हिन्दी, मराठी, उर्दू, अंग्रेजी मिडिल तक पढ़ी, चित्रकारी सीखी, बाद दो तीन वर्ष नौकरी की, किन्तु अन्त को निर्वाह न होने से छोड़ दी और अपने पिता के पास चूड़ी बनाने लगे, एक पुत्र ने अपनी चित्रकारी रंग-रोगन का नमूना चूड़ी पर बना देखा; वह सबको बहुत ही पसंद आया. फिर क्या पूछो, जो चूड़ी पैसे दो पैसे में बिकती थी वह हुनर के बल से रुपया आठ आने को बिकने लगी, जिसके द्वारा वह लखेरा लखपति हो गया, उसका नाम लखमीचन्द है, अब उनका खानदान आनन्द कर रहा है.

दोहा

अपने-अपने वर्ण का, करो सदा व्यवसाय ।
भूल न कीजे अन्य का, धर्म कर्म गुण ढाय ।।१।। देखो !
वर्ण तजा सुर अन्न ने, त्यागा कर्म चमार ।
चमगीदड़ ने गुण तजा, होगा तैसा हार ।।२।।

चौपाया

धर्म सनातन सबको राज, वर्ण, कर्म, गुण ताके काज ।।१।।
एकहु त्यागे चारों जाय, याते इन दृढ़ रखो बचाय ।।२।।

उपदेश ६

वर्णरूपी शरीर

प्र०– वर्ण को शरीर की उपमा क्यों दी ?

उ०– क्योंकि ब्रह्माजी ने शरीर के संयम द्वारा वर्ण व्यवस्था स्थापन की.

प्र०– शरीर क तो मुखादि, भुजादि, उरादि, पादादि नामक चार अंग हैं, अर्थात् शिखा से लेकर कंठ तक मुखादि, दोनों हाथों सहित कंठ से लेकर हृदय तक भुजादि, हृदय से लेकर मदन स्थान तक

उरादि और मदन स्थान से लेकर पगतली तक पादादिक है; जिन्हें विस्तार भय से शास्त्रों ने मुख, बाहु, उरू पाद कहा है ?

उ०– उसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र ये वर्ण के चार अंग हैं.

प्र०– मुख के तो वामांग, दक्षिणांग नामक दो अंग हैं ?

उ०– उसी प्रकार ब्राह्मण के पंचगौड़, पंचद्राविड़ नामक दो भेद हैं; जिनमें से पहिला अंग नर्मदा के उत्तर में तथा दूसरा दक्षिण में रहता है.

प्र०– मुख के तो कई अंग प्रत्यंग हैं ?

उ०– उसी प्रकार ब्राह्मण के कई भेद प्रभेद हैं.

प्र०– मुख के अंगादिक तो क्रम से सुन, देख, सूंघ, पीस, विचार, चख तथा कह सकते हैं.

उ०– उसी प्रकार ब्राह्मण सब वर्णों के सुख-दुख के कारण को सुन, देख तथा जांचकर दुख नष्ट कर सकते और विचारपूर्वक यथार्थ निर्णय-कर उपदेश दे सकते हैं.

प्र०– मुख को तो अपने निरक्षण तथा उपदेशादि के बदले हाथ भोजन देते हैं ?

उ०– उसी प्रकार ब्राह्मण का प्रतिपालन क्षत्री आदिक करते हैं.

प्र०– मस्तक में तो बुद्धि का वास है ?

उ०– तभी ब्राह्मण में शम, सन्तोष, विचार, सत्संग आदि सद्गुण पाये जाते हैं.

प्र०– भुजा के तो दो अंग हैं, दाहिना तथा वायां ?

उ०– उसी प्रकार क्षत्री के सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी नामक दो अंग हैं.

प्र०– भुजादिक के तो कई अंग प्रत्यंग हैं ?

उ०– उसी प्रकार क्षत्री के कई भेद प्रभेद हैं.

प्र०– हाथ तो सम्पूर्ण शरीर की पूर्ण प्रकार से रक्षा करते व सब प्रकार की विघ्न बाधाओं को टालते तथा कष्ट दाता को दंड देते हैं और शरीर के सब अंगों की अपेक्षा अधिक बलवान साहसी तथा पराक्रमी होते हैं.

उ०– उसी प्रकार क्षत्री सब वर्णों की रक्षा करते, उनके विघ्नों को टालते,

तथा जो किसी को पीड़ित करता है, उसे दंड देते हैं और सब वर्णों की अपेक्षा अधिक बलवान, साहसी, शूर तथा पराक्रमी होते हैं.

प्र०– हाथ तो सर्वांग की शक्ति द्वारा अपना पराक्रम दिखाते हैं ?

उ०– उसी प्रकार क्षत्री सब वर्णों के सहारे पराक्रम दिखाता है.

प्र०– वक्षस्थल में तो मन का वास है ?

उ०– इसीलिये क्षत्री रजोगुणी होते हैं.

प्र०– उर तो एक है ?

उ०– उसी प्रकार वैश्य एक है.

प्र०– उर तो षटरस सहित अन्न-जल को ग्रहण करके, उसके द्वारा रसादि बनाकर सम्पूर्ण शरीर के अंग प्रत्यंगों को पहुंचाता तथा उन्हें पोषता है और पुत्रादिक संतान उपजाता है ?

उ०– उसी प्रकार वैश्य अन्नरस कस आदि के व्यवसाय तथा कृषि और गोरक्षा द्वारा सब वर्णों का उदर निर्वाह करता है.

प्र०– उदर व्यवसाय के स्थूल भेद तीन हैं.

उ०– उसी तरह व्यवसाय के अनुसार वैश्य के तीन भेद हैं; वणिक, कृषक और ग्वाल.

प्र०– उदर के अन्तर्गत कई अंग प्रत्यंग हैं ?

उ०– उसी प्रकार वैश्य जाति के अन्तर्गत कई भेद प्रभेद हैं.

प्र०– नाभी में तो चित्त का निवास है ?

उ०– इसलिये सब वैश्य परिणाम का चिंतवन किया करते हैं.

प्र०– चिद्रूप जीव की रक्षा तो उदर के हाथ है ?

उ०– उसी प्रकार चारों वर्णों की जीवन रक्षा वैश्य के हाथ है.

प्र०– यदि उदर अपना व्यवसाय एक क्षण भी बंद रक्खें तो हाथ पैर आदिक सब अंग निर्जीव हो जाते हैं ?

उ०– उसी प्रकार वैश्य अपना व्यवसाय रोक दे तो चारों वर्ण निर्जीव हो जावेंगे.

प्र०– पाद तो दो हैं; दक्षिणपाद, वामपाद ?

उ०– उसी प्रकार शूद्र के दो भेद हैं; पावन, अपावन.

प्र०– पादों के कई अंग प्रत्यंग हैं ?

उ०– उसी प्रकार शूद्रों के कई भेद प्रभेद हैं.

प्र०– पैर तो परिश्रम करते हुए, सम्पूर्ण अंग का भार उठाये चलते हैं ?

उ०– उसी प्रकार शूद्र शिल्पकर्म आदि करते हुए सब वर्णों की सेवा करते हैं.

प्र०– शीर्ष को आधार तो निचले तीनों अंगों का है ?

उ०– उसी तरह ब्राह्मणों को आधार शेष तीनों वर्णों का है.

प्र०– वक्षस्थल को आधार तो निचले दोनों अंगों का है ?

उ०– उसी तरह क्षत्री को आधार वैश्य शूद्र का है.

प्र०– उदर का आधार पाद है ?

उ०– उसी तरह वैश्य का आधार शूद्र है.

प्र०– मुखादि के दुखित होने से सम्पूर्ण शरीर की व्यवस्था बिगड़ जाती है?

उ०– उसी प्रकार ब्राह्मणों के दुखित होने से वर्णों की व्यवस्था बिगड़ जाती है.

प्र०– भुजादि के दुखित होने से सम्पूर्ण शरीर की रक्षा असाध्य हो जाती है ?

उ०– उसी प्रकार क्षत्री के दुखित होने से सम्पूर्ण वर्णों की रक्षा होना दुस्तर हो जाती है.

प्र०– उरादि के दुखित हुए सम्पूर्ण शरीर का रहना कठिन हो जाता है ?

उ०– उसी प्रकार वैश्यों के दुखित होने से सब वर्णों का जीवन कठिन हो जाता है.

प्र०– पैरों के दुखित होने से सम्पूर्ण शरीर का चलना कठिन हो जाता है?

उ०– उसी प्रकार शूद्रों के दुखित होने से सब वर्णों के व्यवहारिक कार्य रुक जाते हैं.

प्र०– जब शरीर के चारों अंग प्रसन्नतापूर्वक अपना-अपना कार्य दत्तचित्त से करते हैं; तब सम्पूर्ण अंग सुखी होते हैं ?

उ०– उसी प्रकार जब चारों वर्ण प्रसन्नतापूर्वक कटिबद्ध होकर अपना-अपना कार्य सम्पादन करते हैं, तब वे सब वर्ण सुखी होते हैं.

दोहा

याते निज-निज कर्म नित, करो सबहि चित लाय ।
नहिं तो फिर पछतावगे, तन, धन, धर्म नसाय ।।१।।

उपदेश ७

अंग देश का सत्यानाश

प्र०– अंग देश का सत्यानाश किसने किया ?

उ०– दुर्भाव की पोती, अपकार की पुत्री, अनहित की बहिन अर्थात् महाडाकिन फूट रांड ने किया.

प्र०– किस तरह ?

उ०– उसने अंग देश की प्रजा को हृष्ट पुष्ट देख लालच के वशीभूत हो लार टपकाय मन ही मन कुचक्र सोच सुचाय, युक्तिपूर्वक प्रत्येक प्रजा से अलग-अलग एकान्त में मिल मिलाय उलटी पट्टी खूब पढ़ाय बहका के आपस में लड़ा दिया, जिससे अंग देश का सत्यानाश हो गया.

प्र०– किस तरह किसे बहकाया ?

उ०– हाथों से कहा कि वाह-वाह जी तुम तो सबके बेदाम गुलाम बन गये हो, जो बहुत परिश्रम से कमाते हो और बैठे ठाले मुफ्तखाऊ मुख को खिलाया करते हो, यह तुम्हें क्या दिये देता है. पैरों से कहाकि क्या तुम बेदाम के कुली हो, जो सब अंगों का बोझ उठाये फिरते हो, तथा मुख से कहा कि तुम्हारे इन उपदेशों से तुम्हें सब क्या लाभ पहुंचाते हैं, जिस कारण तुम पीस-पीस कर हैरान होते हो, इत्यादि इसी प्रकार सबको बहका दिया.

प्र०– ऐसा करने से सब इन्द्रियों ने क्या किया ?

उ०– आपस में विरोध मान एक दूसरे का कार्य न करने का प्रण ठान लिया.

प्र०– तब क्या हुआ ?

उ०– तब ऐक्यता घबराई तथा विव्हल हो उसने सबसे कारण पूछा और सबने यथाक्रम कर्म त्याग का कारण सुनाया.

प्र०– पैरों ने क्या कहा ?

उ०– पैरों ने कहा कि हम अत्यन्त कष्ट के साथ शीत उष्ण सहते हुए तथा ठोकरें खाते हुए दिनरात सबका बोझ उठाये फिरते हैं, तिसपर हमें सब नीच कह कर हमारा अपमान करते हैं, इसलिये अब हम किसी का बोझ न उठावेंगे.

प्र०– हाथों ने क्या कारण बताया ?

उ०– हाथों ने कहा कि हम शीत, उष्ण सहते हुए रात-दिन सबकी रक्षा किया करते तथा अत्यन्त परिश्रम से कमा के बैठे ठाले मुख को खिलाया करते हैं, किन्तु जरा चुकते ही दांत हमें काट खाते हैं; इसलिये अब हम किसी की रक्षा आदिक न करेंगे.

प्र०– मुख ने क्या कहा ?

उ०– कि मैं कानों द्वारा सबके सुख-दुख की खबर सुन, आंखों द्वारा देख, बुद्धि द्वारा विचार कर, सबको चिताता रहता हूं; मेरा कोई अंग प्रत्यंग निकंमा नहीं है, तो भी सब मुझे मुफ्तखाऊ कहकर मेरा अपमान करते हैं, इसलिये अब मैं ये काम कदापि न करूंगा.

प्र०– मुख के प्रत्यंग दांतों ने क्या कारण बताया ?

उ०– दांतों ने कहा कि हम तो प्रतिदिन पीस-पीस कर मरे जाते हैं, किन्तु जीभ नित मौज उड़ाती तथा हमें तरसाया करती है, यदि हम उसमें से कुछ अपने लिये रख लेते हैं, तो भीतर से जीभ और बाहर से हाथ हमें दिक करके छीन लेते हैं. इसके द्वारा सिवाय अपमान के हमारा कुछ लाभ नहीं होता, इसलिये अब हम यह काम कदापि न करेंगे.

प्र०– मुख के प्रत्यंग जीभ ने क्या कारण बताया ?

उ०– जीभ ने कहा कि मैं शुष्क अन्न को गीला करके रसकस की परीक्षा कर उदर के कोठे में भर दिया करती हूं, इस हम्माली में मुझे क्या बचता है, तिस पर दांत क्रुद्ध हो मुझे काट लिया करते हैं, इसलिये अब मैं काम करना छोड़ देती हूं.

प्र०— पेट ने क्या कहा ?

उ०— पेट ने कहा कि मैं अन्न का रसादि बना सम्पूर्ण अंग देश की प्रजा के घर-घर पहुंचा कर इन्हें पोषता हूं और अंग देश के राजा जीवन-दास की रक्षा करता हूं, तथा संतति उपजा के संतान वृद्धि करता हूं, यदि ये सब अपना-अपना काम छोड़ देंगे; तो मुझे निराश हो अपना काम छोड़ देना पड़ेगा.

प्र०— तब ऐक्यता ने क्या कहा ?

उ०— ऐक्यता ने अंग देश की सब प्रजा को सम्बोधन करके कहाकि देखो ! जिस किसी ने मुझे स्वीकारा है, वह उन्नति के शिखर पर पहुंचा है, तथा वही सुख चैन से अपने दिन काट रहा है, देखो ! परम लघु चीटियां मेरे कारण परमानन्द के साथ अपने बिलरूपी देश में कालक्षेप करती हैं, किन्तु मक्खियां फूट के कारण गृहहीन हो उष्ण, शीत, वर्षा का दुख भोगती हुई, जहां तहां भोजन के हित प्राण गमाती फिरती हैं, जरा सोचो तो सही! यदि कान न सुनें, आंखें न देखें, पांव न चलें, हाथ न रक्षें, तथा अन्न संग्रह करके मुख को न दें, दांत न पीसें, जीभ उस पिष्ट को पेट में न डालें, और पेट उसका रसादिक बना, सब अंग देश की प्रजा को न पोषे तो बताओ तुम्हारा और अंग देश का क्या हाल होगा ? क्या उस दशा में तुम हृष्टपुष्ट तथा सबल रहोगे ? क्या उस दशा में तुम अपने अंग देश के राजा जीवनसिंह की रक्षा कर सकोगे ? क्या ऐसा अवसर पा कालरूप शत्रु सहज ही में उसे मार न लेगा ? फिर राजा के नष्ट होने पर तुम तथा तुम्हारा अंग देश क्या अचल बना रहेगा ? इस प्रकार बहुत कुछ समझाया किन्तु किसीने कुछ लक्षय न दिया.

प्र०— सबने क्या प्रत्युत्तर दिया ?

उ०— सबने कहा कि, हम समझ गये, तू मुफ्तखाऊ पेट की वकालत करने आई है, जा अपना रास्ता नाप, हम तो कोई काम न करेंगे.

प्र०— फिर क्या हुआ ?

उ०— इधर ऐक्यता उदास होकर चली गयी, उधर फूट हुलसा उठी,

अपने-अपने काम छोड़ दिये; जिसके द्वारा अल्पकाल में सब इन्द्री-रूप प्रजा बलहीन हो मृत प्रायः हो गयी; तब सबको ऐक्यता का उपदेश याद आया, सबने मिल बड़ी भारी सभा की, उस सभा में सबने एक मत हो यह नियम पास किया कि कल प्रातःकाल से हम सब अपना-अपना कार्य प्रसन्तापूर्वक करेंगे; किन्तु अकुलाती हुई फूट द्वारा काल शत्रु ने खबर पाकर अन्धेरी रात में जब सब प्रजा अचेत पड़ी थी, अंग देश के राजा जीवनसिंह को जा दबाया और प्रजा के सचेत होने के पूर्व ही उसे मार लिया तथा सम्पूर्ण अंग देश में आग लगा दी, जिससे प्रजा सहित अंगदेश समूल नष्ट हो गया.

प्र०– इसका तात्पर्य क्या है ?

उ०– अर्थात् जब हम सब इन्द्रियरूपी भिन्न-भिन्न वर्ण, फूट, त्याग, स्वकर्मनिष्ट हो परस्पर सहानुभूति रक्खेंगे तभी स्वदेह तथा स्वदेश का परमहित होगा अन्यथा नहीं.

प्र०– केवल अपना स्वकर्म ही क्यों करणीय है ?

उ०– क्योंकि वंशपरम्परा की लगातार कर्त्तव्य परायणता द्वारा अपना कर्म स्वयं स्वभाव सिद्ध हो जाता है, अन्यथा नहीं.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह मधु मक्खियों का मधु मोम तथा छत्ता बनाना.

प्र०– किस तरह हस्तादि कमा, मुख को कौर देते, दंत उसे चूर्ण करते, जिह्वा उसे गीलाकर नीचे सरकाती, फिर वह पेट उस रसद्वारा सींच, सब इन्द्रियों को पोषता तथा संतति उपजता है ?

उ०– जिस तरह क्षत्री आदि कमा, ब्राह्मण को भोजन देते, कर्मेष्ठी विप्र उसके द्वारा यज्ञ कर्म करते, उसे ले मेघ दिव्य जल वर्षाते, उस जल द्वारा वैश्य कृषि आदि कर. सबको पोषता तब सब प्रजा वृद्धि को प्राप्त होती है.

दोहा

एक पिता के पुत्र ये, शुद्ध वर्ण ये चार ।
कर्म भेद सों प्रथक सब, पर इक धर्म विचार ।।१।।

धर्म अंग इक देश के, अंश जु चारों वर्ण ।
कर्म भेद तन चार भे, जस मुख, भुज, उर, चर्ण ।।२।।
एक काम को एक ही, करै चित जो लून ।
काम साफ पुनि तुरत व्है, तर्क बढ़ै व्यय न्यून ।।३।।
याते निज कर्त्तव्य को, दृढ़ धारो हुलसात ।
पर केरे कर्त्तव्य में, भूल न डारो हात ।।४।।
बढ़ई के कर्त्तव्य में, कपि ने डार्यो हात ।
हात पूंछ तहं पिच गयी, तड़फि मर्यो वह तात ।।५।।
तापर निज कर्त्तव्य को, जो त्यागोगे भूल ।
नसिहौ अंग जु देशवत, ढूंढे मिलै न मूल ।।६।।
फूट न फोरै वस्तु क्या, टोरै क्या ना द्रोह ।
हिंसा क्या ना हनै नित, खोवै क्या ना कोह ।।७।।
याते हिलमिल चालिये, कीजे अपनो काम ।
धर्म सनातन सेइये, सुख सो अपने धाम ।।८।।

उपदेश ८

वर्णाभाव दोष

प्र०– वर्ण व्यवस्था के अभाव से क्या दोष उपजता है ?

उ०– यह बात सब कोई जानता है कि व्यवस्था के बिना यत्किंचित् कार्य भी निर्विघ्नता पूर्वक, सुसम्पन्न नहीं हो सकता, उस दशा में आप ही कहिये कि मनुष्य मात्र के अनंत संसारिक कर्त्तव्य बिना व्यवस्था के किस प्रकार एक ही के द्वारा सुसिद्ध हो सकेंगे ?

प्र०– भारतवर्ष के सदृश जहां वर्ण व्यवस्था नहीं, वहां किस प्रकार व्यवहार सिद्ध होता है ?

उ०– पृथ्वी पर ऐसा कोई सभ्य देश नहीं जहांपर किसी न किसी प्रकार की व्यवस्था न हो। अलबत्ता ! जहांपर सनातन वर्ण-व्यवस्था की विधि नहीं; वहां पर कृत्रिम व्यवस्था निर्माण कर ली जाती है.

प्र०— कृत्रिम व्यवस्था किसकी प्रतिच्छाया है ?

उ०— हमारी सनातन वर्ण व्यवस्था की.

प्र०— सनातन वर्ण व्यवस्था में क्या गुण हैं ?

उ०— अपने सनातन गुण कर्म के संस्कार आप ही आप अपने वंशजों में उदय हो जाया करते हैं; शिक्षण की अधिक आवश्कता नहीं पड़ती.

प्र०— क्या प्रमाण ?

उ०— देखो ! भारतवर्ष की वणिक जाति विद्वान न होने पर भी, वह व्यापारिक तत्वों में कुछ कम विज्ञ नहीं, यह वणिक जाति के सनातन गुण कर्म का फल है.

प्र०— यदि भारतवर्ष में सनातन वर्ण व्यवस्था न होती, तो क्या होता ?

उ०— अब तक अपढ़ जातियों में शिल्प, वाणिज्य, कृषि आदि कला-कौशल्य के तत्व शेष न रहते और न सनातन मर्यादा स्थिर रहती.

प्र०— कृत्रिम व्यवस्था में क्या दोष है ?

उ०— वह विघ्नों के उपस्थित होते ही नष्ट हो जाती है, फिर नवीन व्यवस्था करने में अमित परिश्रम, द्रव्य तथा समय की आवश्यकता पड़ती है, तथा अनेक संकट सहते हुए भी वंशजों को सनातन लाभ नहीं पहुंचता.

प्र०— कृत्रिम व्यवस्था से कब अधिक लाभ पहुंच सकता है ?

उ०— जबकि कृत्रिम व्यवस्था का प्रत्येक जन अपना-अपना पेशा अपनी सन्तान के लिये अचल कर दे और फिर भूलकर भी अन्य के पेशे में हस्तक्षेप न करे.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि जब हरएक मनुष्य एक दूसरे के व्यवसाय में हस्तक्षेप करेगा, तो किसी व्यवसाय में भी लाभ न रहेगा और न कदापि वह उन्नति के शिखर पर पहुंच सकेगा, वरन उल्टा परस्पर का विरोध बढ़ अमंगल करेगा.

प्र०– क्या अन्य देश इस बात को स्वीकारेंगे ?

उ०– क्यों न स्वीकारेंगे ? खुद स्वीकार ही रहे हैं; देखो ! बहुधा विदेशी विद्वान अपना सम्पूर्ण आयुष्य किसी एकही काम में लगा देना पसंद करते हैं व लगा भी देते हैं, बहुत से वैज्ञानिक जन्मज गुणकर्म के संस्कार के पक्षपाती हैं, व कई अपने व्यवसाय की रजिस्ट्री या ठेका करा लेते हैं और कई पास या लैसन्स ले लेते हैं.

प्र०– यह विधि क्यों चलाई गई ?

उ०– जिसमें कोई किसी अन्य के व्यवसाय में हस्तक्षेप कर, उसे हानि न पहुंचा सके, अर्थात् जिसका पेशा वही करे.

प्र०– हम तो कर्मों के संस्कार द्वारा अन्त्यजों को भी द्विज बना लेते हैं ?

उ०– ठीक है ! किन्तु जब आप स्वयं अन्त्यजों के कर्मों से संस्कृत होते हैं। तब खुद आप अपने को अन्त्यज क्यों नहीं कहते ?

प्र०– बहुत से लोग वर्ण व्यवस्था को नहीं मानते ?

उ०– उन लोगों को बाबू साहब की कथा याद न होगी ?

प्र०– यह कथा कैसी है ? कृपाकर सुनाइये !

उ०– एक दिन शाम के वक्त वर्ण व्यवस्था के न मानने वाले एक बाबू-साहब ने अपने आदमियों के सामने वर्णव्यवस्था के खंडन का एक बड़ा भारी व्याख्यान दिया, उसका असर उन लोगों पर इतना पड़ा कि उन सबने बाबू साहब के समक्ष इस बात का प्रण कर लिया, कि हम लोग आज तारीख से वर्णव्यवस्था को कदापि न मानेंगे; आपने हमारे हक़ में निहायत अच्छा किया, जोकि हमें आजाद बना दिया; लेकिन आजतक हमने कोई दीगर पेशा नहीं किया है, इसलिये हमें अनेक विघ्न दिखाई देते हैं, बाबू साहब ने कहा—हम सब सुविधा कर देंगे। दूसरे दिन प्रात:काल को बाबू साहब ने मनोचित व्यवस्था कर दी; उसके अनुसार भंगी ने रसोई बनाई, धोबी ने पानी भरा, ढीमर ने जमाखर्च लिखा, लालाजी ने बाल बनाये, नाई ने कपड़े धोए, इत्यादि; किन्तु किसी का भी काम ठीक-ठीक न हुआ, यह देख बाबू साहब ने उन लोगों को आर्टस्कूल

में भरती होने का अवसर दिया, वे एक घण्टे के लिये प्रति-दिन आर्टस्कूल में जाने भी लगे, किन्तु नया काम सीखने में कई अड़चनें पड़ीं तथा मास्टर ने कहा कि तुम लोगों को कम से कम दो वर्ष पढ़ना पड़ेगा ? इधर किसी प्रकार सात दिन व्यतीत हुए, उधर सात दिन से बाबू साहब का पाखाना किसीने न झाड़ा, मारी संडास सड़ उठी, तब बाबू साहब ने आदमियों को डाटा तब सबने कहा कि साहेब हमें यह काम करना मंजूर नहीं है, और न हम इस पाखाने में जाते हैं; भंगी ने कहा हुजूर ! मैं तो आपके हुक्म के मुवाफ़िक खाना पकाता हूं, जबकि हुजूर ने मुझे बावर्ची का काम सौंपा, तब मैं समझा था कि यह काम किसी और के सुपुर्द किया जावेगा लेकिन जब आपने यह काम किसी को न सौंपा तब मैंने समझा कि यह काम खुद बाबू साहेब ही करेंगे और मैं अब आपकी व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण बन गया हूं, इसलिये अब मैं यह घृणित कार्य कदापि न करूंगा, आपके घर में स्त्री पुत्रादिक समेत बारह मनुष्य हैं, और यह सात दिन का मैला है, इसे मैं सरे बाजार सिर पर रख कर किस तरह एक मील तक ले जा सकूंगा ? किन्तु आपको किसी तरह का हर्ज नहीं, क्योंकि वह आपही का मैला है; यह सुन बाबू साहेब बहुत चकराये तथा लज्जित हुए और कहाकि यह मेरी बड़ी भूल हुई, माफ करो; जबकि यहां सनातन वर्ण व्यवस्था मौजूद है, उस हालत में उसे रद्दकर कृत्रिम व्यवस्था बनाने की कुछ जरूरत नहीं है, इसलिये जिसका जो पेशा हो वही सीखे तथा वही यावज्जीवन करे और उसी अपने पेशे की आप उन्नति करे, यह उन्नति का सुख-साध्य उपाय है; इसके विपरीत अपार हानि है.

प्र०– वर्ण व्यवस्था के प्रभाव का परिणाम छन्द में कहो ?

उ०– **वर्ण व्यवस्था जो ना होती, तो खुद आपही क्या क्या करता ।**
एक मनुज के काम अनेकों, आपही से कस पूरा पड़ता ।।
इतने काम कभी ना बनते, चाहे वो नित पचपच मरता ।
जो बरजोरी सों कुछ करता, तो भी वो ना ठीक सुधरता ।।

प्र०— सनातन वर्ण व्यवस्था का फल छंद में कहो ?

उ०— **वर्ण व्यवस्था भली सनातन, परम्परा तक जीती है ।**
अनायास गुण कर्म वंश का, उदय होत कुल रीति है ।।
द्रव्य, समय, श्रम भी बच जाता, निज विद्या बढ़तीती है ।
निज संतान लाभ लह सकती, परमुख आशा बीती है ।।

उपदेश ९

शिक्षा

प्र०— आधुनिक शिक्षा की प्रणाली कैसी है ?

उ०— उत्तम होने पर भी उसमें कुछ बड़े दोष हैं.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि प्रथम तो साधारण शिक्षा ही में बालकों के आयुष्य का एक बृहदंश नष्ट हो जाता है, जिस कारण वे या तो बेपढ़े या अल्प पढ़े रह जाते हैं या पढ़ते ही पढ़ते परलोक सिधार जाते हैं. और जो कदाचित् उच्च शिक्षा प्राप्तकर भी लेते हैं, तो उनकी बहुधा (उग्र परिश्रम के कारण) आरोग्यता नष्ट हो जाती है, तथा वंशज व्यवसाय के योग्य नहीं रहते या नहीं करते.

प्र०— और क्या दूषण है ?

उ०— उच्च शिक्षा में बहुत द्रव्य व्यय होता है, जिस कारण बहुत से लोग ऋणी हो जाते हैं, या उच्च शिक्षा से वंचित रह जाते हैं, और जो शिक्षा पा भी लेते हैं, वे सिवाय नौकरी के जैसा चाहिये वैसा लाभ न आप उठा सकते हैं, और न सर्व साधारण को पहुंचा सकते हैं, जो कदाचित् उन्हें नौकरी न मिली तो फिर उस दशा में केवल धनपात्र को छोड़, उनकी क्या दशा होती है; यह कहना ही कठिन है.

प्र०— और क्या दूषण है ?

उ०— बहुधा शिक्षाकी पुस्तकों में सारशून्य बातें भी उपस्थित हैं, जिसके

द्वारा सनातन वर्ण व्यवस्था नष्ट हो रही है, और उसी कारण आजकल के शिक्षित लोग बहुतायत से अविद्यान्धकार में पतित हो अपने को महाविद्वान तथा औरों को महामूर्ख समझने लगते हैं, और अपने पूर्वजों को महा जंगली बताते हैं, किन्तु आप खुद स्वयं अविद्वानों के तद्वत आचरते हैं.

प्र०– इसका क्या कारण है ?

उ०– उन्हें सनातन धर्म की शिक्षा नहीं दी जाती, तथा ऐसे योग्य शिक्षक या गुरु बहुधा कम पाये जाते हैं, जो विद्यार्थियों के आचरण सुधारें, सिवाय दीर्घकाल तक धर्म शिक्षा से रहित समुदाय की अहोरात्र संगति रहती है, इसी कारण भ्रष्टाचरणी हो जाते हैं.

प्र०– इस विरुद्धाचरण से क्या हानि है ?

उ०– देश, धर्म, वर्ण, आश्रम, राजा, प्रजा सबकी अपार हानि है, देखिये ! तभी तो उच्च शिक्षारूपी भित्ति राजद्रोहरूपी विषम गर्त में पतित हो रही है, जिसके फल से राजा प्रजा सबकी सुखशांति भंग हो रही है, और इन्हीं विरुद्धाचरणियों के कारण सनातन वर्णाश्रम धर्म दिनप्रतिदिन मृतप्राय: हो रहा है, तथा सबकी अधोगति कर रहा है.

प्र०– हमें क्या उचित है ?

उ०– हमें ऐसी शिक्षा प्रणाली प्रचलित करना उचित है, कि जिसके द्वारा किसी के प्राकृतिक धर्म, कर्म में बाधा उपस्थित न हो समस्त देश में सुखशांति बिराजै तथा राजा प्रजा का मंगल हो.

प्र०– सुशिक्षा हेतु क्या है ?

उ०– मनुष्य को सदाचरणी, कर्मपटु तथा विद्वान बनाना.

प्र०– इसलिये आधुनिक शिक्षा में क्या सुधार किया जाय ?

उ०– [१] पाठ्य पुस्तकों में एक भी शब्द निरर्थक न ठूंसा जाय वरन उनमें प्राकृतिक कर्म, धर्म, व्यवहार, नीति, व्यायाम, उद्योग, ब्रह्मचर्य, कलाकौशल तथा अनेक सतशास्त्रों के सदुपदेश संक्षिप्त व सरल भाषा में रक्खे जायं.

[२] पाठ्यपुस्तकों का हर विषय प्राकृतिक विज्ञान द्वारा सिद्धकर इतनी सुगम विधि से बालकों के हृदय में जंचाया जाय कि जिसके द्वारा उनकी मानसिक शक्ति का विकास तथा नवीन आविष्कार शक्ति का प्रादुर्भाव होकर अल्प काल में सुकार्य-पटु विद्वान बनें तथा स्वप्न में भी सदाचरण का उल्लंघन न करें.

[३] सत्संगति, सदाचरण, ब्रह्मचर्य, उचित खानपान, स्वच्छता तथा व्यायाम की ओर तनमन से ध्यान देना चाहिये, क्योंकि इन्हीं के द्वारा, सद्गति, आरोग्यता, बलबुद्धि, पराक्रम तथा आयुष्य की वृद्धि होती है.

[४] जिस वर्ण का व्यवसाय उसी वर्ण को सिखाया जाय, चाहे वह नवीन ढंग का हो चाहे प्राचीन ढंग का; क्योंकि उसे वह काम, अपने वंशज संस्कार के कारण जितना उत्तम व शीघ्र समझ में आ सकता है, उतना अन्य को नहीं, किन्तु इसकी शिक्षा भिन्न तथा निज पाठशाला के अतिरिक्त किसी बड़ी दूकान या कारखाने में दी जाय.

प्र०– शिक्षक कैसा चाहिये ?

उ०– सदाचरणी, कार्यपटु, अनुभवी तथा विद्वान.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि जैसा गुरु होता है, वैसा ही शिष्य हो जाता है, जैसे भृंग के सहवास से कीट भी भृंग हो जाता है.

प्र०– इसलिये क्या लोकोक्ति है ?

उ०– गुरु कीजिए जानी अरु पानी पीजिये छानी.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि आजकल के बहुधा गुरु ही अनर्थ के मूल हुआ करते हैं, तभी तो उनके फल से भयंकर परिणाम फल रहे हैं.

प्र०– गुरु किसे कहते हैं ?

उ०– जो गौरव तथा मर्यादा करने के योग्य हो.

प्र०– गुरु शब्द का क्या अर्थ है ?

उ०– [गु] का अर्थ अंधकार या मल, और [रु] का अर्थ हारक या प्रकाशक है, इसलिये गुरु का अर्थ हुआ; अज्ञानांधकाररूपी मल को हरकर हृदयाकाश में प्रकाश कर देने वाला.

प्र०– पाठशाला आदि के व्यय निर्वाह की उत्तम युक्ति क्या है ?

उ०– धर्मादा, जातिफंड या चन्दे से जायदाद खरीद या कोई कारखाना या कम्पनी खोल, उसके शुद्ध नफे से पाठशाला आदि चलाई जावे.

प्र०– इसमें सरकार का क्या कर्त्तव्य है ?

उ०– कि वह भी सहायता करे और जो धर्मगुरु, धर्माध्यक्ष, पाठक, आचार्य, गोसांई, वैरागी, साधू, संत, व्यास, पौराणिक, पंड्या, पुजारी या कोई जाति भाई का निर्वंश हो या कोई अयोग्य समझा जाय तो उसकी जागीर, जायदाद वर्षाशन आदि जप्त न करके, उसे शिक्षा वृद्धि के अर्थ पंचों को दे देवें.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि उपरोक्त सज्जनों की वृत्ति का हेतु भक्ति, परोपकार, धर्म, ज्ञान, विद्या आदि का विस्तार करना है, इसलिये वह रकम अन्य काम में लगाई जाय ?

दोहा

धर्म सनातन तुल्य सब, निज निज शिक्षा पाय ।
कीजे नित व्यवसाय नित, संयम सों लव लाय ।।१।।
भ्रष्ट सीख तज दीजिये, राजद्रोह को मूल ।
प्रीती सों सुख होत जग, होत द्रोह सों शूल ।।२।।
निज शिक्षा निज मात है, पर शिक्षा पर मात ।
स्वयं धर्म है निज पिता, अन्य धर्म पर तात ।।३।।
निज विद्या गुण कर्म वत, अनायास आ जाय ।
जिमि छत्ता मधुमक्खियां, लखु कस लेत बनाय ।।४।।
वर्ण धर्म तजनो बुरो, बुरो जु धर्म अभाव ।
याते निज निज धर्म वत, निज निज शिक्षा पाव ।।५।।

बिन निज शिक्षा के लहै, नसत स्वयं गुण धर्म ।
धर्म नसे नस जात सब, है निज शिक्षा पर्म ॥६॥
अचल व्यवस्था के बिना, रहे न निज व्यवसाय ।
ता बिनसे वो कर्म गुण, धर्म सहित बिनसाय ॥७॥
विद्या दै विद्या मिलै, या धन के बदले मांहि ।
सेवा द्वारा सब मिलै, अन्य जतन सों नांहि ॥८॥
गुण समझावै जब गुरू, तन मन दो ता ओर ।
नातरु पढ़िबो व्यर्थ जस, भजत चित्त रति ठौर ॥९॥
कहूं कान कहूं आंख कर, कहूं पैर कहूं चित्त ।
सो गुण लहै न कछु लहै, खोय व्यर्थ वय वित्त ॥१०॥
जहां शब्द सत कान तहं, जहां कान तह नैन ।
जहां नैन तहं चित्त तन, धरहुं ज्ञान उर ऐन ॥११॥
सद्‌गुरु के पद में सदा, जो ना राखत भाव ।
ता को विद्या वर कदा, लहै न बन अनुभाव ॥१२॥

उपदेश १०

यज्ञ

प्र०– यज्ञ शब्द किन अक्षरों से बना है ?

उ०– [य+ज+ञ] से.

प्र०– यज्ञ शब्द का क्या अर्थ है ?

उ०– यजन, मिलना, युक्त करना, तन्मय होना, पूजना, यम करना, संयम करना, कर्षण करना इत्यादि.

प्र०– [य+ज्ञ] के विचार से क्या अर्थ होगा ?

उ०– [य]=शक्ति, ब्रह्म, वायु, जो, यावन्मात्र और [ज्ञ]=जानना, जनाना, जताना, ज्ञान आदि, इसलिये [यज्ञ]=यावन्मात्र दृश्यादृश्य पदार्थ हैं तावन्मात्र का ज्ञान कराने वाला आदि.

प्र०– उस चैतन्य ब्रह्म को यज्ञ क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि वह अपनी इच्छाशक्ति तथा क्रियाशक्तिके यजनद्वारा अखिल ब्रह्मांडों की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय करता है.

प्र०– यज्ञ को यम क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि चैतन्य गत यज्ञ द्वारा अनंत सूर्यों का, और हर सूर्य गत यज्ञ द्वारा अनंत ब्रह्मांडों का आकर्षण, निराकरण तथा स्थंभन रूप से निग्रह हो रहा है.

प्र०– यज्ञ को धर्म क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि चैतन्य की यज्ञ रूप स्फुरणशील प्रकृति है, जो त्रिगुणात्मक हो, अपनी आकर्षण, निराकरण तथा स्थंभन शक्ति से सबको धारे हुए है.

प्र०– यज्ञ को प्रजापति आदि क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि चैतन्य का स्फुरणशील यज्ञ ही सबकी उत्पत्ति आदि का कारण है.

प्र०– हवनीय द्रव्य कितने प्रकार के हैं ?

उ०– शोधक, रोगनाशक, पौष्टिक, सौगंधिक, वृष्टिकारी आदि अनेक प्रकार के हैं.

प्र०– हवन से क्या लाभ है ?

उ०– वायु आदि की शुद्धि तथा सुवृष्टि आदि अनेक लाभ हैं.

प्र०– यज्ञ द्वारा क्यों कर वायु की शुद्धि होती है ?

उ०– क्योंकि अग्नि के प्रज्वलन से वायु हलका हो, ऊपर को जाने, तथा उसके स्थान पर अन्यत्र का वायु आने लगता है, इस लगातार के प्रयत्न से वहां का वायु शुद्ध हो जाता है.

प्र०– कब शीघ्रतापूर्वक वायु शुद्ध हो सकता है ?

उ०– जब सुगंधित तथा रोगनाशक द्रव्यों द्वारा यज्ञ कार्य सम्पादन किया जाय.

प्र०– क्या उष्णता द्वारा वायु उर्द्ध्वगति करता है ?

उ०– वायु की तो क्या कथा किन्तु उसके द्वारा समग्र संसार के द्रव्य दृढ़ पदार्थ वाष्प बन उड़ जा सकते हैं.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! अग्नि पर रखा हुआ जल तथा धूप में पड़े हुए पत्तों का रस कहां चला जाता है.

प्र०– वाष्प उर्द्ध गति करती है, इसका क्या निश्चय ?

उ०– देखो ! तभी तो वाष्प द्वारा गुब्बारे, विमान आदि आकाश में चल सकते हैं.

प्र०– वाष्प क्योंकर उर्द्ध गति करती है ?

उ०– हलकी होने के कारण.

प्र०– पदार्थ हलका तथा भारी क्योंकर हो जाता है ?

उ०– उसके परमाणु जितने प्रथक २ होते जाते हैं, उतना ही वह हलका और जितने निकट होते जाते हैं, उतना ही वह भारी होता जाता है.

प्र०– कब पदार्थ फैलते तथा सिमटते हैं ?

उ०– उष्णता से फैलते तथा शीत से सिमटते हैं ?

प्र०– जब अग्नि के प्रज्वलन से वायु हलका हो, ऊपर चला जाता है, तब उसकी जगह पर अन्यत्र का वायु क्यों आ जाता है ?

उ०– क्योंकि प्रकृति का यही नियम है, कि वह एक पदार्थ के हटते ही उसके स्थान में अन्य पदार्थ तत्काल पहुंचा देती है, कारण कोई स्थान बिना पदार्थ के कदापि खाली नहीं रह सकता.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! नल में का पवन हटते ही उसमें तत्काल जल चढ़ जाता है, किन्तु जब तक बर्तन में वायु रहता है, तब तक उसमें जल नहीं धसता और देखो ! ज्यों ही सरोवर से जल अलग किया जाता है, त्यों ही उस गर्त्तको आसपास का जल पूर देता है.

प्र०– जब प्रज्वलन से वायु हलका हो, उर्द्धगति करता है, तब उसके स्थान पर अन्यत्र का पवन आ जाता है, इसका क्या निश्चय ?

उ०– तभी तो होली में आसपास के तृण पत्रादिक उड़-उड़ कर गिरने लगते हैं; अग्नि प्रकोप तथा उष्ण काल में प्रचंड आंधियां आया करती हैं; किन्तु शीत में नहीं.

प्र०– क्या प्रमाण है कि यज्ञ द्वारा शरीरगत वायु शुद्ध हो जाता है ?

उ०– तभी तो शीत वात से ग्रसित मनुष्य अग्नि सेवन से रोग मुक्त हो जाता है.

प्र०– क्योंकर ?

उ०– क्योंकि जब वह अग्नि के निकट बैठता है, तब अग्नि अपनी किरणें उसके शरीर में प्रविष्ट कर शीतवात को खींच, वाष्प बना, ऊपर उड़ा देता है, तब वह रोगमुक्त हो जाता है.

प्र०– यज्ञ द्वारा अंतर्गत वायु क्योंकर शुद्ध होता है ?

उ०– क्योंकि जब अग्नि अपनी किरणों द्वारा हमारे शरीर में प्रविष्ट हो, शरीरगत वायु को खींच वाष्प बना, जिस कदर ऊपर उड़ाता जाता है, उसी कदर बाहर का शुद्ध वायु हमारे रोम छिद्रों द्वारा हमारे शरीर में प्रविष्ट होने लगता है, तब इस लगातार आकर्षण निराकरण के संचार से अंतर्गत वायु शुद्ध हो जाता है.

प्र०– इसके द्वारा हमें क्या लाभ पहुंचता है ?

उ०– इसके द्वारा हम रोगमुक्त हो, हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान हो जाते हैं, और हमारे ज्ञानतंतु प्रबल हो, हमें दिव्य ज्ञान कराते तथा आयुष्य बढ़ता है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! इसी कारण पंचाग्नि आदि तापने वाले साधु बहुधा हृष्ट-पुष्ट बलवान, चैतन्य तथा निरोगी पाये जाते हैं.

प्र०– यज्ञ में पलास, पीपल, बड़, गूलर, अर्क आदि की समिध क्यों ली जाती है ?

उ०– क्योंकि प्रथम तो इनके द्वारा शीघ्र अग्नि प्रकटता है, दूसरे इन्हें शीघ्र भक्षण कर जाता है, तीसरे ये वृक्ष अधिक परिमाण से जल वायु को कर्षण करते हैं, चौथे ये शांति, पुष्टि, बल, निरोगता, वीर्य आदि गुण के दाता हैं.

प्र०– यज्ञ में यव, दूध, दही, घृत, मधु, शर्करा आदिक द्रव्य क्यों डाले जाते हैं ?

उ०– ये पदार्थ भी शांति, पुष्टि, बल, निरोगता, वीर्य, तेज के दाता हैं, जिसमें यव, दूध दही विशेषकर शोधक, कर्षक तथा जठराग्नि वर्द्धक हैं, शर्करा, घृत, दूध विशेषकर शांति, पुष्टि, बल, वीर्य,

बुद्धि, तेज के वर्द्धक हैं, यव, दही, घृत वृष्टिकारी हैं और मधु विशेषकर संयोगी पदार्थों के गुणों का वाहक, रक्षक तथा उत्तेजक है; इसी तरह औरों के गुण जानो.

प्र०– यज्ञ में घृत की धारा क्यों कर छोड़ी जाती है ?

उ०– क्योंकि घृत की धारा के द्वारा अग्निगत कर्षण शक्ति का तेज, उन पदार्थों के सूक्ष्म गुणों को लेते हुए, हमारे शरीर में प्रविष्ट कर जाता है, शेष का सार अग्नि अपनी किरणों द्वारा हममें पहुंचाता है और उनके सुगंधादिक को वायु अवघ्राण रोमकूप आदि द्वारा हममें पहुंचाता है और मधु का सूक्ष्मसार उनके गुणों की रक्षा करता हुआ, सम्पूर्ण शरीर में फैलाता तथा अमृत की रक्षा करता है इत्यादि.

प्र०– तो फिर क्यों पृथ्वी पर घृत का ढुलना, अनहितकारी कहा जाता है ? और तेल का क्यों नहीं ?

उ०– क्योंकि घृत की धार में होकर पृथ्वीगत कर्षण शक्ति का तेज हममें नहीं आ सकता, वरन उलटा हमारा तेज पृथ्वी में चला जाता है; किन्तु तेल की धार में होकर पृथ्वीगत तेज हममें आ सकता है, पर जाता नहीं.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– यदि आप किसी घी या तेल (देशी) के बड़े कारखाने में जाकर. उन पुराने नौकरों को देखें ! जो रातदिन घी या तेल भरने, उठाने का काम करते हैं, तो आपको घी भरने वाले बलहीन रोगी के समान तथा तेल भरने वाले बलवान निरोगी के समान दिखाई देंगे !

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि उनके हाथ से अवश्य थोड़ा बहुत नित्य पृथ्वी पर गिरता ही है; इसीलिये पहलवान अखाड़े में तेल डालते हैं घी नहीं.

प्र०– अग्नि का चिर रक्षण क्यों धर्म है ?

उ०– क्योंकि जिसके गृह में चिरकाल अग्नि विराजता है, वहां का अशुद्ध

वायु नष्ट होकर शुद्ध वायु आता रहता है; जिसके द्वारा उस गृहस्थ का कुटुम्ब सदा सुखी रहता है; इसलिये हर गृहस्थ ने अपने-अपने अग्निकुण्ड में अहोरात्र अग्नि उपस्थित रखना.चाहिये!

प्र०– यज्ञ द्वारा वृष्टि क्योंकर होती है ?

उ०– क्योंकि यज्ञ विशेषकर उन्हीं समिध हव्यादिक से किया जाता है, जो विशेषकर के जलवायु की वाष्प अधिकता के साथ बनाते हैं और स्वयं अग्नि तो सबकी वाष्प बनाता ही है, किन्तु वह मधु घृतादिक द्रव्यों के कारण विशेष रूप से वाष्प बनाने की सामर्थ्य पा जाता है; सिवाय अग्नि भी उन काष्टों से निकालकर लिया जाता है, जो जलवायु की अधिक वाष्प बनाते हैं, फिर वह वाष्प आकाश में जा, शीतल पवन से स्पर्श कर, जल रूप हो वर्षती है.

प्र०– वृष्टि के लिये किस कदर यज्ञ करने की आवश्यकता है ?

उ०– इस कदर यज्ञ करने की आवश्यकता है, जिस कदर बरसने के योग्य वाष्प तैयार हो सके.

प्र०– यज्ञ में घृत के बदले तैलादिक लेने से क्या हानि है ?

उ०– क्योंकि घृत की वाष्प शीतल तथा जल को न सोखने वाली होने के कारण शीघ्र वृष्टिकारी है, और तैलादिक की वाष्प चीठी, उष्ण तथा जल की सोखने वाली होने के कारण अवृष्टिकारी है, तभी तैलपान से तृष्णा अधिक लगती है, पर घृतपान से नहीं.

प्र०– नित्य प्रति वैश्व देव तथा अग्निहोत्र करने का नियम क्यों है ?

उ०– क्योंकि नित्यप्रति महान् यज्ञ होना दुर्लभ है, इसलिये छटांक, आधपाव से लेकर शक्ति के अनुसार घृत का हवन नित्य प्रत्येक मनुष्य करे, तो देशभर में कई यज्ञ किये के समान फल हो सकता है; किन्तु अब हम इस बिन दुखी हो रहे हैं.

प्र०– सूर्य किस प्रकार वृष्टि करता है ?

उ०– सूर्य अपनी किरणों द्वारा यज्ञ कर, जल की वाष्प बना, उसी क्रम से वृष्टि करता है.

प्र०– वाष्प द्वारा जल बनने का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण दो ?

उ०– खौलते हुए, जल के कुछ ऊपर, बर्फ से भरा पात्र लटका दो, तब विदित होगा कि वह वाष्प उस पात्र की पेंदी को छू, जलरूप हो, वापिस चूने लगती है.

प्र०– इस युक्ति से हमें क्या लाभ हुआ ?

उ०– यदि यह युक्ति हमें न मालूम होती तो हम समुद्र का खारा जल मीठा न बना सकते, तथा नाना प्रकार के अर्कादिक न खींच सकते और न यज्ञ द्वारा वर्षा की कल्पना कर सकते.

प्र०– तो क्या केवल जल की वाष्प ही वर्षा का कारण है ?

उ०– वायु की वाष्प उससे भी अधिक वृष्टि का कारण है.

प्र०– तो फिर अधिक बारूद के भड़कने से क्यों कर वृष्टि होती है ?

उ०– क्योंकि उसके द्वारा वायु की वाष्प बनती तथा उदान वायु दग्ध होता है.

प्र०– उदानवायु (हैड्रोजन) के भड़कने से क्या होता है ?

उ०– भयंकर वृष्टि हो सकती है.

प्र०– कब यज्ञ द्वारा अधिक वृष्टि हो सकती है ?

उ०– जब उन पदार्थों द्वारा यज्ञ किया जाय, जिनमें उदान वायु विशेष हो.

प्र०– इससे क्या सिद्ध हुआ ?

उ०– कि जल जाने पर भी पदार्थों का नाश नहीं होता, किन्तु उनका रूपान्तर हो जाता है.

प्र०–अश्वमेध यज्ञ किसे कहते हैं ?

उ०– (अश्) =उपजाना, ठहराना, नसाना, (व)=वहनशील सूक्ष्म वाष्प रूपी वायु (मेध)=ज्ञान होना, जय करना; अर्थात् उपजाने, ठहराने तथा नसाने वाले सूक्ष्म वाष्परूपी बहनशील (४६) अश्वों का ज्ञान सहित जय कराने वाले यज्ञ को अश्वमेध यज्ञ कहते हैं.

प्र०– गोमेध यज्ञ किसे कहते हैं ?

उ०– विद्युत शक्ति तथा इन्द्रियों के जय कराने वाले यज्ञ को गोमेध यज्ञ कहते हैं.

प्र०– नरमेध यज्ञ किसे कहते हैं ?

उ०– आवागमनकारी तत्वों का जय कराने वाले यज्ञ को नरमेध यज्ञ कहते हैं.

प्र०– इन्द्र यज्ञ किसे कहते हैं ?

उ०– मेघज विद्युत के यजन करने वाले यज्ञ को इन्द्र यज्ञ कहते हैं; जिसके द्वारा वृष्टि आदि हो सकती है.

प्र०– ब्रह्म यज्ञ किसे कहते हैं ?

उ०– जिसके द्वारा विवर्द्धनशील आकर्षणशक्ति तथा उसके तेज का यजन किया जाता है.

प्र०– रुद्र यज्ञ किसे कहते हैं ?

उ०– जिसके द्वारा निराकरणशक्ति तथा उसके तेज का यजन किया जाता है.

यथाश्रुति

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्

अर्थ

[यज्ञेन] यज्ञ के द्वारा [यज्ञं] यज्ञ को [अयजन्त] यजते हुए [देवाः] सब देव या सब प्रकार के तेज; [तानि] उनको [धर्माणि] धर्मों को [प्रथमानि]पहिले वालों को [आसन्] विद्यमान रखते हुए.

अर्थात् सब देव यज्ञ द्वारा यज्ञ को यजते हुए; उनको या उनके सनातन धर्मों को पूर्ववत विद्यमान रखते हुए.

प्र०– इसका तात्पर्य क्या है ?

उ०– अर्थात् यज्ञ से यज्ञ, यज्ञ से तेज, तेज से यज्ञ और तेज से तेज का यजन हुआ करता है; तौभी उनकी या उनके पूर्व धर्मों की स्थिति पूर्ववत बनी रहती है.

दोहा

स्वयंकाश चैतन्य को, यज्ञ धर्म है खास ।
तेज सु उपजत यज्ञ ये, यज्ञ सु उपजत काश ॥१॥
तेज सु उपजत तेज है, यज्ञ सु उपजत यज्ञ ।
तिनसो उपजत जग सभी, लखै प्रज्ञ, ना अज्ञ ॥२॥

यज्ञ काश को उष्ण गुण, शीतल सत्ता तासु ।
उष्ण सु फैलत द्रव सभी, शीत सु सुकड़त आसु ॥३॥
तेज सु होवत यज्ञ जब, यज्ञ सु होवत भाप ।
भाप सु होवत मेघ ये, मेघ सु वर्षत आप ॥४॥
आपजु धारत जीव अणु, जीवाणू धर देह ।
देहज, आवागमन को, हेतु यज्ञ जड़ नेह ॥५॥
पालत पोषत यज्ञ ये, करत हरत ये ताप ।
शोधत दूषत रचत जग, पंचभूत रुज पाप ॥६॥

उपदेश ११

दान

प्र०– दान का हेतु क्या है ?

उ०– परोपकार.

प्र०– परोपकार से क्या होता है ?

उ०– परमार्थ साधन.

प्र०– क्योंकर ?

उ०– क्योंकि–**जापै हम नेकी करै, करन लगे वह प्रीत ।**
प्रीती सों एका बढ़ै, एका सर्वस क्रीत ॥

प्र०– कौनसा दान वृथा है ?

उ०– जो कुइच्छा, झूंठी चापलूसी तथा लोगों को दिखाने के लिये दिया जाय अथवा जिसके द्वारा किसी दीन अनाथ का तथा स्वदेश जाति धर्म का हित न हो; वह दान सर्वथा निन्दनीय है.

प्र०– श्रेष्ठ दानी कौन है ?

उ०– **जो भूखों को अन्न दे, प्यासों को जलपान ।**
नंगों को दे वस्त्र जो, अज्ञहि विद्या दान ॥ १ ॥
धर्म हेत निजदेश हित, दीन हेत हित जात ।
सज्जन के हित प्राणी हित, दे सो दानी ख्यात ॥ २ ॥

प्र०– किस दानी का दान शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के तुल्य दिन-दिन बढ़ता जाता है ?

उ०– जो दीनों के लिये अन्न क्षेत्र, रोगियों के लिये औषधालय, मनुष्यों की उन्नति के लिये विद्यालय, गौशाला, कृषिशाला, शिल्पशाला आदि खुलवावे, गौरक्षा, वृक्ष रक्षा करे तथा उनकी वृद्धि करे, जलाशययादिक खुदवाये, सज्जन, पंडित, संत तथा उपकारियों की सहायता करे अथवा देशहित के लिये कोई महत्व का कार्य करे, उस दानी का दान फल सदा बढ़ता ही रहता है अर्थात् उसका नाम संसार में अजर-अमर हो बना रहता है.

प्र०– जो धनवान ऐसा न करे, तो क्या हानि ?

उ०– उसका जीवन वृथा है, वह संसार में जन्म पाकर भी नहीं के समान है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि इस संसार में ऐसे असंख्य धनी हो गये, जिनका नाम कोई जानता भी नहीं अथवा जिनकी अपकीर्ति मात्र शेष है; किन्तु उन माई के लालों को धन्य है ! जो अपने धन का सद्व्यय कर, अपना नाम संसार में अमर कर गये; औरों का होना न होना बराबर है.

प्र०– उस चिरस्मरणीय अक्षय कीर्ति से क्या लाभ है ?

उ०– देखो ! जिस तरह इस पृथ्वी पर अनन्त कुत्ते, गधे, चूहे, मच्छर, कृमि, कीटादिक उपजते व मरते हैं; उसी तरह असंख्य मनुष्य भी जन्मते तथा मरते हैं; तो फिर मनुष्यों और अन्य जीवों में अन्तर ही क्या रहेगा ?

प्र०– दानी कितने प्रकार के हैं ?

उ०– चार प्रकार के हैं अर्थात् देवदानी, मनुष्यदानी, राक्षसदानी और पिशाचदानी.

प्र०– देवदानी किसे कहते हैं,

उ०– जो स्वभाव ही से परोपकार के लिये अर्थात् प्राणीमात्र के हित के

लिये शुद्ध अन्तःकरण तथा निःस्वार्थ भाव से दान देता है ? वही देवदानी है.

प्र०— मनुष्य दानी किसे कहते हैं ?

उ०— जो कीर्ति के लिये दान देता है.

प्र०— राक्षस दानी किसे कहते हैं ?

उ०— जो बदला पाने की इच्छा से दान देता है.

प्र०— पिशाच दानी किसे कहते हैं ?

उ०— जो कुइच्छा से, कुइच्छा पूर्ति के लिये अथवा दण्ड हित दान देता है.

दोहा

मिलै न धन उद्योग बिन, धन बिन दान न होय ।
दान बिना न यश मिलै, यश बिन जन्म बिगोय ॥१॥
धन-धन को विश्वास ना, कब आवै कब जाय ।
वर्षत पावै सुख सभी, बिन वर्षे दुख पाय ॥२॥

चौपाई

परहित हेत देत सो देव । निज कीरत हित देत नरेव ॥१॥
राक्षस देवै बदले हेत । अनहित हेत पिशाच जु देत ॥२॥
ना खावै ना देवै सूम । जोड़े निशदिन तन यश हूम ॥३॥
वा को वाहिन आवै काम । अंत तजी जावै जम धाम ॥४॥

उपदेश १२

गोरक्षा

प्र०— गो शब्द का क्या अर्थ है ?

प्र०— वाणि, इन्द्रिय, जल, भूमि, पद, स्वर्ग, वज्र, खग, विद्युत्, किरण, मति, दशा आदि.

प्र०— गो तो एक प्रकार का पशु है; उसे गो नाम क्यों दिया ?

उ०— क्योंकि इसी गो की बदौलत हमारी इन्द्रियां पुष्ट होती हैं; बल, बुद्धि, तेज तथा आयुष्य बढ़ता है; प्राण रक्षा होती है, संतानोत्पादक-

शक्ति प्राप्त होती है, इसके पयादिक से नाना प्रकार के रोग दूर होते हैं, इसका दधि, घृत, यज्ञ द्वारा जल वर्षाता है, इसके द्वारा राजा और प्रजा दोनों का पालन होता है, यहां तक कि यही एकमात्र हमारी सद्गति दाता है; इसीलिये हम इसे गो माता कहते हैं.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि यह हमें माता के समान, बल्कि माता से अधिक सुख देती है.

प्र०— माता की अपेक्षा, इसमें क्या अधिकता है ?

उ०— क्योंकि माता तो केवल अपने पुत्र का ही लालन-पालन करती है, किन्तु गो के द्वारा हमारा, हमारे देश का, तथा सम्पूर्ण संसार के मनुष्यमात्र का लालन-पालन होता है, यहां तक कि इसी के प्रभाव से—चींटी से लेकर हाथी तक; सभी तृण अन्नभोजी कृमि कीट पशु-पक्षी आदि जीवों को भी भोजन मिलता है.

प्र०— गो दुग्ध में क्या गुण है ?

उ०— बल, पुष्टि, आयु, रक्त, बुद्धि को बढ़ाता है, विषदोष, रक्तदोष, त्रिदोष, हृदयरोग को हरता है.

प्र०— गो दुग्ध के फेन का क्या गुण है ?

उ०— बल, उत्साह को बढ़ाता है, वात को नष्ट करता है, तथा विषमज्वर, क्षीणज्वर, आमज्वर, मन्दाग्नि, अतिसार में हितकारक है.

प्र०— गो दधि में क्या गुण हैं ?

उ०— धातु को पुष्ट करता है, बल तथा जठराग्नि को बढ़ाता है, वात को नष्ट करता है, अजीर्ण हरता है और हिचकी, तिल्ली, श्वास, पांडु, बवासीर, अतिसार, भगंदर में खाना हितकारक है.

प्र०— गो तक्र में क्या गुण है ?

उ०— अजीर्ण, त्रिदोष, बवासीर, अतीसार को हरता तथा जठराग्नि बढ़ाता है.

प्र०— गो नवनीत में क्या गुण है ?

उ०— वीर्य, पराक्रम, पुष्टि, बुद्धि, बल, जठराग्नि, नैत्रज्योति को बढ़ाता

और प्लीह, अरुचि, संग्रहणी, लकवा, क्षय, अर्श, शोफ, त्रिदोष, ज्वर, रक्तपित का नाशक है.

प्र०– गो घृत में क्या गुण है ?

उ०– वीर्य, बल, बुद्धि, पुष्टि, शांति, नैत्रज्योति को बढ़ाता है, और त्रिदोष, पांडुरोग, रक्तपित्त, क्षय आदि रोगों को नष्ट करता है.

प्र०– गोमय तथा गोमूत्र में क्या गुण है ?

उ०– यह शरीर के अंतर्गत मल आदिक दोषों को शोध कर निकाल देता है तथा विष, रक्तपित, कफ, वात, कुष्ट, गुल्म, अफरा, कृमि, बवासीर, उन्माद, नैत्ररोग, अतिसार, खाज, दाद, खांसी इत्यादि अनेक रोगों को हरता है. सिवाय इन दोनों से उत्कृष्ट प्रकार का खाद बनता है, जो कृषि को बहुत लाभ पहुंचाता है.

प्र०– यह गाय भारत वासियों की प्राणदाता क्यों है ?

उ०– क्योंकि गाय के बिना, बैल नहीं मिल सकते, बैल के बिना खेती नहीं हो सकती, खेती के बिना हमारे प्राण की रक्षा नहीं हो सकती और न किसी प्रकार का निर्वाह हो सकता है.

प्र०– भारतवर्ष के राजाओं का राज्य केवल गाय के प्रभाव से क्योंकर चलता है ?

उ०– क्योंकि गाय के बिना बैल, ओर बैल के बिना खेती नहीं हो सकती; खेती बिना लगान, और लगान बिना राजकोष नहीं भर सकता और कोष बिना राजकाज चलना असंभव है.

चौपाया छन्द

गो बिन बैल, बैल बिन खेती, खेती बिन जग नेती है ।
ता बिन कर, अरु कर बिन कोषा, कोष बिना दल केती है ।।
दल बिन नृप, औ नृप बिन शासन, ता बिन प्रजा न चेती है ।
बिना प्रजा का देश न सो है, सब कुछ गो ये देती है ।।१।।
गो बिन गव्य, गव्य बिन यज्ञा, यज्ञ बिना ना धर्मा है ।
यज्ञ देत जल आयु ज्ञान बल, सिद्ध करत सब कर्मा है ।।
असन वसन मिष्ठान देत गो, पग रक्षत दे चर्मा है ।
मां से भी बढ़ कर ये पाले, गो रक्षा वर धर्मा है ।।२।।

प्र०– तो क्या हम कसाइयों से गायें खरीदते फिरें ?

उ०– नहीं ! नहीं !! कदापि नहीं !!!

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि ऐसा करने पर विवाद उपस्थित होगा या अधिक गोहत्या होगी.

प्र०– क्योंकर ?

उ०– क्योंकि प्रथम वे गाय देना स्वीकार नहीं करेंगे, फिर हट करने पर विवाद उपस्थित होगा, जिससे भयंकर अशान्ति फैलेगी.

प्र०– कसाइयों से गाय खरीद लेने पर अधिक गोहत्या क्योंकर होगी ?

उ०– क्योंकि वे बिना अधिक दाम लिये, गायें कदापि न देंगे और फिर उन दामों से अधिक गायें खरीद सकेंगे, जिसके द्वारा हम आपही अधिक हत्या के भागी होंगे.

प्र०– तो हमें क्या उचित है ?

उ०– हमें ऐसा अनर्थकारी क्रय विक्रय भूलकर भी न करना चाहिये.

प्र०– तो क्या चन्दे द्वारा केवल लंगड़ी लूली गायें खरीद कर उनका पालन पोषण किया करें ?

उ०– केवल लंगड़ी लूली गायों को ही खरीदते फिरना बड़ी भारी भूल है, बल्कि जो कोई धर्मार्थ ऐसी गायें गोशाला को दे, उन्हें अवश्य स्वीकारें तथा पाले पोषे.

प्र०– तो फिर गोरक्षा फंड से कैसी गायें खरीदें ?

उ०– छोटी उम्र की खान्दानी तथा दुधारी गायें.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि बिना ऐसा किये; हमें शुद्ध दुग्ध, दधि, माखन, घृत तथा बलवान बैल न मिल सकेंगे.

प्र०– इस अभाव के दूर करने का अन्य क्या उपाय है ?

उ०– उपयुक्त स्थानों पर गाय, भैंस तथा भेड़ बकरी के डेरी फार्म खोलना और अन्य व्यापारों के तुल्य कम्पनी द्वारा उपरोक्त व्यवसाय चलाना.

प्र०— गो आदि की वृद्धि होना, किस पर निर्भर है ?

उ०— शुद्ध खान, पान, सेवा, तथा निवास स्थान पर.

प्र०— इस बात की पूर्ति के लिये किस बात की अधिक आवश्यकता है ?

उ०— अरण्य की.

प्र०— किन्तु आजकल इसका अभाव है ?

उ०— इसलिये गोशाला या डेरीफार्म के साथ कृषि, बाग तथा कूपादिक की अत्यन्त आवश्यकता है, जिसके द्वारा हरा घास, चरी तथा शुद्ध जल उन्हें मिल सके और बाग आदि की उपज से उसका खर्च भी चल सके.

प्र०— डेरी फार्मों से क्या लाभ है ?

उ०— शुद्ध दुग्ध घृतादि पाने की आकांक्षा से, परस्पर का वैमनस्य छोड़, प्रसन्तापूर्वक हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई आदि उनके हिस्से खरीदेंगे और सरकार भी सहानुभूति रख सकेगी तथा किसानों को सस्ते व अच्छे बैल भी मिल सकेंगे इत्यादि,

दोहा

पय घृत माखन शुद्ध दधि, खाद बैल धन धान ।
प्रेम परस्पर गो बढ़ै, मिलै शक्ति कल्याण ।।१।।

उपदेश ९३

वृक्षरोपण

प्र०— धर्मशास्त्र हरे वृक्ष आदि काटने को क्यों मना करता है ?

उ०— क्योंकि वृक्षादि भी एक प्रकार के जीवधारी हैं, सिवाय वे विकारी वायु को खैंचते, शुद्ध वायु को छोड़ते, पृथ्वी को तर रखते तथा उसकी उपजाऊ शक्ति बढ़ाते हैं, जल का संग्रह करते, गहिरे जल जड़ों द्वारा ऊपर खैंच लेते, वाष्प बना जल वर्षाते, आयु, बल, बुद्धि, कांति आदि बढ़ाते, खानपान देते तथा अपने फल, पुष्प, पत्र, गोंद, रंग, छाल, काष्ट, तैल, सत्व, षटरस, कागज, वस्त्र, औषधि आदि दे, अनेक लाभ पहुंचाते हैं.

प्र०– वृक्ष पृथ्वी को तर करते हैं, इसका क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! जिस ग्रीष्मकाल में पृथ्वी का ऊपरी भाग अत्यन्त शुष्क हो जाने के कारण धूल में परिणित हो जाता है तथा कई गज गहरा खोदने पर भी गीली मिट्टी का पता नहीं मिलता, उसी काल में एक लघु-से-लघु दुर्वादिक तृण के नीचे भी आद्रता पाई जाती है, तो बड़े-बड़े वृक्षों के नीचे कितनी अधिक तरी होगी ?

प्र०– इस तरी से क्या लाभ ?

उ०– इससे अन्न की अच्छी उपज होती है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! इसीलिये नये कटे वन स्थानों में कुछ वर्ष तक अच्छी उपज होती है किन्तु तरीके कम होते ही उपज भी कम होने लगती है.

प्र०– तरी में क्या मिला रहता है ?

उ०– खाद का अंश.

प्र०– क्योंकर ?

उ०– क्योंकि पृथ्वी के अन्तर्गत चूना, पोटाश, एमोनिया, मेग्नेशियम आदि कई खाद के पदार्थ हैं, वे जल में मिल घुल द्रव हो जाते हैं, जिन्हें वृक्ष अपनी जड़ों द्वारा ऊपर को खेंचा करते हैं, सिवाय पत्तों के सड़ने-गलने आदि से जो खाद तैयार होता रहता है वह भी तरी में मिल जाता है.

प्र०– वृक्ष जल का संग्रह किस तरह करते हैं ?

उ०– क्योंकि उनमें एक शक्ति है, जो वर्षा तथा बाढ़ के जल को अपने निकट आते ही खैंचकर अपनी जड़ों के नीचे संग्रह कर लेते हैं.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! चरसे का जल, उन नालियों द्वारा सुगमता से नहीं बह सकता, बल्कि बहुत कुछ जमीन में धस जाता है, जिन नालियों में किसी प्रकार की वनस्पतियां होती हैं; इसी कारण किसान उन्हें खोद फेंकते हैं; यदि वनस्पतियां जल का संग्रह न करती होती, तो उनके नीचे उष्णकाल में तरी कहां से आतो और वे क्योंकर जीती रहतीं.

प्र०– वृक्ष अपनी जड़ों द्वारा गहरे जल को ऊपर खैंच लाते हैं, इसका क्या प्रमाण ?

उ०– जिन स्थानों पर खोदने से पचासों हाथ जल का पता नहीं, यदि उन स्थानों पर बड़, पीपल, गूलर, कोविदार आदि वृक्ष लगा दिये जावें और फिर जब उन वृक्षों का परिपूर्ण विस्तार हो जावे, तब उनके नीचे कूपादि खनन किये जावें, तो निश्चयपूर्वक जल बहुत कुछ ऊपर प्राप्त हो जावेगा, इसीलिये भारत में बड़े वृक्षों के नीचे कुएं खोदे जाते हैं; इसी कारण सजल स्थान वन कट जाने से निर्जल हो जाते हैं, या वहां का भूमिगत जल गहराई का अनुगामी हो जाता है ?

प्र०– वृक्ष किस प्रकार वाष्प बनाते हैं ?

उ०– इधर लगातार वृक्ष अपनी जड़ों द्वारा जल को कर्षण कर पत्रों के अग्र भाग तक पहुंचाते रहते हैं; उधर वायु तथा सूर्य किरणें पत्रों में प्रविष्ट हो, उस जल की वाष्प बना, ऊपर को उड़ाती रहती हैं.

प्र०– वृक्षों द्वारा कितनी वाष्प तैयार होती है ?

उ०– एक साधारण मक्का का पौधा रातदिन में बीस सेर जल की वाष्प बना, उड़ा देता है; तो फिर बड़े वृक्षों द्वारा कितनी वाष्प तैयार होती होगी ?

प्र०– वृक्षों द्वारा किस तरह वृष्टि होती है ?

उ०– जब वृक्षों द्वारा उपजी वाष्प का समूह ऊपर पहुंचता है, तब वह घनात्मक हो, बादल कहलाता है, फिर उसीके द्वारा वृष्टि होती है.

प्र०– वृक्षों द्वारा वृष्टि होती है, इसका क्या प्रमाण ?

उ०– क्योंकि सघन वनों में अधिक वृष्टि होती है.

प्र०– वनों के न होने से बृष्टि कम होती है, इसका क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! हमारे राजपूताने में कम वृक्ष हैं, इसलिये वहां वृष्टि भी कम होती है, सिवाय ज्यों-ज्यों इस देश का वन शून्य हो रहा है, त्यों-त्यों इस देश की वर्षा न्यून हो रही है, तभी तो अवर्षण के मारे अकाल पर अकाल पड़ रहे हैं.

प्र०– फिर क्यों वन रहित स्थानों में भी न्यूनाधिक वृष्टि हुआ करती है?

उ०– मानसून वायु के कारण.

प्र०– किस तरह ?

उ०– उष्ण कटिबन्ध में, सूर्य किरणों से बनी, महासागर के जल की वाष्प, मेघाकार हो, वायु द्वारा जिस देश पर हो, गुजरती है, यदि उस बीच में उसे आकाश के शीतल पवन का स्पर्श हो जाय, तो वह जल रूप हो, उस देश को सींचती हुई चली जाती है.

प्र०– कभी-कभी वन रहित स्थानों में भी अधिक वृष्टि क्यों होती है ?

उ०– जब कभी जल के अधिक बोझ से अथवा वायु के आवर्त्त से, चाहे पर्वतों के शृंग से मेघों की गति रुक जाती है, तब वे वहां कदाचित् अधिकता से बरसते हैं.

प्र०– कदाचित् क्यों ?

उ०– क्योंकि कारबोनिक गेस [अपान वायु] जो वृक्षों के न होने से अधिकता को प्राप्त होता है, वही वर्षा का अवरोध करता है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– इसकी परीक्षा सिसली द्वीप में हो चुकी है.

प्र०– क्योंकर वृक्ष हमारे जीवनदाता हैं ?

उ०– क्योंकि प्राणियों के मरने, सड़ने, गलने, मलमूत्र के त्यागने, तथा स्वास के छोड़ने से, जो वायुमण्डल में विकार उपजता है, उसे वृक्ष खैंचकर शुद्ध वायु प्रदान करते हैं; जिसके द्वारा हमारी प्राण-रक्षा होती है, तथा निरोगता, आयु बढ़ती है.

प्र०– भारतवासी कई वृक्षों का विशेष आदर क्यों करते हैं ?

उ०– उनके विशेष गुणों के कारण.

प्र०– वृक्षों को अर्घ्य क्यों दिया जाता है ?

उ०– अर्घ्य सम्बन्धी उपदेश देखो [भाग ३ में]

प्र०– वृक्षों की न्यूनता से क्या-क्या हानियां पहुंच रही हैं ?

उ०– वृष्टि कम हो चली, नाना रोग फेल चले, फल, फूल, कंद, मूल दुर्लभ हो गये, अनाज मंहगा हो चला, लोग भूखों मरने लगे,

सिवाय भाजी के भाव, ईंधन और धान के भाव कोयला बिकने लग गया; देखो! तृण के अभाव से किस तरह असंख्य गो-बैल मर रहे हैं, यदि अभी से वन रक्षा न की जावेगी, तो न जाने आगे क्या दुर्दशा होगी!!!

प्र०— नये तथा पुराने मनुष्यों में क्या अन्तर है?

उ०— पुराने लोग वृक्षादि लगाना जानते थे और नये उन्हें काटना जानते हैं! पुराने लोग उन्हें अपना मूलधन समझते थे, पर नये लोग उन्हें अपना मात्र इंधन समझते हैं!!!

दोहा

जल खेंचत संचय करत, भाप करी वर्षाय।
असन बसन छाया दयी, येतरु मन हर्षाय ॥१॥
पवन शुद्ध कर रोग हर, आयु ज्ञान धन देत।
जग कारज सारत बहू, तरु जन्मे पर हेत ॥२॥

उपदेश १४

कृषि

प्र०— कौन कर्म हमारे जीवन का मूलाधार है?

उ०— कृषि कर्म.

प्र०— क्यों?

उ०— क्योंकि कृषि हमें अन्न, रस, कस दे, पोषती और वस्त्रादि दे, शीत उष्ण वर्षा वायु से बचाकर, हमारी लज्जा रखती है; देखो! जिस वर्ष निपज नहीं होती, उस वर्ष कैसा भयंकर परिणाम होता है.

प्र०— खेती में कितनी बातों की आवश्यकता है?

उ०— उत्तम भूमि, बीज, खाद, बैल, किसान, जलाशय तथा हल आदि सामग्री की आवश्यकता है.

प्र०— स्वाद द्वारा भू परीक्षा?

उ०— जिसका स्वाद सोंधा तथा मधुर हो उसे उत्तम, कसैला हो उसे

मध्यम; खारा कड़ुवा तीखा या खट्टा हो, उसे निकृष्ट भूमि समझो!

प्र०– ऐसी निकृष्ट भूमि को किस तरह सुधारें?

उ०– ऐसी जमीन के चौगिर्द तालाब के समान ऊंची पाल बना, वर्षा का जल रोक, बार-बार निकाल दिया करें, ऐसा कई वर्ष तक करने से जमीन सुधर जाती है, तथा उसमें उपजा, कांस आदि भी सड़-गल जाता है.

प्र०– यदि इतना सामर्थ्य हममें न हो तो?

उ०– तो खारी जमीन में अपामार्ग या पलास; तीखी तथा कड़वी में अर्क मंदार; खट्टी से हूंड इमली आदि बोने से कई वर्ष में आपही सुधर जावेगी.

प्र०– बालू के मान से मृतिका परीक्षा?

उ०– सौ तोले मिट्टी को अधिक पानी में गलाकर उसका गंधला जल निकालता रहे, जब बालू बाकी रहे, तब उसे सुखाकर तौल लें, जो रेत साट तोले से अधिक हो, तो उसे निकृष्ट, चालीस साठ के भीतर हो, उसे मध्यम; बीस चालीस के भीतर हो, तो उसे उत्कृष्ट भूमि समझो!

प्र०– ऐसी चिकनी मिट्टी जिसमें बीज मर जावे या ऐसी बलुई मिट्टी जिसमें जल न रहे; उसे किस तरह सुधारें?

उ०– विचारपूर्वक चिकनी में बालू और बलुई में चिकनी मिट्टी डाल सुधारें.

प्र०– गलत जमीन या डोंगले वाली जमीन को किस तरह सुधारें?

उ०– उस खेत में चूने के कंकर पकावें या चूने का खाद डालें.

प्र०– किस जमीन में कितनी हड्डी है; यह किस तरह जानें?

उ०– सौ तोले मिट्टी में पांच तोले नवसादर मिला, जल में गला दें, चार दिन बाद, सब पानी फिल्टर द्वारा निकाल, सुखादें, फिर तौलने से जितना भार घटे, उतनी हड्डी समझें; यदि कम हो तो इतना हड्डी का चूर्ण डालें, जिसमें तोले में दो रत्ती का हिसाब ठीक हो जाय.

प्र०– जमीन में खाद कितना है; किस तरह जानें ?

उ०– सौ तोले मिट्टी ले, कढ़ाही में डाल, चूल्हे पर चढ़ाकर खूब जलावे, ठंडा होने बाद तौले, जितनी घटे, उतना उसमें खाद का अंश समझे; दस तोले घटे, उसे उत्तम; पांच तोले घटे, उसे मध्यम; जो इससे कम घटे, उसे निकृष्ट भूमि समझे, उसकी पूर्ति खाद द्वारा करे.

प्र०– खाद किस तरह बनावे ?

उ०– एक बड़े गर्त में पत्ते, गोबर, तृण, मूत्र, राख, कचरा आदि डाल, उसे मूत्र या जल से तर कर, ऊपर मिट्टी डाल ऐसा बन्द करे कि जिसमें वर्षा का जल उसमें न जाने पावे; तीसरे वर्ष वह खाद पककर केशरिया हो जावेगा; तब उसे काम में लावे.

प्र०– वर्षा का जल क्यों न जाने दे ?

उ०– क्योंकि वह जल खाद का सार बहा ले जावेगा या पृथ्वी के गर्भ में रिसा देगा, जिससे वह खाद सत्वहीन हो जावेगा.

प्र०– हड्डी का खाद किस तरह बनावे ?

उ०– हड्डियों के चूर्ण पर गंधक का तेजाब डालने से या एक गर्त्त में पका हुआ कली का चूना बिछाकर उस पर हड्डियों का चूर्ण बिछावे, इस तरह दस बारह पुट दे, युक्तिपूर्वक पाट दे, मात्र एक छिद्र भीतर पानी डालने के लिये रहने दे, जिसमें दूर से नल द्वारा जल छोड़कर भर दे और छिद्र बन्द कर दे, छः मास के पश्चात् निकाल, गोबर के खाद में मिलाकर वर्त्ते.

प्र०– कमजोर जमीन को कौनसा खाद दे ?

उ– जमीन में नील, तिल, सन, अंडी, कपास आदि बोकर फूलने के पूर्व, जोतकर मिलादे.

प्र०– नयी जमीन सुधरने के लिये प्रथम क्या बोवें ?

उ०– सन, तिल या चना.

प्र०– जिस जमीन में कीड़ा लगे, उसमें कौनसा खाद डाले ?

उ०– उसमें अरंडी बोकर तोड़े, अरंडी की खल, करंज की खल या गंधक

के तेजाब से बना हुआ खाद डाले.

प्र०– यदि वृक्ष या फसलों को कृमि लगें तो क्या करें ?

उ०– सीताफल के बीज, बायबिडंग, तंबाखू, नीलाथोथा, गंधक, ये समभाग, चूना दो भाग, मदार के पत्तों की चटनी चौगुनी, इन्हें सौगुने जल में खूब उबाले; ठंडा होने पर एक सेर केरोसिन मिला, पिचकारी से सींचे.

प्र०– फल वाले वृक्षों को कौनसा खाद दे ?

उ०– हड्डी का खाद, हरे पत्तों का खाद, मरी मच्छियों का खाद, तालाब के सड़े कीचड़ का खाद या मरे जानवरों के सम्पूर्ण शरीर का खाद, वृक्षों के आसपास गड़वा दे.

प्र०– खाद की आवश्यकता क्यों होती है ?

उ०– क्योंकि बोई हुई वनस्पतियों को जिन तत्वों की आवश्यकता होती है, उन्हें वे ज़मी के भीतर से जड़ों द्वारा निरंतर लेती रहती है, लगातार ऐसा होने से, जब वे तत्व पृथ्वी में नहीं रहते या कम हो जाते हैं; तब उनकी पूर्ति के लिये खाद डालने की आवश्यकता होती है.

प्र०– ये सब खाद्य तत्व किस तरह आते-जाते रहते हैं ?

उ०– चक्र के समान.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार वनस्पतियां मीठा, तीखा, कडुवा, कसैला, खारा, खट्टा, चिकना आदि रसकस, पृथ्वी से खेंचा करती हैं, उन्हीं वनस्पतियों को हम या अन्य प्राणी खाते रहते हैं, जिनसे हम सबके शरीर पलते व बढ़ते हैं, इन वनस्पति-भक्षकों को मांसाहारी मार खाते हैं, जिसने वे बढ़ते व पलते हैं, इस तरह वे सब रसकस अचर से सचर प्राणियों में आते रहते हैं, किन्तु फिरसे वे सब तत्व चर प्राणियों के हंगने, मूतने तथा मरने आदि से पृथ्वी में मिलकर वनस्पतियों को प्राप्त होते रहते हैं; इसी तरह सब तत्व चक्राकार गति किया करते हैं,

प्र०– इस गति में क्या विशेषता है ?

उ०– कि जिन शुद्ध तत्वों को हम खा पी लेते हैं, उन्हीं को अशुद्ध करके त्यागते हैं, जिनसे पृथ्वी, जल, वायु दूषित हो जाता है, परन्तु वनस्पतियां उन अशुद्ध तत्वों को चूसकर शुद्ध कर देती है, जिन्हें फिर से हम खाते पीते हैं; जिस तरह सूर्य अपनी किरणों द्वारा अशुद्ध जल को शुद्धकर, वाष्प बना, फिर से हमें वृष्टिरूप से दिया करता है; इस नियम से सबका निर्वाह भी हो जाता है और सब तत्व ज्यों के त्यों बने रहते हैं.

प्र०– तो फिर क्यों हमारी उर्वरा भूमि दिन प्रतिदिन अनुर्वरा हुई जाती है ?

उ०– इसके अनेक कारण हैं, किन्तु एक कारण यह भी है कि जो पशु यहां की वनस्पतियां चर रहे हैं, उनका मांस, रक्त, हाड़, चर्म, स्नायू आदि बाहर चला जा रहा है और वे वनस्पतियां जो इस भूमि से तत्व खैंच रही हैं तथा उनके आत्मीय बीज आदि प्रचण्ड प्रवाह से बाहर जा रहे हैं इसलिये वे तत्व लौट नहीं सकते; जो कि पहिले विकृत हो, आपही इस भूमि में मिल जाया करते थे; तभी उस काल में खाद डालने की आवश्यकता न होती थी और न वे लोग ही उस खाद की इतनी परवाह करते थे, जैसी कदर आज हो रही है; बस, जो खरीद नहीं सकता, उसीकी भूमि अनुर्वरा हो रही है ?

प्र०– बीज कितने प्रकार के होते हैं ?

उ०– दो प्रकार के होते हैं अर्थात् एकदल और द्विदल.

प्र०– एकदल किसे कहते हैं ?

उ०– जिस बीज की दाल नहीं बन सकती और ऊगते ही जिसमें से एक नोकदार पत्ता बाहर निकलता है, पर बीज बाहर नहीं आता, जिसकी जड़ें कम गहरी तथा तम्बू के समान जमीन के ऊपरी भाग पर तनी रहती हैं; यथा गेहूं, ज्वार, बाजरा, चावल, जौ, मक्का आदि.

प्र०– द्विदल किसे कहते हैं ?

उ०– जिस बीज की दाल बन सकती है और ऊगते ही जिसमें से दो पत्ते बाहर निकलते हैं, इसके पहिले बीज की दो दालें बाहर आती हैं, जिसकी जड़ें बहुत गहरी तथा सीधी जमीन के भीतर धसी हुई होती हैं; यथा चना, उड़द, मूंग, तुअर, चौला, मसूर, मटर, बटाना आदि.

प्र०– कैसा बीज बोना निरर्थक है ?

उ०– सड़ा, घुना, भुना, सत्वहीन, निर्जीव.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि निर्जीव बीज ऊगता नहीं, इसलिये सड़ा, भुना क्योंकर ऊग सकता है, कदाचित् घुना व सत्वहीन बीज सजीव होने पर ऊग भी आवे, तो बढ़ता नहीं, बढ़ा भी, तो फलता नहीं, फला भी, तो सत्वहीन फल लगता है,

प्र०– तो क्या बीज में भी जीव होता है ?

उ०– यदि जीव न होता, तो उसका ऊगना, बढ़ना, जड़ों द्वारा खाद मिश्रित जल का खेंचना, पत्तों द्वारा तेज का लेना, स्वास तथा प्रस्वास का करना क्योंकर हो सकता; देखो ! लज्जावंती का स्पर्श से मुरझाना, सूर्यमुखी का सूर्याभिमुख गति करना, इमली आदि का सोना, सब वनस्पतियों का अनुकूलता से प्रफुल्लित तथा विपर्य से कुम्हलाना, आस्ट्रेलिया राक्षस वृक्ष का प्राणियों को देखकर झुकना, पकड़ना तथा उन्हें चूस जाना इत्यादि बातों से सिद्ध होता है कि इनमें चलने फिरने तथा बोलने की गति के सिवाय सब प्रकार का ऐंद्रिक ज्ञान है.

प्र०– गेहूं आदि स्थूल बीजों में से बोने के योग्य उत्कृष्ट बीज किस तरह छांटे ?

उ०– जितने गेहूं अपने खेत में बोये जाते हों, उतने मात्र लेकर, प्रथम सूप से झटक, हलके उड़ादो, फिर चालनी से चाल, बारीक अलग कर दो, फिर उन्हें पतली धार से जल से छोड़, तैरने वालों को

निकाल दो; अवशेष को जल से निकाल, चौगुनी मिट्टी या खाद मिलाकर अपने खेत में बो दो बस, इतने ही में सम्पूर्ण खेत बोया जाकर हलके बारीक बच रहेंगे.

प्र०– चौगुनी मिट्टी क्यों मिलावें ?

उ०– जिसमें गेहूं दूर-दूर बोया जावे, नहीं तो उनके परस्पर लड़ने से उपज कम होगी.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– आपने देखा होगा कि जब कभी एक ही स्थान पर बहुत से पौधे खड़े होते हैं, तब उनमें से एक दो मात्र पूरी ऊंचाई तक पहुंचते हैं, अवशेष ठिठुर कर छोटे रह जाते हैं, क्वचित् मर भी जाते हैं; ऐसे समुह को जड़ समेत खोदकर निकालिये ! तब विदित होगा कि जो सबसे ऊंचे पौधे हैं, उनकी छोटी-छोटी जड़ों ने अवशेष पौधों की जड़ों को पकड़कर अपनी बगल में दबा रक्खा है और बड़ी-बड़ी जड़ों ने भूमि के भीतर घुस, अधिकार जमा रक्खा है; इसलिये कमजोर पौधे कम खाद पाने से उन्नति नहीं कर सकते या खाद बिना मर भी जाते हैं.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह आप एक थाली में एकही लड्डू रख, दस लड़कों के बीच धरके, कहिये, कि यह लड्डू तुम लोगों के लिये हैं ? जो चाहे सो ले, बस ! फिर आप देखोगे कि उनमें से एक बलवान, सबको दबा, किस तरह लड्डू हड़प लेता है ! इसी तरह संकुचित स्थान के खाद के लिये पौधे प्रयत्न करते हैं, परन्तु अन्त को बलवान पौधा सबको दबा, आपही खाद हड़प लेता है ; इसलिये अवशेष पौधे मर जाते हैं या उनकी उन्नति मारी जाती है, इसी कारण दूर-दूर या कुछ अन्तर देकर बीज बोना या पौधे लगाना चाहिये.

प्र०– यदि जमीन में तरी कम हो तो ?

उ०– तो बीजों को भिगोकर बोवें.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि बीज बिना भींगे कोमल होता नहीं और कोमल हुए बिना,

भीतर का सत्व फूलकर दुग्ध के समान होता नहीं, जिसके बिना, तद्‌गत जीव जाग्रत हो, उसे चूस सकता नहीं और बिना चूसे वह बढ़ सकता नहीं और सबल हो, जमीन में जड़ें घुसेड़, अन्तर्गत खाद चूस सकता नहीं.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह आज के जन्मे बालक को माता या धाय गाय आदि का दूध न मिले, तो क्या उसके जीने, बढ़ने तथा अन्न खाने की आशा की जा सकती है ?

प्र०– इससे क्या सिद्ध हुआ ?

उ०– कि जिसतरह बच्चेके लिये माता के स्थन में दूधका होना आवश्यक है, उसी तरह अंकुर के लिये बीज में सत्व का होना आवश्यक है, जिस तरह माता के कुच में अधिक दूध होने से बच्चा पुष्ट, बलवान तथा दीर्घायु होता है, कम होने से कृष्य, बलहीन तथा अल्पायु होता है और न होने से उसका जीना ही दुर्लभ है; उसी तरह जिस बीज में सत्व अधिक हो, उसका पौधा शीघ्र बढ़ने तथा बहुत फलने वाला होता है, कम सत्व होने से पौधा कमजोर व कम फलने वाला होता है और सत्व न होने से उसका ऊगना या जीना भी सम्भव नहीं; जिस तरह दांतों के ऊगने पर बच्चा अन्न खा सकता है, उसी तरह जड़ों के विस्तार से पौधा खाद चूस सकता है.

प्र०– सुवृष्टि होने पर भी फसल क्यों बिगड़ जाती है ?

उ०– अच्छी जमीन में सड़ा बीज तथा बुरी जमीन में अच्छा बीज बोने से.

प्र०– यह किस तरह जाने कि अमुक बीज या पौधे के लिये अमुक खाद की आवश्यकता है ?

उ०– बीज या पौधों की वैज्ञानिक परीक्षा करके देखें, कि उनमें कौन-कौन तत्व उपस्थित हैं, उन तत्वों में से जो-जो पृथ्वी में न हों, या कम हों, उन्हीं की पूर्ति करें.

प्र०– किस तत्व की पूर्ति किस सहज साध्य पदार्थ द्वारा हो सकती है ?

उ०– १ नाइट्रोजन की पूर्ति शोरा व पत्तों के खाद द्वारा करें.

२ कार्बोनिक गैस की पूर्ति मलमूत्र तथा मरे जीवों से करें.

३ फास्फोरस की पूर्ति हड्डी से करें.

४ सोडियम पोटेशियम की पूर्ति राख से करें.

५ केल्शियम की पूर्ति चूना व हड्डो से करें.

६ सिलकन की पूर्ति मुरम पत्थर से करें.

७ मेग्नेशियम की पूर्ति तुष के खाद से करें.

८ गन्धक आदि सब तत्वों की पूर्ति मींगने, लेंडी, लीद, गोबर तथा सब प्रकार के मलमूत्रादि से करें.

प्र०– यदि यह न बन सके तो ?

उ०– पहिले जिस खेत में एकदल बोया गया हो, उसमें द्विदल; और जिसमें द्विदल बोया गया हो, उसमें एकदल बोने से तत्वों की पूर्ति हो जावेगी और जमीन जोरदार बनी रहेगी, साथही उपज भी अच्छी होगी.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि एकदल जमीन के ऊपरी भाग से और द्विदल जमीन के भीतरी भाग से अपना खाद चूसता है, इसलिये दोनों की जड़ों का अलगाव रहता है तथा जिस खाद को एकदल लेता है, उसे द्विदल नहीं लेता और जिसे द्विदल लेता है उसे एकदल नहीं लेता है, परन्तु जिस विकार या खाद को द्विदल छोड़ता है, उसे एकदल चूस लेता है और जिस विकार या खाद को एकदल छोड़ता है, उसे द्विदल चूस लेता है. इस तरह दोनों का निर्वाह भी हो जाता है और परस्पर युद्ध भी नहीं होता, सिवाय जमीन भी अच्छी दशा में बनी रहती है; इसी कारण जिस खेत में गेहूं, चना अथवा ज्वार, कपास एक साथ बोया जाता है, वह दोनों फसलें प्राय: अच्छी होती हैं; इसीसे हिन्दू लोग दाल-रोटी या दाल-चावल खाना नीरोगता का हेतु समझते हैं.

प्र०– किस तरह कठोर बीज भी शीघ्र उग सकते हैं ?

उ०– हर बीजों को अंकोल का तेल चुपड़, हल्दी की धूनी दे, ओले से तर की हुई जमीन में बोने से.

प्र०– तीखी मूली किस तरह मीठी हो सकती है ?

उ०– पुरानी मूली को उखाड़कर पत्ते तोड़ फेंके व गर्भ में चीरा लगा अन्दर सीसे का सर्वोत्कृष्ट सिंदूर [मिनियम] भरकर फिर से बोदें, जब फले तब बीज ग्रहणकर रख छोड़ें, उन बीजों को बोने से जो मूली उपजेगी, वह मीठी होगी, मेथी में बोई मूली भी कुछ ठीक होती है.

प्र०– भिंडी के पौधे को छोटा व सात पत्र वाला और फल को बड़ा किस युक्ति से कर सकते हैं ?

उ०– पौधे पर लगी हुई पकी भिंडियों को सुखाकर शुद्ध बछिया के गोबर और गोमूत्र से बने कंडे में गाड़कर सुखाले, ऋतु पर निकाल, उनके बीज बोवें, तो उपरोक्त फल होगा.

प्र०– ज्वार के पोखड़े मधुर, कोमल तथा चिकने किस तरह हो सकते हैं ?

उ०– पीली ज्वार बछिया को खिलावें, जब गोबर द्वारा निकले, तब गोबर को फैला, सुखाले, फिर कंडे की राख मिला, रखदे, ऋतु पर बोवें, तो उक्त लक्षण वाली हो जावेगी, पर जरा गोमूत्र का बास देगी, किन्तु तीसरे वर्ष उसकी संतान सुगंधित हो जावेगी.

प्र०– आम का सुगन्ध स्वाद किस तरह बदल जाता है ?

उ०– पके आम को लेकर पिलपिलावे, फिर छिद्र कर, उसमें इच्छित अर्क या मिठास भर, नियमानुसार बोदें, पर पहिले उस अर्कादिक को कर्पूर या गन्धक या जटामासी आदि की भावना दे ले, जिसमें कृमि न पड़ने पावे, नहीं तो उससे उपजे पेड़ में लगने वाले फलों में पकने पर उक्त गुण तो होगा, पर कीड़े पड़ जाया करेंगे, जहां तक बन सके, वे पदार्थ खाद या जल में मिलाकर पौधे को भी देना उचित है.

प्र०– फल बड़ा अथवा छोटा किस तरह हो सकता है ?

उ०– बीज तथा पौधे को उपयुक्त भावना और खाद देने से फल बड़ा लगेगा, किन्तु खाद न देने या कम देने या नस्तर आदि से प्रतिदिन सताये जाने के कारण पौधा छोटा तथा फल छोटा होगा.

प्र०– बीजों की रक्षा किस तरह होती है ?

उ०– राख, बालू, भूसा, लकड़ी का चूर्ण, मधु, पृथ्वी, वायु शून्य स्थान, बर्फ, तुष आदि में गाढ़ रखने से अथवा अरनी रस या सुहागे का रस चुपड़ने से बीज बोने के योग्य बने रहते हैं, किन्तु तेल, निमक का पानी, स्प्रिट, नीलाथोथा तथा किसी शुद्ध अर्क में निर्जीव होकर उसी दशा में ज्यों के त्यों बने रहते हैं.

प्र०– फल की उत्पत्ति का कारण क्या है ?

उ०– रज और पराग का संयोग.

प्र०– रज, पराग कैसा होता है ?

उ०– रज तो सूक्ष्म चिपचिपा और पराग बारीक दानेदार होता है,

प्र०– रज पराग कहां पर रहता है ?

उ०– फूल के भीतरी छिद्रों में रज और ऊपर या बाहर कहीं सूक्ष्म तन्तुओं पर पराग होता है.

प्र०– ये पांचों किसके समान हैं ?

उ०– फूल तो ऋतुधर्म (हैज) के समान, वे छिद्र योनि के समान, तन्तु लिंग के समान, रज स्त्री के रज के समान और पराग पुरुष के बिन्दु के समान है.

प्र०– किस तरह फल उपजता है ?

उ०– जिस तरह ऋतु प्राप्त होने पर पुरुष का बिन्दु, जब स्त्री के रज से जा मिलता है, तब गर्भ द्वारा बच्चा होता है, इसी तरह फूल खिलने पर, जब पराग जाकर रज से जा मिलता है, तब गर्भ द्वारा फल की उत्पत्ति होती है, किन्तु रज पराग के कच्चे होने पर, उनका संयोग कभी नहीं होता, यदि किसी तरह संयोग करा भी दिया जाये, तो भी फल नहीं लगता.

प्र०— वनस्पति अपनी वंशवृद्धि कितने प्रकार से करती है ?

उ०— आठ प्रकार से करती है, अर्थात् बीज, मूल, मूलांकुर, शाखा, पेबंद कंद, फूल तथा पत्र में से, कोई एक द्वारा अथवा कोई दो, तीन, चार या पांच से, प्रथक-प्रथक वंश विस्तार करती है, किन्तु इन भेदों में भी अनेक प्रभेद पाये जाते हैं; जैसे कोई बीज रगड़कर, कोई छीलकर, कोई फोड़ कर, कोई चीरकर, कोई उबालकर, कोई तपाकर, कोई भिगोकर, कोई ज्यों का त्यों बोने से, कोई फेंकने से तथा कोई खाये बाद विष्टा या बमन द्वारा गिरने पर ऊगते हैं, विशेष विवरण विस्तार भय से नहीं दिया गया.

प्र०— वृक्षोत्पत्ति की गति किस तरह है ?

उ०— चक्राकार.

प्र०— क्या प्रमाण ?

उ०— देखो ! जिस तरह पक्षीगत नरमादा के बिन्दुरज के संयोग से गर्भ, तथा गर्भ से अंडा, और अंडे से पूर्ववत नर मादारूप पक्षी उपजते हैं; उसी तरह वृक्षगत नरमादा के परागरज के संयोग से गर्भ, तथा गर्भ से फल, और फलसे पुनः पूर्ववत वृक्ष उपजते हैं; इसी तरह सबकी जानो !

दोहा

खेती जीवन मूल निज, सबको राखे प्राण ।
याते याही राखिये, जो चाहो कल्याण ।।१।।
उदर भरे ये अन्न दे, मधुर दयी हर्षाय ।
पवन, शीत, जल, उष्णसों, दे के वस्त्र बचाय ।।२।।
तनको जी आधार है, जी को अन्न जु एक ।
ये निपजे जा वर्ष ना, भूखन मरैं कितैक ।।३।।
वणिज न शिल्प न द्रव्य ना, कला शक्ति ना नेक ।
मात्र यही निज देश को, कृषी सहारो एक ।।४।।
तापर हम खेती तजैं, गहैं अन्य ये कर्म ।
क्या विद्या यह ज्ञान फल, बुद्धि यही निज धर्म ।।५।।

प्रकृति ज्ञान कृति रसायन, खाद वनस्पति धर्म ।
जाने ताकी खेति है, स्वयं करै जो कर्म ।।६।।
हो संचय क्रय वर्ष को, खाद धानधन बीज ।
दास बैल जल भू सदा, कृषी उसे दे चीज ।।७।।

उपदेश १५

व्यापार

प्र०– व्यापार किसे कहते हैं ?

उ०– विशेष करके जिसका विस्तार सब ओर ऐसा व्यापा हुआ है, कि जिसका पार ही नहीं, उस प्राकृतिक उद्योग को व्यापार कहते हैं.

प्र०– वह प्राकृतिक व्यापार कौन कर रहा है ?

उ०– वह सच्चिदानन्द प्रभू तथा अखिल चराचर विश्व.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! इस महाशून्यरूपी स्वयं भूमि में, निज मर्यादारूपी मूलधन के आधार पर, स्वइच्छारूपी नियमानुसार, यमरूपी स्वसत्ताद्वारा चित्‌रूपी चेतनाशक्ति के स्वप्रकाश से उत्साहित हो, आनंदपूर्वक कौन बड़ा व्यापारी, निजतत्वरूपी धन के लेने, देने तथा यथास्थित रखने का सतत अगम्य उद्योग कर रहा है ? और देखो ! कर्षण-शक्ति, विद्युत शक्ति, सूर्य, चन्द्र, तारागण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी व इनके संबंधि सूक्ष्मतत्व तथा स्थावर जंगम देहधारी और उनके बाहरी भीतरी अवयव आदि क्या कर रहे हैं ?

प्र०– हमारा व्यवहारिक व्यापार किसके आश्रित है ?

उ०– उपरोक्त पदार्थों के प्राकृतिक व्यापार के आश्रित है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि उपरोक्त पदार्थों की, तथा उनके गुण, कर्म, गति की, बिना सहायता लिये, न कोई व्यवहारिक पदार्थ बन सकता है और न उपज सकता है.

प्र०– व्यापार के लिये किसकी आवश्यकता है ?

उ०– भूमि, मूलधन, उद्योग तथा विनिमय की.

प्र०– यहां भूमि किसे समझें ?

उ०– जो स्थान व्यवहारिक पदार्थों के लेने, बनाने, उपजाने तथा देने के लिये उपयुक्त हो, उसे व्यापार की भूमि समझो ?

प्र०– मूलधन किसे समझें ?

उ०– जो खर्च न हो, बल्कि खर्च के लिये कमावे तथा अन्य मूलधन बनावे, उसे मूलधन समझो, अन्य को नहीं.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह रेल्वे, ट्रामवे, तार, पोस्ट, जहाज, मकान, बाग, आभूषण, जागीर, गाड़ी, बैल, घोड़ा, मशीन, सांचा, यंत्र तथा वह रुपया जो उपरोक्त वस्तुओं की कीमत में अथवा ब्याज मिलने के लिये दिया गया हो ! वही मूलधन है ! क्योंकि ये सब विद्यमान रह, खर्च के लिये कमाती हैं और बचत रहने पर नया मूलधन बनाती हैं, किन्तु जो धन पास न रह सके, न खर्च के लिये कमा सके और न अन्य मूलधन बना सके, उसे मूलधन नहीं कह सकते.

प्र०– यहां उद्योग किसे समझें ?

उ०– पदार्थों के प्राप्त करने, बनाने तथा उपजाने के अर्थ, जो नियमानुसार, प्राकृतिक विचारपूर्वक, उत्साह के साथ, परिश्रम किया जाता है; उसे उद्योग समझो ?

प्र०– विनिमय किसे कहते हैं ?

उ०– एक पदार्थ देकर उसके बदले में अन्य पदार्थ या मुद्रा आदि लेना; विनिमय कहाता है.

प्र०– हमारे पास इन चारों में से क्या है और क्या नहीं ?

उ०– थोड़े बहुत चारों होकर भी नहीं के समान है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि–**है भू पर पूंजी नहीं, है पूंजी बिन ज्ञान ।**
ज्ञान जिसे उद्योग नहीं, उद्योगी बिन थान ।।

देखो ! व्यापारी विचार से हमारी भूमि सब प्रकार के व्यापार के लिये अनुकूल तथा बहुत बड़ी है, पर हमारे पास पूंजी नहीं ! और है भी, तो कम ! और वह भी उन लोगों के पास, जो केवल दलाली किया करते हैं ! इसीसे हमारी भूमि के सब बड़े-बड़े व्यापारों में विदेशी मूलधन लग चुका है ! जिसका शुद्ध नफा अनेक प्रवाहों से बाहर चला जा रहा है ! या भरपूर पूंजी बढ़ा, सम्पूर्ण व्यापार भूमि को हस्तगत कर रहा है ! इसीलिये दिन-प्रतिदिन हमारा व्यापार और हमारी व्यापार भूमि संकुचित हुई जाती है ! यहां तक कि हमारे सामने यह प्रश्न उपस्थित हो चला है कि "मूलधन किसमें लगाना और किस तरह बचाना !" क्योंकि जिसे प्रकृति का ज्ञान नहीं, उसके नियम का विचार नहीं, उत्साह नहीं, तथा उस नियम के अनुसार परिश्रम करने का अभ्यास नहीं, उस आलसी की ऐसी ही दशा होती है ! किन्तु हमारी कृषि तथा गायें विनिमय द्वारा हमें किस कदर छोटा-मोटा व आधा चौथाई पेट भोजन देकर कुछ काल तक सहारा दे सकती हैं; पर मूलधन को नहीं बचा सकती ! तिसपर डेरीफार्म तथा कृषि आदि में भी विदेशी अपना मूलधन लगा रहे हैं ! उस दशा में हम आलसियों का आगे क्या हाल होगा !! जबकि स्वतः हमारी दयालु सरकार सदा से अवाध्य वाणिज्य के पक्ष में है, तिसपर हमें अपना-अपना वर्ण का उद्यम क्यों न करना चाहिये !!!

प्र०– व्यापार की उन्नति तथा उसके द्वारा मूलधन की वृद्धि कब हो सकती है ?

उ०– जब निज की पूंजी व निज का बनाया अथवा उपजाया सामान हो, जिसकी खपत शीघ्र ही निजदेश या परदेश में सुगमतापूर्वक हो सकती हो तथा जिसके द्वारा यथेष्ट लाभ हो सकता हो, तब व्यापार की उन्नति तथा मूलधन की वृद्धि हो सकती है; अन्यथा नहीं.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि बाहर माल भेजने वाले केवल हम ही नहीं हैं, पर अनेक बड़ी-बड़ी पूंजी वाले विदेशी भी हैं, जो यहां के पदार्थ खुदवाकर, बनवाकर, उपजाकर अथवा मोल लेकर विदेश भेजते हैं, जिनका बड़ा भारी लाभ वे ही उठा रहे हैं; बल्कि जो रुपया हम उनसे पाते हैं, उसीका कई गुना रुपया, वे हमसे पुनः बुद्धिमानी के साथ वसूल कर लेते हैं.

प्र०— किस तरह ?

उ०— देखो ! जो कच्चा माल हम उन्हें देते हैं, वे उसी का पक्का माल बना, हमको बेच, हमसे उस एक के बदले अनेक रुपये ले लेते हैं; ऐसे वे उद्योगी हैं.

प्र०— कोई उदाहरण देकर समझाओ ?

उ०— मानो ! हमने एक विदेशी को एक रुपये में दो सेर रुई दी, उसने उसके चार मलमल के थान बना, २५) रुपये में हमें बेचे; अथवा मानो ! हमने उसे एक रुपये में एक मन अरंडी दी, उसने उसे पील, १४ सेर तेल और २६ सेर खल निकाल, दवा के लिये हमको २) रुपये सेर तेल दिया, तो बताओ ! कौन नफे में रहा ? इसी तरह बुद्धिमान विदेशी हमसे लाख, राल, मोम, मधु, ऊन, चमड़ा, सन, कपास, नाज, जड़ी-बूटी आदि खरीद, बुद्धिबल से एक के बदले अनेक पाते हैं.

प्र०— क्योंकर विदेशी सच्चे व्यापारी और हम सच्चे दलाल हैं ?

उ०— क्योंकि विदेशी व्यापारी आर्डर पाते ही तुरन्त बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, कराची आदि बड़े नगरों के बड़े व्यापारियों के पास माल भेज देते हैं, नया माल आने की सूचना पाते ही, सब नगरों के भले व्यापारी, उनसे माल मंगाकर, अपनी-अपनी दुकानें सजाते हैं, यह देख, देहाती व्यापारी उनसे माल ले; कोई दुकान पर रख, कोई हाट में जा, कोई गाड़ी, घोड़ा, टट्टू, बैल, ऊंट या पीठ पर लाद, गांव-गांव भटक, उन गरीबों को बेच, मनमाने टके बनाते हैं, जो

मोटे-छोटे नाज से आधा चौथाई पेट भर, शीत उष्ण तथा वर्षा का दुख सहकर, अपनी गाढ़ी कमाई से चार पैसे जरुरत के लिये बचा रखते हैं या उधार लेकर उन्हें देते हैं; तब देहाती व्यापारी लौट, अपने-अपने नगरसेठ को रुपया चुकाते हैं, नगरों के सेठ वह रुपया बम्बई आदि के बड़े सेठों के पास भेजते हैं और फिर वे बड़े-बड़े सेठ वह धन लेकर विदेशी व्यापारियों के पास भेजते हैं, इस तरह माल के आने तथा धन के जाने का प्रवाह सतत बह रहा है; जिस तरह पृथ्वी पर यत्र-तत्र गिरा हुआ, वर्षा का जल जंगली तथा पहाड़ी नालों में हो, सहायक नदियों में और फिर उनका जल बड़ी-बड़ी नदियों में हो, समुद्र में जा गिरता है; इसीसे समुद्र अपार जल राशि वाला अर्थात् जलनिधि कहाता है.

प्र०– हमारा वार्षिक खर्च कितना है ?

उ०– कई अरब का है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! हम ८५ करोड़ भारतवासी हैं, मानलो ? हममें से हर मनुष्य कम से कम दस रुपये वार्षिक खर्च करे, तो भी ८.५ अरब से अधिक की आवश्यकता होगी; उस दशा में वास्तविक खर्च कितने अरब का होना चाहिये ?

प्र०– विदेश से कौनसा माल हमारे यहां आता है ?

उ०– सूती, ऊनी, रेशमी तथा सनका कपड़ा, सूत, चीनी, कांच, रबर, काठ तथा धातु के पदार्थ, यंत्र, कागज, कपूर, तेल, दियासलाई, रंग, दवाइयां, चमड़े की चीजें, गेंद, घड़ियां, वार्निश, सीमेंट, साबुन, बटन, मोमबत्ती, शक्कर, ताश, खाने की चीजें, आभूषण, किताबें तथा रासायनीक पदार्थ इत्यादि.

प्र०– बहुधा हमारे व्यापारियों को धन की तंगी क्यों रहती है ?

उ०– क्योंकि बहुधा उनका रुपया माल में फंसा रहता है और जब माल बिक जाता है, तब वे तुरन्त उसे अन्य माल खरीदने के लिये बाहर देते हैं, इसलिये फिर से उनका हाथ खाली हो जाया करता है,

ऐसे व्यापारी बहुधा कागज के घोड़े दौड़ा, लाखों का सौदा किया करते हैं, किन्तु जब माल नहीं खपता या भाव गिर जाता है, या सबको एक साथ नगदी चुकाने का अवसर आ जाता है, तब पोल खुल जाती है अथवा दिवाला निकल जाता है.

प्र०– विशेष करके ऐसा धनाभाव विदेशी व्यापारियों में क्यों नहीं देखा जाता ?

उ०– क्योंकि पक्के माल के कारण जितना रुपया उनके पास आता है, उतना जाता नहीं, तिसपर वे अपना सम्पूर्ण धन व्यापार में नहीं लगाते, बल्कि असमय के लिये एक अच्छी रकम बैंकों में भी रख छोड़ते हैं तथा हर वर्ष के नफे में से कुछ हीरे, मोती आदि बहुमूल्य पदार्थ अपने घर के लिये खरीद लिया करते हैं, जिनकी स्त्रियें वसंत में वसंती, ग्रीष्म में नीलम, वर्षा में शर्वती, शरद में पुष्पराज तथा शीतकाल में लाल या श्वेत हीरों के आभूषण पहना करती हैं और हमारे मोटे-मोटे सेठ तथा सेठानियां बहुधा लाख भरे या खोटे आभूषण पहिनकर अपना दूषण ढके रहती हैं, इसीसे यह कहावत जन्मी है :

तांबे के जेवर पर, सोने का झोल ।
बड़े बड़े सेठों का, दिखाता है मोल ।।

देखो ! वे पुराने सर टामसरो स्वयं, जिन वैश्यों के महदैश्वर्य की कीर्ति लिख गये हैं, उन्हीं की संतान उद्यम का अर्थ न जानने के कारण श्रेष्ठी के बदले सेठ या सेठजी हो गये ! ! !

प्र०– अधिक लाभ कब हो सकता है ?

उ०– जब जिन चीजों की बहुत जरूरत हो, पर बाजार में कम मिलती हो, तब उनको लाकर, बनाकर, उपजाकर या संग्रह कर बेचने से अधिक लाभ होता है अथवा जिन चीजों की जरूरत भी बहुत हो और मिलती भी बहुत हो, उन्हें कल, बल, बुद्धि से कम खर्च में उपस्थित करने तथा कम नफा ले, बेचने से भी अधिक लाभ होता है, सिवाय नकली से भी अधिक लाभ होता है, पर असली

के परखैया बेकदरी करते हैं, परन्तु हर चीजों से तभी तक लाभ हो सकता है, जब तक उनकी उपयोगिता न मारी जाय या ठीक समय पर बिक जाय.

प्र०— धनवान होने या धन पाने का मुख्य मार्ग क्या है ?

उ०— राज कर्मचारी धन पाते हैं राजा से, राजा धन पाते हैं प्रजा से, प्रजा धन पाती है उद्योग से, उद्योग तथा व्यापार धन पाता है सामग्री से, सामग्री धन पाती है उपयोगिता से, उपयोगिता धन पाती है समय से, और समय धन पाता है ज्ञान तथा लक्ष से.

प्र०— विनिमय के सिवाय, सिक्के में और क्या गुणदोष है ?

उ०— जो सिक्का अपने देश के बाहर नहीं चलता, वह अपने ही देश में भ्रमण करता हुआ, ज्यों का त्यों बना रहकर, जितना माल बना, उपजा तथा खरीदकर बाहर भेजता है, उसके बदले में केवल उस माल के मोल के बराबर ही, बाहर का माल अपने देश के भीतर आने देता है, अधिक नहीं; इसे विदेश की दशा चाहे सुधर भी जाय, पर निज देश की दशा बिगड़ी नहीं, वरन सदा एकसी बनी रहती है, परन्तु इस बात का होना तभी तक सम्भव है, जबतक देश का सोना, चांदी, हीरा, मोती आदि बाहर न जाता हो और जो रुपया देश के बाहर भी चलता हो, तो वह अपने कच्चे माल वाले से अप्रसन्न होकर सहसा पक्के माल वाले के पास चला जाता है.

सोरठा

गहै खनै उपजाय, बना वस्तु निज पूंजी सो।
देश-विदेश बिकाय, सस्ती सुन्दर लाभ सो ।।१।।
वही धनी धनवान, जाधन भू भुज काम निज।
पावै नित सन्मान, निज जन पर जन सो जगत ।।२।।

दोहा

धनी कहाते हम बड़े, गांठ न पूंजी नेक।
कागज के टट्टू चला, सौदा करें अनेक ।।१।।

धन भेजी परदेश में, बैठे धर सिर हात।
मांगन आवै धन कदा, ताही माल दिखात ॥२॥
पड़े चुकाना एक दिन, जो सबको इक साथ।
तुरत दिवाला कर कहैं, लिखा विधि अस माथ ॥३॥
परदेशी धनवान क्यों, हम क्यों अति कंगाल।
हैं बेचत वे निज बना, हम पर बनाके माल ॥४॥
वे लेते कच्चा माल हैं, देते पक्का माल।
हम लेते पक्का माल हैं, देते कच्चा माल ॥५॥
पक्का पालै निज प्रजा, कच्चा अन्य प्रजाय।
पक्का लावै अन्य धन, कच्चा निज ले जाय ॥६॥
धन कच्चा दोनों दिये, मिलता पक्का माल।
कच्चे का धन इसलिये, करता खुद फामाल ॥७॥
निजधी कलबलसो बना, सस्ता सुलभ ललाम।
बेची पूरण काम वे, हम या बिन बेकाम ॥८॥
समय नसे बिन लक्ष के, समय बिना उपयोग।
नसे वस्तु उपयोग बिन, ता बिन धन उद्योग ॥९॥
अमुक धनी क्यों जगत में, अमुक भया कंगाल।
सोचो तारे को हमें, कौन बाट दे घाल ॥१०॥
धनी करै व्यापार निज, पूर्ण करै सब आस।
जो निज उद्यम को तजै, वो भिक्षुक या दास ॥११॥
पाली आज्ञा भूप की; सत्य करो व्यापार।
जासु बढ़ै सुख दुअन में, द्रव्य ऐक्य बल प्यार ॥१२॥

उपदेश १६

शिल्प

प्र०– जिस प्राचीन शिल्प को देख; सुन, आज भी बड़े-बड़े विदेशी विद्वान चकित होते हैं, वह मृतप्राय: क्यों हो रहा है ?

उ०– क्योंकि प्रथम तो परस्पर के झगड़ों तथा बाहरी आक्रमणों ने इसे नष्ट भ्रष्ट कर दिया और रहा सहा, अब हम नसा रहे हैं.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! आजकल सुखशांति के कारण हमारे थके थकाये शिल्पी भाई घोर निद्रा के वशीभूत हो गये हैं, उन्हें जगाना हमारे पुराने दयालु भाई महापाप समझते हैं, वरन अचल विश्रान्ति पाने के लिये उन्हें वेषधारी साधू बना, भिक्षान्न द्वारा निर्वाह कर लेने की सम्मति प्रदान करते हैं और हमारे नई रोशनी वाले भाई उन्हें शिल्प के कठिन परिश्रम से बचने के लिये द्रवित हो कभी ब्राह्मण बनाने की, कभी नौकरी करने की, कभी ग्रेजुयेट हो, वकालात करने की, कभी एक जाति तथा एकमत का सुख लूटने की सम्मति प्रदान करते हैं, किन्तु उन्हें निज शिल्प की शिक्षा नहीं देते, बल्कि ऐसे मनुष्यों को शिल्प शिक्षा दिलाते हैं, जिन्होंने कभी स्वप्न में भी वह काम न किया हो, इसीसे वे शिक्षित सिवाय बातों के और कुछ नहीं कर सकते, वरन शिल्प शिक्षा पाकर भी नौकरी की खोज में मारे फिरते हैं. इधर हमारे पुराने शिल्पी भाई, अशिक्षा के कारण अपना वही पुराना टूटा फूटा चर्खा फेरे जाते हैं, पर नया ढंग उसमें मिश्रित नहीं करते, जिससे काम जल्दी, सुन्दर, सस्ता, अधिक तथा लाभदायक नहीं हो सकता, इसी कारण प्रबल वेग से धन बाहर जा रहा है, और उधर हमारे नवशिक्षित शिल्पी भाई, निज शिल्प सम्बन्धी शिक्षा नहीं, वरन नौकर होने की शिक्षा पाते हैं, इसीसे वे भी निज शिल्प को तिलांजलि दे, और ही धुन में लगकर, उस चर्मकार के समान अपने वंश को आपही नसा रहे हैं; [देखो ! उपदेश ५ वां]. सिवाय महाजन कहलाने वाले हमारे धनशाली भाई अपने शिल्पियों को सहायता देना महापाप समझते हैं, यहां तक कि वे अपनी, अपने वंश, जाति तथा देश भाइयों की बिल्कुल परवाह नहीं करते, वरन यत्किञ्चित् कमीशन या ब्याज के लोभ से सर्वस्व गमाकर भी "वे और उनके रुपये" दोनों मिलकर दिनरात औरों के लिये कमा रहे हैं, साथही अपने शिल्प और शिल्पियों को घृणा की दृष्टि से देख, पैरों से कुचल रसातल पहुंचा रहे हैं. इस

अवसर का लाभ बुद्धिमान विदेशी उठा रहे हैं, और हम निज शिल्प की वृद्धावस्था देख, अन्तेष्ठी क्रिया की चिंतना कर रहे हैं, किन्तु अनुभविक शिक्षा यंत्र से निचोड़ा हुआ, कुलाचल पर्वत में उपजने वाली संजीवनी बूटी का रस पिला, उस वृद्ध को पुनः तरुण नहीं किया चाहते ! पर धन्य है !! सरकार को जो शिल्प रक्षण के उद्योग तथा विचार में हैं !!!

प्र०– जिसका जो वंशज कर्म है, उसे उसी कर्म की ठीक समयानुकूल अनुभविक शिक्षा देने से क्योंकर शिल्पोन्नति होगी ?

उ०– [१] क्योंकि वंशज संस्कार संतान में अनायास उदय हो जाते हैं, यह नियम रेशमी कीड़ों के समान चराचर जीवों में पाया जाता है, परीक्षा करके देखा है कि एक ब्राह्मण का लड़का कई वर्ष परिश्रम करके भी उतना अच्छा कपड़ा नहीं बुन सकता, जितना अच्छा एक कोष्टे का लड़का स्वल्पकाल के अभ्यास से बुन सकता है, सिवाय कोष्ठा दो चार बार के अनुभव से हो यंत्र द्वारा कपड़ा बुनने लग जाता है, पर ब्राह्मण आदि को बहुत धन, बल, समय तथा सिर खपाने से आता है.

[२] अस्थाई तथा अनेक काम करने वाले की अपेक्षा, स्थाई एक ही काम करने वाले का इतना अभ्यास बढ़ जाता है, कि वह औरों से कम समय में सफाई के साथ, अधिक काम कर सकता है, साथही तत्काम सम्बन्धी हर बात का प्राकृतिक रहस्य, उस कर्मेष्टी के हृदय पटल पर अंकित हो जाता है, जिसके द्वारा वह मर्मज्ञ, उस कार्य के सरलतापूर्वक होने की कोई नवीन सुगम युक्ति ढूंढ निकालता है, जिस आविष्कार से श्रम, धन, समय की बचत होकर, काम शीघ्र, सुन्दर, सस्ता तथा लाभदायक बनने लगता है.

[३] फिर अहोरात्रि के संसर्ग तथा संस्कार के कारण-ऐसे माता-पिता के अभ्यस्त काम का अनुभव, उनके बच्चों को अनायास

प्राप्त हो जाता है और फिर उस काम के निरन्तर करते रहने से उनका अनुभव मां-बाप से भी अधिक बढ़ जाता है और फिर इसी तरह उनकी भविष्य संतान का अनुभव उत्तरोत्तर पिता, पितामह तथा प्रपितामह आदि से बढ़ता ही जाता है, इसी लगातार अनुभव तथा साधन के प्राकृतिक विचार के प्रताप से ही नित नये अद्भुत आविष्कारों की सृष्टि होती है तथा उनके बालकों को निज शिल्प की शिक्षा पाने के लिये, अन्यत्र नहीं जाना पड़ता और न व्यर्थ सिर खपाने का कष्ट उठाना पड़ता है, साथही समय, फीस तथा अन्य खर्च की बचत होती है, सिवाय औरों के कुसंसर्ग संस्कार अपने बच्चों के कोमल हृदय को कलुषित नहीं कर सकते.

[४] इसलिये हमारे शिल्पी भाइयों को निरर्थक सौ गाड़ी पुस्तकों के पढ़ने तथा ब्राह्मण आदि बनने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु केवल पढ़ने, लिखने, गणित तथा विज्ञान की विशेष आवश्यकता है, सिवाय बड़े-बड़े कारखानों की भी आवश्यकता नहीं है, वरन ऐसे छोटे-छोटे यंत्रों के बनाने की मात्र आवश्यकता है, जिन्हें शिल्पी अपने-अपने घरों, नदियों, छतों आदि पर हाथ से, बकरे से, बैल से, जल से या वायु आदि से चला, उपरोक्त लाभ उठा सकें; क्योंकि बहुत पढ़कर भी नौकरी के लिये मारे-मारे फिरना या भीख मांगकर खाना; उन्नति तथा ज्ञान का लक्षण नहीं है. उनकी अपेक्षा वे बेपढ़े शिल्पी लाख दर्जे अच्छे हैं, जिन्हें निज शिल्प का अनुभविक ज्ञान है, तथा जो अपने बाहुबल से चार पैसे कमाकर; मर्यादापूर्वक अपना निर्वाह कर सकते हैं, यही निज शिल्परूपी एक हमारी लाइन और उसी एक का प्रेक्टिकल नालेज हमारी उन्नति का बड़ा द्वार तथा उदर पूर्ति आदि का मुख्य बीज है !! न कि पोपट विद्या !!!

प्र०– यदि वे शिल्पी द्रव्याभाव तथा उपयोग न जानने के कारण, उन-यंत्रों को न खरीद सकें तो ?

उ०– तो प्रथम स्वत: आप परीक्षा स्वरूप, एकही प्रकार के दो चार यंत्र खरीदो और एक उत्कृष्ट परिचालक नौकर रख, उसके हाथ के नीचे, उसी काम के जानने वाले, पुराने ढंग के चार छ: शिल्पी सहायता के लिये रख दो, बस! वे कुछ ही दिनों में अच्छी तरह यंत्र चलाने तथा उनके द्वारा होनेवाले लाभ को अच्छी तरह जानने लग जावेंगे, जब वे यंत्र लेने की इच्छा प्रकट करें, तब उन्हें यंत्र बेचदो, या किसी शर्त पर दे दो या मंगा दो. इस विधि से इधर आपको भी कुछ नफा, ब्याज या कमीशन मिलेगा और उधर सिलाई के यंत्र के समान शिल्पियों के हर घर में, उन यंत्रों से अधिक तथा उत्तम काम होने लगेगा, पर यंत्र भी यहीं के बुद्धिमान शिल्पियों द्वारा निर्मित हों !

प्र०– दिव्य यंत्रों का निर्माण तथा शिल्प की अनोखी वृद्धि कराने वाली कौनसी वस्तु है ?

उ०– वही शक्ति है, जो चराचर पदार्थों में ब्याप्त हो स्थित है, जो वस्तुओं को उठाती, पटकती, खैंचती, हटाती तथा रोकती हैं, जो शीत, उष्ण तथा गति को उपजाती है तथा सब कुछ कर सकती है.

प्र०– शक्ति की सरल परीक्षा किसके द्वारा हो सकती है ?

उ०– चुम्बक द्वारा.

प्र०– चुम्बकीय शक्ति किसे खैंच तथा हटा सकती है ?

उ०– चुम्बकीय शक्ति केवल लोहे को इतनी चाहती है कि बीच में किसी पदार्थ का पत्रा होने पर भी उसे अपनी ओर खैंच लेती है; किन्तु सोना, चांदी, तांबा, सीसा, पारा, जस्ता, स्वेत सुर्मा तथा पानी को पीछे हटा देती है.

प्र०– चुम्बकीय ध्रुव क्या वस्तु है ?

उ०– पृथ्वी के उत्तरीय तथा दक्षणीय ध्रुवों के समान चुम्बक में भी उत्तरीय तथा दक्षणीय ध्रुव होते हैं, जिन्हें क्रम से धन तथा ऋण

ध्रुव भी कहते हैं, जिस तरह एक धन ध्रुव, दूसरे धन ध्रुव को हटाता है, उसी तरह एक ऋण ध्रुव, दूसरे ऋण ध्रुव को हटाता है; किन्तु धन और ऋण ध्रुव, परस्पर एक दूसरे को अपनी ओर खींचता है, जिस सुई में चुम्बक की शक्ति आ जाती है, वह दिग्दर्शक यंत्र के बनाने के काम आती है, जिसे सजातीय ध्रुव से हटा, विजातीय ध्रुव से खैंच, घण्टी आदि बजा सकते तथा चक्राकार गति दे सकते हैं.

प्र०– शक्ति और तेज में क्या सम्बन्ध है ?

उ०– जिस ओर शक्ति का प्रवाह होता है, उसके विरुद्ध तेज गति करता है, जिसे विद्युत भी कहते हैं, इसलिये शक्ति से विद्युत और विद्युत से पुनः शक्ति उपजती है अर्थात् ये दोनों परस्पर हेतु हेतुमान हैं.

प्र०– विद्युत कितने प्रकार की है ?

उ०– एक ही विद्युत गति के कारण दो प्रकार की, रंग के कारण सात प्रकार की तथा उत्पत्ति के कारण तीन प्रकार की है.

प्र०– विद्युत किस तरह उपजती है ?

उ०– दो विजातीय द्रव्यों के मिलाने से रासायनिक विद्युत उपजती है, दो पदार्थों के रगड़ने से घार्षणिक विद्युत उपजती है, और जो बिना ऐसा किये, केवल प्रकृति ही से उपजती है, उसे प्राकृतिक विद्युत कहते हैं. यह सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, जल, मेघ तथा सब पिंडों से ली जा सकती है, हर विद्युत के धन तथा ऋण के विचार से केवल दो भाग हैं.

प्र०– विद्युत अर्थात् बिजली में क्या गुण है ?

उ०– इसमें शक्ति के समान गुण हैं, परन्तु गति शक्ति के विरुद्ध है, यह लोहे की चुम्बक बनाती, धन से धन को; ऋण से ऋण को हटाती और धनऋण-विद्युत परस्पर खिंचकर मिल जाती हैं, तब इससे प्रकाश या स्थिरता उपजती है, बिजली के द्वारा गुप्त शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध का ज्ञान होता है, यह पदार्थों के अवयवों को अलग-अलग कर सकती तथा मिलाकर पुनः वही पदार्थ

बना सकती है, बिजली की भट्टी से सब पदार्थ गलकर पानी तथा भाप बन सकते हैं, पत्थरों में होने वाले धातुओं को यह तत्काल निकाल सकती है, इसके द्वारा यंत्र तथा विमान भी चलाये जा सकते हैं, जिस तरह दो विजातीय ध्रुवों के बीच, लोहा अधर स्थित रह सकता है, उसी तरह दो सजातीय बिजलियों के बीच, धातु रह सकते हैं, जिस पदार्थ में बिजली जाती है, उसमें उष्णता और जिसमें से निकल जाती है, उसमें शीतलता उपजाती है, सब प्रकार के रोगों को दूर करने के लिये बिजली परम औषधि है, ये दोनों शक्तियां योगियों को योग की और भोगियों को भोग की सिद्धियां देने वाली हैं और सब पदार्थों के गुण कर्म जानने, उनके बनाने, ठहराने, चलाने, नसाने आदि की कलें हैं. इसी तरह सूर्य-किरण, अग्नि, वायु, जल, आकाश तथा पृथ्वी सम्बन्धी पदार्थों से क्या-क्या काम लिये जा सकते हैं, यह जानने के लिये विज्ञान-शास्त्र पढ़ने की आवश्यकता है.

दोहा

जाकी सत्ता देश पर, हानि न हो ता केर ।
ता विधि सो विस्तारिये, शिल्प कर्म चौ फेर ।।१।।
सभी वस्तु या देश में, पड़ी व्यर्थ बिन ज्ञान ।
ज्ञान बिना उपयोग ना, ता बिन वणिज नसान ।।२।।
वणिज बिना धन काम ना, ता बिन धी, बल, मान ।
खान पान मर्याद ना, जीवन मृत्यु समान ।।३।।
पढ़ी तुरत विज्ञान को, रची सुगम बहु यंत्र ।
विविध माल पक्का बना, बेची लो धन तंत्र ।।४।।
गाड़ी बाड़ी लाड़ि रत, व्यसन नींद खल कर्म ।
कृषी शिल्प व्यापार का, वे क्या जाने मर्म ।।५।।
असन बसन धन मान सुख, ज्ञान ठाम यश नाम ।
कृषी शिल्प व्यापार सों, मिलै सधै सब काम ।।६।।

वणिज बढ़ावत शिल्प को, वाणिज शिल्प बढ़ाय ।
माता सबकी धरणि है, पिता वही धन राय ।।७।।
खाने को कृषि देत ये, शिल्प देत सुख साज ।
सबहि काम ये धन करै, वणिज करै धन राज ।।८।।

सोरठा

जो चाहो भर पेट, असन बसन धन मान सुख ।
आलस दीजै मेट, कीजै उद्यम ज्ञान बल ।।१।।

उपदेश १७

आश्रम

प्र०– [आ] का क्या अर्थ है ?

उ०– ठीक, दिव्य, उत्तम प्रकार से, उत्तम, सीमा, हद्द, तक, अवधि,पर्यन्त.

प्र०– श्रम का अर्थ क्या है ?

उ०– पुरुषार्थ, परिश्रम, उद्योग, प्रयत्न.

प्र०– आश्रम का अर्थ क्या है ?

उ०– पुरुषार्थ की सीमा, दिव्य पुरुषार्थ, परिश्रम की मर्यादा.

प्र०– आश्रम कितने हैं ?

उ०– चार हैं अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास.

प्र०– ब्रह्मचारी का क्या कर्तव्य है ?

उ०– वीर्यरक्षा, विद्याभ्यास, गुरुसेवा, संध्या, ब्रह्मयज्ञादिक नित्य कर्म करना.

प्र०– गृहस्थ का क्या कर्तव्य है ?

उ०– संध्या, ब्रह्म यज्ञादिक नित्य कर्म, उद्योग द्वारा धनार्जन, विवाह, पुत्रोत्पत्ति, पुत्रकलत्र सहित परिवार का भरणपोषण, अतिथि-सत्कार, दीनों की रक्षा, सुकर्मों में दान, सज्जनों की सहायता तथा आश्रितों का परिपालन आदि.

प्र०– वानप्रस्थ का क्या कर्तव्य है ?

उ०– स्त्री सहित या अकेला बन में रहना, कंदमूल फल फूल शाक-

पत्रादिक खाना, त्रिकाल संध्यादिक नित्य कर्म करना, तथा त्रिगुणात्मक क्रियाशक्ति के सहित इच्छाशक्ति को साधन द्वारा जीतना.

प्र०— सन्यासी का क्या कर्तव्य है ?

उ०— त्रिगुणात्मक क्रिया शक्ति सहित इच्छा शक्ति के जय होते ही, वह आत्मारामी सब कर्मों से मुक्त हो, निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त होता है या जीवन्मुक्त हो, जगहितार्थ अपने अनुभविक उपदेश लोगों को सुनाता फिरता है, एक स्थान पर एक रात्रि या त्रिरात्रि से अधिक नहीं रहता.

प्र०— आश्रमों का कर्त्तव्यसार क्रम से कहो ?

उ०— पहिले ब्रह्मचर्य द्वारा वीर्य पुष्ट कर विद्वान, बलवान तथा निरोगी बने; फिर गृहस्थाश्रम द्वारा धनार्जन कर, विवाह करके पुत्रादिक उत्पन्न करे और प्राणिमात्र के हित के लिये तन-मन-धन लगावे, फिर पुत्र को गृहकार्य सौंप, वानप्रस्थ वन, त्रिगुणात्मक शक्ति को साधे; जय होने पर सर्वत्र ब्रह्मानन्द को अनुभवता हुआ, सन्यासी बन, अपने उपदेशों द्वारा जगत का हित करता फिरे.

प्र०— कलिकाल में वानप्रस्थ तथा सन्यास का निषेध क्यों ?

उ०— क्योंकि कलिकाल में इन दोनों का निभना कठिन है. जिसका कारण वर्णाश्रमांतर नामक उपदेश में कहा जावेगा.

प्र०— न निभने पर भी इन दोनों आश्रमों को स्वीकारना कैसा है ?

उ०— केवल भांड के समान वेषधारी बन, भिखमंगों की गिनती बढ़ाना हैं, बल्कि उनसे भांड, नट तथा बहुरूपिये अच्छे हैं, जो अपनी विद्या के कौशल्य से परिश्रम द्वारा कमा खाते हैं, पर ये वेषधारी बहुधा बगले के समान करनीकर, अपना तथा लोगों का अकल्याण ही करते हैं.

प्र०— इसलिये क्या उचित है ?

उ०— कि केवल लोक दिखाऊ आडम्बर के लिये सन्यास तथा वानप्रस्थाश्रम को कभी न ग्रहण करे, किन्तु विधिवत ब्रह्मचर्य पाल अर्थात् अच्छी तरह वीर्यरक्षा करके विद्याभ्यास करे, गृहस्थाश्रम में

प्रविष्ट होने पर ब्रह्मचर्य का पूरा-पूरा लक्ष रख, यम नियम तथा संयम सहित साधन करता रहे तथा पुरुषार्थ द्वारा विद्या तथा धन का अर्जन कर, प्राणिमात्र के हित में दत्तचित्त रह, ईश्वर का ध्यान करता तथा गुणानुवाद गाता रहे; बस ! इससे सब कुछ सिद्ध हो जायगा !!!

दोहा

समय भयंकर है महा, गृही न पावै टूक ।
तो कहिये वह ग्रन्थ की, टारि सकै कस भूक ।।१।।
जो हम सब याचक बनै, कौन अयाचक देय ।
याजक सों याचक मिलै, को काको दे लेय ।।२।।
याते करु उद्यम सदा, रहो जनी अब लेट ।
ब्रह्मचर्ययुक्त घर रहो, पालो निज पर पेट ।।३।।

उपदेश १८

ब्रह्मचर्य

प्र०– ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ है ?

उ०– जोकि (ब्रह्) का अर्थ बढ़ना, वृद्धि करना; तथा (म) का अर्थ चिरकाल, मर्यादा; और (चर्य) का अर्थ लक्ष, इच्छा, चिंतन, रुख, गति है; इसलिये ब्रह्मचर्य का अर्थ हुआ, चिरकाल मर्यादानुसार वृद्धि करना तथा वृद्धि का लक्ष रखना आदि ।

प्र०– चिरकाल हम किसकी वृद्धि का ध्यान रक्खें ?

उ०– अपनी आरोग्यता, शान्ति, पुष्टि, शक्ति, बुद्धि, विद्या, आयु, संतान, कीर्ति, सद्गति आदि का.

प्र०– इनकी वृद्धि किनके द्वारा हो सकती है ?

उ०– केवल वीर्य रक्षा द्वारा.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि केवल एक यह वीर्य ही उत्पत्ति, स्थिति तथा सम्पूर्ण

सुखों का मूल है और यही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का सिद्ध-कर्त्ता है.

प्र०– वीर्य हमारे शरीर में किस प्रकार रहता है ?

उ०– जिस तरह तिल में तेल, बीजों में सत्व, वृक्षों में रस, दुग्ध में घृत, एंजिन में वाष्प, मोटर में पेट्रोल, जल में द्रवता तथा अग्नि में उष्णता रहती है; उसी तरह यह वीर्य हमारे शरीर में रहता है.

प्र०– हमारे शरीर में वीर्य कहां से आया ?

उ०– जो कुछ हम भोजन करते हैं, उससे मलादि अलग हो, शेष का स्वल्प रस बनता है, फिर उस रस से कफ, थूक, श्लेष्म आदि अलग हो, शेष का स्वल्प रक्त बनता है, फिर रक्त से व्यर्थ जल आदि अलग हो, उसके द्वारा कुछ मांस तथा चर्बी बनती है, फिर उस चर्बी से कुछ त्वचा तथा रोगों का रक्षक तरल तेल सा पदार्थ और मांस के नीचे बसने वाली बसा बनती है, फिर उस बसा से हड्डियों में रहने वाली बहुत कम मज्जा बनती है, फिर मज्जा से अत्यन्त न्यून वीर्य बनता है.

प्र०– वीर्य बनने को कितने दिन लगते हैं ?

उ०– खाद्य पदार्थ का वीर्य, भुक्त तिथि से ठीक, एक मास के पश्चात् उसी तिथि तक बन पाता है.

प्र०– वीर्य कहां पर रहता है ?

उ०– इसका मुख्य स्थान मस्तिष्क अर्थात् भेजा है, फिर वहां से वीर्य वाहिनी द्वारा सम्पूर्ण शरीर में भ्रमण करता रहता है.

प्र०– वीर्य कबसे उपजने लगता है ?

उ०– गर्भावस्था ही से.

प्र०– शास्त्रों ने २४, ३६ तथा ४८ वर्ष तक वीर्य रक्षा करने की आज्ञा क्यों दी है ?

उ०– क्योंकि वीर्यरूपी रस, वृक्षरूपी देह में, शाखा प्रशाखारूपी अंग प्रत्यंगों को २४ वर्ष तक विस्तारित करता, नन्तर बढ़ाना बंद करके, ३६ वर्ष तक उसे पुष्ट करता है, पश्चात् ४८ वर्ष तक की

रक्षा से, सम्पूर्ण शरीर को वज्र समान दृढ़ कर देता है; जिसके द्वारा सब कुछ सिद्ध हो सकता है.

प्र०– वीर्य हानि से बुद्धि, पुष्टि, सुन्दरता, आरोग्यता, आयु तथा वृद्धि आदि क्यों कर नष्ट हो जाती ?

उ०– क्योंकि जिस रस द्वारा जो पौधा या फल बढ़ रहा है, यदि उस रस को हम निचोड़ दिया करें तो क्या वह बढ़ सकेगा ? या पुष्ट हो सकेगा? क्या उसकी प्राकृतिक सुन्दरता मारी न जावेगी ? वह रोगी न हो जायेगा ? क्या उसे सड़ने गलने का भय न रहेगा? क्या वह बहुत दिनों तक टिक सकेगा ?

प्र०– वीर्य बिना शरीर की कैसी गति होती है ?

उ०– जैसी वाष्प बिना एंजिन की, अथवा ग्यास बिना मोटर की गति होती है.

प्र०– हममें पाचन शक्ति कब तक रहेगी ?

उ०– जब तक हमारे शरीर में वीर्य है.

प्र०– हमारे शरीर में कब तक पराक्रम रहेगा ?

उ०– जब तक हमारे शरीर में वीर्य है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि वीर्य ही बलका नाम है.

प्र०– हमारा जीवन कब तक स्थिर रहेगा ?

उ०– जब तक हमारे शरीर में वीर्य है.

प्र०– जीवन का हेतु वीर्य क्यों है ?

उ०– क्योंकि जबतक वीर्य है, तभी तक शरीर में उष्णता रहती है, और जब तक उष्णता है, तभी तक रक्त शरीर में बहता रहता है, और जब तक रक्त है, तभी तक शरीर में प्राण वायु रहता है, इसलिये जीवन का हेतु वीर्य है.

प्र०– मृतक का रक्त कहां चला जाता है ?

उ०– जम जाता है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि बिना वीर्य के उष्णता नहीं और उष्णता बिन रक्त की

गति नष्ट हो जाती है, तब रक्त शीतलता पाकर स्वयं जम जाता है.

प्र०– यदि मरने के पहिले निर्वीर्य मनुष्य के रक्त में कृत्रिम गर्मी पहुंचाई जावे, तो क्या रक्त का प्रवाह फिर से जारी हो, वह मनुष्य जीवित रह सकता है ?

उ०– कदाचित् अधिक से अधिक एक प्रहर तक रह सकता है, फिर वही दशा हो जाती है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि कृत्रिम उष्णता से चंचल हुआ रक्त, फिर उसी उष्णता द्वारा सूख जाता है, अर्थात् रक्त की द्रवता वाष्प हो उड़ जाती है.

प्र०– अच्छा ! जीवित मनुष्य का रक्त, वीर्य की उष्णता से क्यों नहीं सूख जाता ?

उ०– क्योंकि वीर्य सच्चिक्करण है.

प्र०– तो वह चिकनाई किस तरह रक्त को रक्षती है ?

उ०– जिस तरह चिकनाई से लिप्त मिट्टी के घड़े में भरा जल बंद करके रखने से बहुत काल तक कायम रह सकता है, उस तरह कोरे में नहीं.

प्र०– वीर्य द्वारा विद्या तथा बुद्धि की वृद्धि क्यों कर हो सकती है ?

उ०– क्यों कि जहां मेधा शक्ति का निवास है, उसी मस्तिष्क को वीर्य पुष्ट करता है, इसी कारण जिसका मस्तिष्क शुद्ध वीर्य से परिपूर्ण रहता है, उसी की बुद्धि अत्यन्त शुद्ध तथा तीव्र रहती है, वही अगाध विद्या को धारण कर सकता है, वही नयी २ विद्या, कला-कौशल्य का आविष्कार कर सकता है, कारण शुद्ध वीर्य ही बुद्धि का जीवन है.

प्र०– वीर्य रक्षा में किस बात का ध्यान रक्खें ?

उ०– ऐसा आहार विहार न करें कि जिसके द्वारा वीर्य को हानि पहुंचे या वह अशुद्ध हो जावे.

प्र०– अशुद्ध वीर्य से क्या हानि ?

उ०– क्योंकि जिसका वीर्य गन्दा हो जाता है, उसकी बुद्धि भी गन्दी

हो जाती है तथा जिसका वीर्य फट जाता है, उसकी बुद्धि क्षण-भंगुर हो जाती है; इसलिये वीर्य को सदा शुद्ध, पुष्ट तथा तर रखने का ध्यान रक्खे.

प्र०– वीर्य शुद्ध, पुष्ट तथा तर किस तरह रह सकता है ?

उ०– शुद्ध, पवित्र सात्विक भोजन सहित व्यायाम तथा नित्यकर्म द्वारा.

प्र०– आजकल हमारी संतान क्यों कर नष्ट हो रही है ?

उ०– क्योंकि —

स्त्रीकर पति खुद स्त्री बनी, पुरुष पुरुष की नार ।
करके कर को प्रिय सखी, भग मुख पशु गुद चार ।।१।।
खिन्न दीन बल हीन व्है, तजी शुद्ध आचार ।
जर मर सड़ गर करि रहै, खुद का बंटा ढार ।।२।।

प्र०– हस्त मैथुन से क्या हानि ?

उ०– इसके द्वारा मनुष्य का चेहरा बेरौनक, फीका, पीला, सिकुड़ा हुआ, मुरझाया हुआ तथा कुरूप हो जाता है, बुद्धि, शक्ति, स्मरणशक्ति घट जाती है, आंखें भीतर घुस जाती हैं, रगें उतर जाती है, पुरुषत्व हीन हो जाता है, अंग प्रत्यगों में दर्द होने लगता है, सुस्ती, कायरता, कमजोरी घेरे रहती है, आंखें जला करती हैं, मुख सूखा करता है, यहां तक कि बेचैनी, क्षयी, मिरगी, अर्द्धंग, मूर्च्छा, उन्माद, पगलापन, स्वप्नदोष, धातुक्षय, सिर में चक्कर, आंखों में अन्धेरी, धड़का, चित्तभ्रम, हृदयशूल, मंदाग्नि, कब्जी, प्रमेह, मूत्रकृच्छ, प्लीह, गठिया, बादी, भ्रांति, नजला, मस्तक पीड़ा आदि में से कोई न कोई रोग बना ही रहता है कहां तक कहें ! यह हस्त मैथुन भयंकर कुल्हाड़ा है, जिसे हस्तकार अपने ही हस्त से अपने पद पर मारकर लंगड़ा या पंगु बन, अपने आपको नसाता है; यह हस्तकार उस आत्मघाती या आत्महत्यारों के समान है, जो अपना जीवन आपही नसाता है; या उस पागल के समान है, जो अपनी आधारभूत शाखा को काट, पतित हो, स्वयं नसाता है ! ऐसा कुत्सित कर्म कोई प्राणी नहीं करता, उस दशा में इसे और किसकी उपमा दी जावे !

प्र०– पुरुष मैथुन कैसा है ?

उ०– यह काम भी सृष्टि नियम के विरुद्ध है, जिसे पशु, पक्षी आदि तथा जड़ जीव तक नहीं स्वीकारते, तब वह क्योंकर ज्ञानी मनुष्य के योग्य है, भला ! उस सरभंगी और शूकर में क्या फ़र्क है, जो पवित्र अन्न को त्याग, मलमूत्र खाता-पीता फिरता है. कहो ! उससे बढ़कर कौन बेशरम व बेहया होगा, जो औरों के सन्मुख नंगा हो, अपनी मिट्टी पलीत करता फिरता है, इसे हस्तकार से भी अधिक दुख भोगना पड़ता है, मनुष्यता दूर भागती है, जनानापन दबा लेता है, मस्तिष्क इतना बिगड़ जाता है, कि लाख प्रयत्न करने पर भी, उसका सदाचरणी होना, असम्भव प्रतीत होता है, उसके मुख, नाक, शरीर तथा पसीने से सदा मलमूत्र के समान दुर्गन्ध निकला करती है, कहां तक कहें; संसार में इससे बढ़कर हानिकारक दुर्गुण अन्य नहीं.

प्र०– परस्त्रीगामी कैसा है ?

उ०– उस किसान के समान है, जो अपना बीज औरों के खेत में डालकर, अपने खेत में औरों से बीज डलवाना चाहता है, किन्तु अन्त को असमर्थ हो, उसे विवश हो अपने खेत का इस्तिफ़ा देना पड़ता है और फिर वह भोजन बिना बहुत अकुलाता है, पर न वह अपने खेत से और न अन्य के खेत से कुछ पाता है; उसकी गति चोर, श्वान, भ्रष्ट तथा विक्षिप्त के समतुल्य होती है, यह भी नाना रोगों तथा दुर्गुणों का घर बन, तन, धन, लाज, काज आदि गमा बैठता है.

प्र०– वैश्यागमन कैसा है ?

उ०– जो वैश्या द्रव्य के लोभ से कोरी, चमार, भंगी, कोढ़ी तथा हर प्रकार के रोगी से भी आलिंगन, चुंबन तथा रमण कराती है, क्या उससे रत होना कुलीनों का काम है, जो तन, मन, धन, गुण, यश, कर्म, धर्म, कांति, पुष्टि, शक्ति, आयु, निरोगता तथा सुमति आदि हर लेती है, क्या वह सज्जनों के स्वीकारने के योग्य है ?

प्र०– जो किसी तरह वीर्य नष्ट करता है, वह किसके समान है ?

उ०– उस दिवालिये के समान है, जो निरर्थक धन खो, पीछे पछताता है.

प्र०– उपरोक्त व्यभिचार से क्या हो रहा है ?

उ०– गरमी, परमा, सोजाक, फिरंग, गठिया, नामर्दी आदि अनेक रोग ग्रस रहे हैं, वंध्यादोष सन्तान का अवरोध कर रहा है, अकाल-मृत्यु संहार कर रही है, दरिद्रता दर रही है, धर्म, कर्म, जाति तथा पवित्रता का लोप हो रहा है, अशक्ति दीन हीन कर रही है, अज्ञानता हितकर्त्ता ज्ञान को निगल रही है, कहां तक कहें; सब प्रकार की हानि करने वाला, एकमात्र प्रबल शत्रु व्यभिचार है.

प्र०– उपरोक्त अनर्थ किस औषधि से, कब तक दूर हो सकते हैं ?

उ०– ब्रह्मचर्य को छोड़, अन्य किसी औषधि से, कल्पान्त पर्यन्त भी दूर नहीं हो सकते.

प्र०– मनमोद के लिये मैथुन क्यों नहीं करे ?

उ०– क्योंकि मैथुन में किसी तरह का मोद अर्थात् सुख नहीं.

प्र०– तो फिर सुख किसमें है ?

उ०– केवल वीर्य रक्षा में.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि जो हितू मरता हुआ भी खुश करके जाता है, वह बचजाने पर हमें कितना खुश करेगा ? यदि वह मरही गया, तो फिर कौन हमें खुश करेगा ? ऐसे हितू बिन, हमारी रक्षा क्योंकर हो सकेगी?

प्र०– जो वीर्य खोना ही सुखदायक समझता हो तो ?

उ०– उसे उस कुत्ते के समान समझो ! जो सूखी हड्डियों के चबाने से प्रसन्न होता है, किन्तु नहीं जानता, कि हड्डियों की किरचों के चुभने से निकला हुआ, मेरा रक्त ही मुझे प्रसन्न कर रहा है !

प्र०– केवल ब्रह्मचर्य ही सब प्रकार की वृद्धि का कारण क्यों हैं ?

उ०– क्योंकि ब्रह्मचर्य के बिना, वीर्य रक्षा नहीं हो सकती, वीर्य रक्षा के बिना, बल, धी, आयु, पराक्रम, सन्तान तथा निरोगता की प्राप्ति नहीं हो सकती, इसके बिना धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि तथा

ब्रह्म का एकाग्र चिंतन नहीं हो सकता और न इसके बिना सद्गति हो सकती है; इसलिये सब प्रकार की वृद्धि तथा सिद्धि का कारण केवल वीर्य का रक्षण है !

वीर्यगुण

वीर्य हमारा तेज ज्ञान बल, यही पराक्रम दाता है ।
यह उत्पादक पालक पोषक, धर्त्ता कर्त्ता त्राता है ॥
यह जीवन यह शूरवीर है, यह मंत्री विख्याता है ।
सब सारों का सार देह का, राजा वीर्य कहाता है ॥
ऐसे इस बहुमूल्य रतन को, मूरख व्यर्थ गमाता है ॥१॥

वीर्य बिना ना तेज ज्ञानबल, नहीं पराक्रम गाता है ।
ना जीवन ना रोग रहित तन, शूर वीर ना त्राता है ॥
बिन वीरज नामर्द कहाता, बिन बीज न जन्माता है ।
सब सारों का सार देह का, राजा वीर्य कहाता है ॥
ऐसे इस बहुमूल्य रतन को, मूरख व्यर्थ गमाता है ॥२॥

वीर्य गमाता वह पछताता, हाय हाय फिर करता है ।
रोगी होता तन बल खोता, वह बिन संतति जरता है ॥
बुद्धि नसाता आयु खपाता, हाय हाय कर मरता है ।
सब सारों का सार देह का, राजा वीर्य कहाता है ॥
ऐसे इस बहुमूल्य रतन को, मूरख व्यर्थ गमाता है ॥३॥

वीर्य बिना तन पुष्ट न होता, तन में बल ना आता है ।
बिन बल अबला सा बन जाता, श्रम से मुंह छिपाता है ॥
फिर उससे क्या बने शूरता, जड़ कायर कहलाता है ।
सब सारों का सार देह का, राजा वीर्य कहाता है ॥
ऐसे इस बहुमूल्य रतन को, मूरख व्यर्थ गमाता है ॥४॥

वीर्य बिना जठराग्नि घटती, अन्न ठीक ना पचता है ।
वीर्य बिना तन उष्मा घटती, खून दौड़ ना सकता है ।।
तब होते हैं रोग अनेकन, तेज घटी मर जाता है ।
सब सारों का सार देह का, राजा वीर्य कहाता है ।।
ऐसे इस बहुमूल्य रतन को, मूरख व्यर्थ गमाता है ।।५।।

वीर्य बिना भेजा मुरझाता, तब सत ज्ञान नसाता है ।
पढ़ी पढ़ाई विद्या खोता, ना विद्या पढ़ पाता है ।।
या बिन सद्गति कदा न होती, पल पल पै दुख पाता है ।
सब सारों का सार देह का, राजा वीर्य कहाता है ।।
ऐसे इस बहुमूल्य रतन को, मूरख व्यर्थ गमाता है ।।६।।

या बिन तन सुन्दरता जाती, मुख पीला पड़ जाता है ।
आंखें अन्दर को धस जातीं, भ्रम तम चक्कर आता है ।।
शीत उष्ण श्रम वायु कष्टा, जरा नहीं सह सकता है ।
सब सारों का सार देह का, राजा वीर्य कहाता है ।।
ऐसे इस बहुमूल्य रतन को, मूरख व्यर्थ गमाता है ।।७।।

शुक्र गुरु भृगु व्यास तुल्यये, वर विद्वान बनाता है
भीष्मपितामह भीम पवनसुत, तुल्य पराक्रम दाता है ।।
शिव लोमस शुक जनक तुल्यये, जीवनमुक्त कराता है ।
सब सारों का सार देह का, राजा सर्वस दाता है ।।
भली भांति से रक्षण इसका, ब्रह्मचर्य कहलाता है ।।८।।

ब्रह्मचारी का लक्षण

विषय न सुमिरे हृदय न धारे, कानन ते ना सुनता है ।
रसश्रृंगार सुनै ना गावै, ना पढ़ता ना गुनता है ।।
हंसै हंसावै नहीं तियन को, ना देखै ना चहता है ।
तिय देखत ही फेरत मुख को, स्पर्श कभी ना करता है ।।१।।

बात इर्कतहि कभी न करता, ना मिलता ना जुरता है ।
तियसों सब विधि दूरजु रहता, विषयन सों जो डरता है ।।
ना विपरीत क्रिया में परता, हस्तक्रिया ना करता है ।
वही ब्रह्मचारी कहलाता, जो बीरज दृढ़ धरता है ।।२।।

दोहा

चिकने घट में जल रहे, रहेन रूखे माहिं ।
वीर्यवान में रक्त बल, वीर्य हीन में नाहिं ।।

उपदेश १७

गृहस्थाश्रम

प्र०– गृहस्थाश्रम का क्या अर्थ है ?

उ०– घर ही में रहकर दिव्य परिश्रम करना.

प्र०– गृहस्थाश्रम कब धारे ?

उ०– जब ब्रह्मचर्य परिपूर्ण पक्व हो जाय तथा अपने वर्ण का सब कर्म सीख जाय और उदर निर्वाह का भी कोई मार्ग स्थिर हो जाय, तब गृहस्थाश्रमी बने.

प्र०– गृहस्थ कौन है ?

उ०– जो गृहस्थी की उपयुक्त सामग्री से युक्त तथा सब काल सुख देने वाले गृह से युत और सुलक्षणा गृहणी से संयुक्त हो; वही गृहस्थ है.

प्र०– गृहस्थ का क्या कर्त्तव्य है ?

उ०– अपनी वर्ण व्यवस्था के अनुसार नित्य कर्म करता हुआ, उद्योग-द्वारा धन उपार्जन कर, अपना तथा अपने परिवार का रक्षण करे, अतिथियों का सत्कार, अनाश्रितों की सहायता, आश्रितों का पालन, स्वदेश, स्वजाति तथा प्राणिमात्र के हित के लिये नाना प्रकार के सत्कार्य करे; जब पुत्रों द्वारा गृहकृत्य चलने लग जाय, तब आप अपना शेष जीवन किसी दिव्य कार्य में लगा दे, जिससे सबका हित तथा अपना जन्म लेना सार्थक हो.

प्र०– पुरुष से स्त्री कितनी छोटी होनी चाहिये ?

उ०– उत्तम पक्ष में ९, मध्यम पक्ष में ७ और कनिष्ट पक्ष में ५ वर्ष छोटी होनी चाहिये.

प्र०– पुरुष की अपेक्षा स्त्री क्यों छोटी चाहिये ?

उ०– क्योंकि पुरुष के वीर्य से स्त्री का रज अधिक तथा बलवान होता है, इसलिये बिना छुटाई के उसका जय नहीं हो सकता, सिवाय अपार हानि होती है; जैसी आजकल हो रही है.

प्र०– स्वगोत्र की कन्या क्यों न बरनी चाहिये ?

उ०– ऐसा करना मानो पशुत्व का परिचय देना है, सिवाय इस प्रकार का सम्बन्ध लाभदायक नहीं होता.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! जिस वृक्ष के बीज का पौधा हो, उस पौधे के साथ उसी वृक्ष को पेबंदी क़लम नहीं लगाई जा सकती, यदि नियम विरुद्ध लगा भी दें; तो उसका परिणाम सन्तोषजनक नहीं होता. इसी कारण गाय, भैंस, बकरी, भेड़ की संतान अधिक बढ़ नहीं सकती या एकदम नष्ट हो जाती है और जो बची रहती है, वह अशक्त, रोगी तथा छोटे क़द की होती है; इसलिये स्वगोत्र छोड़, अन्य गोत्र वाले से लग्न सम्बन्ध करना चाहिये.

प्र०– जब ऐसा ही है, तो अन्य जाति से क्यों न करें ?

उ०– क्योंकि उससे वर्णसंकरी सृष्टि उपजती है; जिस तरह गधे और घोड़ी के संयोग से खच्चर उपजता है; जो न घोड़े की गिनती में है, न गधे की.

प्र०– विवाह में तेल हल्दी का मर्दन क्यों किया जाता है ?

उ०– प्रीति वर्द्धनार्थ एवं विघ्ननिवारणार्थ.

प्र०– क्योंकर ?

उ०– क्योंकि तेल वात का हारक है, सिवाय वह हल्दी के रस को अंग में प्रविष्ट कर देता है, पर यह हल्दी हिंसक जीवों की बाधा को दूर करने वाली है तथा ये दोनों मिलकर परस्पर स्नेह के वर्द्धक हैं.

प्र०– हल्दी हिंसक जीवों की बाधाओं को दूर करती है; इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– क्योंकि हल्दी के उग्र गंध से हिंसक जंतु तथा भूत प्रेतादिक दूर भागते हैं, सिवाय इसीके प्रभाव से मछुओं के निकट मगर आदि नहीं आते.

प्र०– हल्दी ऐक्यतावर्द्धक है; इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! जब हम चुड़ती हुई दाल में मिर्च, अमचूर, धनिया, जीरा, मेथी आदि डाल देते हैं, किन्तु हल्दी नहीं डालते; तो चुड़ने के बाद चखने से सबका स्वाद पृथक मालूम होता है, किन्तु जब हम चुड़ती हुई दाल में पिसी हुई हल्दी छोड़ देते हैं, तो चुड़ने के बाद प्रत्येक वस्तु में मिश्रित स्वाद आता है, इससे सिद्ध हुआ कि हल्दी एकीकरण करने वाली है.

प्र०– किस दशा में हल्दी मर्दन द्वारा दम्पति की प्रीति का दृढ़ एकीकरण हो सकता है ?

उ०– जबकि दोनों का अखंड ब्रह्मचर्य तथा परस्पर प्रेम और लग्नविधि सांगोपांग सम्पादन की गई हो.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि इन तीनों से परस्पर शक्ति तथा तेज का संचार होगा; साथही उनकी जैसी इच्छा होगी, उसका अचल संस्कार हल्दी तेल सदा के लिये बसा देता है.

प्र०– तो क्या शक्ति तेज का संचार अन्यत्र नहीं होता ?

उ०– सर्वत्र हो रहा है किन्तु जो पदार्थ जितने निकट होते हैं, उतना ही अधिक परस्पर उनमें शक्ति तथा तेज का संचार होता है, उनसे भी अधिक सजातीय पदार्थों में होता है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो अनायास स्वर्ण के अणु, स्वर्ण ही से जा मिलते हैं.

प्र०– वे अणु तो प्राकृतिक या रासायनिक या घार्षणिक शक्ति तेज के संचार से जा मिलते हैं, इनका लग्न विधि से क्या सम्बन्ध ?

उ०– उसमें हल्दी तेल का मर्दन, लाजा होम, ग्रंथीबन्धन युतभांवर,

पाणिग्रहण आदिक कर्म से तीनों प्रकार का शक्ति तेज संचारित हो, परस्पर तेजस तथा भौतिक अणुओं का आदान प्रदान करता हुआ, उनके प्रेम का दृढ़ बन्धन करता है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह अन्य मनुष्य पर अपनी शक्ति का तेज डालने से, वह अपनी अभिलाषा का अनुगामी हो जाता है, और दोनों का प्रेम बढ़ जाता है. उसी तरह दम्पतियों के मन में, परस्पर उपजा, विवाह का आलौकिक प्रेम, उपयमन द्वारा अचल हो जाता है, क्योंकि लग्न में जितने प्रयोग किये जाते हैं, वे सब आकर्षणकारी तेज का संचार करने वाले हैं. वही तेज दम्पतियों के मन का परस्पर संलग्न करता है; इसलिये विवाह को लग्न भी कहते हैं.

प्र०– जिस तरह हल्दी दाल मसाले के स्वाद का एकीकरण करती है; क्या उसी तरह स्त्री पुरुष के मन तथा तेजस भौतिक अणुओं का भी एकीकरण करती है ?

उ०– अवश्य.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– अच्छा ! आप संयोग के पूर्व, अपनी स्त्री को कुछ हल्दी खिलादो, फिर अपनी जीभ कांच में देखो, तो आपको विदित होगा कि स्त्री की खाई हुई हल्दी का रंग, संयोग के कर्षण द्वारा खुद के मुख में आ गया.

प्र०– इससे और क्या सिद्ध हुआ ?

उ०– कि जैसी स्त्री से हम संयोग करेंगे, वैसे ही गुणदोष हममें आ बसेंगे; इसलिये सुलक्षण, सुपात्र, रोगरहित, कुलीन तथा आज्ञाकारी स्त्री से लग्न सम्बन्ध करना चाहिये !

प्र०– स्त्री आज्ञाकारी क्यों होनी चाहिये ?

उ०– क्योंकि पति वही आज्ञा दे सकता है, जो ईश्वरीय सृष्टि नियम के अनुसार हो; किन्तु जो स्त्री उस पति की आज्ञा नहीं मानती, तो

उसके द्वारा भयंकर कुफल उपजते हैं; जैसेकि हम आजकल देख रहे हैं.

प्र०– स्त्री पुरुष की परस्पर दृढ़ ऐक्यता क्यों चाहिये ?

उ०– क्योंकि ऐक्यता के बिना उस कुल का नाश हो जाता है; कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि हम इसके अनेक उदाहरण देख रहे हैं.

प्र०– कब तक स्त्री का स्पर्श न करें ?

उ०– जब तक अच्छी तरह ऋतु प्राप्त न हो.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि कच्चा फोड़ होने से स्त्री बिगड़ जाती है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह कच्चा तोड़ने से फल बिगड़ जाता है

प्र०– ऋतु काल का क्यों नियम रक्खा गया है ?

उ०– क्योंकि सब ऋतु पाकर ही फलदायक होते हैं; असमय नहीं.

प्र०– ऋतु प्राप्ति के चार दिन क्यों वर्जित हैं ?

उ०– रक्त श्राव के कारण.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि दूषित रक्त के कारण अनेक विकार हो जाते हैं.

प्र०– संभोग के अनन्तर कितने दिन का अन्तर दें ?

उ०– कम से कम तीन दिन का,

प्र०– क्यों ?

उ०– गर्भ स्थिति के निश्चय के लिये.

प्र०– यदि गर्भ रह गया हो तो कितना अन्तर दें ?

उ०– तीन साढ़े तीन वर्ष का, अथवा जब तक बच्चा दूध न त्यागे; तब तक भूल कर भी स्त्री संग न करे.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि इस बीच में संभोग करने से गर्भावस्था में गर्भ को तथा प्रसव बाद बच्चे को हानि पहुंचती है ?

प्र०– गर्भावस्था में संभोग करने से गर्भ को क्या हानि पहुंचती है ?

उ०– गर्भपात हो जाता है या बालक गर्भ ही में मर जाता है, या होकर मर जाता है या कम दिन जीता है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! यदि हम अपने खेत में हर रोज़ हल चलाकर, बोए पर बोया करें; तो बताओ ! इस लगातार के परिश्रम से कौन सा बीज या उसका अंकुर जमेगा ? बल्कि इस मूर्खता से होनहार फल तथा गांठ का बीज खोकर, हम अपने खुदको, तथा अपने बैल को, सदा के लिये बे काम बना लेंगे.

प्र०– प्रसव बाद भी जब तक बच्चा दूध पीता हो, तब तक स्त्री से रत, क्यों न हों ?

उ०– क्योंकि ऐसा करने से स्त्री का दूध बिगड़ जाता है, जिसके द्वारा बालक क्षीणहीन तथा रोगी हो जाता है और कभी २ मर तक जाता है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! यदि दूध देने वाली गाय को सांड दिखा दिया जाता है, तो उस गाय का दूध तत्काल बिगड़ जाता या उड़ जाता है; जिसके द्वारा गाय का बच्चा रोगी हो जाता अथवा क्षीण हो, मर तक जाता है.

प्र०– उपरोक्त सब विषय की शिक्षा हमें किस के द्वारा मिलती है ?

उ०– पशुओं तक से.

प्र०– किस तरह ?

उ०– देखो ! बिना ऋतु प्राप्त हुए, गाय कभी भूलकर भी सांड से रत नहीं होती, न सांड गाय के पीछे पड़ता है, सिवाय ऋतु प्राप्त होने पर भी, चार पांच दिन के बाद, दोनों का संयोग हो पाता है, गाय बहुधा एक ही बार के संयोग से गर्भवती हो जाती है, फिर सांड उसे कभी भूलकर भी नहीं छेड़ता और न गाय कभी सांड को स्वीकारती है, यहां तक कि जनने के पश्चात्, जब तक बच्चा

अच्छी तरह घास नहीं खा सकता; तब तक बची रहती है! यह नियम चराचर जीवों को मान्य है!! उस दशा में मनुष्य को क्या कहें!!!

प्र०– यदि स्त्री पुरुष दोनों इस नियम का प्रतिपालन करें; तौ भी गर्भ न रहे अथवा गिर जाय या बच्चा न बच सके, तो क्या समझें?

उ०– यह समझें कि हमारी धातु नष्ट हो गई, फट गई या गंदी हो गई,

प्र०– क्यों?

उ०– क्योंकि घुना, भुना तथा सड़ा बीज बोने से ऊग सकता नहीं. कदाचित् घुना, सड़ा सजीव होने पर ऊग भी आवे; तो भी उसके द्वारा कोई सुफल प्राप्त होता नहीं?

प्र०– यदि दम्पत्ति में से कोई एक नियम पाले अथवा किसी एक-एक की धातु अच्छी हो, तो क्या फल होगा?

उ०– वैसी दशा होगी, जैसी दशा, अच्छी भूमि में खराब बीज, अथवा ख़राब भूमि में अच्छा बीज बोने से होती है.

प्र०– दम्पति के स्वच्छ, पुष्ट तथा निर्दोष रज वीर्यसे कैसा फल होता है?

उ०– जैसा स्वच्छ, श्रेष्ठ तथा निर्दोष भूमि में स्वच्छ, पुष्ट तथा निर्दोष बीज बोने से फल उपजता है.

प्र०– स्वभाव ही से लड़के शूरवीर आदि क्योंकर हो सक़ते है?

उ०– जिस स्त्री पुरुष ने अखण्ड रजवीर्य का रक्षण किया हैं, जो बल-वर्द्धक पदार्थ खाता है और सगर्भा स्त्री को भी खिलाता है; सच्चे शूरवीरों के अद्‌भुत चित्र चरित्र सुनाता या दर्शाता है, जिनका ठीक-ठीक भाव सगर्भा अपने हृदय पटल पर अंकित कर लेती है तथा दिनरात उसीका आभास नेत्रों के सामने देखती है और प्रसव के पश्चात् बच्चे को भी तद्वत भाव दर्शाया जाता हैं तो अवश्य-मेव वह बालक अत्यन्त शूरवीर तथा पराक्रमी होता है; इसी तरह विद्वान, भक्त, ज्ञानी, योगी, कार्यपटु आदि, जैसा चाहो, वैसा पुत्र हो सकता है; केवल संयम की आवश्यकता है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! जब प्रह्लाद गर्भस्थ थे, तब उनकी मां को नारदजी ने भक्ति का उपदेश दिया था, इसलिये वे परम भक्त हुए, और जब अभिमन्यु गर्भस्थ थे, तब उनकी माता को श्रीकृष्णजी ने शूरवीरता के साथ चक्रव्यूह प्रवेश की कथा सुनाई थी, इसी कारण अभिमन्यु उसी वीरता में विख्यात हुए, और जब नेपोलियन बोनापार्ट गर्भस्थ थे तब फ्रांस में बड़ा भारी राज विप्लव था, इसलिये जय की कामना से उनके माता-पिता अत्यन्त जोश के साथ शूरवीरता की चर्चा तथा कल्पना किया करते थे; इसी कारण नेपोलियन बड़े शूरवीर हुए.

प्र०– ऐसा क्यों होता है ?

उ०– क्योंकि गर्भस्थ बालक का हृदय स्वच्छ दर्पण के तद्वत निर्मल होता है, उस पर माता-पिता के चरित्र का अक्स तुरन्त ज्यों-का-त्यों खिंच जाता है, सिवाय बालक का हृदय माता के हृदय से बनता है, इसलिये माता के विचार बच्चे के हृदय पर तुरन्त अंकित हो जाते हैं.

प्र०– इस अन्योन्य हृदय का क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! अष्टम मास में माता का मन इतना चंचल हो जाता है, कि कभी माता का मन गर्भस्थ बालक में और कभी बालक का मन माता में प्रवेश निवेश किया करता है, उस दशा में प्रसव होने पर कभी माता मर जाती है या कभी मरा हुआ बालक उपजता है.

प्र०– बालक निज माता-पिता तथा अन्य के सदृश क्यों होता है ?

उ०– क्योंकि गर्भ के समय, जैसा प्रतिबिम्ब स्त्री के हृदय पटल पर खिंच जाता है, लगभग वैसे ही स्वरूप का बालक जन्मता है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह घोड़ी को जैसा घोड़ा दिखाया जाता है, लगभग वैसे ही स्वरूप का बच्चा होता है, यहां तक कि घोड़े को जिस रंग से रंग दिया जावे, तो बच्चे का भी लगभग वही रंग होता है और भी

एक चमत्कारिक बात यह है कि एक अशक्त घोड़ी के सामने एक सशक्त नामी घोड़ा खड़ा कर दो, जब घोड़ी अत्यन्त कामातुर हो, तब उसकी आंखों पर पट्टी बांध दो और उस घोड़े को अन्यत्र हटाकर, उस घोड़ी के साथ किसी अन्य साधारण घोड़े का संयोग करा दो, उसके अन्यत्र भेज देने के बाद घोड़ी की आंखें खोलकर स्थान पर बांध दो, फिर जब उसे बच्चा होगा, वह पहिले घोड़े के समान होगा ! किन्तु रत होने वाले के समान नहीं.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि जो प्रतिबिंब घोड़ी के हृदय पर अंकित हो जाता है, तद्वत बच्चे का रंग आकार आदि होता है; इसी तरह कबूतर पालन वाले अपने स्वेत कबूतरों को रंगकर उसकी संतान का स्वरूप बदल देते है; जिस तरह जैसी स्थिति का अक्स, प्लेट पर पड़ता है; डवलप करने पर वह ठीक वैसाही प्रतीत होता है.

प्र०– स्वभाव ही से बालक, चोर, चटारे, दुष्ट, कुकर्मी आदि क्यों कर होते हैं ?

उ०– माता पिता की त्रुटी से.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्यों कि जो सगर्भा स्त्री चोरी करती है या चोरी करने की इच्छा करती है; उसका बालक चोर होता है. जो मिठाई आदि के लिये तरसा करती है, किन्तु उसे घर के नहीं देते; तो उसका लड़का बड़ा चटोरा होता है, और जो उस दशा में कुकर्म करे या करने की इच्छा करे; तो उसका लड़का बड़ा कुकर्मी होता है. इसी तरह क्रोधी, दुष्ट, निर्लज्ज, पाखंडी, मिथ्यावादी, झगड़ालू, हत्यारा, व्यसनी आदि उपजते हैं; इसी कारण आजकल अनेक विकृत बुद्धि दुराचारी पाये जाते हैं.

प्र०– क्या खानपान तथा व्यसन आदि का प्रभाव भी बालक पर पड़ता है ?

उ०– अवश्य पड़ता है; क्योंकि खान पान से ही रक्त आदि बनता है,

जिससे बालक का शरीर बनता है, इसलिये जो विकार पिता के वीर्य तथा माता के रजरक्त में होता है, वही विकार बालक में आ जाता है. इसी कारण जिस सगर्भा स्त्री को बिच्छू काटता है, उसके उस बालक को बिच्छू का विष नहीं चढ़ता. इसी विचार से सर्पादि पकड़ने वाले अपनी सगर्भा को विषघ्न बूटी या सर्पादिक खिला देते हैं; जिनके लड़के निर्भय हो, विषैले जीवों को अनायास पकड़ लेते हैं. इसीसे वंशज विकार संतान में उदय हो जाया करते हैं. देखो! जन्मते ही या छटे दिन जिस बालक को भिलावें की घूटी एक तिल मात्र पिला देने से उसे जन्म भर भिलावां नहीं उदलता अथवा तिलभर कस्तूरी नाले में भर देने से कभी बादल की बीमारी नहीं होती. कहां तक कहें, खान पान का अच्छा बुरा प्रभाव चक्राकार गति करता है अर्थात् खानपान आदि का गुण दोष रक्त में पहुंचता है, रक्त का गुण दोष रजवीर्य में पहुंचता है, सब प्रकार का गुण दोष गर्भ में पहुंचता है. गर्भावस्था का गुण दोष बालक में पहुंचता है, बाल्यावस्था का गुण दोष तारुण्य को लाभ हानि पहुंचाता है, फिर वे तरुण पुनः माता-पिता बन, अपने गुणदोष उसी क्रम से गर्भादिक को देते हुए, वंशपरंपरा तक पहुंचाते हैं.

प्र०– गर्भ रहने तथा न रहने का विश्वास क्यों कर हो सकता है ?

उ०– गर्भ रहते ही क्षुधा घटने लगती हैं, डकारें आने लगती हैं, जी मचलाने लगता है, मुंह से पानी गिरता है, चक्कर आता है या वहां बुद बुदे उठते हैं, जिस तरह जल पर बुद बुदे उठने से भीतर किसी जीव होने का विश्वास होता है.

प्र०– संतान होने या न होने का क्या कारण है ?

उ०– वीर्यगत कृमिका सजीव तथा निर्जीव होना.

प्र०– वीर्य गत कृमि का सजीव होने पर भी गर्भ क्यों नहीं रहता ?

उ०– स्त्री का रज निर्जीव होने या वीर्य का रज के साथ संयोग न होने या गर्भाशय में न पहुंचने से.

प्र०– गर्भाशय तक वीर्य क्यों नहीं पहुंच पाता ?

उ०– ऋतु के न प्राप्त होने से, ऋतु की विषमता से, रक्त के संचय से, योनिकंद के होने से, मांस के बढ़ जाने से, पर्दे के होने से, हड्डी के बढ़ जाने से, मार्ग के न होने से या पुरुषत्व की न्यूनता से.

प्र०– रजवीर्य के कृमि किस तरह देखे जाते हैं ?

उ०– सूक्ष्मदर्शक यंत्र से.

प्र०– वीर्यरज से किस तरह बालक होता है ?

उ०– जब वीर्य रज से जा मिलता है, तब यदि वीर्यकृमि बलवान हुआ तो वह रजकृमि को निगलकर, माता के रक्त से बढ़ने लगता है; उससे पुत्र उपजता है. और जो रजकृमि बलवान हुआ, तो वह वीर्यकृमि को निगलकर, माता के रक्त से बढ़ने लगता है; उससे पुत्री उपजती है. इसी कारण बहुधा पुत्र माता के गुणों के सदृश और पुत्री पिता के गुणों के सदृश होती है.

प्र०– पेट में पुत्र है या पुत्री है; यह किस तरह जाने ?

उ०– वाम भाग में पुत्री, दक्षिण भाग में पुत्र तथा ठीक मध्य में पुरुषत्व-हीन होता है, धूल पर चलने से जिस पैर का चिन्ह स्पष्ट दिखे, उसी ओर बालक होता है, यदि दोनों पैरों के चिन्ह स्पष्ट दीखे तो बीच में बालक होता है.

प्र०– कब तक रज या वीर्य संतानोत्पत्ति के योग्य नहीं होता ?

उ०– जब तक तद्गत कृमि सबल, पुष्ट तथा परिपक्व नहीं होते; तब तक उसके द्वारा संतति की कामना दुर्बुद्धि मात्र है.

प्र०– संतानोत्पत्ति के सिवाय व्यर्थ वीर्य खोना क्या है ?

उ०– जीवहत्या, आत्महत्या, बालहत्या, नरहत्या तथा स्वगोत्रहत्या है. इसलिये केवल गर्भाधान के अर्थ, अपनी स्त्री से, नियमानुसार ऋतुकालाभिगामी होना चाहिये ?

दोहा

गृहणीयुत गृह में रहै, युत गृहस्थी के साज ।
कुल पालत युत नीति के, सारत परहित काज ॥१॥

वर्ण धर्म क्रम ना तजै, तजै न कुल मर्याद ।
संतति अरु निज तीय को, राखै युत मर्याद ॥२॥
केवल भोगै नारी निज, ऋतु विधि के अनुसार ।
वीर्य न त्यागै फिर कदा, ब्रह्मचर्य रह धार ॥३॥
उद्यम करि सत धन गहै, न्याय नीति को जोय ।
पालै जन निज अतिथि को, ना रत परसो होय ॥४॥
संतति हित परिवारहित, जात मान नृप हेत ।
धर्म कर्म निज देश हित, परहित हेत समेत ॥५॥
नित्य कर्म संयम नियम, करता नित सत संग ।
वह गृहस्थ अति श्रेष्ठ है, जो न करे प्रण भंग ॥६॥

उपदेश २०
पतिव्रत धर्म

प्र०– पतिव्रत धर्म किसे कहते हैं ?

उ०– जिस कर्त्तव्य परायणता से पति द्वारा स्त्री का और स्त्री द्वारा पति का तेज वृद्धि को प्राप्त होता है; उसे पतिव्रत धर्म कहते हैं.

प्र०– पतिव्रता किसे कहते हैं ?

उ०– जो पतिव्रत धर्म को पालती है.

प्र०– वास्तविक में पतिव्रत धर्म क्या है ?

उ०– स्त्रियों का यथोचित ब्रह्मचर्य.

प्र०– स्त्रियों को इसकी क्या आवश्यकता है ?

उ०– अत्यन्त आवश्यकता है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि बीज चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो, तो भी बिना श्रेष्ठ भूमि के कदापि फलदायक नहीं होता.

प्र०– पतिव्रता का क्या लक्षण है ?

उ०– वह पति के अतिरिक्त कदापि भूलकर भी अन्य से रत नहीं होती, पति को सदा हर तरह प्रसन्न रखती है, सदा पति हित में रत

रहती है, उसकी आज्ञा पालती है, चाहे पति कैसा ही क्यों न हो तो भी उसे अपनी सेवा से अपने अनुकूल बना लेती है, यहां तक कि पति आपही उसके गुणों से मुग्ध हो, अपना दुस्स्वभाव त्याग, उसे अपनी परमवल्लभा प्राणप्यारी समझने लग जाता है और फिर उसे स्वप्न में भी कष्ट नहीं पहुंचने देता, वरन वह भी हर तरह अपनी प्रिया का हित ही करता है; ऐसा होने से वह घर स्वर्ग के समान, संतति देवों के समान तथा दम्पति इन्द्र-इन्द्राणि के समान, इस मृत्युलोक में ही द्युलोक के समान सुख अनुभवते हैं, वही पतिव्रता धन्य है ! वही गृहलक्ष्मी है ! ! वही साक्षात देवी है ! ! !

प्र०— स्त्रियां कितने प्रकार की हैं ?

उ०— चार प्रकार की हैं, देवी, मानुषी, राक्षसी और पिशाचिनी,

प्र०— देवी किसे कहते हैं ?

उ०— जो बिना कहे, सुने, आनन्द के साथ, स्वभाव ही से पतिव्रत धर्म पालती है.

प्र०— मानुषी किसे कहते हैं ?

उ०— जो लज्जा तथा मर्यादा के रक्षणार्थ, लोभ स्वार्थ तथा निज हित के लिये पतिव्रत धर्म पालती है.

प्र०— राक्षसी किसे कहते हैं ?

प्र०— जो दंड के भय से तथा अवसर न प्राप्त होने के कारण पतिव्रत धर्म पालती है.

प्र०— पिशाचनी किसे कहते हैं ?

उ०— जो लज्जा तथा मर्यादा को त्याग, दंड का भय न कर, गुप्त या प्रकट जारकर्म कराती है; वह जारणी पिशाचनी कहाती है.

प्र०— पिशाचनी अर्थात् अपतिव्रता के क्या लक्षण हैं ?

उ०— पति की आज्ञा नहीं मानती, गालियां देती है या मारने को तत्पर हो जाती है, आप चोरी से अच्छे माल उड़ाती है, पति को भोजन आदि में कष्ट देती है, पति से चुड़ैल या डाकनी के समान बर्ताव

करती है और यारों को वैश्या के समान नखरे दिखाकर प्रसन्न करती है, चाहे कैसा ही बुद्धिमान, बलवान, रूपवान, धनवान तथा पुरुषार्थी पति क्यों न हो, तो भी उसका निरादर कर, दुष्ट, व्यभिचारी, जात-कुजात की खुशी के साथ पीकदानी, मूत्रदानी बनकर उनके थूक या राल आदि का स्वाद कुतिया के समान चखती हुई, नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है, घर में कलह मचाती है, घर का माल औरों को लुटाती है, या वैश्या के समान कमाती है, वह पिशाचनी अपने पति को प्रेत के समान, संतति को भूतों के समान तथा घर को श्मशान के समान बना देती है अथवा ऐसी स्त्री मृत्यु के समान, कठोर पतिकाल के समान, गरीब पति जीवधारी के समान, संतति यमदूतों के समान तथा वह घर साक्षात नर्क के समान भासता है ! ऐसी स्त्रियां अपने पति, पुत्र तथा पालक का भी प्राण हर लेती हैं ! तो औरों की क्या कथा ! ! ऐसी स्त्रियों का जन्म लेना ही वृथा है ! ! !

प्र०– धर्म शास्त्र ने अपतिव्रता के शासनार्थ क्या आज्ञा दी है ?

उ०– वही आज्ञा दी है; जो पिशाच धर्मी के लिये है.

प्र०– स्त्री का पतिव्रत धर्म कब अखंडित रह सकता है ?

उ०– जब माता-पिता बाल्यावस्था में, सास-ससुर तथा पति तरुणावस्था में और पुत्रादिक वृद्धावस्था में रक्षा करें.

प्र०– पतिव्रता का नित्य कर्म क्या है ?

उ०– पति, सास, ससुर की आज्ञा मानना, सेवा करना; पति को ईश्वर-तुल्य समझना, पवित्रता से रहना, परपुरुष से हर तरह बचना, बालबच्चों का अच्छी तरह लालन-पालन करना, उन्हें सुशिक्षा देना, पाकसिद्धि तथा सब गृहकृत्य में निपुण होना, आमदनी से कम खर्च करना, लाज तथा मर्यादा रखना, साधारण स्थिति में रहना, घमण्ड न करना किन्तु पतिव्रत धर्म का अभिमान रखना, मधुर तथा सत्य बोलना किन्तु अपनी तथा अपने पति आदि की कोई गुप्त बात किसी को नहीं कहना; इत्यादि सुलक्षण वाली

पतिव्रता होती है, जो विधिवत ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थाश्रम के नियम को तन, मन, वचन, क्रम से प्रति पालती है, उसे धन्य है.

प्र०– स्त्री-पुरुष किसकी प्रतिच्छाया है ?

उ०– प्रकृति पुरुष अर्थात् शिवशक्ति की.

प्र०– शक्ति किसके आश्रित रहती है ?

उ०– शिव रूप चैतन्य के.

प्र०– हम कौन हैं ?

उ०– चैतन्य.

प्र०– हमारा शरीर किसके समान है ?

उ०– गृह के समान.

प्र०– इस शरीर में चैतन्य तथा शक्ति किसके समान है ?

उ०– गृह में रहने वाले गृहस्थ तथा गृहणी के समान.

प्र०– सम्पूर्ण इंद्रियां किसके समान हैं ?

उ०– परिवार के समान.

प्र०– सम्पूर्ण परिवार किसके आश्रित रहता है ?

उ०– गृहणी के.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह सम्पूर्ण इंद्रियां शक्ति के आधीन होती हैं.

प्र०– गृहणी किसके आश्रित है ?

उ०– गृहस्थ के.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह शक्ति चैतन्य के आश्रित रहती है.

प्र०– इससे क्या सिद्ध हुआ ?

उ०– जिस तरह शक्ति चैतन्य के आश्रित रहकर, सम्पूर्ण इंद्रियों का लालन, पालन करती है तथा देह को संवारती है; उसी तरह पतिव्रता पति के आश्रित रहकर, सम्पूर्ण परिवार का पालनपोषण करती हुई, गृह को संवारती है.

दोहा

यथाशक्ति चैतन्य को, दे फल योग वियोग ।
तथा पत्नि पति को फलै, प्रेम फूट को भोग ।।१।।
जस रुचि व्है चैतन्य की, तस दे शक्ति काम ।
तिमि पति इच्छावत चलै, पतिव्रता निष्काम ।।२।।

चौपाई

सतोगुणी संतोषी देवी । तन मन वच क्रम पति पद सेवी ।।१।।
सदा मानुषी रजोगुणी है । लाज काज हित पति सेवी है ।।२।।
सदा राक्षसी तमोगुणी है । भय वश बेबस पति सेवी है ।।३।।
पिशाचनी है चिर उन्मादी । तजि पतिजो रत व्यभिचारादी ।।४।।

दोहा

पतिकर कारज झट करै, करै न आज्ञा भंग ।
दुख सुख में इक सम रहे, तन मन जीवन संग ।।३।।
बड़ो पिता सम बंधु सम, लघु सुत सम नर आन ।
निज पति सेवै ईश सम, पतीव्रता सो जान ।।४।।
सब वस्तु गृह योग्य जो, निज कर लेत बनाय ।
वही सुघर अति चतुरतिय, अपर फुअर कहलाय ।।५।।
आप बनावै आपही, लावै गृह के काम ।
गर्ज परै दै और को, तिय में वही ललाम ।।६।।
बनास के ना सीख सक, भीख मांग ले मोल ।
तियन मध्यसो फुअर अस, ढोल मध्य जस पोल ।।७।।
जो तिय निज गृहकाज सब, नित्य करावत मोल ।
लखो गधैया रूप वह, जनु ओढ़ी तिय खोल ।।८।।
धिक धिक धिक धिक्कारता, जो न संवारत गेह ।
नाम मात्र वह नारि है, धरी गधैया देह ।।९।।
सास ससुर पति सेय ना, कुलकी रखै न लाज ।
व्यर्थ जनी जननी उसे, रची ईश बिन काज ।।१०।।
पिय के हिय की हेरि हिय, धिय कारज किय चीय ।
द्वै तन इक मन व्है रहै, वह जग में वर तीय ।।११।।

पति हित में नित रत सदा, भजत ईशसम एक।
गृहकारज सारत सती, राखत कुल की टेक ॥१२॥
मधुर वचन अति नम्रता, शील नैन में लाज।
निजपति की आज्ञा सुने गुनै सती गृहकाज ॥१३॥
पर नर पर सै ना कदा, कदा न देखै नैन।
सती अकेलिन घर तजै, सुनै न शठ के बैन ॥१४॥
निज पति की सेवा करै, हरै सकल वा पीर।
सती न त्यागे सत्य को, दरै शठन की भीर ॥१५॥
सति रक्षै निज सत्य को, सत रक्षै पति सोय।
सतअरु पति के हेत सति, तन जीवन दे खोय ॥१६॥
भूल न त्यागै रज कदा, बिन पति के संयोग।
भोग छूत में ना करै, करै जभी शुचि योग ॥१७॥
गृह तन में पति जीव है, शक्ति तासु है नार।
इन्द्री सब संतान हैं, ले पतिव्रता विचार ॥१८॥
फोड़ भया बिन ऋतुपती, स्पर्श बिना कुच पुष्ट।
वो ना सेवै निज पती, पिशाचनी वर दुष्ट ॥१९॥
गर्भ गिरत शिशु मरत क्यों, तनबल बुद्धि न सार।
वैश्या को क्यों गर्भ ना, रहता करो विचार ॥२०॥
संतति व्है क्यों आजकल, धी बल वय तन हीन।
महा आलसी कर्म च्युत, रोगी भ्रष्ट मलीन ॥२१॥

उपदेश २१

पुर्नविवाह

प्र०–पुर्नविवाह के पर्यायी शब्द क्या हैं ?

उ०– पुनर्लग्न, विधवा विवाह, नातरा, निकाह आदि.

प्र०– स्त्री के मरने पर पुरुष अन्य विवाह कर सकता है किन्तु स्त्री नहीं कर सकती; यह बात कैसी है ?

उ०– जैसी पौधे के साथ लगाई हुई कलम के नष्ट होने पर उसके साथ अन्य कलम लगा सकते हैं; किन्तु उस पौधे के नष्ट होने पर उसके साथ लगी कलम अन्य के साथ नहीं लगा सकते !

प्र०– तो फिर क्यों कर धर्म शास्त्र ने पुनर्विवाह की आज्ञा दी है ?

उ०– केवल वाग्दत्ता कन्याओं के लिए, अर्थात् जिनकी मंगनी हो चुकी हो, किन्तु विवाह न हुआ हो, इस बीच कदाचित् दैवयोग से कोई रुकावट उपस्थित हो जाय, तो उसका विवाह अन्य के साथ कर सकते हैं; अन्यथा नहीं.

प्र०– तो फिर अक्षत योनि का पुनर्विवाह कर देने में क्या हानि है ?

उ०– उसमें संकर दोष आजाता है ?

प्र०– क्योंकर ?

उ०– क्योंकि साँगोपांग लग्न विधि से जिस स्त्री में एक पुरुष के शारीरिक तथा मानसिक सूक्ष्म तत्वों का पहिले समावेश हो चुका है, उसमें फिर दूसरे पुरुष के शारीरिक तथा मानसिक सूक्ष्म तत्व मिश्रित हो जाने से संकर दोष की उत्पत्ति होती है.

प्र०– हम ऐसे अदृष्ट वाद को नहीं मानते ?

उ०– अच्छा ! प्रण को भंग न करना, तो मान सकते हो या नहीं ?

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि विवाह के समय स्त्री अपने पति से प्रण करती है, कि मैं यावज्जीवन आपके सिवाय, भूल कर भी अन्य पुरुष की इच्छा तक न करूंगी इत्यादि.

प्र०– यदि शपथ न करायी जाय, या सौगंद पर लक्ष न रक्खा जाय तो ?

उ०– स्वधर्म तथा पतिव्रत धर्म नष्ट होगा.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि जो स्त्री अपने पति के साथ समस्त जीवन व्यतीत करने का प्रण नहीं कर सकती या प्रण भंग करके, अन्य पति करने की इच्छा रखती है, या अन्य पुरुष को स्वीकारती है, वह क्योंकर पतिव्रता कहला सकती है ?

प्र०– न कहलाने से क्या हानि ?

उ०– तो फिर कुलीन तथा अकुलीनमें अंतर ही क्या रहेगा ? और वह स्त्री विश्वास के योग्य क्योंकर होगी ? क्या स्वयं आप ऐसी स्त्री पर विश्वास कर सकते हो ?

प्र०– तो फिर प्राचीन काल में नियोग क्यों होता था ।

उ०– सबमें न होता था.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– अच्छा ! आप ही बताइये ! ! कि अमुक सूर्यवंशी क्षत्रिया में अथवा अमुक ब्राह्मणी में नियोग द्वारा संतति उपजाई गई ! ! !

प्र०– तो फिर नियोग की प्रथा किनमें थी ?

उ०– केवल निम्न श्रेणी के कुछ क्षत्रियों, वैश्यों तक शूद्रों में यह प्रथा प्रचलित थी, जिनमें आजतक पुनर्विवाह हुआ करता है.

प्र०– क्या प्रमाण !

उ०– इस बात प्रमाण आप ही को देना चाहिए कि चंद्रवंशी, कुरुवंशी तथा अन्य निम्न वंशवालों के सिवाय अमुक उच्च वंश में यह प्रथा प्रचलित थी ?

प्र०– यदि किसी ने बलात्कार या व्यभिचार किया हो तो ?

उ०– वह अपराधी का अपराध या एक प्रकार का बड़ा पाप समझा जाता है, न कि नियोग !

प्र०– आजकल नियोग क्यों निषेध समझा जाता है ?

उ०– क्योंकि आजकल विषयानुराग स्वयं बढ़ रहा है, यदि नियोग की मनाई न हो, तो विवाहिता स्त्रियों तथा वैश्याओं में अंतर ही क्या रहेगा ?

प्र०– नियोग से तो पुनर्विवाह अच्छा है, फिर क्यों उसे स्वीकारते नहीं ?

उ०– यह खानदानी तथा कुलीन लोगों को नहीं शोभता ; देखो ! जिन जातियों में पुनर्विवाह की मनाई नहीं, बहुधा उन्हीं में की अनेक स्त्रियें अन्य पति करना नहीं चाहतीं! फिर जिनमें सख्त मनाई है, वे स्त्रियें क्योंकर अन्य पति स्वीकार सकती हैं? देखो! विक्टोरिया

महारानी तथा उनकी बहू ने द्वितीय लग्न क्यों न किया ? इसी तरह मुसलमान बादशाहों की स्त्रियों ने द्वितीय लग्न क्यों न किया ? स्वयं सरकार अपने अफसरों की उन स्त्रियों को पेन्शन क्यों देती है ? जो पति के मरने पर अन्य पति नहीं करती. इसके लाखों उदाहरण गरीब प्रजा में भी पाये जाते हैं, अच्छी स्त्रियां दूसरे पति का नाम तक सुनना नहीं चाहतीं ! फिर किस तरह वे स्त्रियां अन्य के सन्मुख निर्लज्ज हो, अपना शरीर खोल सकती हैं !! तभी तो इस देश की पतिव्रता सतियां अभी तक संसार को चकित कर रही हैं !!!

प्र०— कई उच्चकुल संभूत विधवाएं कामातुर हो, अत्यजों तक से रत हो, गर्भपात आदि करातीं फिरती हैं, इस महापातक से बचने के लिये, उनका पुनर्विवाह कर देना, क्या बुरा है ?

उ०— ऐसा करते ही उस महासंकट से सामना करना पड़ेगा, जिस रोग से निम्न श्रेणी के लोग पीड़ित हुआ करते हैं.

प्र०— किस तरह ?

उ०— जिस तरह आप देख रहे हो, कि कई स्त्रियां अपने पति पर नाना प्रकार के कलंक लगा, तल्लाक देती फिरती हैं, या निर्भय हो, पति के प्रतिकूल विचरती हैं, या पति पर मुकदमा चलाकर, सज़ा तक करवा देती,हैं और आप खुद अलग यारों के साथ रह, पृथक खाना खर्च मांगती हैं, या निज पति को अपना गुलाम बना, कठपुतलीवत नाना नाच नचाया करती हैं; यहां तक कि कोई-कोई अपने पति को विष दे, मार डालती या यारों द्वारा मरवा डालती हैं; इसका कारण पुनर्विवाह है.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि जब स्त्री को पूर्ण विश्वास रहता है कि पति के मरने तथा त्यागने पर, मैं खुशी के साथ अन्य पति कर सकूंगी और जाति वाले भी मुझे जातिच्युत आदि न कर सकेंगे; तभी तो इतना उपद्रव मचाती हैं, किन्तु जिन्हें पुनः पति मिलने की आशा तक नहीं; वे स्त्रियां सहज ही में निज पति का अनहित कदापि नहीं चाहतीं.

प्र०— हम इतने संकुचित हृदय नहीं, जो निज स्वार्थ के लिये बिचारी स्त्रियों की प्राकृतिक स्वतन्त्रता का व्यर्थ अपहरण करें ?

उ०— किन्तु प्रकृति ही से स्त्री जाति स्वतन्त्र नहीं.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि प्रकृति स्वयं चैतन्य के आश्रित है; इसलिये स्त्री जाति नर के आधीन है.

प्र०— किस तरह ?

उ०— जिस तरह हिरणियां हिरण के और बंदरियां बंदर के आश्रित रहती हैं.

प्र०— यह सिद्धान्त इतना महत्वपूर्ण नहीं है.

उ०— तो आपको कौन मना कर सकता है, आप अवश्य पुनर की पदवी धार, हमसे भिन्न हो जाइये और जो रांड रंडवे गुप्त रूप से व्यभिचार में रत हों; वे भी प्रकट रूप से नातरा कर, हम से प्रथक हो जाय.

प्र०— इसमें अप्रसन्न होने तथा प्रथक होने का क्या काम ?

उ०— क्योंकि शुद्ध वर्ण तभी शुद्ध रह सकते हैं, जब उनका अशुद्ध भाग उनसे प्रथक हो जाय.

प्र०— इतने अप्रसन्न क्यों होते हो ?

उ०— क्या आपके पास वैधव्य निवृति का अन्य कोई उपाय नहीं.

प्र०— हो तो आपही बताइये ?

उ०— यदि बालविवाह का पूर्ववत विचार रख, स्त्रियां पतिव्रत धर्म को और पुरुष एक पत्निव्रत धर्म को धार, ब्रह्मचर्य का विधिवत पालन करें, तो क्या उनकी संतान कभी अल्पायु होगी ? और जब उनकी संतान की संतति भी तद्वत आचरेगी, तो क्या वह उनसे कुछ कम दीर्घायु होगी ? इसमें कोई संशय नहीं; कि उनकी संतान उत्तरोत्तर नीरोगी, शक्तिमान, बुद्धिमान तथा दीर्घायु होती जावेगी; तब रोग, शोक, अल्पमृत्यु, जारकर्म तथा वैधव्य की अधिक चिंता आपही निवृत्त हो जावेगी; अन्यथा नहीं.

प्र०– क्या पुनर्विवाह उपरोक्त विघ्नों को नहीं हर सकता ?

उ०– हरना तो अलग रहा, किन्तु उल्टा अनेक अनर्थों को उपजाता तथा संकरता को बढ़ाता है.

प्र०– स्वजाति में पुनर्विवाह होनेपरभी, संकरदोष क्योंकर हो सकता है?

उ०– क्योंकि हर मनुष्य की प्रकृति भिन्न होती है, इसलिये न्यारे२ पुरुषों के संघर्षण से न्यारे२ प्राकृतिक सूक्ष्म परमाणु, उस स्त्रीमें प्रविष्ट हो, संकरदोष उपस्थित कर देते हैं, जिनके प्रभाव से संतान दोगले स्वभावकी उपजती है.

प्र०– संकरदोष किस तरह आजाता है ?

उ०– जिस तरह प्रथम जिस हांडी में एक रस रखा जा चुका है, उसी में अन्य रस रखने से संकरदोष की उत्पत्ति होती है; उसी तरह जिस स्त्री से एक पुरुष रत हो चुका है, वह ज्योंही अन्य से रत होगी, त्योंही उसमें संकरदोष आ जावेगा, जिसके द्वारा उसका रज दूषित हो जावेगा.

प्र०– क्या यह दोष मनुष्य में प्रविष्ट नहीं हो सकता ?

उ०– अवश्य हो सकता है.

प्र०– तो फिर मनुष्य क्योंकर दूसरा विवाह कर सकता है ?

उ०– क्योंकि पुरुष के आकर्षणसे स्त्री का आकर्षण प्रबल होता है, जैसे सूर्यकृत आकर्षण से चंद्रकृत आकर्षण प्रबल होता है; इसलिये संतान पर वीर्य की अपेक्षा रज का अधिक प्रभाव पड़ता है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह दूषित भूमि में चाहे कितना ही श्रेष्ठ बीज क्यों न बो दिया जाय, तो भी भूमि के प्रबल दोष, उस बीज के स्वाभाविक गुण का परिवर्तन कर देते हैं; इसी तरह रज का संकर दोष वीर्य को दूषित कर देता है.

प्र०– स्त्री के रज का अधिक प्रभाव संतान पर क्यों पड़ता है ?

उ०– क्योंकि पिता के किंचित वीर्य को लेकर, बालक के सम्पूर्ण अवयव, केवल माता के रज द्वारा ही बनते हैं; इसलिये स्त्री को पर संयोग से सदा बचाना चाहिये.

प्र०– तो क्या पुरुष को न बचना चाहिये ?

उ०– अवश्य.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि जब तक पुरुष का पूर्ण ब्रह्मचर्य स्थिर न रहेगा; तब तक वह स्त्री के अष्ट गुणित मद को दबा न सकेगा.

प्र०– ऐसा न करने से क्या होगा ?

उ०– स्त्री व्यभिचार की ओर प्रवृत्त हो सकती है.

प्र०– तो फिर एक मनुष्य अनेक विवाह एक साथ क्यों कर सकता है, किंतु स्त्री क्यों नहीं ?

उ०– क्योंकि वीर्यवान एक ही मनुष्य, एक ही दिन में अनेक स्त्रियों को गर्भवती कर सकता है, जैसा एक ही बंदर अनेक बंदरियों को; किन्तु एक स्त्री, अनेक पुरुषों से रत होकर भी, एक दिन में तो क्या, अनेक दिनों में भी, अनेक गर्भ एक साथ नहीं धार सकती; वरन उल्टा औरों का वीर्य तथा निज का रज व्यर्थ खो, अनहित का हेतु बनती है.

प्र०– तो फिर एक ही गर्भ से दो तीन आदि बालकों का होना क्योंकर संभव है ?

उ०– पिता के उस एक ही वीर्य कोष द्वारा; जिसमें दो तीन आदि कृमि एक साथ स्थित हों.

प्र०– कौन मनुष्य अनेक विवाह एक साथ कर सकता है ?

उ०– जिस महावीर्यवान का ४८ वर्ष से अधिक दिन का अखण्ड ब्रह्मचर्य हो, तथा जिसे वज्रोली मुद्रा सिद्ध हो गई हो, वह क्वचित् कारणवश अधिक लग्न कर सकता है; अन्यथा नहीं.

प्र०– जिसका अखण्ड ब्रह्मचर्य २५ वर्ष से अधिक दिन का हो, वह कितने लग्न कर सकता है ?

उ०– केवल एक.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि यह निकृष्ट ब्रह्मचर्य, एक से अधिक स्त्रियों को यावज्जीवन

तृप्त नहीं कर सकता; किन्तु ३६ वर्ष से अधिक दिन का ब्रह्मचर्य, तीन स्त्रियों को यावज्जीवन तृप्त कर सकता है.

प्र०– उक्त ब्रह्मचारियों में ऐसा सामर्थ्य कब तक विद्यमान रह रकता है?

उ०– जब तक केवल नियमानुसार ऋतुकालाभिगामी बना रहे; अन्यथा नहीं.

प्र०– जो नित्य रत रहेगा तो ?

उ०– शीघ्र ही वीर्य खो असमर्थ हो, अपने आपको नसा लेगा.

प्र०– रति का हेतु क्या है ?

उ०– केवल सुसंतान उपजाने की इच्छा से ही पति-पत्नि को रत होने की आवश्यकता है; वरना मूर्खता से अपने हाथों आप, तन, बल, बुद्धि, आयु आदि का नसाता है.

प्र०– यदि पुनर्विवाह को सब नरनारी स्वीकार लें, तो क्या हानि ?

उ०– पहिले पुरुषों का क्षय और स्त्रियों की वृद्धि होगी, नंतर पुरुष विहीन सृष्टि होते ही स्त्रियों का भी क्षय होगा, जिसके द्वारा संसार में स्त्री पुरुष का नाम निशान भी नहीं रहेगा.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! इसी कारण इंग्लेंड, फ्रांस आदि में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियें अधिक हैं; यहां तक कि अनेक कुंआरियों को नियमानुसार वधु बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता; इसलिये वहां पर स्त्रियों के अनेक ब्रह्मचर्याश्रम खोले गये हैं; बहुधा विधवाएं तथा कुमारिकाएं निराश हो, उसी बात का अवलंबन किया करती हैं. जिसे थियोसफीवाले उचित समझते हैं ! हमारे नयी रोशनी वाले भाई भी वही दशा हिन्दुस्तान की करना चाहते हैं !

दोहा

एक तजा लंपट लखो, दूजा लखि के कूर ।
तीजा लखो मजाकिया, चौथा लखि मद चूर ।।१।।
पंचम बदसूरत लखो, छठा लखि बेगाल ।
सप्तम नपुसंक ये लखो, लखि अष्टम कंगाल ।।२।।

नवम लखी वो खसलती, दशम लखी बेनाक ।
ऐसे त्यागे दश पति, रखे पुत्र दश ताक ।।३।।
ग्यारहवां पति ज्यों किया, त्योंहि गया मर तोन ।
दशसुत पर नालिश करी, खर्च दिलावे कौन ।।४।।
माता जिनकी एक थी, थे जिनके दश बाप ।
ऐसों का सुत को बनै, कहो बिचारी आप ।।५।।
कहते ही दो बाप के, लड़ते हैं सब कोय ।
कितने लज्जित व्यथित तब, होंगे सच जब दोय ।।६।।
वर्ण विपर्य व्है जात है, संकर दोष प्रताप ।
यासो बचिये सब तरह, शुद्ध वर्ण जो आप ।।७।।
जामें होवै गुप्त ये, संकर दोष महान ।
सो पुनि ब्याहो प्रकट व्है, यामें कछु न हान ।।८।।
गुप्त करत संकर सदा, प्रकट बनत गुणखान ।
तिनके मुख मसि लागि है, निश्चय पूरि निदान ।।९।।
एक पत्निव्रत पति धरै, तिय दृढ़ पतिव्रत धर्म ।
ब्रह्मचर्य विधिवत करै, वर्णाश्रम कुल कर्म ।।१०।।
सब संकट मिटजाय तब, वैधव मिटै अधर्म ।
अति सुख भोगै जगत में, अंत लहै गति पर्म ।।११।।

उपदेश २२

अपेय

प्र०– किसी प्रकार का नशा क्यों न करे ?

उ०– क्योंकि यह द्रव्य बुद्धि हरा अनेक रोग उपजाता, तन, बल, आयु नसाता, मान - मर्यादा भंग करता, सच को हटा, झूठ को अपनाता, दुराचरणी बनाता अर्थात सब अनर्थों का मूल केवल यह नशा है.

प्र०— तम्बाखू कौन-कौन से रोग उपजाती है ?

उ०— तम्बाखू मुखतन गंधाती, चक्कर मूर्छा लाती है ।
ज्योति घटाती आंखों की ये, सिर के बाल बकाती है ।।
जिगर फेंफड़ा खराब करती, खांसी ये उपजाती है ।
भेजा श्याह खुश्क ये करती, तन बल आयु नसाती है ।।

प्र०— गांजा कौन-कौन रोग उपजाता है ?

उ०— गांजा चक्कर मूर्छा लाता, तन मुख ये गंधाता है ।
दृगलौ हरता बीरज दरता, सनको मूढ़ बनाता है ।।
हृदय जराता खांसी करता, कफ दम को उपजाता है ।
बाल पकाता सुस्ती लाता, नष्ट करत धी गाता है ।।

प्र०— भंगादि कौन कौन रोग उपजाती है ?

उ०— भंग मंद जठराग्नी करती, नाहक क्षुधा बढ़ाती है ।
जिव्हा को ये जड़ कर देती, मूर्छा सुस्ती लाती है ।।
ये माजुम गुलकंद बनी ये, जन को मूढ़ बनाती है ।
वात रोग को यें उपजाती, जग को वृथा हंसाती है ।।

प्र०— अफीम कौन कौन रोग उपजाती है ?

उ०— लोहू की ये हरकत रौके, सुस्ती पीनक लाती है ।
छाती दिल को जलाजु देती, दिन-दिन देह गलाती है ।।
कब्ज रोग उपजाती भारी, दस्त साफ न लाती है ।
मदत चरस बन चेडु कसूमा, दुख दे प्राण गमाती है ।।

प्र०— मदिरा कौन कौन रोग उपजाती है ?

उ०— मदिरा मत पी भूली प्यारे, मद्य बड़ी मतवाली है ।
दिल को दरती मती ये हरती, करत खजाना खाली है ।।
जग में ये बेशरम बड़ी है, चहे मां रति गाली है ।
उल्टी चक्कर मूर्छा लाती, घुसड़त मुख ये नाली है ।।१।।
कुत्ते चाटत मुख में मुतत, कहुं धूल मुख डाली है ।
पागल सम व्हे नंगा दौड़त, लोग बजावत तालो है ।
अक बक बकता उठ पुनि गिरता, टूटत अंग कपाली है ।।

चोरी जारी ऐबों का घर, बनता वो तत्काली है ।

रोग शोक नित जूतम फक्का, होवत घर कंगाली है ।।२।।

प्र०– जहरीले नशे क्या नुकसान पहुंचाते हैं ?

उ०– सब संधियों तथा जोड़ों को काटते, खून की हरकत बिगाड़ते और मनुष्य को ज्ञान शून्य कर प्राण तक हर लेते हैं.

प्र०– नशे में क्या विशेषता है ?

उ०– वे मनुष्य को अपने काबू में कर, उसे आलसी तथा निकम्मा बना देते हैं, जिससे वह अपना जरा भी हित अनहित नहीं सोच सकता, न उन्हें छोड़ सकता है बल्कि उल्टा धन खो, दिवालिया बन जाता है, फिर अनेक प्रकार के अधर्म कर कष्ट के साथ प्राण गमाता है या संसार में अपकीर्ति छोड़ जाता है.

प्र०– इसलिये मनुष्यमात्र को क्या उचित है ?

उ०– वे भूलकर भी किसी प्रकार का नशा न करे, बल्कि उनका जो द्रव्य नशे आदि में खर्च होता है, उसे जमा करके किसी शुभ कार्य में लगा दे. या निज हित हेतु जमा रखे. या उसके बदले दुग्ध तथा मधु या पंचामृतादि पान करे; जिससे शरीर को लाभ पहुंचे किन्तु बनावटी दुग्ध से बचे.

प्र०– बनावटी दुग्ध कैसा होता हैं ?

उ०– जो देखने में निखालिस दूध को भी मात करता है, किन्तु पीने से धन, धर्म तथा आरोग्यता को नसाता है, जिसे दुष्ट लोग बनाकर, बहुत बड़े-बड़े शहरों में बेचा करते हैं ?

प्र०– यह भ्रष्ट दूध किस तरह बनता है ?

उ०– मांस का रस, अण्डे की सफेदी, चावल की मांड, कुछ दूध या नारियल का पानी और एक औषधि मिला युक्तिपूर्वक बना लेते हैं.

प्र०– बनावटी मधु किस तरह बनता है ?

उ०– मधु में गुड़ या शक्कर की चासनी मिला देते हैं, या गाढ़े शहद में कुछ पानी मिला देते हैं.

प्र०– मधु की क्या परीक्षा है ?

उ०– असली शहद को कुत्ता नहीं चाटता और नकली को चाट जाता है.

प्र०– बनावटी दही किस तरह है ?

उ०– दुष्ट लोग तक्र में किंचित दूध तथा सफेदा मिला जमा देते हैं, यही दही विष तुल्य विकारी होता है.

प्र०– बनावटी घृत किस तरह बनाते हैं ?

उ०– दुष्ट लोग घी में तेल तथा चर्बी का भेलकर घृत तुल्य करके बेचते हैं इसकी अनेक कृतियां हैं.

प्र०– तेल मिले घी की क्या पहिचान है ?

उ०– वह सर्दी में भी अच्छी तरह जमता नहीं और घी का असली स्वाद सुगन्ध मारा जाता है.

प्र०– चर्बी से बने घी की क्या पहिचान है ?

उ०– जो घी गाय, बैल, ऊंट, हिरन, रोझ की चर्बी के भेल से बना होगा वह गाय के घी के समान दिखेगा, किंतु इस पीले घी में जरा ललाई होगी और जिस घी में बकरी, भेड़, सुअर की चर्बी का मेल होगा, वह घी भैंस के घी के समान सफेद दिखेगा; किन्तु उसमें जरा निलाई मालूम होगी. सिवाय चर्बी मिले घी का मल अग्नि में डाल देने से बदबू देगा, तलने में गाढ़ा हो जायगा, चिकनाई अधिक देगा, तबियत पर खुश्की लावेगा, उसमें घृत का सुगन्ध तथा स्वाद न मिलेगा और उष्ण काल में भी जम जायगा.

प्र०– ऐसे घी से क्या हानि है ?

उ०– अनेक प्रकार के रोग फैल रहे हैं, शारीरिक, मानसिक शक्तियों का ह्रास हो रहा है.

प्र०– बनावटी तेल किस तरह बनता है ?

उ०– घास, फूस, मिट्टी की गाद या कोयले की गाद से तेल टपकाकर नकली तेल बनाया जाता है, असली तेल में मिला दिया जाता है, यह भी भयंकर हानि करता है.

प्र०– कौनसा जल अपेय है ?

उ०– दुर्गंधित, रंग सहित, भारी, अपवित्र, मिष्टता से रहित तथा

जिसमें मलादि त्यागा जाता हो, उसे कदापि न पिये.

प्र०– उपरोक्त दूषित पदार्थों को जो खानपान में लाते हैं, उनका क्या हाल होता है ?

उ०– वे नाना रोगों से पीड़ित हो, अकारण अपने जीवन को संकट में डाल देते हैं तथा अपनी संतान के लिये विष बीज बो देते हैं.

छन्द चौपाया

द्रव्य अपेय महा दुख कारक, सब रोगों की खानी है ।
डाक्टरी को पढ़के देखो, इनसे होती हानी है ॥
नाना रोग तभी फैले हैं, मरते अनगिन प्राणी है ।
मुखहि घिनौनि डारत कैसे, क्या ना आती ग्लानि है ॥

उपदेश २३

अखाद्य

डाक्टर–आप पशुओं को क्यों खपाये डालते हैं ?

मांसाहारी–क्योंकि उनके मांस द्वारा हमारा मांस पुष्ट होता है.

डा०–उनके मांस में, ऐसी कौनसी पुष्टीकारक वस्तु है ?

मां०–सत.

डा०–उनके मांस में सत कहां से आया ?

मां०–उनके भक्ष्य द्वारा.

डा०–उनका भक्ष्य क्या है !

मां०–बनस्पति वर्ग.

डा०–तो आप वनस्पतियां तथा उनसे उपजने वाले धान्यादिकों को छोड़कर व्यर्थ हिंसा क्यों करते हो ?

मां०–पुष्टि के लिये.

डा०–मांस नहीं है पुष्टी दाता, अन्न पुष्ट तन करता है ।
अगर मांस सौ तोले लेवें, सत छत्तीस निकलता है ॥
उससे उत्तम सत अन्नों में, अस्सी नब्बे रहता है ।
जो हमको बल पुष्टी देता, फिर क्यों हिंसा करता है ॥

और

मांस तजी जो अन्न खात हैं, दयावान हो जाते हैं ।
दुष्ट कर्म से दूर भागते, शुद्ध चित्त कहलाते हैं ।।
यथा भेड़िये को बचपन से, केवल अन्न खिलाते हैं ।
वे भी तजके दुष्ट क्रूरता, बहुत नम्र हो जाते हैं ।।

मां०–तो फिर शूर कौन कहाते हैं ?

डा०–सब पर दया, धर्म में तत्पर, परहित नित जो करते हैं ।
धर्म कर्म हित प्राण गमाते, सत्य मार्ग पै चलते हैं ।।
कठिन कष्ट करि आप कमाते, बहुतों के उर भरते हैं ।
दिल से पर उपकार मनाते, उनको शूर जु कहते हैं ।

मां०–हमारे क्यों हैं पैने दांत ! इसलिये हम मांसहि खात ।।

डा०–होत दांत बन्दर के पैने, मनुष्य तुल्य दिखाते हैं ।
पूछ अधिक है केवल उनकी, पशु इसलिये कहाते हैं ।।
तो भी मांस कभी ना खाते, शाक पात फल खाते हैं ।
हम सब तो कहलाते ज्ञानी, फिर क्यों जीव सताते हैं ।।

मां०–मैं तो निकम्मे जीवों को मार खाता हूं.

डा०–बिना काम का जीव न कोई, जिनको व्यर्थ बताता है ।।टेक।।
मुर्गा मल कृमि बिच्छू खाता, शूकर मैला खाता है ।
बुरी हवा मिट रोग न होता, दुख से हमें बचाता है ।।
मच्छी जल मल खाती जिससे, जल निर्मल हो जाता है ।
मोर सर्प से हमें बचाता, जग हित रचै बिधाता है ।।

मां०–जो ना कुछ कर सकते काम । जिनके ना पट सकते दाम ।
केवल बुढ्डे औ कमजोर । तिन्हें बधौं ना तगड़े ढ़ोर ।।

डा०–ये क्या है नेकी का बदला, कहते नहीं लजाता है ।।टेक।।
अन्न वस्त्र तव पिताजु देता, सेवा करती माता है ।
जब तू तरुण वृद्ध वे होते, जब ना पिता कमाता है ।।
मात पिता को लखो निकम्मे, तो क्या उन्हें नसाता है ।
तो क्यों ये फिर पशु निपातै, जिनसे जग सुख पाता है ।।

मां०—स्वयं ईश्वर ने मनुष्य को मांसाहारी बनाया है; इसीलिये मैं ऐसा काम करता हूं.

डा०—मनुज नहीं है मांसाहारी, मांस न उसका खाना है।
फिर तू क्योंकर नाजहि खाता, बिना अन्न मर जाना है ।।टेक।।
अन्नाहारी रातहि सोवैं, दिनहि काम कर नाना है।
मांसाहारी दिन में सोकर, बहुधा रात जगाना है ।।
नाज वनस्पति जो खाते हैं, होत स्वेद तन थाना है।
मांसाहारी नहीं पसीजै, जाहिर बात जहाना है ।।१।।
घास वनस्पति अन्नाहारी, खात चबाके खाना है।
मांसाहारी नोच खोंच के, लीलत मांसहि जाना है ।।
अन्नाहारी प्राणी करते, घूंट घुटक जल पाना है।
नीर जीभ सो चाटत वे हैं, मांस जु जिनका खाना है ।।२।।
मनुज दंत हैं उन जीवों से, वनस्पति जिनका खाना है।
मांसीहारी के दांतों से, नाहिन होत मिलाना है ।।
मांसाहारी निज बच्चों तक, खाते सबने जाना है।
अन्नाहारी क्या इमि करते, मांस न उनका खाना है ।।३।।
मांसाहारी पशु के तन में, रह तेजाब महाना है।
जिसके बल से मांस पचे ये, बदबू रोग खजाना है ।।
मनुज देह में वह नहि होता, खूब जांच कर जाना है।
इसीलिए ये औगुण करता, नहीं मनुज का खाना है ।।४।।
जल्द निरामिष जखमी सुधरे, मांसाहारी येना है।
घाव न सुधरे उसका जल्दी, सड़ै मरै दुख ऐना है ।।
लखि जनकी शारीरिक रचना, निश्चय करके जाना है।
शाक कंद फल फूल अन्न ये, मूल मनुज का खाना है ।।४।।
मनुज नहीं है मांसाहारी, मांस न उसका खाना है।
फिर तू क्योंकर नाजहि खाता, बिना अन्न मर जाना है ।।

मां०—मांस खाने से हमें क्या नुकसान पहुंचता है ?

डा०—जिगर फेंफड़ा पित्त सड़ाता, विषमाग्नी उपजाता है।

आम अजीरण पेचिस करता, जो रोगों का ताता है ॥
भेजा दिल बिगड़ाता मेदा, सब तन को गंधाता है ।
कभी कभी ये विष बन जाता, दुख दे प्राण गमाता है ॥१॥
जो जो रोग पशू में होते, वे विष बन दुख देते हैं ।
दिव्य देह को रोगी करके, तुरत प्राण हर लेते हैं ॥
इसे न छीते भूलि कदा वे, समझदार जन जेते हैं ।
पशु नसे ते है बड़ हानी, विज्ञानी नित कहते हैं ॥२॥
जब से मांसाहारी बाढ़े, नाना रोग दुखाते हैं ।
हाय हाय कर मरते लोगा, नित्य नया दुख पाते हैं ॥
साल दुसाल अकाल परत हैं, मंहगे बैल बिकाते हैं ।
शुद्ध दूध घी माखन मावा, ढूंढे हू ना पाते हैं ॥३॥

मां०—मैंने तो मांसहार छोड़ दिया, किन्तु आप केशर क्यों खाते हो ?

डा०—केशर खाने में क्या दोष है ?

मां०—बनावटी केशर मांस द्वारा बनाई जाती है.

प्र०— किस तरह ?

उ०— मांस को इतना उबालते हैं कि जिसमें बारीक-बारीक तंतु शेष रह जाते हैं, फिर उनको सुखाकर कुसुम, केशरिया रंग या असली केशर का पुट देकर नकली केशर बना लेते हैं.

प्र०— उसकी क्या पहिचान है ?

उ०— असली केशर के लम्बे-लम्बे तंतु होते हैं, जिनके सिरे स्वेत रंग के होते हैं, जल डालने से जल्द रंग नहीं छोड़ते और बनावटी केशर के तंतु गुच्छे के गुच्छे रहते हैं, सब दूर रंगत एकसी रहती है, उन पर जल डालने से लिड़बिड़े हो जाते हैं, जो पीसने से इधर उधर सटकने लगते हैं.

प्र०— गिलिसराईन, वाइनम, पेपसीन, ममई, फासफोरस, काडलिवर आईल आदि क्या वस्तु है ?

उ०— गिलिसराईन चर्बी से, वाइनम, पेपसीन बैल सुअर के पित्ते से, ममई

भेजे से, फासफोरस हड्डियों के सत से और काडलिवर आईल मछली से बनता है.

प्र०– विदेशी किन-किन वस्तुओं से शक्कर बना सकते हैं ?

उ०– गन्ना, खजूर, ताड़ी, बीट, सलगम, गाजर, तृण, तारकोल, मैपिल इत्यादि वस्तुओं द्वारा बनती है, सिवाय हजरत कारीगर ने तो मनुष्य के मूत्र से भी शक्कर निकाली है.

प्र०– विदेशी शक्कर किस तरह बनाई जाती है ?

उ०– उपरोक्त द्रव्यों का रस ले, उसे आठ नव मंजिल ऊंचा रख, उसमें उपयुक्त पशुओं का रक्त तथा किंचित् उष्णजल मिला, नीचे आंच देते हैं, गर्मी पहुंचते ही रक्त के कारण सब मैल इकट्ठा हो जाता है, तब उस रस को वान फिल्टर नामकी थैली से जो लोहे के डंडे में लटकती रहती है, छान लेते हैं; जिससे मैल तो दूर हो जाता है, किन्तु कालापन दूर नहीं होता, तब उसे हड्डियों के कोयलों के चूर्ण से भरी चलनी द्वारा जिसका घेरा बीस तीस फीट का होता है, छान लेते हैं; रस छनते ही स्वेत चमकीला हो जाता है, उसे हड्डियों के भस्म में मिलाकर या निखालस जमा लेते हैं; जमते ही सुन्दर स्वेत, चमकदार शक्कर बन जाती है.

प्र०– इस शक्कर की क्या पहिचान है ?

उ०– (१) यह खाने बाद मुख के स्वाद को बिगाड़ देती है.

(२) इसकी चासनी कम उफनती है.

(३) इसका मैल अग्नि में डालने से गंधाता है, जिसे कुत्ते तक नहीं खाते.

(४) अग्नि में जलने से यह कोयला बन जाती है, किन्तु शीघ्र राख नहीं होती.

(५) एक तोला इसे ले, उस पर गंधक के तेजाब की दो तीन बूंदे डाल, सुई से हिला दो, जलते ही उसमें से बदबू निकलेगी, बाद उस पर दो तीन बूंद पानी डालो, तो वह बदबू और

भी अधिक मालूम होगी, यहां तक कि जले स्थान पर दो तीन दिन बदबू कायम रहेगी.

प्र०– हड्डी से क्या हानि ?

उ०– यह वीर्य नष्ट करती तथा अग्नि को दूषित करती है.

प्र०– धर्म शास्त्र किन पदार्थों को खाने से रोकता है ?

उ०– जो मनुष्य के लिये हानिकारक है, अथवा जो योगाभ्यास आदि को भंग करते है; जैसे लसून, प्याज, मसूर, गाजर, मांस, मच्छी, मदिरा, चर्बी, हड्डी इत्यादि.

दोहा

मच्छी मत छी कहत है, मैं तेरी गू खोर ।
तू सज्जन मो खात कस, दया करी कर गौर ।।१।।
मास कहे जो खात मम, ता मैं निश्चय खात ।
याते तू मत खा कदा, नातरु मलि है हात ।।२।।
शक्कर में जो शक पड़ा, खा तू शक कर दूर ।
शक जाता तेजाब से, डाल जांच भरपूर ।।३।।
मा जु असे ता मा असूं, कहता है ये मास ।
याते मा अस मास को, नातरु व्है दुख खास ।।४।।

उपदेश २५

व्यायाम

प्र०– व्यायाम का पर्यायी शब्द क्या है ?

उ०– कसरत.

प्र०– व्यायाम का क्या अर्थ ?

उ०– विशेष करके (शक्ति आदिका) अच्छी तरह निग्रह करने वाला.

प्र०– कसरत से क्या-क्या लाभ हैं ?

उ०– शरीर में फुरती आती है, आलस्य दूर भागता है, खून ठीक-ठीक हरकत करता है, खून साफ हो जाता है, जठराग्नि बढ़ती है, भूख खूब लगती है, अन्न ठीक पचता है, रक्त अधिकाता है, बल

वीर्य बढ़ता जाता है, जिसके द्वारा कठिन से कठिन कार्य सहज में हो जाता है। परिश्रम करने की आदत पड़ जाती है, कठिन कार्यों में घंटों तक टिके रहने की शक्ति बढ़ जाती है, चलने, दौड़ने, ढोने, उठाने, पटकने तथा खोदने आदि में थकावट नहीं मालूम होती, दम नहीं भरता, सर्दी गर्मी तथा चोट क्लेश आदि सह ले सकता है, निद्रा अच्छी तरह आती है, शत्रु सता नहीं सकता, बुढ़ापा जल्दी नहीं आता, शरीर की गठन दिव्य हो जाती है, शरीर सुन्दर मालूम होने लगता है, चेहरे पर शूरवीरता के चिन्ह प्रतीत होने लगते हैं, कायरता दूर भागती है, रोगोत्पादक दोष दूर होते जाते हैं, सहसा कोई रोग हो नहीं सकता, उग्र बुद्धि तथा स्मरण शक्ति बढ़ जाती है, अभ्यास शीघ्र होने लगता है, तर्क वितर्क बढ़ जाते हैं, दृष्टि तीव्र हो जाती है, रोमकूपों का मल दूर हो जाता है, उनके मुख खुल जाते हैं, जिनके द्वारा शरीर के भीतर का विकारी वायु तथा दुर्गन्ध बाहर निकल जाता है, शुद्ध वायु भीतर पहुंचता रहता है, और शरीर गत कर्षण शक्ति का तेज दिन-दिन बढ़ता जाता है; कहां तक कहें, कसरत अनेक गुणों की खानि है.

प्र०– कसरत कब तक करता रहे ?

उ०– जब तक पसीना न बह निकले, तब तक.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि पसीना निकल जाने से, रोम कूपों के मुंह खुल जाते हैं इत्यादि.

प्र०– कसरत कब करे ?

उ०– प्रभात तथा संध्या को, भोजन के पहिले, स्नान के नंतर.

प्र०– यदि भोजन पहिले हो चुका हो तो ?

उ०– तो भोजन के दो घंटे बाद करे.

प्र०– यदि कसरत के बाद स्नान करना हो तो ?

उ०– दो घन्टे बाद करे.

प्र०– पसीना निकलते वक्त किससे बचे ?

उ०– हवा तथा पानी से.

प्र०– कसरत में सबसे अधिक जरूरत किस बात की है ?

उ०– ब्रह्मचर्य की.

प्र०– कसरत वाले को पौष्टिक पदार्थ न मिलें तो ?

उ०– चने की दाल का सेवन करे.

प्र०– वह भी न मिले तो ?

उ०– अपनी जो खुराक हो, वही खावे, सिर्फ इतना जरूर होगा, कि मामूली खुराक बढ़ जावेगी, वह भी उस हालात में, जबकि कसरत प्रतिदिन बढ़ाता ही जावे; वरना नहीं.

प्र०– कसरत में किस बात की जरूरत है ?

उ०– तैलाभ्यंग और उबटन की.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि कसरती को शीत वात का भय अधिक रहता है, उससे बचने के लिये तेल की मालिश और चिकनाई छुड़ाने के लिये उद्वर्तन करे,

दोहा

कसरत में बड़ कस मिलत, जो कस कसरत कीन।
कसरत में जो रत नहीं, रहै सदा वह दीन ।।१।।

चौपाया छंद

कसरत के गुण मैं क्या वर्णू, मो सो ना वर्णावत है ।। टेक ।।
कसरत तन में फुर्ती लाकर, आलस दूर भगावत है ।
अंगन प्रति ये खून बहावत, स्वच्छ करी अधिकावत है ।
जठरानल को तेज करी ये, सच्ची भूख लगावत है ।
अन्न पचावत वीर्य बढ़ावत, बल दे तन बलकावत है ।।१।।
कठिन काज ये सहज करावत, श्रमिकी टेंव बढ़ावत है ।
घंटों तक ये श्रम करवाके, नेक हुं नांहि थकावत है ।।

चले उठावैं दौड़ैं ढौवैं, तोहु न हमैं हंफावत है।
सर्दी गर्मी क्लेश चोट में, भरा न ये सिसकावत है ।।२।।
शीघ्र बुढ़ापा ना आवन दे, शत्रु को डर पावत है।
बड़े मजे की निद्रा लावत, बुद्धी तर्क बढ़ावत है ।।
दिव्य अंग ये गांठि बनावत, सुन्दरता दरसावत है।
शूरवीरता आयु दिलावत, कायरता हि भगावत है ।।३।।
सब रोगों को दूर करैं ये, रुज के बीज नसावत है।
ये रोमन के छिद्रन को मल, हरके तिन्हैं खुलावत है ।।
वायु अपावन बाहर काढ़ी, शुचि अंदर पहुंचावत है।
तन कर्षण को तेज बढ़ावत, नाना गुण दर्शावत है ।।४।।

उपदेश २५

द्यूत

प्र०— द्यूत का क्या अर्थ है ?

उ०— चमक तथा आक्रमण.

प्र०— द्यूत का पर्यायी शब्द क्या है ?

उ०— जुआं अर्थात् वह खेल जिसमें दाव लगाकर खेला जाता है.

प्र०— जुएं का चमक से क्या सम्बन्ध है ?

उ०— क्योंकि जुएं का खेल बिजली की चमक के समान हैं, जिसे चमकते तथा लय होते देर नहीं लगती और न इस बात का विश्वास रहता है, कि कब चमकेगी या गिरेगी; उसी तरह यह जुआं पल भर में रंक को धनी तथा धनी को रंक अथवा दास को राजा तथा राजा को दास बना देता है और यह भी निश्चय नहीं कि कब क्या होगा.

प्र०— जुएं का आक्रमण से क्या सम्बन्ध है ?

उ०— क्योंकि जुआंरी जुएं द्वारा सदा ऐसा आक्रांत रहता है, जैसा धनी चोरों द्वारा, रोगी रोगों द्वारा तथा बलहीन अपने शत्रुओं द्वारा आक्रांत होता है.

प्र०– जुआंरी जुएं द्वारा सदा आक्रांत क्यों रहता है ?

उ०– क्योंकि जुएं द्वारा जुआंरी का लोभ इतना अधिक बढ़ जाता है, कि न उसे जीत से तृप्ति होती है और न हार से; अर्थात् जब उसकी जीत होती है, तो वह और अधिक जीत की इच्छा करता है, या उसके साथी उसे बलपूर्वक खेल में बैठा लेते हैं, या इनाम, गोठ आदि के बहाने उसका सब धन उड़ा देते हैं और जो हार हुई तो वह फिर जीत की आशा से रहा-सहा धन भी जुएं में खो देता है या उसके साथी बढ़ावा देकर या बलपूर्वक बैठा के निर्धन बना देते हैं और फिर उसका ऐसा अपमान करते हैं, कि जिसके द्वारा द्रोह उपजके बदला लेने की इच्छा प्रबल हो जाती है, तब वह अपनी बची बचाई गृहस्थी को भी बेंच खोंच जुएं में लगा, नंगा हो जाता है; जब द्रव्य मिलने के सब मार्ग बन्द हो जाते हैं; तब उठाईगिरा बन, चोरी मारी आदि की ताक में फिरता है तथा अनेक दुष्कर्मों द्वारा द्रव्य कमा, जुएं में लगाया करता है, इसीसे कभी पकड़ा जाता है, कभी जूते खाता है, कभी कैद होता है, अनेक प्रकार के अपमान सहता हुआ भी जुआं खेलता ही रहता है, कई जुआंरी हत्या के अभियोग में फांसी तक लटकाये गये हैं, किन्तु तो भी जुआंरी जुआं खेलना नहीं छोड़ते.

प्र०– वास्तविक में जुआं क्या वस्तु है ?

उ०– सब दुर्गुणों का घर, पापों का भण्डार, निरादर की जड़ तथा अध: पतन का बीज है.

प्र०– तो भी जुआंरी उसे क्यों नहीं छोड़ता ?

उ०– क्योंकि लोभ, कुसंगति तथा दुर्व्यसनों से, उसकी मति बिगड़ जाती है तथा अपने दुष्ट साथियों के मारे, वह अपनी दशा सुधारने का विचार तक नहीं कर सकता.

प्र०– जुएं में क्या दोष है ?

उ०– कठिनता से कमाये धन का एकदम क्षय होना, मिथ्या भाषण, निष्ठुरता, कर्कशवाणी, शत्रुता, लोभ, क्रोध, नित्यकर्म का त्याग,

सत्पुरुषों की ईर्ष्या, दुष्टों का संग, धन होते हुए निराश होना, धन खोकर भी धन से प्रेम होना, प्रतिक्षण क्रोध, प्रतिक्षण हर्ष, प्रतिक्षण क्लेश, प्रतिक्षण संताप, बात-बात पर मिथ्या सौगन्ध खाना या खिलाना, स्नान, भोजन तथा निद्रा का असंयम, मल-मूत्र को रोकना, भूख प्यास से पीड़ित रहना, दंड पाना तथा नाश होना इत्यादि दोष हैं, द्यूत से स्नेह घटता है, हितचिंतक शत्रु बन जाते हैं, फूट फैलती है, स्वजन तथा परजन घृणा करते हैं, कहां तक कहें, यह सर्वस्व नसाने वाला है.

दोहा

जुआं कभी ना खेलिये, लखि पांडव नल हाल ।
समरथ की गति कस भयी, हमरो कबन हवाल ॥१॥
जुआं डसी व्याकुल करत, डरत जुआं सो बैल ।
खरत जुआं ये रैन दिन, नष्ट करै दै जैल ॥२॥
धर्म मान सुख धन हरै, करै निपट लाचार ।
गुण नाशी औगुण करै, धी यश दरै विचार ॥३॥

उपदेश २६

तीर्थ

प्र०– तीर्थ का क्या अर्थ है ?

उ०– (तीर्) का अर्थ पूर्ण करना या पार लगाना और (थ) का अर्थ स्थल, स्थिर या निश्चयपूर्वक है; इसलिये (तीर्थ) का अर्थ निश्चयपूर्वक पार लगाने वाला या पूर्ण करने वाला स्थान.

प्र०– इसका तात्पर्य क्या हुआ ?

उ०– अर्थात् वह स्थान जो सब अभावों को पूर्ण कर सकता है, उसे तीर्थ कहते हैं.

प्र०– स्पष्ट कहिये ?

उ०– अर्थात् जो स्थल, योग, यज्ञ, तप, जप, व्रत, तर्पण, श्राद्ध, अध्ययन,

भोजन, छादन आदि के अभावों को पूर्ण करता है उसे तीर्थ कहते हैं.

प्र०– तीर्थ में कितनी बातों का होना आवश्यक है ?

उ०– शुद्ध वायु, जल, बन, गो, संत, विद्वान तथा एकान्त की आवश्यकता है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि योग, तप, जप के लिये एकान्त की, वेदाध्ययन के लिये विद्वानों की, तर्पण के लिये शुद्ध जल की, यज्ञ श्राद्धव्रत के लिये शुद्ध जल बन संत तथा विद्वानों की, आरोग्यता के लिये शुद्ध जल-वायु की, गौओं के लिये बन की आवश्यकता है, अर्थात जहां पर शुद्ध जल, वायु बन, गो तथा विद्वान होते हैं, वहां पर अनायास भोजन, छादन आदि की प्राप्ति तथा सबकी साधन सिद्धि हो सकती है.

प्र०– यज्ञ के लिये जल बन, गो, संत तथा विद्वानों को क्यों आवश्यकता है?

उ०– क्योंकि यज्ञ के लिये पंचगव्य की, गव्य के लिये गाय की, गाय के लिये बन जल की सिद्धि के लिये साधन की, साधन के लिये विधि विधानकी, विधान के लिये विद्वान की और शान्ति के लिये संत की आवश्यकता है.

प्र०– धर्मशास्त्र ने तीर्थों को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का प्रदाता क्यों कहा है ?

उ०– क्योंकि बिना सुपास के किसो कर्म की साधन सिद्धि नहीं हो सकती.

प्र०– शास्त्रों ने गंगाजल आदि की विशेष कीर्त्ति क्यों की है ?

उ०– क्यों कि जो जल-वैद्यक, विज्ञान तथा रसायन के सिद्धांतों के अनुसार दिव्य, शुद्ध तथा रुजहारक समझा गया है, वही पवित्र है; जिसमें गंगा जल तो शुद्ध हिमांशु है, जिसे कौन नहीं जानता ? जिसके जीवाणु, विकारी-जीवाणुओं को नष्ट कर देते हैं तथा

उसके पान से अनेक विकार दूर भागते हैं; इसीलिये उसकी विशेष तारीफ की है.

प्र०– उसे धर्म अर्थ काम मोक्ष का प्रदाता क्यों कहा ?

उ०– क्योंकि उस जल से आरोग्यता प्राप्त होती है और आरोग्यता ही सब साधन सिद्धि की जड़ है.

प्र०– मानस तीर्थ कौन से हैं ?

उ०– अहिंसा, सत्य, दया, क्षमा, धैर्य, दान, तप, संतोष, शम, दम, ब्रह्मचर्य, नम्रता, ज्ञान, धर्म.

प्र०– इनमें परम तीर्थ कौनसा है ?

उ०– ब्रह्मचर्य.

प्र०– इससे भी दिव्य तीर्थ कौनसा है ?

उ०– शुद्ध मन अर्थात् सुइच्छा.

प्र०– स्थावर तीर्थ बहुधा पर्वतों पर क्यों होते हैं ?

उ०– क्योंकि पर्वतों पर शुद्ध पवन बहा करता है, जो निरोगता का हेतु है; सिवाय वहां स्वतेज वृद्धि का साधन अनायास हो सकता है और जल, वायु की विद्युत भी अनायास प्राप्त हो सकती है.

दोहा

जहं शुचि, जलबन, पवनगो, जहां संत विद्वान ।
सम तल, गिरि पै, या तरे, तीर्थ सुपासू जान ।।१।।
जहां योग तप यज्ञ व्रत, व्हैसक विधिवत कर्म ।
वाही तीरथ जानिये, जहां सधै सब धर्म ।।२।।

प्र०– तीर्थयात्रा का अर्थ क्या है ?

उ०– उपरोक्त सुपासू स्थानों को देखने के अर्थ पर्यटन करना.

प्र०– इसका हेतु क्या है ?

उ०– अपने लिये किसी सुपासू स्थान की खोज, प्राकृतिक पदार्थों का दर्शन, कृत्रिम पदार्थों का ज्ञान, विद्वान तथा साधु पुरुषों की संगति प्राप्त होती है, सिवाय वह यात्री अति चतुर और सज्जन हो जाता है.

प्र०– प्राकृतिक पदार्थ क्या दर्शाते हैं ?

उ०– ईश्वर की अलौकिक गुण गरिमा दर्शाते हैं तथा कारण सहित उनका ठीक स्थान आदि विदित हो जाता है.

प्र०– यात्रा से कृत्रिम पदार्थों का क्या ज्ञान होता है ?

उ०– कौनसा व्यवहारिक पदार्थ कहां पर, किस तरह बनाया जाता है और उसके द्वारा क्या लाभ होता है, इत्यादि बातें जानी जाती हैं.

प्र०– विद्वान तथा साधु पुरुष के संग से क्या लाभ होता है ?

उ०– अनेक प्रकार की विद्या, योग, भक्ति तथा सदाचरणी की प्राप्ति होती है, सिवाय अनेक उपयोगी शिक्षाएं मिलती हैं.

प्र०– यात्रा से क्योंकर मनुष्य सज्जन हो सकता है ?

उ०– क्योंकि परदेश में विचरने वाले मनुष्य को लाचार हो, अहंकार, क्रोध, काम आदि दुर्गुण छोड़ने पड़ते हैं, तभी वह परदेश में निभ सकता है; अन्यथा नहीं.

प्र०– यात्रा से मनुष्य क्योंकर चतुर हो जाता है ?

उ०– क्योंकि उसे ठग, चोर, उचक्के, छली, दुरात्माओं से किस तरह बचना और किसके साथ कैसा वर्ताव करना आदि भलीभांति विदित हो जाता है.

दोहा

असली नकली कुदरती, कौन द्रव्य को स्थान ।
निर्णय यात्रा दे करी, भले बुरे को ज्ञान ।।१।।

विद्या को आगम करै, अहंकार को नाश ।
यात्रा चतुर बनायके, दे करी प्रभु को दास ।।२।।

यात्रा बिन सन्तोष ना, यात्रा बिन ना ज्ञान ।
यात्रा बिन ना लाभ कछु, ना कछु व्है कल्याण ।।३।।

यात्रा बिन जग नीति ना, यात्रा बिन ना रीति ।
यात्रा बिन प्रभु भीति ना, यात्रा बिन ना प्रीति ।।४।।

नयी व्यवस्था नयो गृह, नयो मेल नव ज्ञान ।
नित नव हित अरु अहित को, यात्रा जाये ध्यान ।।५।।

उपदेश २७
विधि निषेध

प्र०— विधि का क्या अर्थ है ?

उ०— करणीय अर्थात् हलाल.

प्र०— निषेध का क्या अर्थ है ?

उ०— अकरणीय अर्थात् हराम.

प्र०— विधि किसे कहते हैं ?

उ०— जो सृष्टि नियम के अनुकूल हो, अर्थात् जो सुइच्छा से अथवा सुनीति से किया जावे ।

प्र०— निषेध किसे कहते हैं ?

उ०— जो सृष्टि नियम के प्रतिकूल हो, अर्थात जो कुइच्छा से अथवा कुनीति से किया जावे.

प्र०— अहिंसा कब विधि तथा निषेध है ?

उ०— जिस प्राणी के द्वारा अनेकों का लाभ अर्थात् हित होता हो, उसकी रक्षा करनी, विधि है, जैसी गौ की; किन्तु जिस प्राणी से अनेकों का अकारण अनहित होता हो; उसकी रक्षा करना, निषेध है; जैसी सिंह की या डाकू की.

प्र०— हिंसा कब विधि तथा कब निषेध है ?

उ०— हिंसक प्राणियों को मारना विधि है, किन्तु अहिंसक प्राणियों का मारना निषेध है; जैसे अपने राजा के हित के लिये, शत्रु के दल को मारना या युद्ध में मर जाना विधि है, किन्तु अपने स्वार्थ के लिये किसी को व्यर्थ मारना या मर जाना या किसी प्राणी का जी तक दुखाना निषेध है.

प्र०— हिंसा किसे कहते हैं ?

उ०— तन से या मन से या वचन से या किसी प्रकार से किसी का जी दुखाना या मारना हिंसा है.

प्र०— सत्य कब विधि तथा कब निषेध होता है ?

उ०— सत्य सदा विधि है, किन्तु जिस सत्य के द्वारा अकारण किसी का अनहित या अन्याय होता हो, वह सत्य निषेध है; अर्थात् जो

सत्य सुइच्छा सिद्ध करता हो, वह विधि है; किन्तु जो सत्य कुइच्छा सिद्ध करता हो, वह निषेध है; जैसे कोई गर्भ रक्षा की औषधि पूछे, उसे ज्यों की त्यों बता देना विधि है; किन्तु जो कुइच्छा से गर्भपात की औषधि पूछे, उसे बताना निषेध है; बल्कि उसे पकड़ा देना विधि है.

प्र०– असत्य किसे कहते हैं ?

उ०– और का और कह देना, टाल देना, न कहना या चुप रहना असत्य कहाता है.

प्र०– मेरी समझ में असत्य कदापि विधि नहीं ?

उ०– क्या आप अपने खजाने का भेद चोरों को बता दोगे ? क्या आप अपने पिता के शत्रुओं को अपने पिता का अथवा अपने राजा के शत्रुओं को अपने राजा का गुप्त हाल बता दोगे ? निश्चय है, कि आप कदापि न बताओगे !

प्र०– न कहना क्योंकर असत्य है ?

उ०– क्योंकि जो सत्य भेद नहीं कहता, वह सत्य को छिपानेवाला झूंठा नहीं तो क्या है ? इसलिये न कहना असत्य है.

प्र०– दया कब विधि तथा कब निषेध है ?

उ०– दीनों पर दया करना विधि है, किन्तु दुष्टों पर दया करना निषेध है.

प्र०– क्षमा कब विधि तथा निषेध है ?

उ०– अज्ञान दशा का अपराध क्षमा करना विधि है, किन्तु सज्ञान-दशा का निषेध है.

प्र०– धैर्य कब विधि तथा कब निषेध है ?

उ०– धर्म रक्षा तथा विपत्ति में धैर्य विधि है, किन्तु कुकर्म में साहस निषेध है.

प्र०– तप कब विधि तथा निषेध है ?

उ०– तप जप व्रत योग करना विधि है, किन्तु ढोंग या लोक दिखाऊ आडम्बर करना, मात्र निषेध है.

प्र०– दान कब विधि तथा निषेध है ?
उ०– सुपात्र को देना विधि तथा कुपात्र को देना निषेध है.

प्र०– लज्जा कब विधि तथा कब निषेध है ?
उ०– अधर्म से लजाना विधि है, किन्तु धर्म से लजाना निषेध है.

प्र०– अन्वेषण कब विधि तथा कब निषेध है ?
उ०– गुणान्वेषण विधि तथा छिद्रान्वेषण निषेध है.

प्र०– भोग अर्थात् काम कब विधि तथा कब निषेध है ?
उ०– अपनी ऋतु प्राप्त स्त्री से विधि, किन्तु अन्य से निषेध है.

प्र०– क्रोध कब विधि तथा कब निषेध है ?
उ०– कुपित होना सर्वथा निषेध है, किन्तु युद्ध में कुपित होना, शूरवीरता है.

प्र०– लोभ कब विधि तथा कब निषेध है ?
उ०– सुदत्त तथा न्यायपूर्वक उद्यम द्वारा प्राप्त करना विधि है, किन्तु अदत्त तथा अन्यायपूर्वक प्राप्त करना निषेध है.

प्र०– मोह कब विधि तथा निषेध है ?
उ०– स्त्री पुत्रादिक संसारिक मोह में लिप्त रहना निषेध है, किन्तु सद्विद्या, संत, विद्वान तथा ईश्वर से प्रेम रखना मोह नहीं है.

प्र०– अहंकार कब विधि तथा कब निषेध है ?
उ०– स्वधर्म, स्वदेश तथा स्वजाति का अभिमान सदा विधि है, किन्तु इसके अतिरिक्त निषेध है.

प्र०– ईर्षा कब विधि तथा कब निषेध है ?
उ०– ईर्षा सर्वथा निषेध है, किन्तु विद्याभ्यास तथा साधन में वह उत्साह कहाती है.

प्र०– व्यसन कब विधि तथा कब निषेध है ?
उ०– विद्याभ्यास, ईश्वर भक्ति तथा शुद्ध अन्न-जल का व्यसन विधि है, किन्तु अपेय, अखाद्य, द्यूत तथा व्यभिचार आदि के व्यसन निषेध है.

प्र०– कैसा भाषण विधि तथा निषेध है ?
उ०– सत्य, सीधा, मधुर, रुचिकर भाषण सदा विधि है, किन्तु असत्य वक्र, कटु, अरुचिकर भाषण सदा निषेध है.

प्र०— श्रवण में क्या विधि निषेध है ?

उ०— मिथ्या भाषण, निन्दा तथा कुइच्छा उत्पादक वाणी कदापि न सुने, किन्तु सत्यवचन, सत्यस्तुति तथा सुइच्छा उत्पादक वाणी सदा सुने.

प्र०— दर्शन में क्या विधि निषेध है ?

उ०— वेश्या का नाच, परछिद्र, कुकर्म तथा कुइच्छा-उत्पादक वस्तु कदापि न देखें; किन्तु सद्‌गुण, सुकर्म तथा सुइच्छा उत्पादक वस्तु सदा देखें.

प्र०— स्पर्श कब विधि तथा निषेध है ?

उ०— केवल कर्त्तव्य पालन के लिये विधि है; किन्तु अकारण निषेध है.

प्र०— कौनसा कार्य विधि तथा निषेध है ?

उ०— जिसका परिणाम हितकारक हो, वह विधि है; किन्तु जिसका परिणाम अनहितकारक हो, वह निषेध है.

दोहा

सद् इच्छा हितकर विधि, सृष्टि नियम अनुकूल ।
कुरुचि निषेधजु हित हरै, है ताके प्रतिकूल ।।

उपदेश २८

सावधान

[१] जो जाति, पांति, विद्या, ज्ञान, आयु, बल, मर्यादा, पद, अधिकार, यश तथा धन आदि में से किसी एकही बात में बड़े हों, उन्हें देखते ही मर्यादानुसार अवश्य प्रणाम आदि करो !

[२] सदा सत्य, सीधी, मधुर, नम्रतापूर्वक वाणी बोलो और उसके अनुसार बर्ताव रक्खो !

[३] कभी किसी को क्रूर, व्यंग तथा कुदृष्टि से मत देखो !

[४] अपने पास आये हुओं का यथायोग्य सत्कार करो !

[५] माता, पिता, गुरु, स्वामी, सज्जन, पण्डित, महात्मा तथा परोपकारी की यथायोग्य सेवा करो और उनकी आज्ञा मानो !

[६] दीन, अनाथ, असहायों की तन, मन, धन से यथाशक्ति, सहायता करो, प्राणिमात्र का हित करो, कभी भूलकर भी किसी का जी तक मत दुखाओ !

[७] सदुद्योग द्वारा धनार्जन करो !

[८] तन, मन, धन तथा परिश्रम द्वारा सद्विद्यार्जन करो !

[९] अपने सनातन वर्णाश्रम धर्म को कदापि न त्यागो ! उसके अनुसार सदा वर्त्तो !

[१०] व्यायाम तथा ब्रह्मचर्य द्वारा शरीर पुष्ट करो !

[११] द्यूत, व्यभिचार, अपेय तथा अखाद्य आदि व्यसनों से सदा दूर रहो !

[१२] अपने आश्रित तथा शरणागत की सदा रक्षा करो !

[१३] मन का गुप्त भेद किसी से मत कहो !

[१४] झूठे की ज़मानत तथा गवाही कभी मत दो !

[१५] खलों का संग तथा उनका साझा कभी मत करो !

[१६] बिना विचारे कोई काम न करो ! जिसका परिणाम अच्छा हो, वही काम करो !

[१७] बिना पूछे, कभी किसी बात का उत्तर मत दो ! पूछने पर अत्यन्त नम्रता से कहो ! न किसी की बात काटो !

[१८] किसी का अवगुण मत देखो ! न किसी से कहो ! किन्तु हर एक का गुण देखो और तारीफ करो !

[१९] खलों को कदापि उपदेश मत दो !

[२०] किसी का विश्वासघात मत करो ! न प्रतिज्ञा भंग करो !

[२१] किसी का द्रोह तथा अपमान स्वप्न में भी मत करो !

[२२] निंदा कभी मत करो ! न सुनो ! न उस पर ध्यान दो ! और न कभी निंदक का विश्वास करो ! जो औरों की निंदा कर सकता है, वह आपकी निंदा क्यों न करेगा !

[२३] समय को व्यर्थ मत खोओ ! जब का काम तब ही करो ! दूसरे के भरोसे पर मत छोड़ो !

[२४] ईश्वर को कभी मत भूलो ! हर बात में उसका स्मरण रक्खो ! क्योंकि जीवन का कुछ विश्वास नहीं !

[२५] कर्ज़ कदापि मत लो ! जो हो, उसे दे डालो ! कर्ज़ अधोगति का कारण है ! असदाचरण और निर्लज्यता की जड़ हैं !

[२६] चोरी कदापि मत करो ! उद्यम करके निर्वाह करो !

[२७] बैर किसी से मत करो !

[२८] किसी का उपकार कभी मत भूलो !

[२९] वृद्धापकाल के लिये, बचपन में गुण विद्या तथा जवानी में धन का संग्रह करलो ! जिससे पीछे कष्ट न उठाना पड़े !

[३०] अन्तकाल के लिये सदा सत्कर्म तथा ईश्वर भक्ति करो !

[३१] कठिनाई के भय से सत्कर्म मत रोको ! लगातार के उद्योग से वह कठिनाई आपही दूर हो जावेगी ।

[३२] सदाचरण, सत्कर्म, न्याय तथा सुइच्छा को कदापि मत त्यागो !

[३३] अपनी इच्छा की गति को सदा देखते रहो ! उसे कु ओर से हटाकर सु ओर लगाते रहो ! बस, इसीसे सब कुछ सुफल अनायस फलेगा !

दोहा

सत्य नम्रता मधुर वच, दया क्षमा वैराग ।
जो ना त्यागे सुरुचि को, सब जग ता पद लाग ॥

चौपाया छंद

सतकारज जो ना आरंभत, वे नर नीच कहावत है ।
करि आरंभ तजे जो कोई, मध्यम जन तागावत है ॥
करि आरंभ तजे जो नाहीं, बरु संकट बहु पावत है ।
ते धनि धन्य जगत के मांही, वे उत्तम सब ध्यावत है ॥

दोहा

जो आरम्भ न देत ना, ना आरम्भे आप ।
नासे जो सत काम वो, महा नीच को काम ॥१॥

किसमिस सम वो देव है, नर है तुल्य बदाम ।
राक्षस बेर पिशाच वो, अर्जुन फल सम बाम ।।२।।
भीतर बाहर देव मृदु, नर मृदु भीतर साच ।
राक्षस मृदु है ऊपरै, मृदु ना कदा पिशाच ।।३।।
विश्वासोये देव को, नर को ले जब जाच ।
मत विश्वासो भूल के, राक्षस और पिशाच ।।४।।

लोमविलोम छंद

न पा न खा कु खान पान ।
न गा न ध्या कु ध्यान गान ।।
न ले न दे कु देन लेन ।
न बै न नै कु नैन बैन ।।

दोहा

नृप शासन नृप नीति को, कदा न कीजे द्रोह ।
द्रोह किये कुल नसत है, अग्नि रूप ता कोह ।।५।।

उपदेश २९

मूर्ख की गति

प्र०– मूर्ख किसे कहते हैं ?

उ०– जो अपनी तथा संसार की गति नहीं जानता, न अपनी सद्गति और न दुर्गति का लक्ष रखता है; वही मूर्ख है.

प्र०– मूर्ख की कितने प्रकार की गतियां हैं ?

उ०– चार प्रकार की हैं, अर्थात् द्वैपदी, चतुष्पदी, षट्पदी और अष्टपदी.

प्र०– मूर्ख की द्वैपदी गति के क्या लक्षण हैं ?

उ०– जब तक विवाह नहीं होता, तब तक उस दो पद वाले मूर्ख का मन, उन दो पद वाले पक्षियों के समान, खुद को खुश करने के लिये, व्यर्थ उड़ा-उड़ी, नाचा-कूदी किया करता है, यहां तक कि उसे सिवाय अपने स्वाद तथा मन बहलाने के और कुछ नहीं सूझता. इसी कारण कभी-कभी वह अपने प्राण तक को संकट

में डाल लेता है, वह अपने उपदेशक तथा उपकारी से विरुद्ध हो, पूरा-पूरा तोताचश्म बन जाता है, या काक के तुल्य भ्रष्ट अभ्रष्ट का विचार न कर, व्यर्थ बकता है, या वृथा अप्रसन्न हो, घूघू के समान त्यौरी चढ़ा लेता है या औरों को धोखा दे, कोयल के समान छलता है या मोहनिशा के कारण चकोर के समान स्वजन या सुहृद से अलग हो, दुष्ट संगरूपी अग्नि को भक्षण करके अपने मुख को जला लेता है या विषयरूपी जल के लिये चातक के समान व्याकुल रहता है या बाझ के समान झपटकर या बगले के समान चेष्टा से गरीबों का सर्वस्व हरण कर लेता है या गिद्ध के समान मरों का अन्न खाता फिरता है या मृतक अन्न देख, सुन मनमोद मनाता है, किन्तु अपनी सद्गति का जरा भी लक्ष नहीं रखता; वह मूर्ख इन दो पैर वाले पक्षियों के समान है.

प्र०— मूर्ख की चतुष्पदी गति के क्या लक्षण हैं ?

उ०— जो मूर्ख लग्न होते ही, चार पांव का बन, पशुओं के समान अपार कष्ट और परिश्रम से कमाता तो बहुत है, पर भूसा आदि खा अपने दिन काटता है, जिसे सिवाय पेट भरने तथा विषय करने के और कुछ नहीं सूझता, न पिटने से, न कूटने से, न किसी बात से शर्माता है और दिनभर मारा-मारा फिरकर, रातको घर आते ही खूंटे से बांधा जाता है; या कुत्ते के समान व्यर्थ भूसकर, आपस में लड़ता हुआ, उनका ग्रास छीन लेता है, या गधों के समान, आपस में लाता मारी करता हुआ, उच्च स्वर से अपनी कीर्ति सुनाता फिरता है; या गोदड़ों के समान औरों का अर्जित तथा उच्छिष्ट खाकर, या उनकी-सी वृत्ति धारकर, व्यर्थ ही जय का कोलाहल मचाता है; या अपने कर्त्तव्य से डरकर ऊँट के समान बल-बलाता है या बन्दर के समान मज़ाक करता हुआ, उछल कूद आदि करता है; या बिलाव के समान ग़रीब बन, अवसर पाते ही, झट चट कर जाता है; या हाथी के समान कामांध हो, गर्त्त में गिरता है; या हिरन के समान गान की तान सुन, लुब्ध हो, मारा जाता है; या बिना विचारे व्याघ्र के समान

अन्य की शिकार के लिये खुद आप औरों की शिकार बन जाता है; या चूहे के समान रोटी के लिये औरों के फंदे में फस जाता है; या मेंडक के समान सर्प के मुख में पड़कर भी औरों को मच्छर समझ खाना चाहता है; किन्तु अपनी सद्गति का जरा भी लक्ष नहीं रखता; वह मूर्ख इन चौपगों के समान है.

प्र०– मूर्ख की षटपदी गति के क्या लक्षण होगें ?

उ०– वह स्त्री पुत्रवाला मूर्ख-मक्खियों के समान अग्राह्य, अपेय, अखाद्य चाटता फिरता है या मच्छर के समान मीठा-मीठा बोलकर रक्त का शोषण करता है; या बग्घ, डांस के समान अपने आधारभूत प्राणियों का रक्त शोषण करता है; या मधुमक्खियों के समान कोसों-तक भिन भिनाता हुआ, भटकता फिरता है, व अनेकों को चूस-चूस हराम का माल संग्रह करता है और उसी हर्ष सोच में दिनरात लगा रहता है, कभी सर्वस्व खो रोता है और कभी अचानक प्राण गमा बैठता है; किन्तु अपनी सद्गति का जरा भी विचार नहीं करता वह मूर्ख इन छः पगों वालों के तुल्य है.

प्र०– मूर्ख की अष्टपदी गति के क्या लक्षण हैं ?

उ०– वह पुत्र पौत्रवाला मूर्ख-अति जरठ होने पर भी मकड़ी के समान अनेक जाल फैला, जीव जन्तुओं को फांद तथा उन्हें चूस-चूस कर, उनका सर्वस्व अपहरण कर लिया करता है तथा खुद अपने संतान का खाद्य बन, कभी उसी जाल में मरकर लटका रह जाता है, किन्तु जीतेजी कभी अपनी सद्गति का विचार नहीं करता, बल्कि जानबूझकर दुर्गति के मार्ग का अवलम्बन करता है; वह मूर्ख इस आठ पैर वाली मकड़ी के समान है.

प्र०– चतुर किसे कहते हैं ?

उ०– जो अपनी तथा संसार की गति जानता है, सदा दुर्गति के पथ से दूर रहकर, सद्गति के मार्ग का अवलम्बन करता है और बिना विचारे कोई काम नहीं करता.

दोहा

जो ना जाने निज गति, ना जग गति को ज्ञान ।
बिना विचारे करत जो, सो मूरख पहिचान ।।१।।
निज गति जग गति जो लखि, कारज करै विचार ।
ताकि सद्गति होत सत, वही चतुर संसार ।।२।।

उपदेश 30

मनुष्य कौन है ?

एक समय मानव नामक राजा ने ज्ञानदेव नामक बड़े तपस्वी महात्मा की कई वर्ष तक अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सेवा की, उस सेवा से प्रसन्न हो, महात्मा ने राजा को आशीर्वाद दे कहा; कि हे भूप ! अब तू मनुष्य हुआ; किन्तु अभी ज़रा कसर है. यह सुन विस्मित हो, हाथ जोड़कर राजा बोला; कि हे देव ! अब तक मैं कौन था ? महात्मा बोले, कि प्रथम तू उस मनुष्य का पैर का धोवन ले आ, जो परहित के लिये प्रसन्नतापूर्वक अपना हृदय, अपने हाथों से निकालकर दे सकता हो; तब तेरे प्रश्न का उत्तर मिल जायगा ! तब राजा ने नम्रतापूर्वक कहा, कि जी हां महाराज ! अभी लाता हूं. ऐसा कह, दण्डवत करके बिदा हुआ; उधर मंत्रियों को आज्ञा दी, कि किसी ऐसे पुरुष को तुरंत आदरपूर्वक मेरे पास ले आओ ! जो निर्लोभी महत् संकट के निवारणार्थ प्रसन्नतापूर्वक अपना हृदय अपने हाथों से चीर कर दे सकता हो ! मंत्रियों ने जय जीव ! कहकर, चारों ओर इस कार्य के लिये दूत भेजे, वे दूत सब तरफ ढूंढ-ढूंढ कर, हार गये, पर ऐसा मनुष्य कहीं न मिला; तब निराश हो, ज्योंही लौटने लगे, त्योंही उन्हें दुखित देख, एक सज्जन ने पास आ, व्यग्रता का कारण पूछा, तब दूतों ने कहा, कि हम धमार्थ एक निस्वार्थी मनुष्य का हृदय चाहते हैं, सज्जन बोला, कि यह कोई बड़ी बात नहीं; यदि मेरे हृदय द्वारा आपका धर्मसंकट या प्राणसंकट टल सकता हो ! तो मैं प्रसन्नतापूर्वक अपना हृदय अपने हाथों से चीर कर दे सकता हूं ! न मैं इस काम का कोई बदला चाहता

हूं ! यह सुन दूतों ने दण्डवत कर, सविनय कहा, कि जो आप प्रसन्नतापूर्वक दे सकते हों ! तो कृपापूर्वक महाराज के पास चलिये ! सज्जन सानन्द उनके संग हो, राजा के पास पहुंचा, राजा ने दूतों द्वारा वृतान्त सुन प्रसन्न हो, सज्जन का चरणोदक ले, अत्यन्त आदर सत्कार किया. फिर महात्मा के पास पहुंच, दण्डवतकर, वह चरणोदक उनके आगे रख दिया. यह देख, महात्मा मुद्रित हो, बोले; कि हे नृप ! इसे पी ले और वापिस जा ! कल प्रात:काल मेरे पास आना ! राजा ने तुरन्त उठा, मस्तक से लगा, उसे पी लिया और महात्मा को दण्डवत कर बिदा हुआ; किन्तु राजा की अपूर्व दशा हो गयी, उसे लाखों मनुष्यों के झुण्ड में इने-गिने मनुष्य नज़र आते थे; अवशेष पुरुषों में से कोई गधे, कोई कुत्ते, कोई गीदड़, कोई शूकर, कोई बिलाव, कोई सांप, कोई बिच्छु, कोई काक, कोई बक तथा कोई घूघू आदि मालूम होते थे और स्त्रियों में से कोई गधी, कोई कुत्ती, कोई बिल्ली, कोई नागन, कोई कनखजूर, कोई सियारी तथा कोई बड़बागल आदि प्रतीत होती थीं. राजा ने यावत् दास, दासी, रानी, पटरानी, प्रजा तथा कर्मचारी आदि को खूब ध्यानपूर्वक बार-बार देखा, पर इनेगिने को छोड़कर, बाकी सबकी वही विलक्षण आकृति, उसे दिखाई देती थी; इस अनोखे चरित्र से, विस्मित हुए राजा को, रातभर निद्रा न आई; प्रभात होते ही, वह शौच्यादिक से निवृत हो, तुरन्त महात्मा के पास पहुंचकर, उनके चरणों में गिर पड़ा और बोला कि हे सद्गुरु ! अब मुझे निश्चय हो गया ! कि इस संसार में नर तनधारी पशु, पक्षी आदि भरे पड़े हैं ! किसी-किसी मनुष्याकार खोल की पोल में, तो भयंकर राक्षस पिशाच तक छिपे बैठे हैं ! पर उन पुरुषाकार देहधारियों में सच्चे मनुष्य बिरले हैं ! अब अवश्य मैं आपकी कृपा से मनुष्य हुआ ! तब महात्मा बोले, कि यह सब उसी चरणामृत का प्रभाव है ! उसीके द्वारा तुझे यह अमोघ ज्ञान प्राप्त हुआ ! अब तू उस सज्जन की यावज्जीवन सेवा कर और उसीकी आज्ञा में सदा तत्पर रह ! तभी तेरा सदा भला

होगा ! यही सर्वोत्तम सद्गति का मार्ग है, यही मनुष्य बनने का सच्चा उपाय है ! और वही एक मनुष्य है !!!

दोहा

लोभ रहित सतधर्म हित, पर संकट दे खोय ।
बरु जावै सर्वस नसी, तजै न प्रण जन सोय ।।१।।
नृपहित परहित धर्महित, देश जाति सत हेत ।
तन मन धन वच प्राण यश, सुख सज्जन खुद देत ।।२।।

उपदेश ३१

धर्म जाति मतांतर में भूल भुलैया

सबकी एक जाति मानना ! मत को जाति मानना ! मत को धर्म मानना ! भूल भुलैया का अनोखा खेल है !!!

एक जातित्व का विचार

देखो ! चराचर जातियां प्राकृतिक हैं, आपके किसी प्रयत्न से भी घोड़े का गधा अथवा गधे का घोड़ा न होगा, बरन उनके गर्भज संस्कार से विकृत जाति का पशु जन्मेगा; इस तरह एक जातित्व के प्रयत्न से, दो के बदले तीन जातियां होगी; बल्कि वे खच्चर भी दो जाति के होंगे, अर्थात् उत्कृष्ट जाति का घोड़ी में और निकृष्ट जाति का गधी में होगा; इस तरह दो की चार जातियां होंगी. जिस तरह एक छंद का प्रस्तार ही अनेक छंदों का विस्तारक है; उसी तरह एक जातित्व का संपादन ही अनेक जातियों का उत्पादक है.

यदि घोड़ियों से घोड़ों का और गधियों से गधों का स्वाभाविक संयोग सदा के लिये रोक दिया जाकर, केवल घोड़ियों का गधों से और गधियों का घोड़ों से ही संयोग होता रहे, तो भी एक जातित्व का संपादन न होगा; बल्कि दो स्वाभाविक जातियों के बदले, दो विकृत जातियों का प्रादुर्भाव होगा,

पर ऐसा होने से पचास वर्ष के पश्चात् संसार में घोड़ों गधों का पता भी न रहेगा, तब केवल इतिहासों में उनका चित्र चरित्र देख,

अपनी मूर्खता पर रोना पड़ेगा, इसी तरह कई प्राकृतिक जातियां, इसी विकृति के कारण अपने अधिकार से च्युत हो, नष्ट हो गई.

चाहे आप लाख प्रयत्न करके, अनेक जातियों की नीति, रीति, वस्त्र, भूषण, खान, पान, मत तथा भाषा एक ही कर दें; तो भी स्वयं प्रकृति उनकी विभिन्नता को, कभी एक नहीं होने देती; बरन दो की तीन, तो अवश्य कर देती है; उसके हजारों दृष्टांत मनुष्यों तथा वनस्पतियों में भी पाये जाते हैं.

मत को जाति मानने का फल

किसी मत को जाति का रूप देना बहुत बुरा है; इसमें भी सबकी एक जाति नहीं होती; बरन स्वजाति का लोप, विकृत जाति का प्रादुर्भाव, आत्म स्तुति, परनिंदा, झूठ, कलह, छलछिद्र, हिंसा आदि की वृद्धि होती है.

कारण जाति प्राकृतिक योनिजात है और मत केवल मनकल्पित बात है; इसलिये जातबात इन दोनों की ऐक्यता नहीं हो सकती; चाहे कोई मत, अपने अन देखे स्वर्ग तथा मोक्ष का लोभ दिखाकर और विश्वास की रस्सी से बांधकर, अनेक जातियों को, किसी तरह अपना अनुयाई बना भी ले; पर वह मत सबकी एक जाति नहीं कर सकता; हर मत के अन्तर्गत विभिन्न जातियों का होना इस बात की साक्षी देता है.

मत की उत्पत्ति और परिणाम

जिस तरह किसी प्रश्न के उपस्थित होने पर, हर मनुष्य अपनी-अपनी मति के अनुसार, अपना भिन्न मत प्रकट करता है; उसी तरह प्रचारक लोग, किसी गुप्त या प्रकट कार्य सिद्धि के लिये, अपनी गूढ़ मति से, विलक्षण मत की अल्पना करते हैं. जिनके बाह्याडम्बर से मोहित हो, रोचक वाक्यों से कर्षित हो, भयानक वाक्यों से भयभीत हो, प्रलोभन से लालायित हो, विश्वास के बन्धन से बद्ध हो, अनेक उनके अनुयाई बन जाते हैं; ऐसे मत बिल्कुल दोष शून्य नहीं होते; बल्कि उनका कहना, करना तथा परिणामी लक्ष भिन्न होता है, हर मत में

प्रचारकों के गुण, दोष तथा गुप्त स्वार्थ की प्रतिच्छाया होती है; जिसका प्रतिबिम्ब अनुयाइयों के हृदय पटल पर अंकित हो जाता है; इसी कारण एक मत के अनुयाई, अन्य मतपर कटाक्ष करते हैं; यहां तक कि अपना-अपना मत पुष्ट करने के लिये पक्षपात, झूंठ, छलकपट, निन्दा, लोभ, क्रोध, अहंकार, दुष्टता, गुप्तागुप्त भ्रष्टता, वर्णसंकरता, लड़ाई-झगड़ा, मारकाट, जबरदस्ती आदि का प्रयोग करते हैं; बड़ा आश्चर्य है, कि तिसपर भी वे अपने आपको श्रेष्ठ धर्मी तथा अपने मत को श्रेष्ठ धर्म बताते हैं.

धर्मी तथा धर्म का विचार

जिस तरह इन जन समूह में कौन सच्चा है, कौन झूंठा है, कौन अचोर है, कौन चोर है, कौन सदाचारी है, कौन दुराचारी यह जानना कठिन है; उसी तरह कौन धर्मी है, कौन अधर्मी है, यह जान लेना भी, कोई सहज बात नहीं है; बल्कि इस बात के निर्णय करने में बड़े-बड़े तत्ववेत्ता भी त्रुटि कर बैटते हैं. देखो ! जिस मनुष्य को हम धर्मी समझते हैं, वही कभी अधर्म में प्रवृत हुआ देखा जाता है; उस दशा में आप किस तरह निश्चय कर सकते हैं, कि अमुक वर्ण या अमुक जाति या अमुक मत के सब लोग धर्मी हैं जिस तरह धर्म किसी वर्ण, जाति या मत का नाम नहीं है, उसी तरह धर्मी भी किसी समूह का नाम नहीं है. क्योंकि जगत में भेड़ों के झुण्ड के समान कहीं धर्मी मनुष्यों के झुण्ड नहीं पाये जाते; बल्कि जो धर्म से चलता है, वही धर्मी है; अन्य नहीं. यदि किसी जाति पांति या मत के अवलम्बी मात्र धर्मी या अधर्मी होते, तो सरकार को इतनी पोलिस या गुप्त पोलिस न रखनी पड़ती और धर्मी अधर्मी के निर्णय करने में न्यायाधीशों को भी इतने साक्षी, जूरी तथा बहुत तर्क वितर्क की आवश्यकता न पड़ती; तिसपर भी अनेक बार धर्मी अधर्मी के निश्चय होने में संशय उपस्थित न होता; इसका कारण आप सब जानते ही हैं.

ऐक्यता का मुख्य द्वार

चाहे मत को धर्म मानो, चाहे मत को एक जाति मानो, चाहे जाति भेद मत मानो, तो भी ऐक्यता नहीं हो सकती ! चाहें हम आपके

साथ खाते हों,चाहे पीते हों, चाहे हम दोनों एकही घर या समूहके हों, तो भी एक्यता नहीं हो सकती ! वरन एक्यता तभी हो सकती है, जब हम परहित में अनुरक्त हों, नहीं तो स्वार्थ भंग होता देख, हरकोई हमारा शत्रु बन सकता है ! चाहे भाई हो ! चाहे पिता ! ! तो औरों की, क्या कथा ! ! !

तात्पर्य

जो प्राकृतिक धर्म को त्याग, धर्माभास रूपी कल्पित मत को स्वीकारते हैं, वे अधर्म करते हुए भी, अपने आपको धर्मी समझते हैं; पर जब निज की हानि देखते हैं, तब कुदरती नियम की महिमा गाते हैं !

जो कल्पित मत को अपनी जाति मान, प्राकृतिक जाति का निरादर करते हैं, वे अपने असली जातित्व को खोकर, नकली बन, पछताते हैं; तब मन में कुदरती नियम के सामर्थ्य को सराहते हैं !

फिर असली और नकली में प्रीति के बदले विरोध उपजता है, जो ऐक्य को नसा, फूट को बढ़ाता है, जिससे उभय पक्ष की हानि होती है; तब सृष्टि नियम की दुहाई मचा, अपनी जान बचानी पड़ती है !

परन्तु जो लोग सच्ची ऐक्यता चाहते हैं, जो सबके प्रिय बना चाहते हैं, जो सबको अपना किया चाहते हैं; वे सज्जन मत और जाति सम्बन्धी छेड़छाड़ को छोड़, परोपकारी बन, समस्त संसार के प्रीतिभाजन बन जाते हैं; जिनकी कीर्ति सुन, सब जाति के लोगों को इतना आनन्द होता है, कि जितना उन्हें निज राज, धन, पुत्र तथा स्त्री आदि से भी नहीं होता; इसी तरह इनके वियोग से बढ़कर उन सज्जनों के वियोग का दु:ख हृदय को विदीर्ण करता है ! ! !

परोपकारी के सब जन, आप ही क्यों अनुगामी हो जाते हैं ? इस बात का विचार क्यों नहीं करते ? सच्चे उपकारी क्यों नहीं बनते ? तथा अपने बच्चों को भी सच्चे परोपकारी बनाने का उद्योग क्यों नहीं करते ? बनावटी बातों को छोड़, उस कुदरती ऐक्यता का आनन्द क्यों नहीं लूटते ?

जब तक आप इस बनावटी भूल भुलैया के खेल में फंसे रहोगे, तब तक आपका अंतःकरण कभी निर्मल शुद्ध पवित्र न होगा; बरन छल प्रंपच तथा दुष्कर्म का घर बन जावेगा, और तब तक दृग दोष भी दूर न होगा; बरन पक्षपात की धुंद ठीक-ठीक न देखने देगी ; उस दशा में हृदय में उदारता तथा नेत्रों में समता क्यों कर टिक सकेगी ?

इसीलिये यह भूल भुलैया का खेल छोड़, परस्पर सहानुभूति रख, अपना व अपनी जाति पांति आदि का काम कुदरती नियम से करो ! यही एक सबका मंगलकारी मार्ग है ! ! अन्य नहीं ! ! !

भजन

धर्म जात मत एक बताई, हमें भुलाय भुलैयारे ।
मत भूलो तुम भूलो प्यारे, भूलत सत्य नसै यारे ।। टेक

द्वै की कदा न व्है इक जाति, तीन चार उपजे यारे ।
तो सबकी कस एक जु होवै, घोड़ी पाड़ी गैयारे ।।
असल जात की नकल बने जब, फिर ना असल हुवै यारे ।
खर घोड़ी सो खच्चर जन्मे, ता सो हय न गधै यारे ।।१।।

प्रकृति जन्य ये जाति बिचारी, मत की मति ये मैयारे ।
होय न एक जाति मत दोऊ, खान पान सो भैयारे ।।
बाहर देखो मत की लीला, घर में दैया दैयारे ।
कहनी, करनी, रहनी देखो, को है धर्म न सैयारे ।।२।।

कल्पित मत को धर्म बताई, नकली जात रचैयारे ।
मुक्ति को विश्वास कराई, निज हित हेत फसैयारे ।।
करि निज कीरत पर की निंदा, गुप्त प्रकट भुरमैयारे ।
कुदरत के प्रतिकूल चलावत, जाति धर्म नसैयारे ।।३।।

चले धर्म से धर्मी सोई, नहीं अधर्म चलैयारे ।
कुदरत का पथ धर्म कहावै, ना मत पंथ मतैयारे ।।

जाति भिन्न है एक नहीं सब, रोझ सुरह औ गैयारे।
जात बात दो होत एक कस, योनिजन्य मुख जैयारे ॥४॥

जो चाहो तुम सचमुच एका, उपकारी बनु भैयारे।
बात जात मत की दो छोड़ी, अनहित व्यर्थ करैयारे ॥
तब तो वे सब आप हि होंगे, प्रेम विवश हो नैयारे।
वे झक जल तुम योगवियोगहि, तुम वे स्वाति चकैयारे ॥५॥

दोहा

भूल भुलैया की बड़ी, या हमरी बड़ भूल।
जो तजि कुदरत को नियम, चलत चलावत फूल ॥१॥
भूल भुलैया से बचो, जो चाहो कल्यान।
नहिं तो धर्म सुजातको, पश्चाताप निदान ॥२॥
धर्म जात खो कुदरती, जो नकली बनजाय।
हक्क गमा निज दिव्य वे, असली से शरमांय ॥३॥
जो जन अपना कुदरती, धर्म वंश दे खोय।
वो जग से उठ जात है, या मन अपने रोय ॥४॥
जो ललचावे निज कही, या तुमरा करै बखान।
बनी आपका दे खिला, भूल भुलैया जान ॥५॥
खेल खिलाता खेलता, भूल भुलैया खेल।
धर्म जात शुचिबल हरै, करि द्वेष छल मेल ॥६॥
जिस कुल में पैदा हुए, जो हैं अपने खास।
तिन्हें तजो दुख दे दुखी, औरों की क्या आस ॥७॥
चाहो सत फल ऐक्यता, सींचो परहित गोड़।
अहित मतांतर जातकी, छेड़ छाड़ दो छोड़ ॥८॥
तब सब मत सब जात के, हो खुद प्रेमाधीन।
तुम्हरे योग वियोग में, होंगे सम जल मीन ॥९॥

उपदेश ३२

जाति वर्णांतर में ग्रांख मिचौली

हर जाति को वर्ण मानना, वर्ण ग्रौर जाति को एक मानना, वर्णों की उत्पत्ति ग्रपने शारीरिक गुण, कर्म या रंग से मानना, ग्रादम तथा मानव की एक जाति मानना; यह खेल ग्रांख मिचौली ग्रर्थात ग्रांखा मूंदी का भ्रम मात्र है !

सप्रमाण जाति वर्णांतर

हर जाति को वर्ण नहीं कह सकते, हर वर्ण को एक खास जाति कहते हैं. शास्त्रों ने जातियां केवल तोन प्रकार की मानी हैं ; दैवी, रौद्री तथा मानवी. जिनका वर्णन इस तरह पाया जाता है, कि प्रथम ब्रह्माजी ने सृष्टि के विस्तारणार्थ, सत्वगुण के संयम से देवऋषि ग्रादि उपजाये पर वे सब ग्रावागमन के भय से तप में मग्न हो गये.

तब ब्रह्माजी ने संतप्त हो रुद्र को उपजाया, पर जब रौद्री सन्तान समस्त भूमण्डल पर फैलकर काम, क्रोध, लोभ, ग्रहंकार, मद, मत्सर, हिंसा ग्रादि को ग्रधिकता से धर्मच्युत हो, ग्रनर्थ करने लगी.

तब स्वयंभू मनु नामक ब्रह्माजी ने ग्रत्यन्त सुविचार पूर्वक ग्रात्म संयम के मनन द्वारा, धर्मज्ञान के रक्षणार्थ, वर्णनीय चातुर्वर्णी जाति उपजाई जिस जाति ने ग्रपने गुण, ज्ञान, बल से पृथ्वी पर शान्ति स्थापित की तथा प्राकृतिक यम नियम के संयम द्वारा दिव्य ग्रध्यात्म विद्या की उन्नति की.

वही मनु से होने वाली मानव जाति, मात्र-वर्ण कही जा सकती है, क्यों कि उसमें प्राकृतिक वर्ण व्यवस्था है; किन्तु दैवी तथा रौद्री जाति को वर्ण नहीं कह सकते ; क्योंकि उनमें प्राकृतिक चातुर्वर्णी वर्ण व्यवस्था नहीं है.

सप्रमाण वर्ण विचार

वर्णों की उत्पत्ति हमारे शारीरिक गुण, कर्म तथा रंग के विचार से नहीं हुई; बरन स्वयं ब्रह्माजी के शारीरिक, मानसिक तथा ग्रध्यात्मिक गुण, कर्म तथा ज्ञान के संयम संस्कार द्वारा हुई है.

यदि हमारे शारीरिक गुण के विचार से वर्णोत्पति हुई होती, तो शास्त्रों ने दुर्वासा, अश्वस्थामा आदि ब्राह्मणों को तमोगुण की अधिकता के कारण शूद्र; और सात्विक विदुर को ब्राह्मण क्यों नहीं कहा ?

यदि हमारे शारीरिक कर्म के विचार से वर्णोत्पत्ति हुई होती, तो शास्त्रों ने क्षत्रियों के गुण कर्म से मंडित परशुराम तथा द्रोणाचार्य आदि को क्षत्री; और सात्विक प्रह्लाद आदि राक्षसों को ब्राह्मण क्यों नहीं कहा ?

यदि हमारे शारीरिक रंग के विचार से वर्णोत्पत्ति हुई होती, तो शास्त्रों ने श्री रामचन्द्रजी तथा भरतजी आदि क्षत्रियों को काले होने के कारण शूद्र; और लक्ष्मणजी तथा शत्रुघनजी को गोरे रंग के कारण ब्राह्मण क्यों नहीं कहा ?

यदि हमारे शारीरिक गुण कर्म तथा रंग के विचार से वर्णोत्पत्ति हुई होती, तो हमारे गोत्र, शाखा, सूत्र प्रवर क्यों कर जीवित रहते और हमारे वर्ण वंश की वंशावली का क्यों कर पता चलता ?

यदि आप विश्वामित्र का दृष्टांत देकर, क्षत्री से ब्राह्मण होने का दावा करें, तो यह भी बड़ीभूल है, वास्तविक में विश्वामित्र की उत्पत्ति ब्राह्मण दत्त अंश के गर्भज संस्कार द्वारा क्षत्रिया में हुई थी. यह गुप्त रहस्य महाभारत के अनुशासन पर्व के चौथे इतिहास में लिखा हुआ है ; पढ़ देखो ! जब यह बात वशिष्ट आदि को मालुम हुई; तब उन्होंने विश्वामित्र को ब्राह्मण जाना; न कि बनाया !

यदि कोई घोड़ा रंग चाल में गधे के समान या गधा घोड़े के समान हो, तो क्या उनकी प्राकृतिक जाति नष्ट हो जायेगी ? क्या गुण, कर्म तथा रंग के कारण गाय सुरह गाय एक हो सकती है ? क्या कुत्ते को सियार तथा भेड़िया कह सकते हैं ? क्या बिल्ली को चीता तथा व्याघ्र कह सकते हैं ?

सकारण वर्णोत्पत्ति

(वृ) का अर्थ संरक्षण करना और (ण) का अर्थ गुण, कर्म ज्ञान

है. इसलिये (वर्ण) का अर्थ हुआ-गुण, कर्म, ज्ञान का संरक्षक अर्थात् जो वर्णनीय जाति-प्राकृतिक गुण, कर्म, ज्ञान के संरक्षणार्थ, संयम द्वारा ब्रह्माजी ने उपजाई, उसे वर्ण कहते हैं.

ब्राह्मण

ब्रह्माजी ने मुखादि के संयम द्वारा जाना, कि नेत्र देखकर, कान सुनकर, नाक सूंघकर, जीभ चखकर तथा बुद्धि विचारकर अच्छे बुरे का निर्णय करती है, जिसका तथ्य मुख सबको कह सुनाता है, इसके बिना कभी किसी की वृद्धि नहीं होती, इसलिये सबकी वृद्धि के हेतु परचेता नामक दश पुत्रों को उपजा, उन्हें मुख संभूत विद्याओं से विभूषित कर, शर्मा की पदवी दी, कि वे परहित हेतु परीक्षापूर्वक वृद्धि के उपाय सुनें, सुनावें !

क्षत्रिय

फिर ब्रह्माजी ने भुजादि के संयम द्वारा जाना, कि उपरोक्त इंद्रियां चाहे जितना सुनें, सुनावें, तो भी हाथों के बिना, न भले की रक्षा कर सकते हैं; न बुरे को दण्ड दे सकते हैं और न दो लड़ते हुओं को छुड़ा सकते हैं; इसलिये सबके रक्षणार्थ भानु तथा सोम नामक दो क्षत्रियों को उपजा, उन्हें बाहू जन्य विद्याओं से विभूषित कर वर्मा की पदवी दी, कि वे भले बुरे के वर्म जान, न्यायपूर्वक भले की रक्षा तथा बुरे को दण्ड दें !

वैश्य

फिर ब्रह्माजी ने उरादि के संयम द्वारा जाना, कि सब इंद्रियां चाहे जितना कहें, रक्षैं या परिश्रम करें, तो भी पेट के बिना, सबका क्षणभर भी जीना कठिन है, अकेला पेट हो रसादि बना, शरीररूपी क्षेत्र को सींचता है, कर्षण कर्म द्वारा संतति उपजाता है, एक जगह का माल दूसरी जगह रखता या पहुंचाता है तथा गोरूपी इंद्रियों की रक्षा करता है, इसलिये सबके पोषण पालन के अर्थ, प्रजापति नामक वैश्य को उपजा, कृषि, व्यापार तथा गो आदि की रक्षा सिखा, उसे धर्मा की पदवी से विभूषित किया, जिस बल वह सब पदार्थों के धर्म जान, अपना धंधा करता हुआ, सबका भरणपोषण करे !

शूद्र

फिर ब्रह्माजी ने पादादि के संयम द्वारा जाना, कि सब अंगों के आधारभूत पैर ही हैं, क्योंकि इनके उठे, उठाये, चले, चलाये बिना, जग के सब कार्य श्मशान बन जाते हैं, इसलिये सब कामों के साधनार्थ, विश्वकर्मा और मायावी नामक दो शूद्र उपजाये, जिनसे पावन, अपावन दो वंश चले, उन्हें अनेक शिल्प, कला, उद्योग सिखा, कर्मा की पदवी से विभूषित किया, कि वे उक्त कर्मों द्वारा अपना धंधा चला, सबकी सहायता करें !

जिस तरह ब्राह्मण सबका शिक्षक, क्षत्री रक्षक, वैश्य पोषक है; उसी तरह शूद्र सबका तोषक है. क्योंकि इसके बिना सबकी शोभा, सजावट, लज्जा, मर्यादा, सुख, शांति मिट्टी में मिल जाती है.

वर्णगत जाति भेद का हेतु

जब तक चारों वर्णों की संख्या कम थी, तब तक हर एक वर्ण पर काम का बोझ अधिक था, पर ज्यों-ज्यों सन्तान बढ़ती गई, त्यों-त्यों पिता अपना काम अपने पुत्रों को बांटता गया, इससे दिन-प्रति-दिन कामों का बोझ घटता ही गया, यहां तक कि कोई मुख्य काम बांटने को बाकी न रहा, तब एक-एक काम के कई भाग करके बांटे जाने लगे, अन्त को अपने-अपने पिता का, कामकाज का सम्पूर्ण अधिकार, सब पुत्र पौत्रादिकों को, वंशपरम्परा के लिये मिल गया; इसलिये वे सब उस एक काम के करने और उस एक वंश में जन्मने के कारण, उस एक जाति के कहाये; इसी कारण हर वर्ण में अनेक जातियों का प्रादुर्भाव हुआ, पर वर्णभेद न हुआ; बल्कि चारों एकही पिता के पुत्र होने के कारण, परस्पर अत्यन्त सहानुभूति रखते थे; जब तक आचार-विचार शुद्ध बना रहा, तब तक ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों का खानपान आदि प्राय: एक था; पवित्र शूद्रों का जल तथा पक्का भोजन तो अभी तक कई ऊंची जातियां स्वीकारती हैं.

किन्तु जब अनुलोम, प्रतिलोम तथा अनाचार द्वारा कई जातियां उत्पन्न हो गई, तब आपही अन्य जातियों से खान, पान आदि का संबंध

छूट गया और इसीसे हर वर्ण में उत्तम, मध्यम, नीच, महानीच की सृष्टि हो गई; इससे उपरोक्त हानि तो हुई, पर एक बड़ा लाभ यह हुआ, कि जिन नीच, महानीच कर्मों को उत्तम, मध्यम जाति के नहीं स्वीकारते थे, उन कर्मों को ये प्रसन्नता से करने लग गये जिसके द्वारा सबका निर्वाह सुगमता से होने लग गया.

पर जब महाभारत के पश्चात् वर्णसंकरता का अनर्थकारी परिणाम द्वेषरूप में परिणत हो, बहुत हानि पहुंचाने लगा, तब इसकी रुकावट पर बहुत जोर दिया गया; पर बिल्कुल रोक न हुई.

चाहे कुछ भी हुआ, तो भी हम सब चारों वर्ण उन्हीं स्वयंभू मनु की सन्तान होने के कारण एकही घर के हैं !

क्योंकि

भूसत रूपा बीज मनु, वृक्ष वर्ण चौ शाख ।
तिनमें जात प्रशाख बहु, पत्र पुष्प फल लाख ।।१।।
तौभी हैं हम सोस भी, सतरूपा मनु जात ।
मानव मनुज मनुष्य ये, आर्य वर्ण विख्यात ।।२।।

इधर

विदेशी सभ्य जातियां खुद को बाबा आदम की संतान मानती हैं; उस दशा में वे आदम जात और हम मनु जात, दोनों एक जाति के क्योंकर हो सकते हैं ? सिवाय उनमें प्राकृतिक वर्ण व्यवस्था नहीं और हममें हैं; उस दशा में वे हम दोनों क्योंकर एक जाति के हो सकते हैं ? क्या प्राकृतिक वर्ण व्यवस्था से रहित जाति को कभी वर्ण कह सकते हैं ?

जरा सोचिये

वर्ण व्यवस्था चिर हम चार । उनमें नहिं अब करत विचार ।।१।।
चार वर्ण हम सब मनुजात । वे आदम के हैं तनुजात ।।२।।
याते वे हम जात न एक । तौलो वर्णजात को नेक ।।३।।

और

चाहे कोई अरबस्थान के शिवालय का दृष्टान्त दे, हमारे परमपूज्य महादेव को और उनके परमपूज्य बाबा आदम को एकही समझें; तो भी

हम उन स्वयंभू मनु नामक ब्रह्माजी की सन्तान और वे महादेव की सन्तान होने के कारण, दोनों क्योंकर एक जाति के हो सकते हैं ?

हम केवल इसी एक विस्त्तीर्ण देश के रहने वाले हैं, जो आर्यावर्त, भारतवर्ष; भरतखण्ड, कर्मभूमि, वीरभूमि, पुण्यभूमि, तपोभूमि, स्वर्ण-भूमि, ज्ञानभूमि, हिन्दुस्तान आदि नामों से पुकारा जाता है; जहां जन्मने की इच्छा देवता भी करते हैं; जो सम्पूर्ण जगत का अजायबघर (म्यूजियम) है; उसे छोड़ हम विदेशी क्योंकर कहे जा सकते हैं ?

हमारे वेद-शास्त्र पुराण आदि, अनन्तकाल से हमारे विषय में और हमारे देश के विषय में अनेक प्रकार के परम हितकारी लौकिक तथा पारलौकिक दिव्य उपदेश दे रहे हैं; यहां तक कि प्रेमाविवश माता के समान स्मृतियां हमें विदेश जाने तक से रोकती हैं; उस दशा में हम विदेशी क्योंकर कहे जा सकते हैं ?

देखो ! इसी तरह विदेशी हमसे पृथक, अपनी-अपनी जन्मभूमि की सेवा तथा प्रशंसा करते हुए, अपने विभिन्न देश में रहते हैं और अपने ही देश तथा जाति का दृढ़ाभिमान रखते हैं; क्या हम उनसे शिक्षा नहीं ग्रहण कर सकते ?

व्यवस्था

ब्राह्मण जिस जाति की विद्या उसी जाति को सिखाकर अपना निर्वाह करते थे, क्षत्री सबकी रक्षा करके अपना निर्वाह करते थे, वैश्य सबको खान पान की सामग्री दे, अपना निर्वाह करते थे, शूद्र सबको अन्य व्यवहारोपयोगी शिल्पजन्य सामग्री दे, अपना निर्वाह करते थे.

हर घर के लोग अपने वृद्ध की सम्मति से काम करते थे. हर जात के लोग, अपने मुख्य पंचों की सम्मति से काम करते थे, सब जात के पंच, ग्रामाधीश की सम्मति से काम करते थे, ग्रामाधीश ब्राह्मण की सम्मति से काम करते थे, सब ब्राह्मण अपने वेदज्ञ तथा ब्रह्मनिष्ट की सम्मति से काम करते थे.

घर के लोग अपने गृहपति की सहायता या रक्षा करते थे, हर गृहपति जाति व पंच की सहायता या रक्षा करते थे, हर जात वाले

ग्रामाधीश की सहायता या रक्षा करते थे, हर ग्राम वाले राज्य की सहायता या रक्षा करते थे, अर्थात् परस्पर प्रेम रख, एक-दूसरे की सहायता या रक्षा करते हुए, अपना कर्त्तव्य समझ, हरएक महत्कार्य को सब मिल-जुल, एक तन, मन, वचन, क्रम से किया करते थे.

भारतवर्ष छप्पन देशों में विभक्त था, हर देश प्रदेशों तथा प्रदेश-प्रांत आदि में विभक्त थे, सम्पूर्ण भरतखंड का एक मात्र चक्रवर्ती राजा होता था, उसके अनुवर्ति छप्पन देश के राजा होते थे, उन राजाओं के अनुवर्ति उनके मांडलिक राजा होते थे, उन मांडलिकों के अनुवर्ति छोटे-छोटे राजा या सरदार होते थे, जिनके अनुवर्ति टांकेदार या जागीरदार होते थे, इनके अनुवर्ति ग्रामाधीश होते थे, और ग्रामाधीशों के अनुवर्ति उनके हिस्सेदार, माफीदार आदि होते थे, सबको अपनी शक्ति के अनुसार सेना आदि रखनी पड़ती थी.

जब कोई विदेशी इस देश पर आक्रमण करता था, तो उसे पहिले चक्रवर्ती की बड़ी भारी सेना से युद्ध करना पड़ता था, तब तक अनुवर्ति राजाओं की बड़ी-बड़ी सहायक सेनाएं आ पहुंचती थी, उनसे अलग-अलग लड़ना पड़ता था, तब तक मांडलिकों की कई सहायक सेनाएं आ पहुंचती थी, उनसे अलग-अलग लड़ना पड़ता था, तब तक छोटे-छोटे राजाओं की अनेक सहायक सेनाएं आ पहुंचती थी, उनसे अलग-अलग लड़ना कठिन हो जाता था, यहां तक कि धीरे-धीरे टांकेदार, जागीरदार, ग्रामाधीश, हिस्सेदारों आदि की टिड्डी दल के समान अनेक सहायक सेनाएं आ पहुंचने पर आक्रमणकारी को उल्टा अपना पिण्ड छुड़ाना महा कठिन हो जाता था, अन्त को शरण होना पड़ता था, या जान, माल, बल, यश खो, मिट्टी में मिल जाना पड़ता था। इसी कारण हिन्दुस्तान में विदेशियों का पैर जमना असम्भव था; पर जब अहंता तथा स्वार्थपरता ने परस्पर के प्रेम तथा परहित को नसा दिया, तब फूट ने सबको नष्ट भ्रष्ट कर दिया.

विचारवान कहते हैं, कि यदि इस देश में एक ही राजा होता, तो कदापि ऐसा न होता; पर कोई-कोई इसे ठीक नहीं समझते; क्योंकि ऐसा होने से एक राजा के पराजित होते ही समस्त देशाधिकार सहित

सब भू, धन आदि भी जेता के हाथ में चला जाता है; पर जिस देश का राज्याधिकार, भू, धन आदि परस्पर बटा हुआ होता है, तो उस देश का समस्त अधिकार भू, धन आदि जेता के हाथ में एकदम जाना असम्भव है; इसी कारण सहस्त्रों वर्षों के लगातार आक्रमणों के होने पर भी भारतवर्ष का एक त्रितियांश भाग अभी तक देशी राजाओं, जागीरदारों, माफीदारों, टांकेदारों आदि के हाथ में हैं; हमारी गवर्नमेंट का हम सब पर बड़ा उपकार है, जो सब प्रकार समर्थ होकर भी, न्यायपूर्वक, हम सरीखे असमर्थों की स्मृति रक्षा कर रही है !!!

जिस तरह पहिले क्षत्रियों ने अपने पराक्रम से जगत को विस्मित कर; शूरवीर सिंह का पद पाया, उसी तरह ब्राह्मणों ने अपनी विद्याशक्ति से समग्र जगत को चकित कर, गुरु का पद पाया, व्यापारियों ने अपने व्यवसाय के विस्तार से श्रेष्ठी साहूकार तथा महाजन का पद पाया और शूद्रों ने अपने शिल्प के चमत्कार से, जगत को मोहित तथा अत्यन्त आश्चर्यान्वित कर, गुरुत्व पाया था; इसीसे अभी भी गुणी, कारीगर, मिस्त्री आदि नाम से पुकारे जाते हैं; पर आपस की फूट और बार-बार के आक्रमणों ने सब को अस्त व्यस्त कर दिया; तो भी अभी तक चारों वर्णों में अपने-अपने पूर्वजों के संस्कार बीज रूप से स्थित हैं !

वर्णगुण

मनुष्य एक है, पर उसे आवश्यकताएं अनेक हैं; इसलिये वह अकेला उन सबकी पूर्ति क्योंकर कर सकता है ? देखो ! चीटियों तथा मधुमक्खियों आदि में भी व्यवस्था पाई जाती है, जिसके अनुसार तद्गत भिन्न-भिन्न समूह, अपना भिन्न-भिन्न काम करता हुआ, सम्मिलित एक महत्कार्य कर, परस्पर सबका हित साधता है, जिस तरह अपने देह का भिन्न-भिन्न अंग, अपना भिन्न-भिन्न कार्य करता हुआ, सम्पूर्ण देह सहित अपना भी हित साधन करता है; उसी तरह हमारा भिन्न-भिन्न वर्ण, हमारा भिन्न-भिन्न कार्य करता हुआ, देश सहित स्वत: का भी मंगल ही करता है !!!

दोहा

वर्ण व्यवस्था होत ना, जो काजन वत ठीक ।
तो जग के सब काज ये, व्है कस सकते नीक ॥३॥

स्वजाति में लग्न

यह सुन हमारे प्रिय बाबू बोल उठे; "जबकि वर्ण मात्र चार हैं, केवल कामकाज के कारण, हर एक वर्ण अनेक जातियों में विभक्त हो गया है, उस दशा में उस वर्ण के एक जाति वाले, उसी वर्ण के दूसरे जाति वालों से क्योंकर ब्याह आदि का सम्बन्ध नहीं रखते ?"

इतने में एक कुम्हार ने एक कोरिन से लग्न कर ही डाला, दो-चार दिन तो खुशी-खुशी से बीते, पर पीछे उन दोनों में रहस्यपूर्ण विवाद चल पड़ा.

कुम्हार–प्यारी ! तुम भी कुछ पात्र, खिलौने आदि बनाया करो या मुझे सहायता दिया करो, जिससे हमारा निर्वाह अच्छी तरह चल सके !

कोरिन–स्वामी ! चाहे तुम ख़ुश हो, चाहे नाराज हो, पर मुझसे यह गलीज़ काम कदापि न होगा; क्योंकि ऐसे काम को न कभी मैंने किया, न मेरे बाप ने !

कुम्हार–तो फिर हम दोनों का तथा अपने चार बाल बच्चों का खर्च किस तरह चल सकेगा ?

कोरिन–तुम तो इस गधे, सामान आदि को बेच, एक कपड़े बुनने की कल, सूत, रंग और मसाला लादो ! तब मैं कपड़ा बुना करूंगी और तुम्हें सिखाया करूंगी, जिसके द्वारा हम सबका अच्छी तरह गुजर चलेगा !

कुम्हार–मैं अपना अनुभविक बिन पूंजी का धंधा तथा अपना परम्परा का बना बनाया काम छोड़कर इस बिन जाने काम के झगड़े में क्यों पड़ूं ?

कोरिन–तुम न पड़ो, तो मैं क्यों पड़ूं ?

बस !

फिर क्या पूछो ! हर रोज उन दोनों में तू ं तां, जूतम फक्का होने लगा ! जिससे आपस का प्रेम घट गया, परस्पर की सहायता न होने से रोजगार बिगड़ गया, आमदनी रुक गई, खर्च बढ़ गया, जिससे धन का अभाव हो गया, सबको भूखो मरना पड़ा, उधर कोरिन भाग गई, इधर बच्चे घर का काम न सीख पाये, इसलिये उन्हें औरों की नौकरी या भीख से गुजर करना पड़ा इत्यादि.

अर्थात् जब स्त्री पुरुष दोनों एकही काम के जानने वाले होते हैं, तब परस्पर की सहायता से वह काम अच्छी तरह उन्नति कर सकता है, जिसके द्वारा धन, गुण, ज्ञान, मान, यश, सुख आदि की वृद्धि होती है, बच्चे भी अनायास उस काम को सीखकर, सहायता देने लग जाते हैं, नवीन आविष्कार की शक्ति प्राप्त होती है, समय, धन तथा परिश्रम की बचत होकर काम अधिक हो सकता है, जिससे निर्वाह भी अच्छी तरह चल सकता है, इत्यादि लाभ होते हैं, जरा शिल्प का उपदेश पढ़ देखो ! इसीलिये स्वजाति की कन्या, स्वजाति के वर को दी जाती है ! तिस पर हम क्यों संशय करते हैं ?

क्योंकि हमें आंख मिचौली के खेल से विभ्रम हो गया है ! तभी तो हम अपने आपको भूल गये हैं ! धर्म, कर्म, गुण, ज्ञान, वर्ण, जाति तथा वंशज संस्कार आदि को खोकर अंध कूप में गिरना चाहते हैं, इसीलिये यथार्थ को छोड़कर, उन्मत की नाई, हम देखते कुछ और हैं ! करते कुछ और हैं ! बकते कुछ और हैं ! यह खेल आंखा मूंदी का भ्रम नहीं तो क्या है ? जरा सब हिलमिल, अब ज्ञान दृष्टि से देख, बुद्धि से विचारो ! प्रकृति से तौल, सत्य को धारो ! आत्म संयम से जांच, जीभ से उचारो !!!

सार

सर्व विनाशक ऊंघ तजो तुम, चेतहुं आंख मिचौली ते ।। टेक ।।

क्योंकर जातहि वर्ण बतावत, भो भ्रम आंख मिचौली ते ।
वर्णमात्र क्यों रंग कर्म गुण, सो कर आंख मुदौली ते ।।
क्यों द्विज वर्ण अवर्ण बनावत, संकरदोष सिचौली ते ।
क्यों सब जातहि एकजु मानत, भोजन भ्रष्ट चटौली ते ।।१।।

क्यों खिचड़ी मत जात विवर्णत, स्वारथ कूट रचौली ते ।
क्यों मत धर्महि एक सुझावत, योनिज पक्ष खिचौली ते ।।
झूठहि क्यों बिसवास दिलावत, रोचक फांस फसौली ते ।
लाभ बढ़ो ममशक्ति सदा तुम, नीच रहो पद मौली ते ।।२।।

दोहा

वर्ण हेतु कुछ और है, जात हेतु कुछ और ।
वर्ण नहीं सब जात में, जात अहै सब ठौर ।।१।।
केवल मानव जात में, वर्ण भेद हैं चार ।
एक-एक फिर वर्ण में, जाती विविध प्रकार ।।२।।
देश काल रति कर्म गुण, लोम विलोम विकार ।
संसकार के कारणे, जाती भयी अपार ।।३।।
दैवी रौद्री आदमी, सके न वर्ण कहाय ।
चारों छोड़ी पांचवां, वर्ण कहां से आय ।।४।।
वर्ण-वर्ण में जात है, जात-जात में जात ।
प्रती जात में वर्ण ना, मनुज वर्ण विख्यात ।।५।।
रंग न कारण वर्ण को, नहीं कर्म गुण और ।
मात्र वही मनु मन मनन, संयम फल सिर मौर ।।६।।
रंग कर्म गुण सो यदा, होता वर्ण विचार ।
राम परशुधर विदुर को, कहते क्या उस बार ।।७।।

चौपाया

विप्र न गौर लखन बलराम । शूद्र न काले कश्यप राम ।।१।।
विप्र न विदुर सतोगुण धाम । नाहिन छत्री परशूराम ।।२।।

ना प्रहलाद विभीषण विप्र। दुर्वासहि को कहै अविप्र ।।३।।
मानव जात वर्ण कहलात। दैवी रौद्री आदम जात ।।४।।
एक वर्ण में जेती जात। वो सब एक वर्ण कहलात ।।५।।
वर्ण रहित है जेती जात। वो कबहुं ना वर्ण कहात ।।६।।

उपदेश 33

वर्ण धर्मांतर में अंधाधुंधी

आजकल क्या वर्ण में, क्या आश्रम में, क्या तद्गत धर्म में अंधाधुंधी मची हुई है ! कोई अवर्ण को वर्ण बनाता है, कोई वर्ण को अवर्ण बनाता है, कोई धर्म को अधर्म बताता है, कोई अधर्म को धर्म बताता है, कोई धर्मी को अधर्मी कहता है, कोई अधर्मी को धर्मी कहता है; यह अंधाधुंधी नहीं तो क्या है ?

धर्म विचार

स्वभाव ही से चराचर को चिरधार ने तथा सबमें व्यापने वाले उस ईश्वरी नियम को धर्म कहते हैं, जो स्वभाव ही से प्राणिमात्र का हितकारी है; अर्थात् सबका, सर्वत्र, सदा भला करने वाला, चिर सहकारी धर्म है. इसी कारण स्वभाव ही से हर एक प्राणी अपनी भलाई चाहता है, पर उसकी भलाई उसी दशा में हो सकती है, जब वह स्वयं भला काम करे, किन्तु हर भले काम की सिद्धि तभी हो सकती है, जब वह उसे कुदरती नियम के अनुसार करे.

पर हर एक काम के कुदरती नियम विभिन्न हैं, तिसपर हरएक मनुष्य जगत के हरएक काम को स्वयं आप नहीं कर सकता और न हरएक मनुष्य को जगत के सब कामों की आवश्यकता है.

इसलिये जिसे जिस खास काम की आवश्यकता बनी रहती है, उसे उसी काम सम्बन्धी कुदरती नियम के अनुसार चलना पड़ता है; वही उस पुरुष का विशेष धर्म है.

किन्तु जिस काम की सबको समान आवश्यकता पड़ती है; इसलिये

सबको उसी काम सम्बन्धि कुदरती नियम के अनुसार चलना पड़ता है; वही सबका सामान्य धर्म है.

इसी विचार से सकल जाति, वर्ण, आश्रम तथा मनुष्य मात्र का सामान्य धर्म समान और विशेष धर्म विभिन्न है; पर कुदरती नियम के विचार से सामान्य धर्म तथा विशेष धर्म एक ही बात है, किन्तु उपयोग के विचार से प्रथक है. इसे बिना समझे, किसी के बहकाये, बहकना या छुड़ाये, छोड़ना या छुड़ाना अथवा परस्पर ऐंचातानी करना ; अंधाधुंधी नहीं तो क्या है ?

वर्णधर्म

स्वयंभू मनुनामक ब्रह्माजी ने ब्राह्मण को सबकी वृद्धि के लिये उपजा, शर्मा की पदवी देकर आज्ञा दी है, कि वह अपने पठन, पाठन, यजन, याजन से सबका हित करता हुआ, निर्वाह चलावे; यदि किसी कारण, इस भिक्षुकी द्वारा निर्वाह न चल सके; तो वह क्रम से क्षत्री, वैश्य तथा शुद्र के किसी पवित्र कर्म द्वारा अपना निर्वाह चला, ब्रह्मत्व की रक्षा करे !

इसी तरह क्षत्री को सबकी रक्षा के लिये उपजा, वर्मा की पदवी देकर आज्ञा दी है, कि वह पृथ्वी से उपजी वस्तु का छटा अंश ले, अपना निर्वाह चलावे; यदि किसी कारण निर्वाह न चल सके, तो वह क्रम से वैश्य तथा शूद्र के किसी पवित्र कर्म द्वारा अपना निर्वाह चला, क्षत्रियत्व की रक्षा करे ! पर ब्राह्मण की वृत्ति को भूलकर भी न स्वीकारे !

इसी तरह वैश्य को सबके भरणपोषणार्थ उपजा, धर्मा की पदवी देकर आज्ञा दी, कि कृषि, व्यापार तथा गोरक्ष द्वारा अपना निर्वाह चलावे; यदि किसी कारण निर्वाह न चल सके, तो वह शूद्र के किसी पवित्र कर्म से अपना निर्वाह चला, वैश्यत्व की रक्षा करे ! पर भूलकर भी ब्राह्मण क्षत्री की वृत्ति को नहीं स्वीकार सकता !

इसी तरह शूद्र को सबकी सहायता के लिये उपजा, कर्मा की पदवी देकर आज्ञा दी, कि वह केवल अपने शिल्प कर्म के उद्योग तथा सहायता

से ही अपना निर्वाह चलावे ! पर वह भूलकर भी ब्राह्मण क्षत्री तथा वैश्य की वृत्ति न स्वीकारे !

इसके विपरीत चलने वाले दण्ड तथा अधोगति के भागी होंगे ! ! !

निर्णय

(१) क्योंकि जब किसी के पास देने की सामग्री न हो, या उसे देने की इच्छा न हो, या दाता सुपात्र न हो, तो ब्राह्मण को उचित तथा पवित्र भिक्षा क्योंकर प्राप्त हो सकती है, इसी कारण ब्राह्मण की वृत्ति अति संकुचित है, सिवाय वंशवृद्धि, महर्घता, अशांति, अवर्षण, धर्मग्लानि आदि के होने पर निजवृत्ति द्वारा ब्राह्मण का निर्वाह होना, असाध्य तथा असम्भव है, इसलिये ब्राह्मण अपनी उन पवित्र विद्याओं द्वारा (जो क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों को सिखाता था) स्वतः लाभ उठा सकता है, अर्थात् क्षत्रियों की नीति तथा धनुर्विद्या से, वैश्यों की गोरक्षा तथा वैद्यक विद्या आदि से, और शूद्रों की चित्रकारी आदि किसी पवित्र कारीगरी से अपना निर्वाह चलाकर ब्रह्मत्व की रक्षा कर सकता है.

(२) पृथ्वी सम्बन्धी उपज के छटे भाग का अधिकारी क्षत्री है, इसलिये उसकी वृत्ति, ब्राह्मण की वृत्ति से विस्तृत है, किन्तु अवर्षण, अशांति, राज्य भंग, वंशवृद्धि आदि के कारण, निजवृत्ति द्वारा क्षत्री का निर्वाह होना असम्भव है; उस दशा में यदि वह ब्राह्मण की वृत्ति स्वीकार ले, तो उसे और भी, बड़ी हीन दीन दशा का दुःख भोगना पड़ेगा, क्योंकि जिस दशा में भिक्षा के अभाव में ब्राह्मण को भी, अन्य कर्म द्वारा निर्वाह चलाना पड़ता है, उस दशा में वृहत् क्षत्रीवंश क्यों कर जीवित रह सकेगा ? जिस दशा में उसे स्वतः के जीवन रक्षा की चिंता लगी रहेगी; उस दशा में वह औरों की रक्षा किस तरह कर सकेगा ? तो फिर उसे पुरुष सिंह क्षत्री कौन कहेगा ? किस बल वह अपनी गिरी दशा से पुनः उठ सकेगा ? इसी कारण उसे ब्राह्मण की वृति स्वीकारने का

अधिकार नहीं; पर वैश्य तथा शूद्र के किसी पवित्र कर्म का अधिकार है, क्योंकि वह उसके द्वारा प्राण, मान, यश, गुण, लाज, काज, धन, बल, वंश, मर्यादा तथा अपने क्षत्रियत्व का भी संरक्षण कर सकता है ! किन्तु ब्राह्मण की वृत्ति से कदापि नहीं ! ! !

(३) वैश्य को अपनी वृत्ति चलाने के लिये गोरक्षा, कृषि तथा निपज सम्बन्धी वस्तुओं के व्यापार का अधिकार है, जिसके द्वारा समग्र संसार का भरण पोषण हो रहा है, इसकी वृत्ति सबके जीवन का आधार तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी दाता है, इसके बिना सकल संसार असार है, इसी विचार से वैश्य की वृत्ति महद्विस्तीर्ण है, कदाचित् धनाभाव, अवर्षण तथा किसी विघ्न के कारण उसकी वृत्तिका लोप हो जाय या निर्वाह न हो सके; उस दशा में यदि वह ब्राह्मण या क्षत्री की संकुचित वृत्ति को स्वीकार ले, तो उसके वंश की अवश्य अधोगति या नास्ति हो जावेगी और न वह धर्मा अपने वैश्यत्व की रक्षा कर सकेगा; क्योंकि जिस दशा में जिस वृत्ति द्वारा सब ब्राह्मण तथा क्षत्रियों का निर्वाह होना ही अशक्य है, उस दशा में उस वृत्ति द्वारा एक बड़े तीसरे समूह का निर्वाह होना क्यों कर शक्य है; इसलिये उसे ब्राह्मण या क्षत्री की वृत्ति का अधिकार नहीं, पर शूद्र की कोई पवित्र वृत्ति स्वीकार लेने का अधिकार है ! जिसके द्वारा वैश्य अपने प्राण, मान, धर्म, वंश तथा वैश्यत्व की रक्षा कर सकता है ! अन्य से नहीं ! ! !

(४) शूद्र को निज वृत्ति त्यागने तथा पर वृत्ति स्वीकारने का अधिकार नहीं ! क्योंकि शूद्र की वृत्ति इतनी विस्तीर्ण है, कि जिसका आदि तो है ! किन्तु अन्त नहीं ! ! उसके लिये दशों दिशाओं का अत्यन्त विस्तीर्ण मैदान खुला पड़ा है ! ! !

क्या आकर्षण शक्ति से, क्या विद्युत शक्ति से, क्या वाष्प से, क्या पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश तथा सूर्य, चन्द्र की रश्मियों से, वह अपना नित नया शिल्प का विस्तार कर, अपनी वृत्ति सुखपूर्वक चला सकता है ! अकेली इस पृथ्वी पर ही, अनन्त खानियां, अनन्त

वनस्पतियां तथा अनन्त पदार्थ भरे पड़े हैं, जिनमें से एक-एक पदार्थ के ही अनेक-अनेक प्रकार के कारीगरी के काम बन सकते हैं ! यहां तक कि वह अपने शिल्प के उद्यम तथा कलाकौशल्य से जगत को चकितकर अपना निर्वाह आनन्द के साथ कर सकता है ! उसे तीनों काल में भी वृत्ति संकोच का भय नहीं ! ! केवल विचारपूर्वक विज्ञान के सहारे उद्योग करने की आवश्यकता मात्र है ! ! !

जिस तरह सम्पूर्ण शरीर के आधार मात्र पद हैं, उसी तरह सब वर्णों की आधारभूत, एकमात्र, शूद्र की वृत्ति है ! जिस तरह सम्पूर्ण शरीर को ले चलने वाले पद हैं, उसी तरह सब वर्णों का निर्वाह चलानेवाली, एकमात्र, शूद्र की वृत्ति है ! अर्थात् शूद्र के बिना, सब लोग, पदहीन पंगू के समान असमर्थ हो जाते हैं !

यदि वह ब्राह्मणों के लिये यज्ञपात्र आदि न बना दे ! क्षत्रियों के लिये अस्त्र शस्त्र आदि न बना दे ! वैश्य के लिये, हल, बखर आदि यंत्र न बना दे ! या सबके लिये वस्त्र, आभूषण, कूप, तड़ाग, गृह, मंदिर आदि न बना दे ! तो सबका निर्वाह किस तरह चल सकेगा ! ! इस लिये ऐसी विस्तीर्ण वृत्ति को त्यागने वाला शूद्र, उस चर्मकार के पुत्र के समान, अपने वर्णाधिकार सहित, अपने अस्तित्व को खो बैठता है ! ! !

हे प्यारे सज्जनों ! जरा अब तो अपना अंधाधुंधी का चश्मा उतार, देखो ! कि सबकी अधोगति का हेतु कौन है ? क्या वर्णाधिकार है ? कि हम हैं ! क्या हमारा अंधाधुंधी का खेल है ? या चश्मा ! ! !

दोहा

धर्म सनातन पथ गहो, वर्ण धर्म दृढ़ धार ।
तब जगकारज सुगम सब, खुलै वृद्धि को द्वार ।।१।।
हित में सबके धर्म इक, निज निज, निज के हेत ।
भेद कर्म गुण वर्ण हित, एक सनातन खेत ।।२।।
इंद्री निज निज काज सो, स्वयं पलै सह अंग ।
वर्ण धर्म सो हम पलैं, सभी देश वर ढंग ।।३।।

नीम कीट पल नीम में, बट को बट के मांहि ।
वर्ण धर्म पल वर्ण में, बदलत ही नस जांहि ।।४।।
ब्रह्माज्ञा जसतस करो, अंधाधुंधी त्याग ।
हेत परस्पर दृढ़ धरो, तभी खुलेगो भाग ।।५।।

उपदेश ३४

वर्णाश्रमांतर में अन्धेर

प्र०— वर्णाश्रम में कौनसी अन्धेर घुस गई है ?

उ०— देखिये ! कोई अनाश्रमी को आश्रमी बना रहे हैं ! कोई आश्रमी को अनाश्रमी बना रहे हैं ! कोई चारों आश्रमों को चारों वर्णों का धर्म समझ रहे हैं ! कोई गृहस्थाश्रम को छोड़; शेष आश्रमों को वर्ण जाति से प्रथक समझ रहे हैं ! कोई गृहस्थाश्रम की निंदा तथा शेष आश्रमों की कीर्ति गा रहे हैं ! कोई वर्ण और आश्रम से न्यारी खिचड़ी पका रहे हैं ! कोई लोक दिखाऊ वेष तथा आडम्बर करना ही आश्रम का धर्म समझ रहे हैं ! कोई काम-काज छोड़, आलसी बन, मुफ्त का माल उड़ाना तथा ऐयाशी करना ही आश्रम का धर्म समझ रहे हैं ! कोई नक्कालों के समान, कोई भांडों के समान, कोई नटों के समान, बगला भगत बनना ही आश्रम का धर्म समझ रहे हैं ! कोई सबकी एक जाति करना ही आश्रम का धर्म समझ रहे हैं ! कोई मंत्र, कोई यंत्र, कोई तंत्र, कोई जडंत, कोई गडंत, कोई हाजीरात, कोई रसायन, कोई मारण, कोई जारण, कोई मोहन, कोई बशीकरण, कोई उच्चाटन, कोई स्थंभन, कोई पुत्रदान, कोई ब्रह्मदर्शन, कोई रिद्धि-सिद्धि आदि का लोभ दिखा, ठगाई करना ही आश्रम या अपना धर्म समझ रहे हैं ! कोई मद्यमांस, कोई गांजा तम्बाखू, कोई चरस मदत, कोई अफीम कोकेन, कोई विषभंग आदि व्यसन करना ही आश्रमका तथा अपना धर्म समझ रहे हैं! कोई वर्णसंकरी औलाद उपजाना ही आश्रम का या अपना धर्म समझ रहे हैं !

कहांतक कहें ! सभी भले, बुरे, चोर, लुटेरे, जुंआरी, व्यभिचारी, लुच्चे-गुंडे, जातकुजात, वंचक, धूर्त्त, वर्णसंकर आदि नाममात्र के लिये गृहस्थाश्रम को छोड़, नामधारी, वेषधारी, ब्रह्मचारी, वान-प्रस्थ तथा सन्यासी बने फिरते हैं ! या कपट मुनि के समान बड़े त्यागी, बैरागी, गोसांई, साधू, महात्मा आदि बन, अपनी कल्पित गुणगरिमा दर्शाते हुए, भोले तथा मूर्खों को ठगते फिरते हैं या उन्हें भी अपने समान बना लेते हैं ! यही सब महात्मा अपने हाथों से, अपने ही वर्णाश्रम को नसा, पाताल भेज रहे हैं ! तो औरों को क्या कहें ! यह अन्धेर नहीं तो क्या है ? बल्कि बड़ी भारी लूट मचा दी है !!!

प्र०– किस तरह ?

उ०– देखिये ! कोई द्वेष से, कोई छल से, कोई मेल से वर्णों को बहका, उनकी प्राकृतिक जाति, पवित्रता, शक्ति तथा धर्म को नसा, अपने अनुयाई बना रहे हैं ! यह लूट नहीं तो क्या है ? यदि इसी तरह लूट मची रही ! तो चारों वर्णों की क्या दशा होगी ?

प्र०– छली लोग किस तरह मेल मिलाप कर लेते हैं ?

उ०– किसी तरह विश्वास उपजाकर.

प्र०– वे किस तरह विश्वास उपजाते हैं ?

उ०– जो अपनी या अपने मत की बहुत महिमा सुनाकर या कुछ लालच दे, या कोई चमत्कार दिखा, मिथ्या विश्वास उपजाते हैं; वे तीसरे नम्बर के छली हैं ! जो हमारी तथा हमारे धर्म की बहुत बड़ाई करते हुए, साथही कुछ धर्माभास रूपी अकर्त्तव्य का उपदेश देकर, मिथ्या विश्वास उपजाते हैं; दूसरे नम्बर के छली हैं !! जो निज मत या निज जाति की निन्दा करते हुए तथा हमारे धर्म की कीर्ति करते हुए, हमारी जाति या हमारे धर्म पर बनावटी श्रद्धा उपजा, अनुयाई बन, हमें मिथ्या विश्वास उपजाते हैं और इस चाल से हमें मुठ्ठी में कर लेते हैं; वे अव्वल नम्बर के छली हैं !!!

प्र०– फिर वे क्या करते हैं ?

उ०– फिर वे हममें मिल, कुदरती नियम के विरुद्ध चला, हमारी प्राकृतिक जाति, धर्म पवित्रता, शक्ति, धन तथा सर्वस्व अपहरण कर लेते हैं; इसीसे हमारी अधोगति हो रही है !

आश्रम

प्र०– तो फिर आश्रम किसे कहते हैं ?

उ०– आश्रम का अर्थ श्रम की सीमा है, अर्थात् ब्रह्माजी ने समस्त लौकिक तथा पारलौकित कर्मों को सुखपूर्वक सम्पादनार्थ, जो परिश्रम करने की मर्यादा बांध दी है, उसे आश्रम कहते हैं !

ब्रह्मचर्याश्रम

प्र०– ब्रह्मचर्य तथा ब्रह्मचर्याश्रम की आवश्यकता ?

उ०– स्वत: की पुष्टि, तुष्टि, शक्ति, बुद्धि, आयु, नीरोगता, संतति, कांति आदि की बृद्धि के अर्थ, सबको ब्रह्मचर्य की अत्यन्त आवश्यकता है ! पर किसी वेष या आडंबर से ब्रह्मचर्य का रक्षण नहीं हो सकता और न ब्रह्मचारी कहा जा सकता है ! ! बरन वीर्य रक्षा पूर्वक विद्या प्राप्त करना ही ब्रह्मचारी का लक्षण और कर्त्तव्य है ! ! !

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये, पहिले जिन-जिन स्थानों में ब्रह्मचर्य पर लक्ष रखकर, विद्याभ्यास कराया जाता था, उन्हें ब्रह्मचर्याश्रम कहते थे ! अब वैसे आश्रम नहीं है, पर अभी तक उनका नाटक खेला जाता है; देखो ! मौजी बन्धन के वक्त, सिखाया हुआ लड़का, कौतुक वश (मैं काशी पढ़ने अवश्य जाऊंगा) कहकर भागता है ! ! और मामा उसे पकड़ लेता है ! ! !

खैर ! उन विद्यापीठों में दूर दूर से आए हुए, विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य पूर्वक २५-३६-४८ वर्ष तक रहकर सब विद्या पढ़ना पड़ता था; इसलिये वहां ब्राह्मणों के लड़के अधिक, क्षत्रियों के कम तथा वैश्य के बहुत कम जाया करते थे और शूद्र के लड़के कतई जा न सकते थे.

प्र०— ब्रह्मचर्याश्रम में ब्राह्मण के लड़के अधिक क्यों जाया करते थे ?

उ०— सबके हित के लिये; क्योंकि मनुष्य का निर्वाह तो केवल एक ही विद्या या हुनर से अच्छी तरह चल सकता है, परन्तु सबकी वृद्धि के लिये, ब्राह्मण को पठन, पाठन, यजन, याजन, करना पड़ता था और अपने दिव्य उपदेशों द्वारा सबको लाभ पहुंचाना पड़ता था; यही ब्राह्मण का कर्त्तव्य है.

प्र०— अनेक विद्या जानने वाले ब्राह्मण ने भिक्षा क्यों कर स्वीकारी ?

उ०— स्वार्थ लोलुपता से बचने के लिये; क्योंकि जो स्वार्थांध या विषयांध होते हैं, उन्हें औरों को मुफ्त पढ़ाने, उपदेश देने तथा नवीन-नवीन विद्याओं का आविष्कार करने के लिये, सोचने विचारने तक का अवकाश नहीं मिलता; यहां तक कि वे लोग बिना स्वार्थ के, अन्य से बात तक नहीं करते; इस दोष से बचने के लिये, ब्राह्मण ने केवल सुपात्र दत्त भिक्षा के आधार पर रहकर, सबका हित करना स्वीकारा है.

प्र०— सबके लड़के ब्रह्मचर्याश्रम में क्यों नहीं जाते थे ?

उ०— जिन्हें कांक्षित विद्या घरही बैठे मिल जाती थी, उन्हें ब्रह्मचर्याश्रमों में जाने की आवश्यकता न पड़ती थी; क्योंकि विद्यापीठों से लौटे हुए विद्वान अपने-अपने ग्रामों में चटशालाएं खोल, भिक्षान्न से निर्वाह कर, जिस जात की विद्या उस जात के बालकों को धर्मार्थ पढ़ाया करते थे !

प्र०— क्या प्रमाण ?

उ०— अभी तक यह प्रथा अनेक ग्रामों में देखी जाती है, सिवाय क्षत्रियों के पास अनेक नैतिक ग्रंथ, वैश्यों के पास व्यापार सम्बन्धी ग्रंथ, जौहरियों के पास रत्न परीक्षा आदि के ग्रंथ और अनेक शिल्पियों के पास अपने-अपने शिल्प संबंधि ग्रंथ, अभी तक पाये जाते हैं; विक्रमादित्य तथा राजा भोज के समय तक, वह शिक्षण प्रणाली कुछ अच्छी दशा में थी !

प्र०– कोई अच्छा प्रमाण दो ?

उ०– देखो ! सत्ययुग में वशिष्ट, शुक्राचार्य आदि ने अपने-अपने पिता से ही विद्या पढ़ी थी; त्रेतायुग में श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न अपनी अयोध्यापुरी छोड़कर अन्यत्र किसी ब्रह्मचर्याश्रम में पढ़ने नहीं गये; बल्कि वहीं पर ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरु वशिष्ट से सब कुछ सीख लिया; कारणवश ब्रह्मचर्यावस्था ही में श्रीराम लक्ष्मणजी, विश्वामित्र के साथ गये; तो भी उन्होंने क्षत्रियत्व को नहीं त्यागा. और देखो ! सौ कौरवों, पाँचों पांडवों तथा उनके अनेक सम्बन्धियों ने घर ही बैठे, सब विद्या द्रोणाचार्य से सीख ली अर्थात् वीर्य रक्षा पूर्वक विद्या पढ़ना ही ब्रह्मचर्य कहलाता है; न कि मात्र वेष आडंबर !

प्र०– मैं आज तक यह समझता था, कि घर द्वार छोड़ना, वर्णधर्म को त्यागना, नशा पानी करना तथा फोकट का माल उड़ाना ही ब्रह्मचारी का लक्षण है ?

उ०– नहीं ! नहीं !! कदापि नहीं !!!

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! सतयुग में सनकादिक ने चिर ब्रह्मचर्य धार, जग का कल्याण ही किया, पर ब्रह्मत्व न त्यागा. कार्तिक स्वामी ने अपने ब्रह्मचर्य के बल से बड़े-बड़े दुष्ट राक्षसों को मारा. परशुरामजी ने अपने पिता के लिये २१ बार निक्षत्र किया त्रेतायुग में बाल-ब्रह्मचारी श्री हनुमानजी ने कैसा विचित्र पराक्रम दर्शाया. और द्वापरयुग में भीष्म पितामह यावज्जीवन ब्रह्मचर्य से रहे, जिन्होंने कौरवों की ओर का मुख्य सेनापतित्व स्वीकार, महाभारत में कैसा भयंकर युद्ध किया. अश्वस्थामा बालब्रह्मचारी ने युद्ध में पिता तथा राजा का कैसा साथ दिया. इससे सिद्ध हुआ, कि किसी वेषधारी, नामधारी, व्यभिचारी, भ्रष्टाचारी, पतित आदि को ब्रह्मचारी कहने की शास्त्राज्ञा नहीं ! किन्तु जो दृढ़ता के साथ, वीर्यरक्षापूर्वक, विद्यार्जन करता हुआ, अपना बल, पराक्रम, ज्ञान

आदि बढ़ाता है; उसी को ब्रह्मचारी कहते हैं !! अन्य को नहीं !!!

प्र०— तो क्या शूद्र को अपने घर ही पर रहकर वीर्य रक्षापूर्वक अपनी विद्या तथा कर्म का अभ्यास करना पड़ता था ?

उ०— अवश्य !

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि यदि द्विजों के समान, हमारे कर्मा कहलाने वाले शिल्पी भाई भी २५-३६-४८ वर्ष तक, उन ब्रह्मचर्याश्रमों में रहकर, उन्हें काम में न आनेवाली अन्य सैंकड़ों विद्या पढ़ा करते, तो उनके शिल्प कर्म का, अबतक नाम भी न रहता !

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि जब वे पच्चीस वर्ष के उपरांत लौटकर अपने घर पर आते, तब तक उनके हाथ कठोर हो जाते ! जिनके द्वारा जैसा चाहिये वैसा सफाई तथा चतुराई का काम न जल्दी आ सकता और न जल्दी हो सकता ! यदि इस बीच गृहस्थी का बोझ सिर-पर पड़ने या किसी विघ्न के उपस्थित होने से सीखने का अवसर न मिलता, तो शिल्पकर्म डूब जाता, सबके काम रुक जाते या उनमें बाधा उपस्थित हो जाती, उन्हें भूखों मरना पड़ता, इत्यादि नुकसान देख, आजतक पुराने शिल्पी अपनी विद्या छोड़, अन्य की विद्या सीखना तथा अपना कर्म छोड़, अन्य का कर्म करना, महा-पाप समझते हैं ! अर्थात् अधोगति का हेतु समझते हैं !!!

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि पक्का तथा नामी कारीगर, वही बन सकता है, जो लगातार बालकपन ही से स्वयं अपने हाथों द्वारा, अपना शिल्प-कर्म करता रहा हो ! सिवाय सिद्ध हो चुका है, कि जो एक मनुष्य अपना एकही काम, जन्मभर करता रहता है, उसका क्रम से अभ्यास बढ़ता जाता है तथा उसे तत्काम सम्बन्धी प्राकृतिक ज्ञान और उसका सूक्ष्म से सूक्ष्म हेतु विदित होता जाता है, जिस बल वह शिल्पी नित नये-नये ढंग से, वह काम सुगमतापूर्वक कर

सकता है, इसीसे वह अनुभवी अपना काम सबसे जल्दी, सबसे अच्छा तथा सबसे अधिक कर सकता है और तत्काम सम्बन्धी नवीन आविष्कार भी कर सकता है! इसलिये हर मनुष्य अपने काम की विद्या सीखने तथा तत्काम सम्बन्धी अनुभविक ज्ञान सम्पादन कर लेने की अत्यन्त आवश्यकता है! इसी न्यूनता के कारण हमारी अपार हानि हो रही है!!!

क्योंकि

एकहि विद्या अर्थ की, साधन संयुत होय।
वही करै सुख लोक में, याबिन सब दे खोय ॥१॥
एकहि साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।
ज्यों जल सींचे मूल को, फूले फूलै अघाय ॥२॥तुलसीदास॥
मूल कर्म निज सींच के, साधन अनुभव तोय।
चार पदारथ पाइये, दुख दारिद तम खोय ॥३॥
बिन साधन के कर्म ना, ता बिन अनुभव नाहिं।
अनुभव विद्या एक है, दूसर मूर्ख बताहिं ॥४॥
वो अनुभव लिखि के धर्यो, कागज ही ना ज्ञान।
या बिन साधन कर्म बिन, पोपट विद्यामान ॥५॥

देखो!

इसी व्यवहारिक ज्ञान के न होने के कारण, हमारे नवशिक्षित विद्वान कहलाने वाले भाईयों का क्या हाल हो रहा है! और इधर शास्त्राज्ञा के विरूद्ध केवल नामधारी, वेषधारी ब्रह्मचारियों की वृद्धि से हमारी क्या दशा हो रही है!! इसलिये अब बनावटी अर्थात् नकली ब्रह्मचारी बनने की कामना त्याग, केवल वीर्यरक्षा पूर्वक, अपने हित की विद्या तथा कला सीख, दिव्य परिश्रमी बन उसी अपने साधन कर्म से निर्वाह चलाते हुए, अपना तथा अपने देश का भला करो!!!

गृहस्थाश्रम

प्र०– गृहस्थाश्रम की किसलिये आवश्यकता है?

उ०– निज वंश के रक्षणार्थ, आश्रितों के पालनार्थ, निराश्रितों के

सहायतार्थ तथा अपने समाज या देश के लाभार्थ, सबको गृहस्थाश्रम की अत्यन्त आवश्यकता है! इस आश्रम की सहायता के बिना, किसी कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती! यही पिता रूप से कमाता है! माता रूप से सबका पालन पोषण कराता है! कामधेनु रूप से सकल कामनाओं की पूर्ति करता है! स्त्री रूप से सेवा करता है! स्वामी रूप से धन एश्वर्य का दाता है! तथा गुरु रूप से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का प्रदाता है!!!

प्र०– क्यों कर?

उ०– क्योंकि गृह के बिना, शीत, उष्ण, वर्षा, वायु तथा उपद्रव आदि से बचना कठिन है और गृहस्थ के बिना, वस्त्र, भोजन आदि का मिलना कठिन है, इनके बिना, शरीर का निरोगी तथा आयुष्मान रहना कठिन है, तो फिर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि किस तरह हो सकेगी? क्या भूखे, प्यासे रोगी तथा चितातुर से भजन या अन्य कोई काम हो सकेगा? तो फिर योग, यज्ञादिक शुभ कर्म किस तरह हो सकेंगे? यह गृहस्थाश्रम सबका तथा सब कामों का एक मात्र आधार है!

प्र०– यदि हम लग्न न करें?

उ०– तौ भी ब्रह्मचर्य पूर्वक घर ही में रहकर विद्याध्यन करो! या परिश्रम पूर्वक अपनी विद्या तथा कलाकौशल्य द्वारा धनार्जन करते हुए, अपना या अपने देश का हित साधन करो!!!

प्र०– किस प्रमाण के आधार से?

उ०– देखो! शुकदेव सरीखे जिन्होंने १२ वर्ष तक माता के गर्भ ही में तप किया तथा बाहर गिरते ही, बन में जा, अखण्ड तप किया, किन्तु वहां भी उन्हें शांति न प्राप्त हुई, तब अपने घर वापिस आ, पिता से सब विद्या पढ़ी तथा पिता की आज्ञा से जनक महाराज के पास गये. उन्होंने ऐसा उपदेश दिया, कि चाहे वन में रहो, चाहे घर ही पर रहो, तौ भी अपना-अपना वर्ण धर्म त्यागने की शास्त्राज्ञा नहीं है! इसलिये उस कर्त्तव्य को अपने तथा जगत

के हित के लिये यहीं पर क्यों न करें ? इसके विरुद्ध वर्णधर्म त्यागने तथा गृह को छोड़, बन में जाने पर भी वह परमशांति प्राप्त न हो सकेगी; जिस तरह आपको प्राप्त न हुई ! और देखो ! मैं राजकाज करता हुआ भी उस परम शांति को प्राप्त हुआ हूं; जिस शांति को जीवनमुक्त तथा विदेहमुक्त अनुभवते हैं ! वह परमशांति किसी और उपाय से कदा, कुत्र नहीं मिल सकती ! केवल मिल सकती है, अपने मन पर लक्ष रखने से ! देखो ! धर्मादेश का उपदेश १३ वां. सिवाय किसी ऋषि, मुनि ने भी अपना वर्णधर्म नहीं त्यागा ! तो हम क्यों कर छोड़ें ? वल्कि छोड़ने से कोई लाभ नहीं दिखता ! किन्तु हानि अपार है ! देखो ! अर्थादेश का उपदेश ५ तथा ८ !

वानप्रस्थाश्रम

प्र०– वानप्रस्थाश्रम की आवश्यकता किसलिये है ?

उ०– विद्याओं के रक्षणार्थ, नवीन विद्याओं के आविष्करणार्थ, योग सिद्धियों के प्रापनार्थ, आत्मज्ञान के अनुभवार्थ, ब्रह्मचारियों के शिक्षणार्थ वानप्रस्थाश्रम की आवश्यकता है !

प्र०– वानप्रस्थों ने किन विद्याओं का आविष्कार किया ?

उ०– वेदों में जिन विद्याओं का संकेत मात्र है, उनका तथा तत्संबंधी अन्य विद्याओं का आविष्कार किया अर्थात् ज्योतिष, वैद्यक, रसायन, व्याकरण, छंद, गायन, न्याय, सांख्य, पातांजल, निघंट, कोप, सामुद्रिक, शकुन, शिल्प, खगोल, कला, वास्तुविद्या, परीक्षा-शास्त्र, सिद्धांत, त्रिमिति, भूमिति, बीजगणित, अंकगणित, चित्रकारी, कृषि, व्यापार, योगशास्त्र, कोकशास्त्र, यंत्रशास्त्र, तंत्रशास्त्र, इत्यादि असंख्य विद्याओं का आविष्कार किया और असंख्य ग्रंथ लिखे !

जिन विद्याओं की सत्यता, समग्र संसार स्वीकारता है ! जिन विद्याओं का अटल सिद्धान्त देख, सब जगत चकित हो रहा है! जिनके एक-एक सिद्धान्त पर बड़े-बड़े ग्रन्थ रचे जाते हैं ! जिन

सिद्धान्तों को पश्चिमी विद्वान भ्रमवश मिथ्या समझ हंसी करते थे ! आज उन्हीं को आश्चर्य के साथ सत्य मान रहे हैं ! कहां तक कहें जितनी विद्याएं वे उत्पन्न कर गये, उन्हीं के एक अंश में बसने वाला आधुनिक चमत्कार है ! वेद, शास्त्र, पुराण तथा अनेक विद्या संबंधी ग्रंथ इस बात के प्रमाण स्वरूप हैं ! हमारी अनेक बातों के साक्षी चीनी यात्री, सर टामस रो, टाड हंटर, सिकन्दर आदि हैं ! तथा आधुनिक साक्षी राममूर्ति, मल्हारराव-शास्त्री, भानुप्रसाद जगदीश बोष तथा रामकृष्ण स्वामी आदि अनेक सज्जन हैं ! तभी तो सरकार प्रतिबर्ष लाखों रुपये खर्च कर, पुराने ग्रन्थों का शोध तथा संग्रह किया करती है ! अनेक ग्रन्थों के भाषान्तर करवा चुकी है और कई ग्रन्थों के भाषान्तर करवाती जाती है ! सिवाय अन्य विदेशी भी न्यूनाधिक इसी धुन में लगे हुए हैं ! यदि वे ग्रन्थ बिल्कुल सारशून्य होते, तो क्या बुद्धिमान विदेशी इतने द्रव्य, समय तथा परिश्रम का दुरुपयोग करते !! हमारे नवशिक्षित जिनका नाम तक नहीं जानते !!!

प्र०– क्या वानप्रस्थ अपनी कल्पना से ग्रन्थ रचते थे ?

उ०– केवल कल्पना से नहीं; क्योंकि कल्पना का फल मिथ्या भी हो सकता है; बल्कि समाधि द्वारा अनुभव प्राप्त कर लेने के पश्चात् लिखते थे; तभी उनका कहना यथार्थ मिलता है !

प्र०– वह समाधि क्या वस्तु है ?

उ०– मोक्षादेश गत योग सम्बन्धी उपदेश देखो !

प्र०– वानप्रस्थ वर्ण धर्म से क्या सम्बन्ध है ?

उ०– मात्र ब्राह्मण तथा क्षत्रिय को वानप्रस्थाश्रम का अधिकार था, किन्तु वहां पर अपने-अपने वर्ण धर्म की मर्यादा का पूर्ववत पालन करना पड़ता था; जिस तरह आवश्यकता पड़ने पर, राजा तथा प्रजा के हित के लिये, ब्राह्मण को तप छोड़, शिक्षा देने तथा यज्ञ कराने के लिये जाना पड़ता था; उसी तरह क्षत्री को तप छोड़, युद्ध के लिये जाना पड़ता था.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! दशरथ महाराज के पुत्रेष्टी यज्ञ में वशिष्टजी का आमंत्रण पा, ऋष्यशृंग को तप छोड़ जाना पड़ा था; इसी तरह मचकुंद आदि क्षत्रियों को तप छोड़, युद्ध के लिये जाना पड़ा था. देखो ! हमारे श्री रामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी चौदह वर्ष तक वन में रहे; तो भी उन्होंने अपना क्षत्रियत्व न त्यागा; बल्कि उस दशा में भी दुष्टों को दण्ड तथा सज्जनों की रक्षा करते रहे. इसी तरह परशुरामजी पिता के लिये, शुकदेवजी परीक्षित के लिये तथा अनेक ऋषि जन्मेजय के सर्प यज्ञ के लिये तप छोड़कर गये थे, इत्यादि प्रमाण पुराणों में देख सकते हो !

प्र०– तप तथा भजन छोड़ देना, तो महापाप है ?

उ०– परोपकार के लिये छोड़ देना, पाप नहीं; बल्कि महत्पुण्य है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह आप भजन या तप कर रहे हो, इस बीच एक बालक अग्नि या नदी में अचानक गिर पड़ा; तो क्या आप जप-तप छोड़-कर तत्काल उसे न निकालोगे ? जरा ढील होने पर क्या वह बच सकता है ? क्या उसे न बचाना पुण्यात्माओं का काम है ? जब कि आपके हृदय में दया ही नहीं; तो वह दीनदयाल आप पर, क्योंकर दया कर सकता है ? जिस दशा में स्वयं भगवान परोपकार के लिये अवतरते हैं ! उस दशा में भक्त को तो परोपकार के लिये तन, मन, धन तथा प्राण तक लगा देना चाहिये !! देखो ! शिवि, दधीचि आदि ने क्या न दिया !!!

क्योंकि

ज्ञान योग सो भक्ति बड़, वासु बड़ो उपकार ।
परहित के शुभ कारणे, स्वयं लेत अवतार ।।१।।
जग में ना उपकार सम, बड़ो पुण्य शुभ कर्म ।
अरु ना है अपकार सम, दूषित कर्म अधर्म ।।२।।

निषेध

प्र०– कलियुग में वानप्रस्थाश्रम का निषेध क्यों है ?

उ०– प्रथम तो बनों का अभाव है. दूसरे जो बन हैं भी तो उनमें वानप्रस्थों के निर्वाह के योग्य कंद, मूल, फल, फूल, शाक पत्रादि नहीं हैं. तीसरे जिस दशा में ठीक-ठीक ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थाश्रम का धर्म ही निभना असाध्य हो गया है ! उस दशा में शास्त्र के विरूद्ध, नाना प्रकार के पकवान, मुफ्त उड़ाने के लिये तथा आलसी बन, भिक्षुकों की संख्या बढ़ाने के लिये, केवल वेषधारी, नामधारी, वानप्रस्थ बनने की क्या आवश्यकता है ?

सन्यास

प्र०– सन्यास का अधिकार किसे है ?

उ०– केवल ब्राह्मण को है,

प्र०– कब ?

उ०– जब वह अपनी इच्छा सहित त्रिगुणात्मक क्रियाशक्ति को जय कर ले.

प्र०– दंड को यज्ञोपवीत बांधने का हेतु क्या है ?

उ०– यह दर्शाने के लिये, कि मैंने यज्ञ की त्रिगुणात्मक गति का जय कर लिया; इसलिये अब मैं सबको सब तरह शिक्षा देने के योग्य हूं.

प्र०– इस बात की क्या परीक्षा ?

उ०– जिसने इच्छा सहित त्रिगुणात्मक क्रिया शक्ति का जय कर लिया; उसे शीत, उष्ण, भय, निद्रा आदि का कष्ट नहीं होता; बल्कि वह केवल शरीर के रक्षणार्थ, स्वल्प खानपान करता है; पर देह त्यागने के पूर्व उसे भी छोड़ देता है और न इसे किसी बात के ग्रहण त्याग का हर्ष सोच होता है.

प्र०– यदि क्षत्री अपनी इच्छा सहित क्रियाशक्ति का जय कर ले; तो क्या वह सन्यासी नहीं बन सकता ?

उ०– कदापि नहीं.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि क्षत्री आदि से ब्राह्मण भिक्षा पाता है, ब्राह्मण से सन्यासी

भिक्षा पाता है, अर्थात् भिक्षुक का भी भिक्षुक सन्यासी है; उस भिक्षा द्वारा क्षत्रिय क्योंकर क्षत्रियत्व का संरक्षण कर सकता है ? जो स्वतः की भी रक्षा नहीं कर सकता, वह औरों की रक्षा क्योंकर सकता है ? किन्तु ब्राह्मण सन्यासी होकर भी ब्रह्मत्व का संरक्षण कर सकता है; क्योंकि उसका काम उपदेशक का है.

देखो ! जो क्षत्रिय असंख्य भिक्षुकों को भिक्षा देकर प्रतिपालता है, वह भिक्षुकों का भी भिक्षुक बने, यह उसके लिये कितनी लज्जा तथा कायरता की बात है ! कहीं ऐसे क्षत्री शूरवीरता प्रकाश सकते हैं !

प्र०– फिर क्यों अर्जुन ने कई अवसरों पर कपट वेषधार, अपना काम बना लिया ?

उ०– यह तो राजाओं की कार्यसाधक कूटनीति है, जो बलवान शत्रुओं के निग्रह करने के अर्थ काम में लाई जाती है; न कि भिक्षावृत्ति के लिये ! तिस पर कलियुग में सन्यास का निषेध है, इसलिये केवल आडम्बर आदि के लिये वेषधारी, नामधारी सन्यासी बनने की क्या आवश्यकता है ?

प्र०– तो फिर क्यों कलियुग में श्री शंकराचार्य महाराज ने सन्यास ग्रहण किया ?

उ०– क्योंकि वे अपनी इच्छा तथा क्रियाशक्ति का जय कर चुके थे.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो वे आकाश मार्ग होकर मंडनमिश्र के गृह में जा सके और मरे हुए अंबरीष राजा के शरीर में अपना प्राण प्रविष्ट कर सके थे; अर्थात् इच्छा तथा क्रियाशक्ति के जय के पश्चात् मनुष्य सब कुछ जानने तथा बहुत कुछ करने को समर्थ होता है; तब वह सबके दिग्दर्शनार्थ, भ्रमशोधनार्थ तथा सत्य धर्म के प्रतिपादनार्थ उपदेश देने की योग्यता पाकर सन्यास ग्रहण कर सकता है; ये सब बातें उनमें थीं, इसलिये वे सन्यासी बन सके थे !

प्र०– सन्यासी गांव के बाहर क्यों रहें ?

उ०– जिसमें उन्हें ग्रामवासी तथा वनवासी दोनों मिल सकें.

प्र०– एक स्थान में तीन रात्रि से अधिक क्यों नहीं रह सकते ?

उ०– मोह आदि के भय से.

प्र०– स्त्री, धन, अलंकार, शैया आदि क्यों वर्ज्य है ?

उ०– विषयों से बचने के लिये.

वैश्य

प्र०– वैश्य को वानप्रस्थ तथा सन्यास का अधिकार क्यों नहीं ?

उ०– क्योंकि वैश्य कर्म भविष्य फल की आशा से किया जाता है, इसलिये यह कर्म बड़े अग्रसोचीपने का है, उसी तरह बड़े जोखिम से भरा हुआ है, जरा चूके, कि हानि होने में देर नहीं, अनेकों का दिवाला भी निकल जाता है, कारण जिस कर्म में वैश्य नफा होने की आशा रखता है, कभी उसमें बड़ा टोटा पड़ जाता है, इसी तरह जिस कर्म में टोटे की संभावना होती है, उसी में कभी बड़ा नफा हाथ लगता है, कभी सस्ती चीज नफा तथा महँगी चीज टोटा दे जाती है, कभी इसके विरुद्ध महंगी चीज नफा तथा सस्ती चीज टोटा दे जाती है, कभी स्वदेश के विचार से लाभ और विदेश के विचार से हानि सहनी पड़ती है, कभी इसके विरुद्ध विदेश से लाभ तथा स्वदेश से हानि पहुंचती है; इसलिये कब, कहां किसके द्वारा, किस तरह नफा मिलेगा अथवा टोटा रहेगा; इस बात का निर्णय करना, हंसी खेल नहीं हैं, न लड़कों का मनोराज्य है; इसके लिये उन वृद्धों की अत्यन्त आवश्यता है, जिन्होंने हानि-लाभ के हेतु के हजारों दृश्य देखे, सुने तथा जांचे हैं, सिवाय जिनका विचार, इतना तुला हुआ है, कि वे जिस काम को करना चाहें, उसमें प्रायः लाभ ही रहता है ! यदि ऐसे अनुभवी अपने नवशिक्षित बच्चों को छोड़, बन में चले जायें, या सन्यासी बन जायें ! तो उनकी संतान को ठीक संमति कौन दे सकेगा ? वे

तरुण अवश्य किसी प्रमाद या त्रुटि के कारण अपनी सब संपत्ति आदि खो बैठेंगे ! जिसके द्वारा उस संतान की, राज्य की तथा प्रजा की अपार हानि होगी !! इसलिये वैश्य को वानप्रस्थ तथा सन्यास वर्जित है !!!

प्र०— तो फिर वृद्ध वैश्य का उद्धार किस तरह होगा ?

उ०— वह घर ही में जनकादिक के समान अभ्यास कर, विदेह मुक्त तक हो सकता है ! इसलिये उसने घर ही पर रहकर, ईश्वर भक्ति करते हुए, अपने पुत्रों को परामर्श देना, अतिथियों का सत्कार करना, दीनों को दान देना, अनाश्रितों का पालन पोषण करना, विद्यार्थियों की सहायता करना तथा अपने वंश, जाति, समाज और देश के लाभ के लिये कोई उत्कृष्ट काम करना चाहिये ! ! इसी से उसका कृतार्थ हो जावेगा !!!

शूद्र अर्थात् कर्मा

प्र०— शूद्र को भी वानप्रस्थ तथा सन्यास का अधिकार क्यों नहीं ?

उ०— क्योंकि यह शिल्प अत्यन्त कठिन कर्म है, इस काम को सतत करते रहने से क्रम से अनुभव बढ़ता ही जाता है; इसलिये बालक से तरुण में तथा तरुण से वृद्ध में शिल्पकला की कौशल्यता अधिकाती जाती है; तभी तो वृद्ध शिल्पी प्रायः अच्छे कारीगर होते हैं ! उन्हीं की संमति तथा सहायता से चमत्कारिक और टिकाऊ, बड़े-बड़े मंदिर तथा राजभवन आदि बनाये जाते हैं !

जिनके हाथों से हजारों कारीगरी के काम हुए, ऐसे अनुभवी पुरुष, यदि घर छोड़कर बन में चले जाया करें, तो उनकी संतान को, कौन कारीगरी की बारीकियाँ सिखावेगा ? और राजा, प्रजा के अच्छे कामों के लिये, अच्छे कारीगर क्योंकर मिल सकेंगे ? सिवाय उधर वे अच्छे कारीगर, भिखमंगे बन, भीख मांगते फिरेंगे ! इधर उनकी संतान, अनुभवी प्रेरक के बिना, अधोगति को प्राप्त होगी ! ! इसीलिये कर्मा को वानप्रस्थ तथा सन्यास का अधिकार नहीं !!!

प्र०– यदि सबके लिये वानप्रस्थ तथा सन्यास का अधिकार होता ! तो क्या होता ?

उ०– उस दशा में भिक्षुकों की संख्या बढ़ जाती ! देने वालों की संख्या घट जाती ! हर एक का काम ठीक-ठीक न चल सकता ! जिससे चारों वर्णों की अधोगति तथा नास्ति होती !! जिस तरह आजकल हो चली है !!!

प्र०– किस तरह ?

उ०– देखो ! हम सब, शास्त्र तथा प्रकृति के विरुद्ध, अनेक वेषधारी बन, केवल अपने मनकल्पित मार्ग से चल, तथा औरों को चला; आप भिखमंगे बन, तथा औरों को बना; परस्पर वंश, जाति, समाज, देश तथा धर्म का सत्यानाश कर रहे हैं !!!

प्र०– इसलिये क्या कर्त्तव्य है ?

उ०– जो कि यह समय वानप्रस्थ तथा सन्यास के अनुकूल नहीं है; न कोई उसे पूरी तरह निभा सकता है; इसलिये चारों वर्णों ने वीर्य रक्षा पर पूरा-पूरा लक्ष रख, घर ही पर रह, निज विद्या तथा कर्म की अनुभविक शिक्षा पाकर, अपने ही काम को तन, मन, धन, वचन, क्रम से उन्नत करना चाहिये ! इसी से हम सबका कल्याण होगा !! अन्यथा नहीं !!!

दोहा

हितकर्त्ता निज धर्म है, हित हर्त्ता पर धर्म ।
सबका धर्त्ता सनातन, तथा यथा गुणकर्म ।।१।।
चाहे साधो योग को, चाहे भक्ती ज्ञान ।
तौ भी त्यागो ना कदा, वर्ण धर्म अभिमान ।।२।।
चाहै दर्शन ईश दे, चाहे मुक्ती दान ।
तौ भी त्यागो ना कदा, धर्म कर्म अभिमान ।।३।।
गुरु वशिष्ट थे ज्ञान तन, रामशिष्य यजमान ।
तऊ न त्यागा तिन कदा, धर्म कर्म अभिमान ।।४।।

जनक सुसुर थे राम के, नृप वर मुक्त महान ।
तऊन त्यागा तिन कदा, धर्म कर्म अभिमान ।।५।।
परमभक्त प्रह्लाद थे, ज्ञानी नृप असुरान ।
तऊ न त्यागा तिन कदा, धर्म कर्म अभिमान ।।६।।
जन्महि से सुखदेव थे, बड़ त्यागी विषयान ।
तऊ न त्यागा तिन कदा, धर्म कर्म अभिमान ।।७।।
अर्जुन थे श्रीकृष्ण प्रिय, पाया गीता ज्ञान ।
तऊ न त्यागा तिन कदा, धर्म कर्म अभिमान ।।८।।
इन सब से हम ना बड़े, ना हममें तस ज्ञान ।
तो क्यों त्यागे हम सभी, धर्म कर्म अभिमान ।।९।।
जाति कर्म गुण वर्ण निज, सत्य धर्म अभिमान ।
याही कबहुं न त्यागिये, या बिन ना कल्याण ।।१०।।

उपदेश ३५

एक भाषा तथा एक लिपि

हमारी अनादि भाषा तथा अनादि लिपि वही है, जो अनन्त काल से अब तक अपनी योग्यता, मर्यादा तथा सभ्यता का स्वयं प्रकाश गुप्त प्रकटरूप से संसार भर में फैलाये हुए है और चिरकाल फैलाये रहेगी !

जो सर्वोत्कृष्टता पूर्वक बनी हुई है, जिससे प्रायः सभी भाषाएं निकली हैं और जिसमें प्रायः सभी भाषाओं के मूलतत्व विद्यमान हैं ! जो समस्त लौकिक तथा पारलौकिक विद्याओं की आगार है सो केवल हमारी परमपवित्र संस्कृत विद्या है !

संस्कृत भाषा-देववाणी और संस्कृत लिपि-देवनागरी कहाती है ! क्योंकि इसे स्वयं ब्रह्मदेव ने अपने दिव्य ज्ञान के संयम द्वारा उपजायी है ! सिवाय यह विचारक के हृदय में दिव्य ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाली और उसे श्रेष्ठ तथा पवित्र बनाने वाली है ! इसलिये संसार की कोई भाषा या लिपि इसकी समकक्षता नहीं कर सकती !

पहिले भारतवर्ष की यही एक भाषा तथा यही एक लिपि थी ! किन्तु जब एक समूह, अपने स्वार्थ की बात, अन्य समूह से छिपाने का प्रयत्न करने लगा ! तब हर समूह ने अपने नामार्थ, कामार्थ तथा स्थानार्थ, अपनी-अपनी नयी भाषा तथा नयी लिपि की सृष्टि की ! इसी कारण अनेक भाषाओं तथा लिपियों का प्रादुर्भाव हुआ !

उधर स्वार्थवश अनेक अनर्थों के होने और इधर नयी लिपि भाषाओं के प्रेम ने बहुत कुछ संस्कृत से सम्बन्ध तोड़ दिया ! यहां तक कि कालांतर में एक समूह अन्य समूह का हार्दिक तत्व जानने को असमर्थ हुआ ! जिससे परस्पर की प्रीति तथा सहानुभूति का प्रायः लोप हो गया ! जिसका प्रतिफल हम सब ढाई तीन हजार वर्षों से भोगते हुए, अज्ञान निशा में सो रहे थे !

किन्तु धन्य है ! अंग्रेज सरकार को ! जिन्होंने देशभर में, अपनी प्यारी मुख्य एक अंग्रेजी भाषा तथा अंग्रेजी लिपि का विशेष प्रसार करके सबको जगा दिया ! जिससे सबको, अब एक भाषा तथा एक लिपि होने का प्रभाव मालूम होने लगा है !

इसलिये इस न्यूनता पूर्ति के लिये, भारत के सब समूहों ने मिल निश्चित किया है ! कि संस्कृत की बड़ी बेटी एकमात्र हिन्दी भाषा तथा उसकी देवनागरी लिपि, कामधेनु के समान हमारी सब कामनाएं पूर्ण कर सकती है !! अन्य नहीं !!!

क्योंकि यह भाषा तथा यह लिपि अति सुगम तथा छलछिद्र रहित है ! तभी तो यह हिन्दुस्थान के हर भागों में तथा जगत के अनेक प्रसिद्ध स्थानों में अपना विस्तार आपही अनायास कर रही है ! सिवाय इस लिपि में सब भाषाएं लिखी जा सकती हैं ! तथा उनके अक्षरों, शब्दों तथा वाक्यों का उच्चारण भी ज्यों का त्यों बना रहता है ! किन्तु अन्य विदेशी लिपियां—न वैसा शुद्ध लिख सकती हैं और न वैसा शुद्ध उच्चार बनाये रहती हैं ! इसलिये हमारी एक भाषा तथा एक लिपि होने का गौरव तथा उच्च स्थान अन्य को देना, न्याय तथा अधिकार से शून्य है !

यदि हर भाषा वाले अपने-अपने विचार या ग्रन्थ, इसी एक देव-नागरी अक्षरों में लिखकर प्रसिद्ध किया करें ? तौ भी देश तथा देश-वासियों को बहुत कुछ लाभ पहुंच सकता है ! क्योंकि इसकी सहायता से इनीगिनी भाषाओं को छोड़, प्रायः सभी भाषाएं शीघ्र समझ में आ सकती हैं ! केवल अपभ्रंश, विभक्ति, प्रत्यय और उच्चार का भेद होता है !

यदि हम सबकी मुख्य भाषा हिन्दी हो जावे ! देवनागरी लिपि में सब विद्या कलाकौशल्य सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे जावें ! और सब तरह की शिक्षा इसी भाषा तथा लिपि द्वारा दी जावे ! तो हम सबकी शीघ्र उन्नति हो सकती है !

सिवाय

जौलों भाषा एक ना, जौलों लिपि ना एक ।
तौलों दुःख सुख हानि हित, विदित न व्है पर नेक ।।१।।
विदित हुए बिन परस्पर, मदद मिले ना काहु ।
ता बिन प्रेम न प्रेम बिन, एका है अवगाहु ।।२।।
एका बिन सब नष्ट व्है, धर्म कर्म कुल देश ।
याते भाषा एक लिपि, करो धरो उद्देश ।।३।।

उपदेश ३९

स्त्री शिक्षा

देखो ! सुशिक्षा ही के कारण श्री सीताजी, श्री पार्वतीजी, अरुंद्धति, अनुसुय्या, गार्गी, मैत्रेयी, लीला, सरस्वती, चुड़ैला, दमयन्ती, अहिल्या बाई आदि स्त्रियां कितनी परमादरणीय तथा विख्यात हो गईं ! देखो ! कई सज्ञान पत्नियों ने अपने पति का कैसा साथ दिया ? कई वीर पत्नियों ने अपने पति के शत्रुओं को किस तरह परास्त किया ? कई धर्मपत्नियों ने अपनी तथा अपने कुल की मानमर्यादा की रक्षा किस तरह की ? स्वजनों से आदर किस तरह पाया ? देखो ! जिन

पतिव्रताओं ने प्राणसंकट उपस्थित होने पर भी अपने धर्म, मान, यश, वंश तथा चरित्र को धब्बा न लगने दिया ! जिन कुलांगनाओं ने अपनी कर्त्तव्य परायणता से, अपना नाम यश जगत में अजर अमर कर दिया ! जिनका गुणगान सुन, सबका हृदय पुलकित हो उठता है ! वे ही परम-पूज्य स्त्री तनधारी देवियां धन्यवाद के योग्य हैं ! सिवाय वे सज्ञान वीर माताएं वन्दनीय हैं ! जिनके गर्भाकर से ऐसे-ऐसे पुरुष रत्न उत्पन्न हुए, कि जिनके नाम का सुयश संसार में व्यापा हुआ है !

अर्थात् सन्तान की समस्त भलाई बुराई का मुख्य हेतु माता है ! क्योंकि सन्तान पर माता का प्रभाव अधिक पड़ता है ! कारण पिता के बिन्दुमात्र को लेकर, बालक का सम्पूर्ण शरीर, केवल माता के अमोघ रजरक्त से ही बनता है ! इसी कारण अनायास माता के गुणदोष, बालक में आ जाते हैं ! सिवाय वह बालक पिता की अपेक्षा माता के पास बहुत रहता है ! इसीसे वह पिता की अपेक्षा माता का अधिक अनुकरण करने लग जाता है ! और गर्भावस्था में माता जैसे पदार्थ खाती है, जैसी इच्छा करती है, जैसे कर्म करती है, उसके गुणदोष का असर, बालक में ज्यों का त्यों आ जाता है ! उपदेश १८ । १९ । २० । २१ पढ़ देखो !

इसलिये होनहार स्त्रियों को अर्थात् अपनी कन्याओं को सुशिक्षा देने की आवश्यकता है ! जिसके द्वारा वे कन्याएं अपने ससुर सास की दुलारी ! स्वपति की प्राणप्यारी ! उभय वंश की उजियारी ! तथा सुसन्तान की दिव्य महतारी हों !!!

किन्तु जिस ढंग की आजकल शिक्षा दी जा रही है ! उसकी हमें बिल्कुल आवश्यकता नहीं है ! उसके द्वारा सुफल के बदले उल्टा कुफल उपज रहा है !! जो किसी के छिपाये छिप नहीं सकता !!!

यदि स्त्री शिक्षा का शीघ्र सुधार न किया जावेगा ! तो धर्म, कर्म, गुण, वर्ण, जाति तथा देश की रही सही मर्यादा भी अब चल बसेगी ! स्त्री को अपना बर्ताव किस तरह रखना चाहिये ? पति की सहायता

किस तरह करनी चाहिये ? परिवार तथा स्वजनों के साथ वर्ताव किस तरह करना चाहिये ? गृहकृत्य तथा उसकी व्यवस्था किस तरह करनी चाहिये ? लग्न का हेतु क्या है ? गर्भ का लक्षण क्या है ? गर्भ की रक्षा किस तरह करनी चाहिये ? संतान का लालन पालन, शिक्षण तथा उनके रोगों की चिकित्सा किस तरह करनी चाहिये ? खान, पान तथा व्यवहार के किस पदार्थ में क्या गुण दोष हैं ? उनमें किस पदार्थ के मिलाने या अलग करने से क्या गुण दोष उपजता है ? शुद्ध रज, रक्त तथा वीर्य के बनने के लिये किन पदार्थों की किस कदर जरूरत है ? किस ऋतु में तथा किस विकार में किस कदर भोजन की आवश्यकता है ? जो स्त्री इन बातों को नहीं जानती ! वह क्योंकर गृहणी या मानवी कहलाने के योग्य हैं ? जो स्त्री अपना कर्त्तव्य जानती नहीं ! जो स्त्री अपने पति का पूरा-पूरा साथ देती नहीं ! जो स्त्री अपनी संतान को योग्य बना सकती नहीं ! जो स्त्री अपने वंश का हित जानती नहीं ! उसके अनेक पास कर लेने से या निरर्थक सौ गाड़ी पुस्तकें पढ़ लेने से देश का क्या भला होगा ? क्या स्वयं दास बन, और उन्हें औरों की दासी बना, उनकी कमाई से अपना निर्वाह चला लेना ही हमारा पुरुषत्व है ? क्या हम बाबू बन, उन्हें बबुआईन बना, कठ-पुतली के खेल के समान औरों के (नौकरों के) हाथ का खिलौना हो, शोभा पाते हैं ? क्या हम नकली बन, उन्हें नकली बना, निर्लज्ज भांडसा भेषधर नटसी नकल से बड़प्पन पा सकते हैं ? क्या सुशिक्षा इसी का नाम है ?

दोहा

जस सुधरी भू नारि तस, फल गुण ता अधिकाय ।
श्रम धन जल फल कर्म गुण, बिगरी सकल नसाय ।।१।।
सुधरी की संतति अधिक, होय वासु गुणवान ।
बिगरी की सगरी गरी, बिगर जात संतान ।।२।।
गर्भ हृदय शिशु भूमि सम, पितु गुण बीज बुआन ।
तियगुण जल सम वृद्धि कर, गुरु गुण शोधि लुआन ।।३।।

उपदेश ३७

स्वार्थ सिद्धि

अखिल जगत में ऐसा कौन है? जिसे किसी प्रकार के स्वार्थ की इच्छा न हो ! देखो ! ज्ञानी लोग मोक्ष की इच्छा से, योगी लोग रिद्धि सिद्धि की इच्छा से तथा भक्त लोग प्रभु के दर्शन की इच्छा ही से संयम साधन तथा भक्ति करते हैं ! यहांतककि स्वयं प्रभू किसी इच्छाही से यम नियम पूर्वक सकल संसार को उपजाता है ! ! तो हमारी इच्छा की क्या कथा !!!

यह इच्छा किसी स्वार्थ के लिये होती है ! परंतु स्वार्थ की भी एक हद होती है ! जिसे स्वार्थ की सीमा या मर्यादा भी कहते हैं ! उस मर्यादा पूर्वक स्वार्थ साधन को पुरुषार्थ कहते हैं ! किन्तु इसके विरुद्ध, न मर्याद है ! न स्वार्थ है ! न साधन है ! और न पुरुषार्थ ! ! बल्कि वह अधर्म का द्वार तथा अधोगति का मार्ग है ! ! !

न्याय शास्त्र उस विरुद्धाचरण को ठगना, लूटना, चुराना, घूंस खाना तथा हड़प जाना समझता है ! उसे स्वार्थ नहीं ! किन्तु स्वार्थाभास कहते हैं ! ! क्योंकि वह सद्गति का नाशक है ! ! !

जिसके द्वारा औरों का भला होता हुआ, अपना भी भला हो ! वही सच्चा स्वार्थ है ! पर भला भी उसे समझो, जो ईश्वरीय सृष्टि नियम के अनुकूल हो ! ! अन्यथा नहीं ! ! !

भले काम का परिणाम सदा हितकारक तथा शांतिकारक हुआ करता है ! किन्तु उसके साधन में बहुधा कष्ट हुआ करता है ! सुख नहीं !! क्योंकि उसे मर्यादापूर्वक अर्थात् यम नियमपूर्वक साधना पड़ता है !!!

देखो ! कांच के बनाने में कितने श्रम, धन तथा समय की आवश्यकता पड़ती है ! क्या उतनी उसे तोड़ने में पड़ती है ? इसी कारण बहुधा मुझ सरीखे, सुपढ़ कहलाने वाले, कुपढ़ मूर्ख, शुभ कार्य करना नहीं चाहते ! बल्कि उसे बिगाड़ देना; अपना मुख्य कर्तव्य, सुख साधन या स्वार्थ सिद्धि समझते हैं ! ! उन्हें अंत को पछताना पड़ता है ! ! !

जो कोई सचमुच पृथ्वी से अपना स्वार्थ सिद्ध किया चाहे ! उसे चाहिये, कि वह उसे क्रम से समयानुकूल, उपयुक्त खाद, बीज तथा जल

से पूरित करके भी रात दिन उसकी सेवा, सेवक के समान करता रहे ! तभी वह प्रसन्नता पूर्वक उसका स्वार्थ पूर्ण कर सकेगी !! अन्यथा नहीं!!! इसी तरह यह गो, इस गोपाल को, तभी दूध दे सकेगी! जब वह उसे समय-समय पर तृण जल से तृप्त करता हुआ सुख से रखेगा!! अन्यथा नहीं!!!

इत्यादि उदाहरणों से सिद्ध होता है, कि जब हम औरों का भला करेंगे ! तब हमारा भला होगा !! अन्यथा नहीं !!!

जिस पदार्थ में जितना अधिक सद्गुण होता है, उसके सेवन से उतना ही अधिक स्वार्थ सिद्ध होता है ! किन्तु जगत का हर पदार्थ ईश्वरीय सृष्टि नियम के अनुसार फलद्रूप होता है ! द्वेष से नहीं !! इसलिये हर पदार्थ के कुदरती नियम जानने की अत्यन्त आवश्यकता है !!! जो उन कुदरती नियमों का ज्ञान कराता है; वही गुरु है! चाहे वह वय,बल, धन, पद, विद्या, मान, मर्यादा, जाति में बड़ा हो !! चाहे छोटा !!!

चाहे प्रकट में गुरु शिष्य का सम्बन्ध हो ! चाहे न हो !! तो भी ज्ञान सिखाने वाला गुरु और सीखने वाला शिष्य है !!!

इसी तरह उपदेश देने वाला गुरु और स्वीकारने वाला शिष्य है ! इसी तरह सुपथ दर्शानेवाला गुरु तथा तद्वत सुपथ पर चलनेवाला शिष्य है !! ऐसे सद्गुरु तथा सुपात्र शिष्यों की बहुत आवश्यकता है !!!

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि के लिये शास्त्रों ने आज्ञा दी है; कि सद्गुरु के उपदेश का मनन करो ! सच्छास्त्रका विचार करो ! तथा सत्संगति से लाभ उठाते हुए; सत्संयम का चिर अभ्यास या साधन करो ! तब सद्गति होगी !! अन्यथा ज्वलन से नहीं !!!

इसी एक विचार से (१) वे यथार्थ लेखक, (२) उनके सद्ग्रंथ, (३) तथा सदुपदेशक ही सद्गुरु कहाते हैं ! जिनके लेख, ग्रंथ तथा उपदेश तत्काल विचारकों का हृदयगत अज्ञानांधकार हटा, ज्ञानरूपी भाष्कर उदय कर देते हैं ! और वे ही सच्छिष्य हैं ! जो इस प्रकाश से प्रकाशित हो, सर्वत्र ही उस कुदरत के चमत्कारिक नियमों को देखते हुए, अपना स्वार्थ या परमार्थ साध लेते हैं !! उन्हें धन्य है !!!

किन्तु आजकल स्वल्प काल ही में समग्र विद्या तथा कला कौशल्य

सिखा देने वाले एक मात्र वशिष्टजी के समान सद्गुरु तथा सीख लेने वाले श्रीरामचन्द्रजी के समान सुपात्र शिष्य होना ही असम्भव है! इसलिये अब केवल श्रीदत्तात्रयजी का अनुकरण करना चाहिये!! तभी हमारा भला होगा!!!

जरा विचारिये! कि जिन श्रीदत्तात्रयजी ने जिन चौवीसों से, जो चौवीस प्रकार के उपदेश ग्रहण किये! उससे उन्होंने कंठी बंधाई न थी! कान फुकाये न थे! मंत्रतंत्र सीखा न था! न उनका उच्छिष्ट प्रसाद लिया था और न पैरों का तीर्थ! किन्तु गुणग्राहकता के कारण, उन उपदेशों के महत्व से कृत्कृत्य हो, कृतज्ञतापूर्वक उन्होंने अपने उपकारियों को आप ही गुरु मान लिया! यही सज्जनों का धर्म है!! अन्य नहीं!!!

इस विचार से आजकल के अच्छे उपदेशक, अच्छे वर्त्तमान पत्र तथा सद्ग्रन्थ हो सद्गुरु हैं! न कि केवल मुझ सरीखे नामधारी वेषधारी बगुला भगत!! न जलकुक्कड़!!!

क्योंकि ये तीनों, अनायास जनसमूह के चित्त को, चाहे जिस ओर घुमाकर, उन्हें अपने कांक्षित मार्ग पर चला सकते हैं! देश तथा जाति का संरक्षण और सुधार उन्हीं के हाथों में है!! तिस पर भी ये अकुला रहे हैं!!!

कारण यह है, कि अनेक कुग्रन्थ, कुपत्र, कुउपदेशक तथा मुझ सरीखे नामधारी वेषधारी लोग, सर्व साधारण को कुपथ पर चला, धर्म, कर्म, देश तथा जाति का सत्यानाश कर रहे हैं! इसलिये इनके कुफल से उपजे, अनेक कुचक्री उन सद्ग्रन्थों, सत्पत्रों तथा सदुपदेशकों का मूलोच्छेदन कर रहे हैं!! इसी से तीनों अकुला रहें हैं!!!

सिवाय अर्थाभाव से सदुपदेशक सद्ग्रन्थ लिख नहीं सकते! बल्कि उन्हें विवश हो, उदर पूर्ति के लिये, किसी अन्य उद्योग में फस जाना पड़ता है! यदि कोई अपना श्रम, धन तथा अमूल्य समय नष्ट करके सद्ग्रन्थ लिखते हैं! तो उनका प्रकाशित होना असम्भव है! क्योंकि पास धन नहीं!! तथा कोई सहायता देता नहीं!!!

किन्तु जो चार पैसे कमाते हैं और जिनके पास चार पैसे हैं; ऐसे धनी उस सद्ग्रंथकार को भी भिक्षुक समझते हैं ! इसी कारण वे सत्कार तक नहीं करते ! बल्कि अपना कोई मतलब होता देख, उसे कुत्ते के समान, एक रोटी का टुकड़ा डाल, उसका ग्रंथ हड़प लिया चाहते हैं ! इसलिये वे ऊपर से तो मधु के समान माधुर्य दर्शाते हैं ! पर भीतर ही भीतर दावपेंच का खेल खेलते हुए, कपट की कतरनी चलाया करते हैं ! बहुत हुआ, तो उसके अमूल्य परिश्रम को कौड़ियों के मोल खरीद लेते हैं! या मन सुहाती बातें बना, उसे दो-चार प्रतियां दे बिदा कर देते हैं ! इसी कारण ग्रन्थकार अपनी दरिद्र दशा से उन्मुक्त नहीं हो सकते ! बल्कि भिक्षुकों से भी अधिक हीन दीन दशा का दुःख भोगते हुए, अपने अन्य अप्रकाशित रत्नों के सहित, नैराश्य के समुद्र में सदा के लिये डूब जाते हैं ! तो कहिये !! हमारी तथा हमारे देश की उन्नति किस तरह होगी !!!

उधर देखो ! यूरोप तथा अमेरिका के लोग, सद्ग्रंथकारों की कितनी मर्यादा तथा सहायता करते हैं ! यहां तक कि स्वयं राजा उन्हें अपने हृदय से लगा, बहुमान पूर्वक, बहुमूल्य पुरस्कार से सम्मानित कर, उत्साहित करते हैं !! तभी तो वे सब देश उन्नति के शिखर पर पहुंच, मान-मर्यादा पूर्वक अपना जीवन सुख से काट रहे हैं.

और इधर देखो विद्वान लोग ईर्षा से, उच्चपदस्थ अभिमान से धनी लोग अपनी ठसक से तथा अन्य लोग मूर्खता से सद्ग्रन्थ का निरादर करते हैं ! सहायता के बदले उसे भिक्षु बना ! देश के भिक्षुकों की संख्या घटाने के बदले बढ़ाते हैं !! या उन्हें अपना दास बना, उसकी स्वतन्त्रता अपहरण करके, इच्छानुसार नचाया करते हैं ! जिसके द्वारा उनके स्वाभाविक सिद्धांतों का विकास नहीं हो सकता ! तभी हम औरों का गाया गा रहें हैं ! या औरों का दिया ले रहे हैं ! या औरों का बनाया काम में ला रहे हैं ! क्योंकि हम में नया काम कर दिखाने की तथा अपना काम खुद चलाने की शक्ति उपरोक्त रुकावटों से नहीं उपज सकती ! ऐसे अवरोधकारी महात्माओं को धन्य कहें !! या धिक्कार !!!

सचपूछो तो हमारे गुण, कर्म, धर्म, जाति तथा देशका सुधार बिगाड़ तथा उत्थान पतन केवल उपदेश को उनके लेखों के हाथ है ! अर्थात् वे ही हमारे भलाई बुराई तथा स्वार्थ अस्वार्थ के मूल कारण हैं ! चाहे उन्हें पथदर्शक कहो ! चाहे नेता कहो !!! चाहे गुरु !!!

जो आप अपना स्वार्थ सिद्ध किया चाहो ! जो आप अपने गुण कर्म का उत्कर्ष किया चाहो ! जो आप अपने धर्म, कर्म, वर्ण तथा जाति की रक्षा किया चाहो ! या अपने देश की भलाई चाहो ! तो उपरोक्त बातों का विचार करके कोई सुव्यवस्था करो !! इसी में आपकी शोभा सहित भलाई है !!!

दोहा

नित्य सुनो उपदेश सत, लेख पढ़ो सद्ग्रंथ ।
सोचो तस संयम करो, उन्नति को ये पंथ ॥१॥

सत साधन सो सब सधै, स्वार्थ अरू परमार्थ ।
ईश नियम को गहि चलो, धर्म कर्म गुण सार्थ ॥२॥

तोपन कारण वृद्धि को, ना बंदुक तलवार ।
लेख लेखनी तीन ये, सांचो लेखनहार ॥३॥

रक्तपात वे त्रय करैं, खर्चा हानि श्रम काल ।
ये तीनों सब कुछ करैं, राखैं सबहि बहाल ॥४॥

उपदेश ३८

अर्थसार

जिस तरह अर्थ द्वारा सब अर्थ सिद्ध होते हैं; उसी तरह अर्थ बिना सब अनर्थ उपस्थित होते हैं; जो उस अर्थ के लिये प्रयत्न नहीं करता; वही मूर्ख या निर्धन है. वह प्रयत्न दो प्रकार का है; मानसिक और शारीरिक. किन्तु दोनों परस्पर हेतु हेतुमान हैं. मानसिक प्रयत्न द्वारा सद्विद्यारूपी अर्थ की सिद्धि होती है; जिसके द्वारा लौकिक और पारलौकिक पदार्थों का धर्मज्ञान तथा कार्यपटुता प्राप्त होती है; और शारीरिक प्रयत्न द्वारा कृषि, वाणिज्य तथा शिल्पकर्म हो सकता है; किन्तु इन तीनों से अर्थसिद्धि तभी हो सकती है ! जब मानसिक प्रयत्न द्वारा प्राप्त हुआ—ज्ञान तथा कौशल्य उनका सहकारी हो !! अन्यथा नहीं !!!

वह कार्यकुशलता—ज्ञानवत अनुसरती है, वह ज्ञान—धर्मवत अनुसरता है, वह धर्म—नियमवत अनुसरता है, किन्तु वह नियम कुदरती है ! उसी को कानून कुदरत या ईश्वरीय नियम या सनातन धर्म आदि नामों से पुकारते हैं !

वही एक धर्म उपयोग के विचार से विभक्त हो सामान्य धर्म तथा विशेष धर्म कहलाता है। अर्थात् जो कुदरती नियम सबके काम में एकसा आता है; उसे सामान्य धर्म कहते हैं !! किन्तु जिस कुदरती नियम का सबको एकसा काम नहीं पड़ता, बल्कि जो किसी विशेष व्यक्ति या वर्ण, जाति, आश्रम तथा जथे के काम आता है; उसे विशेष धर्म कहते हैं !!!

ईश्वरीय प्रेरणा से, सबकी अर्थ सिद्धि के लिये, यह अनेकत्व का चमत्कारिक विस्तार है और हर पदार्थ का भिन्न स्वभाव है तथा उसके साधन का भी भिन्न नियम है ! इसलिये उनके द्वारा अर्थ संपादन करने वाले भी भिन्न-भिन्न होने चाहिये !! इस बात की पूर्ति करना-विभिन्न वर्ण, जाति, आश्रम, जथा तथा व्यक्ति के हाथ है !!! इस मतलब से जो वर्ण, जाति, आश्रम, जथा तथा कोई व्यक्ति अपने-अपने काम में आने वाले कुदरती नियम के, अर्थात् अपने-अपने विशेष धर्म के अनुसार ठीक-ठीक वर्त्तता हुआ, अपना-अपना काम सामान्य धर्म के विचार से सबके हितार्थ करता है ! उसकी अर्थ सिद्धि सबसे जल्दी व सबसे पहिले, अनायास हो जाती है !! अन्यथा ईश्वरीय नियम पर लक्ष न रखने से भयंकर अनर्थ उपस्थित होता है !!!

इसलिये राजभक्तिपूर्वक हर व्यक्ति ने कर्त्तव्य परायण हो, लड़ाई झगड़ा तथा आलस्य छोड़, परस्पर प्रेम के साथ देशाभिमान रख, अपने तथा सबके हित के लिये, ईश्वरीय नियम के अनुकूल चलना चाहिये ! तभी हमारा अर्थ तथा परमार्थ सिद्ध होगा !! अन्यथा नहीं !!!

दोहा

अर्थ सार संसार सत, रत मत पत गत अर्थ।
या बिन सब नत, हत भये, कर्म कला गुण व्यर्थ ॥ १ ॥
सब साधन को मूल ये, अर्थ बिना सब व्यर्थ।
आलस फूट अनर्थ तम, तज के साधो अर्थ ॥ २ ॥

निवेदन

ऐसा मंदिर तथा शाला स्थापित करने की अत्यन्त आवश्यकता है ! जहां बहुत करके रुग्ण-केवल कर्मकांड संबंधी प्रयोगों द्वारा अनेक रोगों से छुटकारा पा सकें ! न औषधि खानी पड़े ! न पीनी पड़े ! न पिचकारी लगवानी पड़े ! और न चीर फाड़ करवानी पड़े ! जिसे देख, मुझ सरीखे श्रद्धाहीनों की धर्म ग्लानि मिटे !! और उस पाठशाला में श्रद्धालु अधिकारियों को सनातन धर्म की उपयुक्त शिक्षा दी जावे !!!

इसीलिये इस स्वधर्म सर्वस्व ग्रंथ का हक नहीं बेचा गया ! बल्कि इस ग्रंथ तथा इसके भाषांतर आदि से जो कुछ धनार्जित होगा ! वह उपरोक्त मंदिर तथा शाला के संस्थापन में लगाया जावेगा !! अन्य काम में नहीं !!!

जो सज्जन उपरोक्त कार्य के लिये, मेरी अनुमति से इस ग्रंथ को छपावेंगे ! किन्तु जब तक वे वैसा मंदिर तथा शाला स्थापित न कर सकेंगे !! तब तक वे महानुभाव केवल कमीशन पा सकेंगे !!!

बाकी बचत का रुपया, उक्त काम के लिये, मेरे नाम पर, किसी अच्छे बैंक या साहूकार के पास जमा रहेगा ! उसके व्यय का अधिकार केवल मुझे रहेगा !! अन्य को नहीं !!!

जिन महाशयों को यह बात स्वीकार होगी ! वे ही इस ग्रंथ को तथा इसके भाषांतर को तथा मेरे बनाये अन्य ग्रंथों को छपाने का अधिकार पा सकेंगे !! अन्य नहीं !!!

किन्तु जो सज्जन सनातन धर्म के उत्कर्ष के लिये इस ग्रंथ को धर्मार्थ बटवाना चाहें ! वा अति स्वल्प मूल्य पर बेचना चाहें ! जिसमें बचत की कोई सूरत न हो !! ऐसी दशा में उनका प्रस्ताव सहर्ष स्वीकारने के लिये तथा इस तन से उनकी सेवा उठाने के लिये, यह दास यथाशक्ति तैयार है !!!

आपका

भैरव सेवक

अर्थात्

गंगाधर बापूजी बुन्हानपुरकर

। इतिश्रीपरमगुरु प्रेरित स्वधर्मसर्वस्व अर्थादिशो द्वितीयो भागः समाप्तः ।

।। ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ।। शुभं भवतु सर्वस्य ।।

॥ हरि ॐ हर ॥

स्वधर्मसर्वस्व

तृतीय भाग–कर्मादेश

उपदेश १

कर्म

प्र०– कर्म किसे कहते हैं ?

उ०– जो किया जाय, उसे कर्म कहते हैं.

प्र०– कर्म किसके द्वारा किया जाता है ?

उ०– क्रिया शक्ति द्वारा.

प्र०– जड़रूप क्रियाशक्ति के द्वारा कब कर्म सुसिद्ध हो सकता है ?

उ०– जब उस कर्म का यथार्थ ज्ञान हो.

प्र०– क्या ज्ञान मात्र से क्रिया शक्ति उस कर्म को सुसिद्ध कर देती है ?

उ०– हमारी इच्छा अर्थात् प्रेरणा से.

प्र०– कब ?

उ०– जब हमें किसी काम करने की इच्छा होती है, तब हम अपने ज्ञान के अनुसार, क्रियाशक्ति को प्रेरित कर, अपना काम सुसिद्ध कर लेते हैं.

प्र०– कर्म कितने प्रकार के हैं ? और उनमें कौनसे त्याज्य हैं ?

उ०– कर्म दो प्रकार के हैं; अर्थात् विधि और निषेध; जिनमें निषेध त्याज्य हैं.

प्र०– विधि कर्म के कितने भेद हैं ?

उ०– दो भेद हैं; अर्थात् सकाम और निष्काम.

प्र०– सकाम कर्म के कितने भेद हैं ?

उ०– सत्व, रज, तम के कारण तीन भेद हैं.

प्र०– तमोगुणी कर्म तो निषेध है; वह कब विधि समझा जा सकता है ?

उ०– हिंसक प्राणियों के दमनार्थ.

प्र०– रजोगुणी कर्म भी निषेध है; वह कब विधि समझा जा सकता है ?

उ०– जो वंश, जाति, धर्म तथा देश के कल्याणार्थ किया जावे.

प्र०– सात्विक कर्म कब किये जाते हैं ?

उ०– धर्मार्थ तथा शांति के अर्थ.

प्र०– निष्काम कर्म किसे कहते हैं ?

उ०– जो निस्स्वार्थ बुद्धि से केवल अपना कर्त्तव्य पालनार्थ या परोपकारार्थ किये जाते हैं.

प्र०– निष्काम कर्मी किसे कहते हैं ?

उ०– जिसे लाभ हो, चाहे हानि हो, चाहे सुख हो, चाहे दुःख हो, तो भी जिसे न लाभ से हर्ष और न हानि से दुःख होता है, अर्थात् जो सुख दुख को समान समझ, निस्स्वार्थ बुद्धि से केवल अपना कर्त्तव्य पालन करता है, तथा प्राण संकट उपस्थित होने पर भी कदापि विचलित नहीं होता; बल्कि तब और भी दूने चौगुने उत्साह के साथ कटिबद्ध हो, उसे करने लगता है; चाहे उस कार्य में उसका देह पतन हो, चाहे न हो; किन्तु वह सदा इस बात के हर्ष सोच तथा कल्पना से दूर रहता है; स्वप्न में भी उसका हृदय इस चिंतना से रहित तथा निर्भय रहता है; उस सज्जन को निष्कामी कहते हैं. वह आवागमन की व्यथा से शीघ्र मुक्त हो जाता है !

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि निष्काम कर्म से ज्ञान और उस ज्ञान से मोक्ष होता है !

प्र०– मोक्ष तो संस्कारों के क्षय से होता है ?

उ०– पर उन संस्कारों का क्षय भी तो स्वयं ज्ञान से होता है !

प्र०– वह ज्ञान भी तो स्वयं तेज द्वारा होता है ?

उ०– किन्तु वह तेज इसी कर्म का फल है !

प्र०– तेज तो घर्षण द्वारा उपजता है ?

उ०– घर्षण भी तो एक प्रकार का कर्म है !

प्र०– तो फिर आपने कर्म से ज्ञान और उस ज्ञान से मोक्ष होना क्यों कहा ?

उ०– क्योंकि इस घर्षण रूपी कर्म से तेज उपजता है, जिस तेज के प्रकाश द्वारा हमें अज्ञात वस्तु का ज्ञान होता है; इसलिये कर्म ही ज्ञान का कारण है ! और फिर उस वस्तु ज्ञान से उसके होने न होने का सब संशय दूर हो जाता है; उस संशय के दूर होते ही तत्सम्बन्धी संकल्प विकल्प उठना बन्द हो जाते हैं; उन संकल्पों के न उठने से संस्कारों का नाश हो जाता है; उन संस्कारों के नसते ही उस झंझट से छुटकारा अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है; इसलिये ज्ञान ही मोक्ष का कारण है !! इसी विचार से कर्म से ज्ञान और ज्ञान से मोक्ष होना कहा जाता है !!!

प्र०– इसका कोई उदाहरण दो ?

उ०– मानो ! हम एक अत्यन्त अन्धेरी कोठरी में सो रहे थे, वहां अचानक हमें कुछ लगा, या चुबा; त्योंही हम मारे भय के उछल कर दूर खड़े हो गये और सोचा, कि अवश्य सर्प ही काटा है; फिर क्या था, लगे हांपने, कांपने और घबराने; कि अब हम किसी तरह नहीं बच सकते ! इतने में देव योग से किसी सज्जन ने बाहर से धीरज दे, झरोखे द्वारा एक दियासलाई दी; जिसे युक्तिपूर्वक घिस, सावधानी से देखा; तो हमें विदित हो गया, कि एक रस्सी में एक नुकीली कील बंधी हुई पड़ी है; वही भ्रम से सर्पाकार प्रतीत हो, लगी तथा चुबी है ! सिवाय इसके और कुछ नहीं ! बस ! ज्योंही वह संशय दूर हुआ, त्योंही उसके संस्कार रूपी संकल्प विकल्प हमारी आत्मा से दूर हो गये और फिर हम सब तरह निश्चित हो गये ! इसी तरह जो अविद्यांधकार में पड़े हुए हैं, वे कदाचित् मोह निशा से जाग, भ्रमवश अपने को संसाररूपी सर्प से डसा जान, घबराते हैं, इस बीच जो किसी सद्‌गुरु द्वारा

स्वतेज प्रकाशक क्रिया पा, उसके संयम द्वारा मिथ्या भ्रम को दूर कर, सब संस्कारों से रहित हो जाते हैं; वे आवागमन से छुट्टी पा जाते हैं, अर्थात् उन्हें मोक्षपद प्राप्त होता है !

दोहा

कर्म किये सों तेज व्है, तेजसु होत प्रकाश।
ता प्रकाश सों ज्ञान व्है, ज्ञानसु भ्रम को नाश ।।१।।
भ्रम बिनसे संकल्प नस, संस्कार नस वासु।
संस्कार के नसत ही, मिलै मोक्षपद तासु ।।२।।

जैसे

घसत सलाई आगी उपजै, आगी करत उजैला है।
दिसत उजैले से सब गैला, वाने भ्रमको पेला है ।।
भ्रमके बिनसे चिंता बिनसी, निर्भय आसन मेला है।
शून्य महल में बड़ी खुशी से, हरजन रहा अकेला है ।।१।।

उपदेश २

निष्कामता

प्र०– मैं समझता हूं, कि कोई काम न करना या उसकी कामना न करना निष्कामता कहाती है ?

उ०– कदापि नहीं.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि चुप बैठना भी तो एक काम है.

प्र०– तो फिर निष्कामता क्या वस्तु है ?

उ०– यह केवल सत्कर्म की मर्यादा की प्रतिबंधकता है; जिस तरह यम की मर्यादा की प्रतिबंधकता नियम है.

प्र०– इसका भावार्थ क्या है ?

उ०– अर्थात् केवल सत्कर्म को उसकी मर्यादानुसार, निस्स्वार्थ बुद्धि से सांगोपांग करना, किन्तु भूल कर भी चित्त को किसी अन्य काम की ओर न जाने देना, निष्कामता है.

प्र०– चित्त को दूसरी ओर क्यों न जाने दे ?

उ०– क्योंकि चित्त का एक अंगी तथा बहुतरंगी स्वभाव है.

प्र०– इसका भावार्थ क्या है ?

उ०– अर्थात् चित्त में तरंग तो बहुत उठा करते हैं; किन्तु वह अनेक काम एक साथ प्रायः सुसिद्ध नहीं कर सकता.

प्र०– तो फिर कोई-कोई गवैये पांच-पांच बाजे एक साथ किस तरह बजा लेते हैं ?

उ०– क्योंकि उनका लक्ष केवल एक सुर ताल के मिलान पर होता है.

प्र०– लड़ाई के वक्त योद्धा चारों तरफ क्यों देखता रहता है ?

उ०– क्योंकि उसका लक्ष सिर्फ निशाने पर होता है.

प्र०– यदि करते हुए काम को छोड़ चित्त अन्यत्र चला जाय; तो क्या हानि है ?

उ०– जिस तरह निशाने पर से लक्ष हटते ही योद्धा मारा जाता है; जिस तरह सुरताल के मिलान से चित्त हटते ही समा नष्ट हो जाती है; जिस तरह नियम को छोड़ते ही यम नष्ट हो जाता है; उसी तरह कर्त्तव्य को छोड़, चित्त के अन्यत्र जाते ही कार्य भ्रष्ट हो जाता है ?

प्र०– इसमें निस्स्वार्थ बुद्धि की आवश्यकता क्या है ?

उ०– क्योंकि जो स्वार्थ के लिये सत्कर्म करता है; यदि दैवयोग से वह कार्य सिद्ध न हुआ; तो उस मनुष्य की सत्कर्म रुचि हट जाती है.

प्र०– यदि न हटी तो ?

उ०– तो भी उसके चित्त में निज स्वार्थ के संकल्प जड़ जमा लेंगे; जिनके द्वारा चित्त दुचित्त होते ही कार्य भंग होगा.

प्र०– यदि कार्य भंग न हुआ तो ?

उ०– तो भी उसके द्वारा जैसी चाहिये वैसी सफलता प्राप्त न होगी.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह एक नटयोगी की दशा हुई थी.

प्र०– यह कथा कैसी है ?

उ०– एक समय किसी बहुरूपिया नट ने किसी राजा को प्रसन्न कर,

खास उसका प्रिय घोड़ा पारितोषिक में मांगा, पर राजा ने कहा, कि कोई ऐसा भेष बना, जिसमें हम तुझे पहिचान न सकें; तब तुझे यह घोड़ा मिलेगा ! स्वार्थ वश नट ने अनेक रूप धारे, किन्तु हर बार राजा ने उसे पहिचान लिया; अन्त को उस नट ने अन्यत्र जा, किसी महात्मा से जड़ समाधि लगाना सीख ली; नंतर वह वापिस उस राजधानी में लौट आया और नगर के बाहर कुटी बना, दो-दो चार-चार दिन की समाधि लगाने लगा. इसकी करामात देखकर मंत्री तथा अनेक नगर निवासी उसके शिष्य हो गये,अधिक प्रशंसा सुन, राजा की भी इच्छा हुई, राजा ने आदरपूर्वक निमन्त्रण दे, उसकी समाधि देखनी चाही; स्वार्थी नट मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ और तुरन्त गुफा में बैठ, समाधि चड़ाता हुआ ! समाधि ऐसी चढ़ी कि फिर न उतरी ! छः माह तक राह देखी गई ! किन्तु जब समाधि उतरती न देखी ! तो राजा ने गुफा का द्वार बन्द करवा दिया ! हजारों वर्षों के उपरान्त किसी विशाल नदी की बाढ़ से यह गुफा कट गई और वह बह चला ! आगे किसी ऋषि ने समाधिस्थ जान पकड़ लिया और अनुभवामृत पान करने की प्रबल आकांक्षा से ज्योंही उसकी समाधि उतारी ! त्योंही वह बार-बार प्रणाम कर घोड़ा मांगने लगा ! किन्तु जब उसने ऋषि को देखा ! तब पूछने लगा, कि मुझे यहां पर कौन लाया ? अमुक राजा का नगर कहां है ? तब ऋषि ने कहा, कि आप नदी में बहे जाते थे ! मैं निकाल लाया हूं ! न वह नगर है ! न वह राजा ! बल्कि यह महारण्य उस नगर के नाम से पुकारा जाता है ! अब आप कृपाकर अपना समग्र वृत्तान्त सुनाइये ! नट ने ज्यों का त्यों हाल कह सुनाया ! तब ऋषि बोले ! कि तुम्हें हजारों वर्षों की इस समाधि द्वारा क्या सिद्धि प्राप्त हुई ? नट बोला ! कि मुझे समाधि में केवल वही घोड़ा दिखाई देता था ! और मैं राजा से बार-बार घोड़ा मांग रहा था ! इस बात को केवल एक क्षण हुआ होगा ! जिसे आप हजारों वर्ष बताते हो !

सिवाय इन बातों के और कुछ सिद्धि-फिद्धि मैं नहीं जानता ! देखो ! सकामता ने अखण्ड समाधि लगने पर भी ब्रह्मानन्द को न प्राप्त होने दिया !! न किसी प्रकार की रिद्धि सिद्धि को !!!

प्र०– निष्कामना तथा सकामता पूर्वक काम करने वाले में क्या विशेषता है ?

उ०– जो निष्कामता पूर्वक काम करता है, वह उस काम का तथा उसके अंग प्रत्यंगों तथा उन सबके गुणों का पूर्ण ज्ञाता हो जाता है, और फिर वह उस अनुभविक ज्ञान के द्वारा नित नयी युक्ति निकाल, अपनी उन्नति करता हुआ, संसार को अनेक लाभ पहुंचा, यश का भागी होता है ! किन्तु सकामी-स्वार्थ वश चित्त की चंचलता के कारण, उसके द्वारा जैसा चाहिये, वैसा लाभ नहीं उठा सकता !! जैसा बेगारी !!!

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि सकामी के मन में बसा हुआ, अन्य भाव उस कर्त्तव्य के गुणों का ध्यान नहीं करने देता ! ध्यान के बिना उसके सूक्ष्म गुण दोष विदित नहीं होते ! उनके विदित हुए बिना, न उस काम के दोष हटाये जा सकते हैं ! और न उनके गुणों द्वारा उचित लाभ उठाता जा सकता है !! इसलिये सकामी अमोघ लाभ से सदा वंचित रहता है !!!

प्र०– लाभ किसे कहते हैं ?

उ०– जिसके द्वारा दोनों लोक सुधरें, वही वास्तविक लाभ है ! इसे इस तरह भी कह सकते हैं ! कि जिसका परिणाम सराहनीय हो ! अर्थात् जो सृष्टि नियम के अनुकूल हो ! वही वास्तविक लाभ कहा जा सकता है !! अन्य नहीं !!!

दोहा

करत सुनत देखत वही, मन गुंतारा और ।
वाकी करनी व्यर्थ सब, महा हानि को ठौर ।।१।।

करत सुनत देखत वही, कहत वही मन और ।
वाहूको करनी वृथा, अधोगति को ठौर ।।२।।
करत कछू देखत कछू, सुनत कछू बक और ।
महामूढ़ सो जानिये, दुख दारिद को ठौर ।।३।।
मन में रखे विचार ना, करे और मन और ।
धिक धिक धिकता मनुजको, एक चित दो ठौर ।।४।।
वह मूरख सिर मौर है, करै और को और ।
निश्चय फंसिके मरत वो, जिमि कपि कठ घट ठौर ।।५।।
करत वही देखत वही, सुनत वही कह गौर ।
धन्य धन्य वा मनुज को, मनहू जा वा ठौर ।।६।।
निष्कामी है जौहरी, कुली सकामी जान ।
हीरा परखा इसीने, उसने खोदी खान ।।७।।
निष्कामी है जौहरी, कामी पत्थर फोर ।
हीरा पाया काहु ने, गिट्टी लीन्ह बटोर ।।८।।

उपदेश 3

विचार

प्र०– विचार किसे कहते हैं ?

उ०– ∵ (वि)=विशेष, (चार)=चालन, गति ∴ (विचार)=बुद्धि का विशेष चालन करना या बुद्धि को विशेष गति देना अर्थात् बुद्धि-द्वारा विशेष सोचने को विचार कहते हैं.

प्र०– यदि हम कोई काम करना चाहें तो ?

उ०– तो प्रथम हमें यह सोचना चाहिये, कि यह काम हितकारक है या अनहितकारक ! जो अनहितकारक हो, तो उसे कदापि न करें !

प्र०– यदि वह काम हितकारक हो तो ?

उ०– तो यह देखे ! कि इसका करना विधि है या निशेध ! जो निषेध हो, तो उसे कदापि न करें !

प्र०– यदि उस काम का करना विधि है तो ?

उ०– तो यह देखे ! कि यह हमारी शक्ति के भीतर है या बाहर ! जो शक्ति के बाहर हो, तो उसे कदापि न करे !

प्र०– यदि वह काम हमारी शक्ति के भीतर हो तो ?

उ०– तो यह देखे ! कि यह देश, काल तथा लोकाचार के अनुकूल है, कि नहीं ! जो प्रकिकूल हो, तो उसे कदापि न करे !

प्र०– यदि वह काम देश, काल तथा लोकाचार के अनुकूल हो तो ?

उ०– तो यह देखे ! कि हमारे हितचिंतक राजा की आज्ञा है या नहीं ! जो उनकी अवज्ञा होती हो, तो उसे कदापि न करे !

प्र०– यदि राजा के विरुद्ध न हो तो ?

उ०– तो यह देखे ! कि हमें इस कार्य के करने का अधिकार है, कि नहीं ! जो अधिकार न हो, उसे कदापि न करे !

प्र०– यदि अधिकार हो तो ?

उ०– तो यह देखे ! कि इस काम का विधि विधान क्या है ? यह काम किस युक्ति द्वारा अनायास हो सकता है ? जब तक विधि विधान विदित न हो, तब तक उसे कदापि न करे !

प्र०– यदि साधन क्रम भी विदित हो गया हो तो ?

उ०– तो प्रथम नियमावली बना, ऐसी व्यवस्था कर दे; जिससे काम सरलतापूर्वक चल सके ! जब तक ठीक-ठीक व्यवस्था न हो; तब तक कदापि कार्यारंभ न करे !

प्र०– यदि ठीक-ठीक प्रबन्ध हो जाय तो ?

उ०– तो दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ, सावधानी से, निष्कामतापूर्वक, नियमानुसार, उसे सम्पादन करे ! किन्तु अधूरा कदापि न छोड़े !

प्र०– सबसे अधिक विचार किस बात का रक्खे ?

उ०– स्वधर्म का !

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह स्वधर्म की रक्षा हो ! उसी तरह विचरे !! अन्यथा नहीं !!!

दोहा

कौन कर्म मम कौन मैं, देश काल गति कौन।
न्याय लाभ बल देखिके, काज साधिये तौन ।।१।।
न्याय विरूद्ध न कीजिये, कबहूं भूलि विचार।
याही में सब हित सधै, यही समझ को सार ।।२।।
उत्तम वही विचार है, जासे बचे स्वधर्म।
सद्गति व्है द्वै लोक में, कीजे सोई कर्म ।।३।।

उपदेश ४

व्यवस्था

प्र०– व्यवस्था का क्या अर्थ है ?

उ०– विशेष अवस्था अर्थात् प्रबन्ध.

प्र०– व्यवस्था क्या वस्तु है ?

उ०– यह हर काम का मुख्य अंग है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि व्यवस्था के बिना कोई कार्य सुसिद्ध नहीं हो सकता.

प्र०– व्यवस्था किसके अनुसार करे ?

उ०– नियमानुसार।

प्र०– किस तरह ?

उ०– अर्थात् जिस रीति से कार्य सुसिद्ध हो सकता हो, उसी तरह की व्यवस्था करे।

प्र०– मानो कोई कृषि किया चाहता है, वह क्या व्यवस्था करे ?

उ०– पहिले तो तीन वर्ष तक के लिये घर में खाने पीने का सुभीता करले, तथा इतना धन उपस्थित रक्खे, जिससे तीन साल तक सरकारी लगान व मजदूरों का मिहनताना चुकाते वक्त कोई झंझट न पड़े, और कृषि के सम्पूर्ण नियम अच्छी तरह सीख ले; तथा उसका स्वतः अनुभव करले और खाद, बीज, गाय, बैल, आदमी, भूमि, कूप, नाड़ी चरस, हल, बखर आदि निज के करले;

तब स्वयं आप तन से उसे करे या निग्रानी रक्खे, और सदा उन्नति का लक्ष रक्खे; तब कृषि द्वारा लाभ हो सकता है !

प्र०– मैं तो नम्बरदार का नौकर हूं, मैं कृषि के लिये किस तरह व्यवस्था करूं ?

उ०– तुम तो हर माह कुछ रुपया बचाते जाओ और मौका पाकर बचत की अर्द्ध पूंजी से धीरे-धीरे छोटे-छोटे बच्छे, बछियां खरीदते जाओ. और शेष धन से उनके रक्षणार्थ घांस, भूंसा, बिनौला, खली, चराई, टेक्स आदि का प्रबन्ध करते जाओ, जब घर ही में दस-बारह गाय और चार-छे बैल हो जांय और तीन वर्ष के सब खर्च का भी इंतिज़ाम हो जाय, तब बैलों के अनुसार उत्तम जमीन आदि का सुभीता करके कृषि कार्य प्रारम्भ कर दो; किन्तु कोई कार्य ऋण द्वारा करने की इच्छा तक मत करो ।

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि जब ऋणी की, ऋण से ली हुई पूंजी हानि द्वारा नष्ट हो जाती है, तब उसे दिवालिया समझ, फिर कोई उधार नहीं देता, उल्टे सब ऋणदाता उसके पीछे पड़, उसकी इज्ज़त तीन कौड़ी की कर देते हैं, उसका शील स्नेह, विश्वास संसार से उठ जाता है; तथा वह सबकी दृष्टि में तुच्छ जंचने लगता है, और उसके मित्र भी शत्रु बन जाते हैं; कोई उसका माल कुर्क कराके नीलाम कराता है, कोई उसे कैद कराता, कोई गाली देता, कोई मारपीट करता इत्यादि—और इधर पेट को भी खाना व तन को कपड़ा मिलना कठिन हो जाता है; क्योंकि ब्याज के मारे, ऋण का भार, प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है; जिसके मारे, बड़े-बड़े राजाओं के राजपाट, घरद्वार तक नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं, तो साधारण मनुष्य की क्या कथा; या तो फिर लज्जित हो अपना प्यारा प्राण अपने ही हाथों से खोता है, या निर्लज्ज बन झूंठ, अधर्म, छलछिद्र आदि से कुत्ते, बिल्ली के समान अपना जीवन व्यतीत कर दोनों लोक बिगाड़ लेता है; इसलिये कदापि कर्ज न करे.

प्र०– कदाचित् किसी संकट के समय कर्ज हो जाय तो ?

उ०– तो उसे सज्जनता से युक्तिपूर्वक दे, ऋणमुक्त हो जाय.

दोहा

बिना व्यवस्था नियम के, कबहुं न करे अरंभ ।
इनके बिना न काज व्है, जिमि मंदिर बिन थंभ ।।१।।
नियम व्यवस्था के बिना, कारज होत अपंग ।
जिमि ता नर की व्है दशा, जा तन में अर्द्धंग ।।२।।
नियम व्यवस्था होत ही, आधो निपटत काम ।
रह्यो शेष व्है तुरत ही, करै यदा निष्काम ।।३।।
सोच समझके कीजिये, नियमित अचल प्रबन्ध ।
जिससे कदा न विघ्न की, उपज सके ना गंध ।।४।।
मुख्य व्यवस्था काज में, जिमि तन में सिरराय ।
या बिन कारज नसत है, वा बिन मनुज नसाय ।।५।।
ऋण कबहुं ना लीजिये, ऋण से है हित हानि ।
संकट वश ऋण जो लियो, तो देवैं धरि ध्यान ।।३।।

उपदेश ५

पवित्रापवित्र

प्र०– धर्मशास्त्र ने किन पदार्थों को पवित्र माना है ?

उ०– केवल उन्हीं पदार्थों को पवित्र माना है, जो शारीरिक तथा मानसिक विकारों को शोधते तथा हरते हुए, अन्त को लाभ पहुंचाते हैं ।

प्र०– धर्मशास्त्र ने किन पदार्थों को अपवित्र माना है ?

उ०– जो शारीरिक दशा को दूषित कर बिगाड़ते तथा हानि पहुंचाते हैं ।

प्र०– सूती वस्त्र जो कि वनस्पति संभूत कर्पास द्वारा बुना जाता है, उसकी अपेक्षा रेशमी वस्त्र जो कि असंख्य कृमि हत्या के पश्चात् उपस्थित होता है; क्योंकर पवित्र माना जाता है ?

उ०– क्योंकि सूती वस्त्र की अपेक्षा रेशमी वस्त्र हमारी शरीरगत ऊष्मा की अधिक रक्षा करता है, उसी तरह बाहर की छूत तथा उष्ण, शीत जन्य विकारों से भी बचाता है; इत्यादि.

प्र०– धर्मशास्त्र ने निज भेड़ों के झुण्ड में रहने का अवरोध किया; उसीने भेड़ों के बालों से बने वस्त्र को क्यों पवित्र माना ?

उ०– क्योंकि भेड़ों का मैल अत्यन्त दुर्गंधित तथा वातकारक होता है, उस विकार से बचने के लिये अवरोध किया; किन्तु भेड़ों के बाल रेशम के समान गुणकारी है; इसलिये ऊनी वस्त्रों को पवित्र माना ?

प्र०– अन्य पशुओं की अपेक्षा सिंह, व्याघ्र तथा मृग का चर्म क्यों पवित्र माना ?

उ०– क्योंकि इनका चर्म दुर्गंध रहित तथा रेशम के तुल्य गुणकारी होता है.

प्र०– मृगों का सींग तथा हाथीदांत क्योंकर पवित्र माना ?

उ०– क्योंकि यह अन्य हड्डियों के समान दाहक तथा विकारी नहीं है, इस पर छूत का असर नहीं होता तथा यह अनेक रोगों को हरता है.

प्र०– गो का मलमूत्र इतना पवित्र क्यों माना ?

उ०– क्योंकि यह शरीर का शोधक, अनेक रोगों का हारक तथा परम-गुणकारी है.

प्र०– जबकि गोचर्म का जूता पहिनते हो, सड़क का पानी पीते हो, उसके मलमूत्र तथा दुग्ध को स्वीकारते हो; तो फिर उसके मांस से इतनी घृणा क्यों करते हो ?

उ०– क्योंकि उसका मांस अनेक रोगों का घर तथा अपार हानि का द्वार है.

प्र०– तो फिर गो के मस्तिष्क तथा पित्ते से निकाला हुआ गोरोचन क्यों पवित्र समझते हो ?

उ०– क्योंकि वह कस्तूरी के समकक्ष गुणकारी है.

प्र०– कस्तूरी भी तो मृग के नाभि तथा कुठौर का मांस है ! उसे क्यों-कर पवित्र मानते हो ?

उ०– क्योंकि वह बल, बुद्धि, आयुष्य तथा स्वतेज बढ़ाने वाली और अनेक रोग हरने वाली है.

प्र०— लशुन तथा प्याज आदि को अपवित्र क्यों मानते हो ?

उ०— क्योंकि ये अपने दुर्गन्ध आदि से मस्तिष्क आदि को दूषित कर देते हैं.

दोहा

जासे सब बिधि मनुज का, हित होवै सो पाक ।
अनहितकारक जो सदा, कहलावत न पाक ।।१।।
कारण हित है धर्म निज, अनहित अहै अधर्म ।
याते हितकर कीजिये, दुष्फल तजो अकर्म ।।२।।

उपदेश ९

यज्ञज्ञान

प्र०— यज्ञ का पूर्ण ज्ञान किसके द्वारा होता है ?

उ०— वेद के पूर्ण ज्ञान द्वारा.

प्र०— यज्ञ किसे कहते हैं ?

उ०— यज्ञ उस कर्षण शक्ति अर्थात् कशिस को कहते हैं, जो सूक्ष्म से लेकर स्थूल पर्यंत अखिल गुप्त प्रकट चराचर संसार को उपजाती, ठहराती तथा नसाती है और यही नाना प्रकार के परिवर्तन किया करती है.

प्र०— वह कशिस कहां है ?

उ०— वह व्यापक व्याप्य भाव से सबमें व्याप्त है.

प्र०— किस तरह ?

उ०— जिस तरह कज्जी में जल और जल में कज्जी व्याप्त होती है; उसी तरह सबमें कशिस और कशिस में अखिल संसार है.

प्र०— यह कशिस किन नामों से पुकारी जाती है ?

उ०— यज्ञ, यम, धर्म, प्रकृति, माया, शक्ति, कर्षण, क्रिया शक्ति, सत्ता, अविद्या आदि नामों से पुकारी जाती है.

प्र०— इसे यज्ञ क्यों कहते हैं ?

उ०— क्योंकि इस शक्ति के यजन से अखिल संसार उपजता, ठहरता, पलता तथा नष्ट होता है.

प्र०– इसे यम क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि यह शक्ति चराचर संसार का निग्रह करती है.

प्र०– इसे धर्म क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि यह शक्ति चराचर विश्व को धारे हुए है; सिवाय यह शक्ति उस चैतन्य की स्वाभाविक स्फुरणा शक्ति का धर्म है.

प्र०– इसे प्रकृति क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि यह सनातन तथा स्वाभाविक शक्ति पूर्व के संस्कारों को लेकर अखिल सृष्टि को बनाती है.

प्र०– इसे माया क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि (मा) का अर्थ आना, तौलना, समाना और (या) का अर्थ जो, जाना, है; इसलिये जो सबको तौले हुए है या जो सबमें समाई हुई है या जो सबके आवागमन का कारण है; उस शक्ति को माया कहते हैं.

प्र०– इसे शक्ति क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि यह सम्पूर्ण कार्य करने को समर्थ है.

प्र०– इसे कर्षण क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि इसे आगे पीछे खेंचने, हटाने, घुमाने तथा ठहराने की गति है.

प्र०– इसे क्रियाशक्ति क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि इसके द्वारा सब कुछ किया जाता है.

प्र०– इसे अविद्या क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि यह शक्ति तेज को छिपाए हुए ! तथा तेज के विरुद्ध है; इसीसे यह ज्ञानरहित जड़रूप है; तभी जो इसके आधीन हो जाता है; वह अविद्यांधकार में पड़ नष्ट होता है, किन्तु जो इसे वश्य कर लेता है, वह दिव्य तेज को पा, ज्ञानी हो, आवागमन से मुक्त हो जाता है, या अनेक प्रकार की रिद्धिसिद्धि को पाता है; इसलिये इसे अविद्या कहते हैं.

प्र०– यह किसके अनुसार वर्त्तती है ?

उ०– सनातन नियमानुसार.

सारांश

शीत उष्ण गुण तेज ज्ञान तम, फैलाती सुकड़ाती है ।
रवि विद्युत जल वायु अनलकों, ये गति अगति दिलाती है ।।
अंडज, पिंडज, स्वेदज उद्भिज, ये चर अचर बनाती है ।
ये उपजाती ये ठहराती, रखवाती नसवाती है ।।१।।

ये रवि भाती विद्युत भाती, वायु बहाती रहती है ।
अग्नि जलाती जल बरसाती, बना धरा को गहती है ।।
गुप्त प्रकट जग वस्तु अनेकन, करती लघु अरु महती है ।
नियमाधीन करत ये सब कुछ, रचती रखती नहती है ।।२।।

कोउ कहत हैं यज्ञ इसी को, कोउ कहैं प्रभु धर्मा है ।
कोउ कहत हैं प्रकृति स्वभावा, कोउ शक्ति को कर्मा है ।।
कोउ कहत हैं माया नटनी, क्रिया शक्ति ये पर्मा है ।
कोउ कहत ये यमुज सनातन, कोउ अविद्या शर्मा है ।।३।।

ये आकर्षण निराकरणये, यही जु स्थंभन करता है ।
खर्चत नाशत निराकरण बन, सब काहूकी हर्त्ता है ।।
देत बढ़ावत सब आकर्षण, जन्म लाभ जग कर्त्ता है ।
स्थंभन थांबे सभी पदारथ, यही जगत की धर्त्ता है ।।४।।

दोहा

करत धरत औ हरतये, प्रभु इच्छा सो सर्व ।
याते याही नियमसों, करो वश्य तजि गर्व ।।१।।
सब कारज ये करत जग, अनायास परिपूर्ण ।
याते याही साधिये, वेद विधीसो तूर्ण ।।२।।

उपदेश ७

यजन

प्र०– कर्षण शक्ति के यजन के मुख्य भेद कितने हैं ?

उ०– तीन हैं अर्थात् आकर्षण, निराकरण और स्थंभन.

प्र०– केवल आकर्षण का यजन कब किया जाता है ?

उ०– बढ़ाने तथा मिलाने के लिये.

प्र०– केवल निराकरण का यजन कब किया जाता है ?

उ०– हटाने तथा नसाने के लिये.

प्र०– केवल स्थंभन का यजन कब किया जाता है ?

उ०– ठहराने तथा रखाने के लिये.

प्र०– एकही कशिस के तीन भेद क्यों हो जाते हैं ?

उ०– गति के कारण.

प्र०– आकर्षण की गति किस ओर को है ?

उ०– शरीर में सिर से पैर की ओर, पृथ्वी में दक्षिण से उत्तर की ओर, पश्चिम से पूर्व की ओर तथा उर्द्ध से अधोभाग की ओर है.

प्र०– निराकरण की गति किस ओर है ?

उ०– शरीर में पैर से सिर की ओर, पृथ्वी में उत्तर से दक्षिण की ओर, पूर्व से पश्चिम की ओर तथा अधोभाग से उर्द्ध भाग की ओर है.

प्र०– स्थंभन की गति कैसी है ?

उ०– स्थंभन शक्ति की वृत्ताकार या स्थिर गति है, जो शरीर में भ्रमती, पृथ्वी को भ्रमाती, सबको ठहराती तथा रखाती है.

प्र०– वृत्ताकार गति स्थंभनकारी क्योंकर कही जा सकती है ?

उ०– क्योंकि घूमता हुआ–जल से भरा पात्र, नहीं ढुलता, दीपक नहीं बुझता, अग्नि में धरा पारा नहीं उड़ता तथा भंवर में पड़ी नौकादि आगे नहीं बढ़ने पाती !

प्र०– स्थंभन शक्ति और कब उपजती है ?

उ०– आकर्षण तथा निराकरण के संयोग द्वारा.

प्र०– संध्यादिक कर्म में आकर्षण द्वारा क्या काम लिया जाता है ?

उ०– स्वतेज वृद्धि का.

प्र०– संध्यादिक में निराकरण द्वारा क्या काम लिया जाता है ?

उ०– शरीरगत दोष दूर करने का.

प्र०– संध्यादिक में स्थंभन द्वारा क्या काम लिया जाता है ?

उ०– शांति, पुष्टि, धृति, बुद्धि, ज्ञान प्राप्ति तथा आवागमन से रहित होने का.

प्र०– आकर्षण का सहज प्रयोग क्या है ?

उ०– पूरक या सिर से पैर की ओर यजन करना.

प्र०– निराकरण का सहज प्रयोग क्या है ?

उ०– रेचक या पैर की ओर से सिर की ओर यजन करना.

प्र०– स्थंभन के यजन का सहज प्रयोग क्या है ?

उ०– कुम्भक या वृत्ताकार गति से यजन करना.

प्र०– यज्ञ के यजन से और क्या होता है ?

उ०– संसार का हर काम होता तथा हर पदार्थ बनता है ?

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– यजुर्वेद का चमक अध्याय इस बात का साक्षी है.

दोहा

जो जाने या यजन को, बढ़ै तेज ता ज्ञान ।
पाप ताप संताप नस, सदा सुखी व्है मान ।।१।।
सहायता ले यजन की, कीजै समुचित कर्म ।
नियम सनातन गहि चलौ, होय सिद्ध ये धर्म ।।२।।

उपदेश ८

तेज

प्र०– तेज किसके द्वारा गति करता है ?

उ०– शक्ति के संचालन द्वारा.

प्र०– शक्ति किसके द्वारा गति करती है ?

उ०– तेज के संचालन द्वारा.

प्र०– तेज द्वारा शक्ति और शक्ति द्वारा तेज क्योंकर चलित हो सकता है?

उ०– क्योंकि चैतन्य में स्वतेज तथा स्वशक्ति इस तरह विराजती है; जिस तरह जल में स्फुरणा और द्रवता या तेज और गति या उष्णता और शीतलता विराजती है.

प्र०– शक्ति तथा तेज का संचालन किस पर अवलंबित है ?

उ०– चैतन्य की इच्छा पर.

प्र०– फिर क्योंकर हम, इन दोनों का संचालन कर सकते हैं ?

उ०– क्योंकि हम भी चैतन्य हैं ! जड़ नहीं ! किन्तु यह शरीर मात्र जड़ है ?

प्र०– तेज का प्रवाह किस ओर रहता है ?

उ०– सदा शक्ति के विरुद्ध.

प्र०– आकर्षण शक्ति का तेज कैसा है ?

उ०– निराकरणकारी,

प्र०– निराकरण शक्ति का तेज कैसा है ?

उ०– आकर्षणकारी.

प्र०– दोनों शक्तियों का मिश्रित तेज कैसा है ?

उ०– स्थंभनकारी.

प्र०– निराकरणकारी तेज किस ओर जा रहा है? (हमारा आकर्षणकारी)

उ०– शरीर का तेज-सिर से पैर की ओर या बाहर से भीतर की ओर जा रहा है ! और पृथ्वी का तेज-उत्तर से दक्षिण को, पश्चिम से पूर्व को तथा ऊपर से नीचे को जा रहा है !

प्र०– आकर्षणकारी तेज किस ओर जा रहा है ? (हमारा निराकरणकारी)

उ०– शरीर का तेज-पैरों की ओर से सिर की तरफ या भीतर से बाहर की ओर जा रहा है ! पृथ्वी का तेज-दक्षिण से उत्तर, पूर्व से पश्चिम तथा नीचे से ऊपर को जा रहा है !

प्र०– स्थंभनकारी तेज किस ओर जा रहा है ?

उ०– वह वृत्ताकार गति किया करता है.

प्र०– निराकरणकारी तेज की रक्षा किनके द्वारा होती है ?

उ०– शिखा, जटा, रुद्राक्ष, भस्म, आच्छादन आदि द्वारा.

प्र०– आकर्षणकारी तेज की रक्षा किनके द्वारा होती है ?

उ०– आसन, पदत्राण, भस्म, आच्छादन आदि द्वारा.

प्र०– तेज के स्थंभनकारी कौन हैं ?

उ०– योग, यज्ञोपवीत, मेखला, माला, भस्म, आच्छादन आदि.

प्र०– कौनसा तेज अधिक रक्षणीय है ?

उ०– निराकरणकारी.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि इसके नष्ट होने से आयु नष्ट होती है,

प्र०– निराकरणकारी तेज की पूर्ण रक्षा कब हो सकती है ?

उ०– आकर्षणकारी तेज के युक्त होने पर.

प्र०– इनका परस्पर क्या सम्बन्ध है ?

उ०– इनका जन्म तथा गुण भिन्न होने पर भी परस्पर प्रगाढ़ सख्यत्व है ! इनका संयोग आवागमन से रहित करने वाला तथा वियोग आवागमनकारी है ! तिस पर हमारा आकर्षण-वही औरों का निराकरण है ! और हमारा निराकरण-वही औरों का आकर्षण है ! चाहे वह हमारी शक्ति हो ! चाहे तेज !

दोहा

शक्ति वेगसो तेज ये, सदा बहै विपरीत ।
ताहि गहौ हर वस्तुसों, काज हेत जस रीत ।।१।।
निराकरण कर्षण मिलै, या दोनों के काश ।
थाभैं राखैं तम हरैं, जन्म मरण भ्रम नाश ।।२।।

उपदेश ९

यज्ञ तेज के प्रमाण

प्र०– यज्ञ से यज्ञ होता है या यज्ञ-यज्ञ के पास जाता है; इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– वेद में देखो ! (यज्ञेनयज्ञमयजन्त.) अर्थात् यज्ञ द्वारा यज्ञ को यजते हुए आदि ! और (यज्ञ यज्ञं गच्छ.) अर्थात् हे यज्ञ ! यज्ञ के पास जाओ आदि !

प्र०– कोई प्रत्यक्ष प्रमाण दो !

उ०– (१) तभी तो चुम्बक की कशिस से लोहे में कशिस उपजती है !

(२) उत्तरीय रगड़ से आकर्षण और दक्षणीय रगड़ से निराकरण उपजती है !

(३) सूर्य की कशिस से ग्रहों में कशिस; और गति से गति उपजती है !

(४) हर पिंड परस्पर एक दूसरे की कशिस से ठहरे हुए गति कर रहे हैं !

(५) सिवाय आकर्षण से निराकरण तथा निराकरण से आकर्षण उपज सकती है !

प्र०– तेज से तेज होता है ! इसका क्या प्रमाण ?

उ०– वेद में देखो ! (देवदेवमवर्द्धयत्.) अर्थात् देव को देव बढ़ाता हुआ ! (देवा दैव्या होतारा देवमिद्रं वयोधसन्देवौ देवमर्द्धताम्.) अर्थात् प्रकृति से उपजे हुए तथा आह्वान किये हुए सब देवता-आयु को बढ़ाने वाले इन्द्रदेव को और दोनों देवता अन्य देव को बढ़ाते हुए आदि !

प्र०– कोई प्रत्यक्ष प्रमाण दो !

उ०– (१) तभी तो दीपक से दीपक प्रज्वलित किया जा सकता है !

(२) एक अग्निकण भी पर्वत राशी को भस्म कर सकता है !

(३) धनविद्युत से ऋणविद्युत तथा ऋणविद्युत से धनविद्युत उपज सकती है !

(४) तेज से विद्युत और विद्युत से तेज उपज सकता है !

प्र०– यज्ञ से तेज होता है ! इसका क्या प्रमाण ?

उ०– वेद में देखो ! (देवहूर्यज्ञ.) अर्थात् देव को बुलाने या प्रज्वलित करने वाला यज्ञ है इत्यादि ! (यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नं.) अर्थात् यज्ञ-देवों की प्रीति करने को अथवा उपजाने को लौटाता है; इत्यादि !

प्र०– कोई प्रत्यक्ष प्रमाण दो !

उ०– (१) तभी तो घर्षण या मंथन से अग्नि उपजता है !

(२) चुम्बक से तेज प्रकटता है !

(३) कशिस से बिजली पैदा होती है !

(४) वेग से या गति से विद्युत उपजती है !

प्र०– तेज से यज्ञ होता है ! इसका क्या प्रमाण ?

उ०– वेद में देखो ! (देवायज्ञमतन्वत.) अर्थात् सब देव-यज्ञ को विस्तारते हुए आदि ! अथवा (यज्ञेन यज्ञ मयजन्त देवा.) अर्थात् सब देव-यज्ञ द्वारा यज्ञ को यजते हुए; इत्यादि !

प्र०– कोई प्रत्यक्ष प्रमाण दो !

उ०– (१) तभी तो तेज गति और गति से नेज उपजता है !

(२) तेज से पदार्थों की वाष्प हो उड़ जाती है !

(३) विद्युत के प्रयोग द्वारा लोहे का चुंबक बन जाता है !

(४) विद्युत के द्वारा यंत्र चलाये जाते हैं !

प्र०– पृथ्थी की शक्ति दक्षिणोत्तर को गति करती है ! इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– (१) तभी तो ध्रुवमत्स्य यंत्र की सुई सदा दक्षिणोत्तर रहती है ?

(२) चुंबक की खानों का रुख सदा दक्षिणोत्तर रहता है !

(३) यदि हम ऐरण पर एक लोहे की पत्ती दक्षिणोत्तर रख कर, लगातार हथोड़े से दम दमाते रहें; तो एक प्रहर के बाद उसमें आकर्षण शक्ति पैदा हो जावेगी !

प्र०– पृथ्वी को गति देने वाली शक्ति-पश्चिम से पूर्व को बह रही है ! इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो सूर्य पूर्व से प्रकाशता हुआ तथा पश्चित को जाता हुआ दिखाई पड़ता है; क्योंकि शक्ति इस पृथ्वी को पश्चिम से पूर्व की ओर गति दे रही है !

प्र०– पृथ्वी की कशिस उर्द्ध से अधोभाग की ओर है ! इसका क्या प्रमाण ?

उ०– (१) तभी तो आकाश की ओर फेंका हुआ, पदार्थ पुनः पृथ्वी पर आ गिरता है ! क्योंकि पृथ्वी की कशिस उसे अपनी ओर खींच लेती है !

(२) सिवाय अग्नि की ज्वाला ऊपर की ओर जाती है ! क्योंकि तेज की गति कशिस के विरूद्ध है !

प्र०– हमारी आकर्षण शक्ति शिर से पैर की ओर तथा निराकरण शक्ति पैर से शिर की ओर गति करती है ! इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– (१) तभी हमारे पैर स्वभाव ही से पृथ्वी से लगे रहते हैं और शिर आकाश की ओर उठा रहता है !

(२) पैरों की गर्मी शीघ्र आंखों पर जा पहुंचती है !

(३) मरने के वक्त पहिले पैर, फिर उदर तथा सबके पीछे शिर ठंडा होता है !

(४) उल्टा यजन (पास) करने से शीघ्र शरीर की उष्णता घट जाती है !

(५) सीधा यजन (पास) करने से विद्युत संपूर्ण शरीर में व्याप्त हो जाती है !

प्र०– जल प्रवाह के विरूद्ध उसका तेज बहता है ! इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– (१) तभी तो झरनों के ऊपरी भाग से तेज लिया जा सकता है !

(२) और तभी नदियों के ऊपरी भाग पर चूना तथा आग्नेय पत्थर आदि पाये जाते हैं !

प्र०– अग्नि प्रवाह के विरूद्ध उसकी विद्युत की गति है ! इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो अग्नि द्वारा पृथ्वी का अन्तरस्थ भाग बहुत उष्ण हो जाता है !

प्र०– तो फिर सिगड़ी में रखी अग्नि पृथ्वी को क्यों नहीं तपा सकती ?

उ०– वायु के आवरण के कारण !

प्र०– वायु की विद्युत की गति किस ओर है ?

उ०– उसके तरंगों के विरुद्ध सर्वत्र है ! पर वह ऊंचाई पर अनायास प्राप्त हो सकती है !

प्र०– अदृश्य शक्ति तथा उसके तेज का ज्ञान किसके द्वारा हो सकता है ?

उ०– गति के द्वारा.

प्र०– क्योंकर ?

उ०– क्योंकि गति के अनुकूल शक्ति और प्रतिकूल तेज रहता है !

प्र०– देव के आवाहन विसर्जन से क्या मतलब है ?

उ०– शरीर शुद्धि के लिए शुद्ध तेज लेना तथा मलिन तेज का विसर्जन करना, इस तरह नित नवीन तेज के आने जाने से शरीर रोग रहित हो जाता है ! शान्ति, पुष्टि, कांति, आयु, बुद्धि आदि बढ़ जाती है !

दोहा

यज्ञसु होवत यज्ञ है, तेजसु होवत तेज ।
तेजसु होवत यज्ञपुनी, यज्ञसु होवत तेज ।।१।।
तेजसु होवत यह गति, गतिसो होवत तेज ।
व्याप्त परस्पर ये उभय, बिना कष्ट बिन बेज ।।२।।
यज्ञसु होवत यह गती, गति सो होवत यज्ञ ।
व्याप्त परस्पर ये उभय, लखै प्रज्ञ ना अज्ञ ।।३।।

उपदेश १०

स्पर्शदोष

प्र०– स्पर्श से क्या दोष होता है ?

उ०– परस्पर एक के तेजाणु दूसरे में प्रविष्ट होने लगते है.

प्र०– किसके द्वारा ?

उ०– परस्पर की कशिस द्वारा.

प्र०– तेजाणुओं के संक्रमण से क्या होता है ?

उ०– दोनों की ऊष्मा मिश्रित हो जाती है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह उष्ण जल पात्र से छूता हुआ शीतल जल पात्र रखने से दोनों पात्रों का जल समशीतोष्ण हो जाता है.

प्र०– ऐसा होने से क्या होता है ?

उ०– परस्पर एक के गुण दोष एक-दूसरे में आ जाते हैं.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह अच्छे बुरे पदार्थों के संसर्ग से जल आदि द्रव पदार्थ भी सुगन्धित तथा दुर्गंधित हो जाते हैं.

प्र०– छूत का प्रभाव किस पर शीघ्र पड़ता है ?

उ०– शुद्ध तेजाणु वाले पर.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह स्वच्छ स्वेत वस्त्र पर तुरन्त हर प्रकार का रंग चढ़ जाता है या धब्बा लग जाता है.

प्र०– तेजाणुओं के अशुद्ध होने से क्या होता है ?

उ०– ज्ञान तंतुओं की प्रबलता तथा शरीर की आरोग्यता नष्ट हो जाती है.

प्र०– किसका प्रभाव किस पर अधिक पड़ता है ?

उ०– प्रबल तेजाणु वाले का प्रभाव निर्बल तेजाणु वाले पर अधिक पड़ता है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह हींग का प्रभाव कपूर पर तथा चंदन का प्रभाव ढाक पर पड़ता है.

प्र०– किन कर्मों द्वारा छूत लगती है ?

उ०– एक साथ बैठने, सोने, खाने, पीने, चलने, बोलने, खेलने, पढ़ने, यजन करने, स्वास लेने, निस्वास छोड़ने, फेंकने, मारने, देने लेने तथा छूने आदि द्वारा.

प्र०– नि:स्वास द्वारा क्योंकर छूत लगती है ?

उ०– क्योंकि हर प्राणी के नि:स्वास द्वारा वात, पित्त तथा कफ के परमाणु निकला करते हैं; वे परमाणु स्वास द्वारा दूसरों के अंग में प्रविष्ट हो, अनेक प्रकार के रोग उपजाते हैं.

प्र०– ऊष्मा शरीर के किस अंग से निकला करती है ?

उ०– हर अंग से.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– किसी शीतल धातु के टुकड़े को अपने किसी अंग द्वारा दबा रखो ! तो वह पदार्थ अवश्य गरम हो जावेगा.

प्र०– वास्तविक में शरीरगत तेज हमारा क्या है ?

उ०– हमारा जीवनमूल है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि यही स्वास नि:स्वास कराता है, अन्न पचाता, रसादि बना, शरीर को सींचता, शरीर की रक्षा करता, तद्गत मलादि दूषित पदार्थों को बाहर निकालता, ज्ञान तन्तुओं को चैतन्य करता है; कहां तक कहें ! जिस दिन यह न रहेगा ! उस दिन हम भी न रहेंगे ! ! इसलिये यह सदा रक्षणीय है ! ! !

प्र०– इस तेज की दूषित छूत किस तरह दूर हो सकती है ?

उ०– रेचक प्राणायाम या मार्जन द्वारा.

प्र०– इस तेज की जलन किसके द्वारा दूर होती है ?

उ०– पूरक प्राणायाम तथा तर्पण द्वारा.

प्र०– इस तेज की वृद्धि किसके द्वारा होती है ?

उ०– कुंभक प्राणायाम तथा अर्घ्य द्वारा.

प्र०– इस तेज की रक्षा किसके द्वारा होती है ?

उ०– कुंभक, भस्म धारण तथा परिक्रमा से.

प्र०– किन छूतों से सदा बचना चाहिये ?

उ०– रुज कुगंध अपवित्रता, खानपान विपरीत ।
रजस्वलाखल सूत की, बच कुचलन की छीत ।।१।।

प्र०– ये छूत किस तरह व्यापती है ?

उ०– **तन में मन में छूत ये, द्रुत व्यापै असधाय।**
तैलबिंदु जस नीर में, डारतही फैलाय ।।२।।

प्र०– किसकी छूत न माने ?

उ०– **जाको तन मन वसन प्रण, खान पान सब शुद्ध।**
ताकी छूत न मानिये, जो हितकर बर बुद्ध ।।३।।

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि पवित्र के संसर्ग से हमारे तेजाणु पवित्र हो जावेंगे और जो हमें पवित्र संग से पवित्र रहने का अभ्यास पड़ जावेगा; तो हमारी बुद्धि, शक्ति, आरोग्यता तथा आयु बढ़ जावेगी.

प्र०– पहिले तन पर और फिर मन पर असर पहुंचाने वाली छूत कौनसी है ?

उ०– वात, पित, कफ, आम, रक्त, विष तथा कृमि जन्य.

प्र०– इस छूत का आवागमन शरीर में किस रूप से होता है ?

उ०– जीवाणु, द्रवता, गंध तथा वाष्पादि के रूप से.

प्र०– पहिले मन पर और फिर तन पर असर पहुंचाने वाली छूत कौनसी है ?

उ०– सत्व, रज, तम की.

प्र०– इस छूत का आवागमन शरीर में किस रूप से होता है ?

उ०– तेजाणुओं के रूप से.

प्र०– छूत कहां रहती है ?

उ०– तेज, वायु, जल, पृथ्वी, तन आदि चराचर जगत में रहती है.

प्र०– छूत के आवागमन के प्रमाण ?

उ०– (१) तंबाखू पीने वाले जब मुख से धूम्र छोड़ते हैं, तब वह औरों के स्वास लेने पर मुख में हो, शरीर में प्रविष्ट होता है; इससे सिद्ध हुआ कि एक मनुष्य का निःस्वास दूसरे के स्वास में अवश्य आता है; बस ! उसी के साथ-साथ छूत के परमाणु भी आते जाते हैं. इसी से चूहों को बिल्ली का

आगमन तथा पशुओं को व्याघ्रादि हिंसक प्राणियों का आगमन विदित हो जाता है.

(२) खांसी वाले के साथ सोने से प्रायः खांसी हो जाती है.

(३) इसी तरह संपर्क से दद्रु, खाज, प्लेग आदि हो जाता है.

(४) बहुधा संग ही से सज्जन के दुर्जन तथा दुर्जन के सज्जन हो जाते हैं इत्यादि.

प्र०– वास्तविक में छूत किसे कहना चाहिए ?

उ०– केवल अनहित करने वाले दोषों के संसर्ग को.

प्र०– अनहित करने वाली छूत को धर्मशास्त्र किन नामों से पुकारता है ?

उ०– दोष, पाप, अधर्म आदि नामों से.

प्र०– हित करने वाली छूत को क्या कहते हैं ?

उ०– गुण, पुण्य, धर्म आदि.

दोहा

तेज पवन जल भूमि तन, सबमें व्यापत छूत ।
व्याप्त करत नित कशिस ये, न्यूनाधिक जस बूत ।।१।।
बर्फ छुवत तन शीत लग, अग्नि छुवत तन डांय ।
छुवत सुगंधी महक तन, बीट छुवत गंधाय ।।२।।
मातपितहि जस शीत लग, तस क्यों शिशुना लाग ।
जस गुरु मुख सो ज्ञान तस, क्यों ना पुस्तक पाग ।।३।।
गरमी परमा दाद जर, खुजली हैजा प्लेग ।
नाना रोगहि छूतये, कस फैलावत बेग ।।४।।
तुरई क्यों कटु व्हैगयी, बोयो मीठो बीज ।
मनमें ज़रा बिचारिये, छूत अहै क्या चीज ।।५।।
कौन छूत से लाभ व्है, कौन छूत सो हान ।
सूक्ष्म दृष्टि सो नित्य हो, यापै रखिये ध्यान ।।६।।
धर्म निरुजता द्रुत नसै, लगि अघरुज की छीत ।
आम दाख श्रमसों लगै, सहज लगै विष चीत ।।७।।
का छुवत बड़ बिखनसै, का छुवत मर जाय ।
का छुवत सब दुखनसै, का छुवत दुःख पाय ।।८।।

उपदेश ११

छायादोष

प्र०— छाया किसे कहते हैं ?

उ०— छा लेने वाली को छाया कहते हैं.

प्र०— छाया कब गिरती है ?

उ०— जब किसी पदार्थ के एक तरफ प्रकाश गिरता है; तो दूसरी तरफ उसकी छाया गिरती है.

प्र०— किस दशा में ?

उ०— जब जिस पदार्थ में होकर प्रकाश बाहर नहीं जा सकता; तब दूसरी ओर उस पदार्थ का तमाच्छादित प्रतिबिम्ब गिरता है; वही छाया कहाती है.

प्र०— यदि प्रकाश घुसकर बाहर निकल सकता हो तो ?

उ०— तो प्रकाशमय प्रतिबिम्ब गिरता है या केवल प्रकाश !

प्र०— छाया में छूत कहां से आती है ?

उ०— जिस पदार्थ की छाया होती है, उसी पदार्थ के गुणदोष उस छाया में आ जाते हैं.

प्र०— क्या प्रमाण ?

उ०— तभी तो बौरते हुए आम की छाया में सोने से शरीर पर ददोड़े उठ आते हैं ! भिलावे के तले सोने से शरीर पर सूजन आ जाती है ! ग्रहण में भोजन करने से दुष्ट पित्त बढ़ जाता है ! उत्तर ध्रुव में धूम्र केतू की छाया से बहुधा तारयंत्र बिगड़ जाते हैं ! वृक्षों की छाया से कई प्रकार के पौधे मर जाते हैं ! ऋतुवती स्त्री की छाया से बहुधा आई हुई आंख में फूली पड़ जाती है ! सूर्यकांत की छाया से अग्नि जल उठती है ! लोहे की चद्दर की छाया से गर्मी में अधिक गर्मी और सर्दी में अधिक सर्दी मालूम होती है ! बड़, खपरैल तथा फूस की छाया से उष्णकाल में ठंडक और शीतकाल में गर्मी रहती है ? छाया ही से प्लेट पर चित्र खिंच जाता है ! ऋतु स्नाता स्त्री के हृदय पर जैसा प्रतिबिम्ब गिरता है; प्राय:

वैसे ही आकार का बालक होता है ! इसीलिये विकारी छाया से बचना चाहिये !

दोहा

छाया सो सुख होत है, छाया सो सुख जाय ।
छाया सूखन देत ना, छाया देत सुखाय ।।१।।
छाया सो रुज होत है, छाया सो रुज जाय ।
छाया खैंचत चित्र को, छाया देत नसाय ।।२।।
ज्ञान दृष्टि सों तौलिये, छाया केर विचार ।
औगुणकारी त्यागिये, गुणकारी स्वीकार ।।३।।

उपदेश १२

शक्तिच्छेदन दोष

प्र०– शक्ति विच्छेद किसे कहते हैं ?

उ०–कर्षणा शक्ति (कशिस) के भेदन को.

प्र०– यह भेदन कब होता है ?

उ०– जब कोई दो पदार्थों के मध्य से तीसरा निकले तब... !

प्र०– क्यों !

उ०– क्योंकि निकटस्थ पदार्थों का तेज कशिस के कारण परस्पर एक दूसरे में आता जाता रहता है; यदि कोई उनके मध्य से निकल जावे; तो उस तेज—संचारक कर्षण शक्ति का भेदन होता है. जिससे निकलने वाले का प्रभाव उन पदार्थों पर तथा उनका प्रभाव निकलने वाले पर पड़ता है.

प्र०– उस प्रभाव से क्या होता है ?

उ०– हित अथवा अनहित.

प्र०– परस्पर एक दूसरे का पथच्छेद करने से क्या होता है ?

उ०– लगभग ऐसा ही फल होता है ?

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि कर्षण शक्ति के खिचाव के अनुसार गति और गति के

अनुसार खिंचाव होता है; इसलिये तत्काल किसी का पथ भेदन करने से उसके गुणदोष का प्रभाव निकलने वाले पर तथा निकलने वाले के गुणदोष का प्रभाव उस पर पड़ता है.

प्र०— क्या प्रमाण ?

उ०— तभी तो धूम्रकेतु के द्वारा पृथ्वी पर दाह, अवर्षण, रोग, भूकम्प तथा युद्ध आदि कोई उपद्रव होता है ! चंद्र तथा सूर्य के ग्रहण के वक्त पृथ्वी पर बड़ा असर पड़ता है ! पूनम तथा अमावस को ज्वार भाटा होता है ! बार-बार झाड़ू के लगने से कंडू रोग उपजता है ! चलनी सिर पर रखने तथा पगडण्डी पर मलमूत्र नित्य त्यागने से फुन्सियां होती है ! बार-बार मलमूत्र को उलांघते हुए देखने से अंजनी या गुहनी होती है ! क्योंकि उपरोक्त सब मार्ग भ्रष्ट करने वाले हैं !

प्र०— हानी कब होगी ?

उ०— जब वे पदार्थ जिनका पथच्छेद हम करें अथवा जो हमारा पथच्छेद करे ! हमारे परम विरोधी हों ! अथवा औरों के परम स्नेही हों !! तो अवश्य हानि होगी !

दोहा

स्पर्श वेध छाया गति, यज्ञ सतेज विचार ।
निजहित परहित साधिये, दीजे दोष निकार ॥

उपदेश ९३

दिग्विचार

प्र०— दिशा किसे कहते हैं ?

उ०— दिखाने वाली तथा उपदेश देने वाली को दिशा कहते हैं.

प्र०— दिशा क्या दिखाती है ?

उ०— कौनसा स्थान कहां और किस ओर है ! यह बात दिखाती है.

प्र०— दिशा किस बात का उपदेश देती है ?

उ०— रुख के विचार से कर्षण शक्ति तथा उसके तेज का प्रभाव क्या हो जाता है ? इस बात का उपदेश देती है.

प्र०–आकर्षण शक्ति तथा उसके तेज का प्रवाह किस ओर है ?

उ०– दक्षिण से उत्तर को, पश्चिम से पूर्व को तथा ऊपर से नीचे को आकर्षण शक्ति का और इसके विरुद्ध उसके तेज का प्रवाह है.

प्र०–दिशाओं के नाम किस आधार पर रखे गये हैं ?

उ०–कशिस तथा उसके तेज के कारण, जिस ओर मुख करने से जो फल होता है, वही नाम उस रुख का रख दिया गया है. कर्म, ज्ञान (योग) तथा उपासना के लिये.

प्र०– दिशाओं की शकारणता कहो ?

उ०– पूर्व बुलावै तेजको, अमृतको दै पूर ।
इन्द्रशक्ति विद्युत करै, सब दोषण को दूर ।।१।।
अग्नि बढ़ावै अग्नियें, दक्षिण ज्ञान यमाय ।
नैऋतये ऋतहीन कर, शक्तिसु तेज घटाय ।।२।।
पश्चिम विद्युत को हरै, वायव वातक मान ।
उत्तर तारे जगत को, ईशत सब ईशान ।।३।।

प्र०–किस प्रयोग में किस ओर मुख करे ?

उ०– स्थंभकयोगहि पूर्वमुख, दाहकमें अग्नेय ।
दक्षिण मारक कर्ममें, नैऋत विद्वेषेय ।।१।।
पश्चिम मुख विष हरणमें, वायव उच्चाटेय ।
मुख ईशानजु सर्वप्रद, उत्तर आकर्षेय ।।२।।

प्र०– किस कर्म में किस ओर मुख करे ?

उ०– करै दतौन जु पूर्व मुख, बरू करै ईशान ।
रवि रुख कुल्ल ना करै, करै पूर्व मुख स्नान ।।१।।
पूर्वोत्तर ईशान मुख, कर आसन धर ध्यान ।
दक्षिण पश्चिम पूर्व मुख, कीजै भोजन पान ।।२।।
देवहि तर्पै पूर्व मुख, उत्तर मुख ऋषि जान ।
दक्षिण मुख नित पितरको, तर्पै चतुर सुजान ।।३।।
दीपकको मुख कीजिये, उत्तर पूरब जान ।
दक्षिण पूरब सिर करो, सोवै चतुर सुजान ।।४।।

प्र०– किस बात का नित विचार रक्खे ?

उ०– **आकर्षण कर कौन दिश, निराकरण कर कौन ।**
कौन तेज कर कौन हर, को स्थंभक कर गौन ।।१।।
कौन पित्तकर कौन कफ, कौन दिशा कर वात ।
सत रज तम गुण कौनकर, सोचो नित ये बात ।।२।।
कौन दिशा को कर्म में, करै लाभ कब हान ।
जानत कारण सहित जो, वही चतुर बुद्धिमान ।।३।।

उपदेश १४

भूतशुद्धि

प्र०– भूत किन्हें कहते हैं ?

उ०– जिनमें चराचर विश्व का विस्तार हुआ और जिनके द्वारा इस शरीर का प्रादुर्भाव, पालन, पोषण तथा नाश होता है.

प्र०– भूत शुद्धि किसे कहते हैं ?

उ०– उन महाभूतों की शुद्धि को.

प्र०– वे महाभूत कौनसे हैं ?

उ०– भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश.

प्र०– इन भूतों की शुद्धि क्यों करनी चाहिये ?

उ०– क्योंकि लौकिक पारलौकिक ज्ञान साधन का एकमात्र आधार यह मानव शरीर है, वह इन महाभूतों के दूषण से जर्जरित हो नाश को प्राप्त होता है.

प्र०– भू शुद्धि किस तरह होती है ?

उ०– दूषित मृत्तिका खोदकर फेंक देने तथा शु[illegible] मिट्टी डाल, गोमय द्वारा लीपने से भू शुद्धि होती है.

प्र०– जल शुद्धि किस तरह होती है ?

उ०– जल के छानने तथा निर्मली आदि के [illegible]से ।

प्र०– अग्नि की शुद्धि किस तरह होती है ?

उ०– यज्ञ विधि द्वारा अग्नि ग्रहण करने से [illegible]

प्र०– किस बात का नित विचार रक्खे ?

उ०– **आकर्षण कर कौन दिश, निराकरण कर कौन ।**
कौन तेज कर कौन हर, को स्थंभक कर गौन ।।१।।
कौन पित्तकर कौन कफ, कौन दिशा कर वात ।
सत रज तम गुण कौनकर, सोचो नित ये बात ।।२।।
कौन दिशा को कर्म में, करै लाभ कब हान ।
जानत कारण सहित जो, वही चतुर बुद्धिमान ।।३।।

उपदेश १५

भूतशुद्धि

प्र०– भूत किन्हें कहते हैं ?

उ०– जिनमें चराचर विश्व का विस्तार हुआ और जिनके द्वारा इस शरीर का प्रादुर्भाव, पालन, पोषण तथा नाश होता है.

प्र०– भूत शुद्धि किसे कहते हैं ?

उ०– उन महाभूतों की शुद्धि को.

प्र०– वे महाभूत कौनसे हैं ?

उ०– भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश.

प्र०– इन भूतों की शुद्धि क्यों करनी चाहिये ?

उ०– क्योंकि लौकिक पारलौकिक ज्ञान साधन का एकमात्र आधार यह मानव शरीर है, वह इन महाभूतों के दूषण से जर्जरित हो नाश को प्राप्त होता है.

प्र०– भू शुद्धि किस तरह होती है ?

उ०– दूषित मृत्तिका खोदकर फेंक देने तथा शुद्ध मिट्टी डाल, गोमय द्वारा लीपने से भू शुद्धि होती है.

प्र०– जल शुद्धि किस तरह होती है ?

उ०– जल के छानने तथा निर्मली आदि के डालने से ।

प्र०– अग्नि की शुद्धि किस तरह होती है ?

उ०– यज्ञ विधि द्वारा अग्नि ग्रहण करने से.

प्र०– वायु की शुद्धि किसके द्वारा होती है ?

उ०– यज्ञ द्वारा.

प्र०– आकाश की शुद्धि कब होती है ?

उ०– उपरोक्त चारों कर्म करने से.

प्र०– यह शरीर भी तो पंच भूतात्मक है ?

उ०– इसीलिये इसकी शुद्धि भी करनी चाहिये.

प्र०– अच्छा ! शरीर गत भूमि दोष किसके द्वारा दूर होता है ?

उ०– मृत्तिका, गोमय तथा भस्मयुक्त स्नान के द्वारा.

प्र०– शरीरगत जलदोष किसके द्वारा दूर होता है ?

उ०– भस्म धारण के द्वारा.

प्र०– शरीरगत अग्निदोष किसके द्वारा दूर होता है ?

उ०– आचमन, मार्जन तथा तर्पण द्वारा.

प्र०– वायु दोष किसके द्वारा दूर होता है ?

उ०– अर्घ्य द्वारा.

प्र०– आकाश दोष किसके द्वारा दूर होता है ?

उ०– परिक्रमा द्वारा.

प्र०– शरीरगत ये सम्पूर्ण दोष किसके द्वारा दूर होते हैं ?

उ०– प्राणायाम द्वारा.

प्र०– जो इन पंच भूतों के सूक्ष्म विषय अंतःकरणमें प्रतिबिंबित हो जाते हैं, उनके दोष किसके द्वारा दूर होते हैं ?

उ०– यम नियम सहित संयम तथा प्राण प्रतिष्ठापूर्वक ध्यान के द्वारा.

दोहा

नित्य अपावन त्यागिये, पावन को गहि लेय ।
मन पावन के होत ही, पावत है जन श्रेय ।।

उपदेश १५

दीक्षा

प्र०– आकर्षण शक्ति, विद्युत शक्ति, महतत्व, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, चैतन्य, प्रकृति, जीव, अणु, परमाणु तथा चराचर का गुप्त प्रकट रहस्य किसके द्वारा जाना जाता है ?

उ०– वेदों के द्वारा.

प्र०– तो फिर काव्य, कोष, व्याकरण तथा न्याय आदि पढ़े हुए विद्वान् लोग—वेदों के द्वारा लाभ क्यों नहीं उठाते ?

उ०– क्योंकि वेद सम्बन्धी वैज्ञानिक भाष्यों का लोप हो गया है; सिवाय आधुनिक टीकाकार भी गूढ़ार्थ पर पानी फेर देते हैं.

प्र०– तो फिर अर्थ किसे कहना चाहिये ?

उ०– जो सार्थक हो अर्थात् वह अर्थ ऐसा अनुभव सिद्ध हो ! कि जिसके द्वारा कोई व्यवहारिक तथा अध्यात्मिक लाभ उठाया जा सकता हो !! अन्यथा अनर्थ से क्या लाभ !!!

प्र०– अर्थ में अनर्थ क्यों होता है ?

उ०– क्योंकि आजकल हमको वास्तविक दीक्षा नहीं प्राप्त होती.

प्र०– दीक्षा का अर्थ क्या है ?

उ०– दिखला देनेवाली अर्थात् ज्ञानचक्षु देने वाली.

प्र०– दीक्षा विधि को क्या कहते हैं ?

उ०– उपनयन संस्कार भी कहते हैं.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि दीक्षा के द्वारा तृतीय उपनेत्र अर्थात् ज्ञानचक्षु प्राप्त होता है.

प्र०– यह दीक्षा कौन देता है ?

उ०– उपनयन संस्कार कराने की सामर्थ्य रखने वाला अर्थात् गुरु.

प्र०– गुरु किसे कहते हैं ?

उ०– जो दिव्य चक्षु प्रदान कर, अज्ञानांधकार हटाकर, शिष्य के हृदय में प्रकाश उत्पन्न कर दे; उसे गुरु कहते हैं.

प्र०– सद्‌गुरु अपने शिष्य को किस तरह दीक्षा देता है ?

उ०– वह भूतशुद्धि पूर्वक पंचमहाभूतों के यज्ञ की शिक्षा देता हुआ, उनके यज्ञ से तेज लेकर, अपने शिष्य को देता है ! उस तेज के मिलते ही दिव्य चक्षु अर्थात् अध्यात्म सविता उस शिष्य को प्राप्त होता है ! ! जिसे विश्वचक्षु भी कहते हैं ! ! !

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि उसी के द्वारा सब कुछ देखा तथा जाना जाता है और इसके बिना वेदाधिकार नहीं होता ! अर्थात् वेदों में दखल नहीं पहुंच सकता ! ! तभी तो अर्थ का अनर्थ हो रहा है ! ! !

प्र०– दीक्षा किसे दी जा सकती है ?

उ०– जिसका तन और मन शुद्ध हो.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि बहुधा तन की मलीनता ही मन को मलीन कर देती है और जिसका मन मलीन है; उसकी तन की शुद्धता, हाथी के स्नान के समान है; इसलिये जिसका तन या मन मलीन है; उसे दीक्षा देने से गुरु शिष्य दोनों की हानि होती है !

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि इधर अपात्री शिष्य अपने अशुद्ध अंतःकरण के कारण अंधकार से रहित नहीं होता और न उस अध्यात्म सविता गत योनि के मध्यवर्ती दिव्य तेज को पा सकता है ! वरन उल्टा नास्तिक बन, अपकार का द्वार बन जाता है ! ! उधर गुरु अपना बहुतसा स्वतेज खो, शिष्य के न्यूनाधिक दोषों से युक्त हो; अपने तन मन को कलुषित कर लेता है ! ! !

प्र०– ऐसा क्यों होता है ?

उ०– क्योंकि ज्योंही दीक्षा के लिये, निराकरणकारी वृहत् तेज-यजन द्वारा अपात्री शिष्य पर डाला जाता है ! त्योंही उसके न्यूनाधिक दोष कर्षित हो, गुरु में आ जाते हैं ! ! जिस तरह हींग के संसर्ग से कपूर में दुर्गंध बस जाता है ! ! !

प्र०– गुरु अपना तेज शिष्य को देता है और उस तेज द्वारा शिष्य को वह अध्यात्म सूर्य दिखलाता है; वह दिव्यचक्षु तथा विश्वचक्षु है; जिसके द्वारा दखल प्राप्त होता है; इन सब बातों का क्या प्रमाण ?

उ०– वेद में देखो ! मम वृतं ते हृदये दधामि । मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु ।। अथैनँ सूर्यमुदी क्षयति तच्चक्षुरित्यथास्यदक्षिणाँ समधि हृदयमालभै ।।

अर्थात् [मम]मेरा [वृतं] बढ़ा हुआ तेज [ते] तेरे [हृदये] हृदय के प्रति[दधामि]देता हूं या धारण कराता हूं । [ममचित्तं] मेरे चित्त को [अनु] अनुसरने वाला [ते] तेरा [चित्तं] चित्त [अस्तु] हो ।। [अथैनं] इसके द्वारा [तत्] वह [सूर्यं] सूर्य [उदीक्षयति] दिखलाया जाता है । [तच्चक्षुरिति] वही चक्षु है; क्योंकि उसके द्वारा सब कुछ देखा जाता है । [अथ] इसलिये अब [अस्य] इसका [हृदयं] हृदय [समाधि] सर्वोत्कृष्ट या दिव्य [दक्षिणां] ज्ञानाधिकारको [आलभै] हर तरह प्राप्त हो या सब और प्राप्त हो ।।

प्र०– तो फिर कर्मकांड सम्बन्धी नित्य नैमित्तिक कर्म करने की क्या आवश्यकता है !

उ०– तन मन के शोधने तथा स्वतेज के बढ़ाने के लिये.

प्र०– स्वतेज वृद्धि से क्या लाभ है ?

उ०– यथार्थ वस्तु का ज्ञान होता है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– वेद में देखो ! यथा–वृतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणां । दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ।। अर्थात् [वृतेन] तेज की वृद्धि करने वाले अग्निरूप वृत के द्वारा [दीक्षां] उस अध्यात्म सवितागत ज्योति की दीक्षा [आप्नोति] प्राप्त होती है । [दीक्षया] उस दीक्षा के द्वारा [दक्षिणां] सबमें गति यानि दखल [आप्नोति प्राप्त होता है । [दक्षिणा] उस दखल के द्वारा [श्रद्धां] श्रद्धा [आप्नोति] प्राप्त होती है ! फिर [श्रद्धया] श्रद्धा के द्वारा [सत्यं] सत्य ब्रह्म [आप्यते] प्राप्त होता है ।।

दोहा

दीक्षा होत न विधि वत, फैले मत पाखण्ड ।
मिलै कर्म को भेदना, वेदसु अर्थ अखण्ड ।।१।।
याते हम सब व्है चलै, वय बल धनमति हीन ।
रोग शोक सन्ताप सो, दिन काटत व्है दीन ।।२।।
हमें न सुध खुद आपनी, घर की दयी बिसार ।
बनी भांड बहुरूपिया, फिरते हाथ पसार ।।३।।

उपदेश १६

मौंजीबंधन अर्थात् मेखला

प्र०– मेखला किसे कहते हैं ?

उ०– उस मूंज की रस्सी को कहते हैं; जो दीक्षा के वक्त कमर से बांधी जाती है.

प्र०– मूंज में क्या गुण है ?

उ०– यह विसर्प, दाह, रक्त, मूत्राशय तथा नेत्र रोग को हरती है.

प्र०– मौंजीबंधन को ब्रह्म मेखला क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि यह रस्सी कमर में बांधकर स्नान संध्या आदि कर्म करने से शक्ति के तेज को भ्रमा के उसकी वृद्धि रक्षा करती है.

प्र०– इसके द्वारा क्या लाभ है ?

उ०– इसके द्वारा दीक्षित का बल, वायु, तेज बढ़ता तथा प्राणापान को बल पहुंचता है.

प्र०– मेखला का अर्थ क्या है ?

उ०– (मे) = लौटना, (खल) = स्थानांतर करना; मेखला = लौटाने तथा स्थानांतर करने वाली.

प्र०– यह किसे लौटाती तथा स्थानांतर करती है ?

उ०– विद्युत तथा शक्ति को.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह ब्यॉटरी पर लगा हुआ वृत्ताकार तार विद्युत को

लौटाता तथा स्थानांतर करता है अर्थात् भ्रमाता है और साथ ही शक्ति संचार करता है; तभी तो कमर कस लेने से कमजोर को भी अपनी शक्ति संचार में मदद मिलती है.

।। यथाश्रुति ।।

अथैनं वासः परिधापयति येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यंदधामृतं। तेनत्वा परिधदाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चस इति मेखला बन्धीत ।। इयं दुरुक्तं परिवाधमाना, वर्णं पवित्र पुनतीम आगात्। प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसादेवी सुभगा मेखलेयमिति ।।

अर्थात्

[अथैनं] इसके साथ [वासः] वस्त्र [परिधापयति] पहना जाता है! [येन] जिसके द्वारा [वासः] वस्त्र [इन्द्राय] विद्युत के प्रति [बृहस्पति] वर्धमान गति और [अमृतं] अमृत [पर्यंदध] देता है! [तेन] उसी कारण [त्वा] तुझे [आयुषे दीर्घायुत्वाय] आयुष्य वृद्धि के लिये, [बलाय] बल वृद्धि के लिये, [वर्चसे] तेज वृद्धि के लिये, [परिदधामि] धारण कराता हूं। [इति मेखलाबन्धीत] इसीलिये मेखला बांधी। [इयं] यह [दुरुक्तं] लज्जा को [परिवाधमाना] रोकने वाली, [वर्णं] वर्ण को और [पवित्रं] पवित्र को [पुनतीम आगात्] अत्यन्त पवित्र गति दे [प्राणापानाभ्यां] प्राण और अपान को [बलं] बल [आदधाना] देने वाली [मेखलेयं] यह मेखला [सुभगास्वसादेवी] इति] दिव्ययोनिगत स्वयं ज्योति देने वाली है ।।

दोहा

तेज रखावै मेखला, शक्ति सह गति देय।
प्राणापान सबल करै, तनके रुज हर लेय ।।

उपदेश १७

जटा तथा शिखा

प्र०– जटा किसे कहते हैं?

उ०– उन रक्षित बालों को कहते हैं, जो बिना काट-छाट किये; ज्यों के त्यों रखाये जाते हैं.

प्र०– क्या जटा रखाने वाले महात्मा हो जाते हैं ?

उ०– कदापि नहीं ! क्योंकि जो जटा रखाने मात्र से महात्मा हो जाते; तो जगत की सब स्त्रियां तथा वन के रीछ भी महात्मा कहाते.

प्र०– तो क्या बाल मुंड़वा डाले ?

उ०– ऐसा करना कुदरत के खिलाफ है ?

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि उस सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान ने कोई पदार्थ अकारण नहीं बनाया.

प्र०– बाल तो प्रकृति जन्य हैं ?

उ०– प्रकृति भी तो किसी पदार्थ को अकारण नहीं बनाती.

प्र०– हमारे शरीर पर बाल किस तरह विराजते हैं ?

उ०– जिस तरह पृथ्वी पर वृक्षादिक विराजते हैं.

प्र०– वृक्ष तो जल, वायु तथा उष्णता पाकर बढ़ते हैं ?

उ०– उसी तरह ये बाल सूक्ष्म चिकनाई, सूक्ष्म वायु तथा कर्षण शक्ति का तेज पाकर बढ़ते हैं.

प्र०– वृक्ष तो जिस जल को पीते हैं; वह कई प्रकार के खाद के सार से युक्त रहता है ?

उ०– उसी तरह ये बाल जिस स्नेह को पीते हैं; वह भी अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों के सार से बना होता है.

प्र०– वृक्षों के नष्ट होने से, तो जमीन की तरी मारी जाती है और अनेक रोग उपजते हैं ?

उ०– उसी तरह इन बालों के नष्ट होने से त्वचागत चिकनाई मारी जाती है और बहुधा अधेड़पन में ही नजला हो जाता है; किन्तु स्त्रियों को नहीं होता; क्योंकि स्त्रियां बाल रखाये रहती हैं.

प्र०– तरी के नष्ट होने से तो ज़मीन कमजोर हो जाती है; तथा इसकी उपजाऊ शक्ति मारी जाती है ?

उ०– उसी तरह चिकनाई के नष्ट होने से दीमाग़ कमजोर हो जाता है; तथा नेत्र की ज्योति मारी जाती है; इसी कारण बहुधा स्त्रियों

की अपेक्षा पुरुषोंकी स्मरणशक्ति तथा दृष्टिका ह्रास पायाजाता है.

प्र०– जहां के वृक्ष नष्ट हो जाते हैं; वहां फिर वर्षा का अधिक जल नहीं ठहरता,

उ०– उसी तरह जहां के बाल नष्ट हो जाते हैं; वहां फिर कर्षण शक्ति का अधिक तेज नहीं ठहरता.

प्र०– जटाद्वारा शरीरगत तेजकी रक्षा होती है; इस बातका क्या प्रमाण?

उ०– एक मुंडित और जटाधारी पर निराकरण का प्रयोग करने से विदित होता है कि पहिले की अपेक्षा दूसरे का तेज सरलतापूर्वक नहीं हटता.

प्र०– तेज हटने की क्या परीक्षा ?

उ०– जिसका शरीरगत तेज जितना न्यून होगा; उसे उतनी अधिक ठंड तथा अशक्ति मालूम होगी.

प्र०– मैं समझता हूं, कि बालों के रखवाने से अधिक चिकनाई नष्ट होती है; क्योंकि ज्यों-ज्यों बाल बढ़ेंगे; त्यों-त्यों उनकी खुराक भी बढ़ेगी.

उ०– कदापि नहीं.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि बारम्बार कटने से बाल के बढ़ने की शक्ति जोर पकड़ती है; इसलिये वे अधिक चिकनाई खा जाते हैं; किन्तु जो पूरे बढ़ चुके हैं; उन्हें इतनी अधिक ज़रूरत नहीं रहती.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– हर हजामत के वक्त कटे हुए बालों में से एक-एक बाल लें, किसी कागज़ पर एक सीध में चिपकाते जाओ; वर्ष के अन्त में उनके योग की लम्बाई देखो ! तो यह एक वर्ष के अन्य रखाये बाल से बहुत बड़ी होगी.

प्र०– बालों में क्या विशेष गुण है ?

उ०– वे शरीरगत तेज तथा चिकनाई की तरी को एकदम बाहर और बाहर की सर्दी गर्मी को एकदम भीतर नहीं आने देते.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो कम्बल में लपेटने से लोहे के अस्त्र तथा वर्फ आदि सुरक्षित रहते हैं.

प्र०– इस गुण से हमें क्या लाभ ?

उ०– मस्तिष्क सुरक्षित रहता है; तथा बिजली गिरने का कम भय रहता है.

प्र०– रोम कूपों से क्या लाभ है ?

उ०– ये दुर्गंधित अशुद्ध उष्मा और मल को बाहर निकालते तथा शुद्ध वायु और प्रकाश को भीतर पहुंचाते रहते हैं.

प्र०– कभी-कभी बाल के टूटने से बाल तोड़ादि फोड़े फुन्सियां क्यों हो जाती हैं.

उ०– रोम कूपों की अशुद्ध ऊष्मा आदि रुक जाने से.

प्र०– जटा का क्या अर्थ है ?

उ०– (जट) का अर्थ रोकना, जमा करना और (आ) का अर्थ दिव्य या अच्छी तरह से; इसलिये अच्छी तरह जमा करनेवाली या दिव्य वस्तु की रोकनेवाली को जटा कहते हैं.

प्र०– जटा किसे रक्षती है ?

उ०– चिकनाई, तरी, मस्तिष्क तथा कर्षणशक्ति के तेज को रक्षती है.

प्र०– मुंडन कब किया जावे ?

उ०– जब त्रिगुणात्मक कर्षणशक्ति का जय हो गया हो, या गर्भज दोष दूर करना हो या दीक्षा ग्रहण करनी हो या मुंडन द्वारा किसी रोग की निवृत्ति होती हो; तब मुंडन करवाना उचित है.

प्र०– दीक्षा लेने के लिये मुंडन क्यों करावे ?

उ०– क्योंकि गुरु अपनी निराकरण शक्ति का प्रयोग शिष्य के सिर पर करके उसे अपना तेज दे, ज्ञानोपदेश देता है.

प्र०– शिखा कब रखे ?

उ०– दीक्षा के नंतर जब किसी कारण जटा न रखी जा सकती हो; तो तब निराकरण के रक्षणार्थ जटा के बदले शिखा तो अवश्य ही रखनी चाहिये.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि जब यज्ञादिक के द्वारा अमोघ तेज की वृद्धि होती है तब शरीरगत ऊष्मा प्रबल हो, बहिर्गत होना चाहती है; उसे मार्ग देने की आवश्यकता है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह अमोघ जल राशि के रक्षणार्थ सरोवर के आजूबाजू नालियां या नाले काट देने की आवश्यकता है.

प्र०– इस तरह यज्ञ द्वारा तेजके आने तथा निकलते रहने से क्या लाभ है?

उ०– शरीर शुद्ध होकर शुद्ध तेज की प्राप्ति तथा रक्षा होती है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह वर्षा द्वारा जल आने और नालियों द्वारा निकलते रहने से सरोवर के जल की शुद्धि तथा रक्षा होती है.

प्र०– शिखा का अर्थ क्या है ?

उ०– (शिष्) का अर्थ शेष बचा रखना, या पूर्ण खर्च न करना; इसलिये दिव्य वस्तु का पूरा खर्च न करानेवाली अर्थात् शेष वस्तु को बचा रखनेवाली को शिखा कहते हैं.

प्र०– यह किसे बचाती है ?

उ०– निराकरणकारी तेज को.

प्र०– शिखा के बांधने तथा खोलने का क्या कारण है ?

उ०– शिखा को ग्रंथी लगाने से निराकरणकारी तेज किसी कदर रुक जाता है और खोलने से प्रवाहित होने लगता है.

प्र०– क्या बालों द्वारा भी तेज का आवागमन हो सकता है ?

उ०– अवश्य.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो बाल बढ़ते तथा पकते हैं.

प्र०– शिखा कितनी बड़ी रखनी चाहिये ?

उ०– श्रेष्ठ गाय के खुर के घेरे के तुल्य मोटी रखनी चाहिये.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि मात्र ऊष्मा निकलने के लिये कुछ अवकाश देने की ज़रूरत है, यही उद्देश्य त्रिशिखा तथा पंचशिखा का है.

प्र०– शिखा कब खोले ?

उ०– शौच्य, दंतधावन,, भोजन, शयन और रति के समय.

प्र०– शिखा कब बांधे ?

उ०– स्नान, दान, जप, होम, संध्या, पूजन आदि में.

प्र०– जटा तथा शिखा कब त्याग दे ?

उ०– जब इच्छा सहित त्रिगुणात्मक क्रियाशक्ति का जय हो जाय; तब !

प्र०– आज तक मैं चोटी को हिन्दुओं का चिन्ह मात्र समझता था ?

उ०– यह आपकी बड़ी भारी भूल थी.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि ऐसा मान लेने से आप सन्यासी को क्या कहोगे ? जिसे शिखा नहीं ! मुद्‌गलगोत्री ब्राह्मणों को क्या कहोगे ? जिन्हें भी शिखा नहीं.

प्र०– मुद्‌गल गोत्री ब्राह्मण शिखा क्यों नहीं रखते ?

उ०– क्योंकि वे योग द्वारा निराकरणकारी तेज का जय कर लेते हैं.

प्र०– यदि कोई उस कशिस के तेज को अपने काबू में न रख सकता हो तो ?

उ०– तो उस तेज के रक्षण के लिये जटा रक्खे अथवा जटा के अभाव में शिखा तो अवश्य रक्खे !

प्र०– शिखा द्वारा उस आवागमनकारी शक्ति के तेज की रक्षा होती है; इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– यजुर्वेदीय आन्हिक सूत्रावलि में शिखा का मंत्र पढ़ देखो ! जो अर्थ सहित नीचे दिया गया है.

दोहा

प्रभु ने सिर पर क्यों दिये, इतने ज्यादा बाल ।
भेजा रक्षत तेज वे, धी आयू तन पाल ॥१॥
रूद्र तेज या शक्ति को, ठहरत चुटियां मांहि ।
याते शिखा जु राखिये, और हेत कछु नांहि ॥२॥

यथा

चिद्रूपिणि महामाये दिव्य तेजः समन्विते ।
तिष्ठ देवि शिखाबन्धे तेजोवृद्धि कुरुष्वं मे ॥

अर्थात्

भो ! चैतन्यरूपिणि, महा आवागमनकारिणि, दिव्य तेज से युक्त, देवी !! शिखाबंध में ठहर, और मेरे तेज की वृद्धि कर !!! (निराकरण तेज की गति-पैर से सिर की ओर है; देखो ! उप. ९ वां)

उपदेश १८

यज्ञोपवीत

शि०–जनेऊ द्विजों की चपरास है न ?

गु०– तो क्या आप जिसके गले में जनेऊ हो, उसे द्विज मानते हो ?

शि०–केवल उसे द्विज मानता हूं; जिसका उपनयन संस्कार विधिवत हुआ हो !

गु०– आजकल तो बहुधा ब्राह्मणों का भी उपनयन संस्कार विधिवत नहीं होता ! तो उन ब्राह्मणों को तथा उनके बालकों को जिनका उपनयन संस्कार नहीं हुआ ! क्या आप उन्हें ब्राह्मण न कहोगे ? यदि आप यह तागाही द्विज का चिन्ह समझते हो ! तो प्रथम आप ही कहिये ! कि आपने यह तागा गले में क्यों डाल रखा है ! तांत क्यों नहीं पहिन लिया ? जो अधिक चाबियों का बोझ सह सकता !

शि०–वेद की आज्ञा से पहिना है.

गु०– वेद ने ऐसी आज्ञा क्यों दी ? तो फिर आप मगों को क्या कहोगे ? जो आप खुद जनेऊ का कारण नहीं जानते ! तो फिर क्यों लोगों को बहकाते तथा ठगते फिरते हो ! क्या केवल इसी नकली धर्म-ध्वजपने से आप धर्मोद्धार करने चले हो !

प्र०– यज्ञोपवीत का क्या अर्थ है ?

उ०– यज्ञ को अर्थात् कशिस को उपगति देनेवाला व्याप्त करनेवाला या भ्रमानेवाला.

प्र०– इसे जनेऊ अर्थात् यजनेव क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि वह यजन के लिये उपयुक्त किया जाता है.

प्र०– यह किसका यजन करता है ?

उ०– कशिस अर्थात् कर्षणशक्ति के तेज का.

प्र०– इस तेज से क्या लाभ होता है ?

उ०– यह तेज हर प्रकार का लाभ पहुंचा सकता है, किन्तु यहां पर केवल ज्ञानाधिकार के लिये उपयुक्त किया जाता है.

प्र०– यज्ञोपवीत किन पदार्थों द्वारा बनाया जा सकता है ?

उ०– सोना, चांदी, रेशम, सन, ऊन, कमल और सूत से.

प्र०– तो फिर सब सूत का क्यों पहनते हैं ?

उ०– क्योंकि सोने, चांदी का जनेऊ हरएक को मिलना कठिन है, तिसपर चोर आदि का डर है; रेशम, ऊन भींग जाने पर हानि पहुंचाता है; कमल सर्वत्र मिलता नहीं; सन जल्दी सड़ जाता है; किन्तु कपास सर्वत्र मिल सकता है; इसलिये सबके हित के लिये सूत का स्वीकारा गया है; यह जल्दी सड़ता नहीं; भींगने पर बिगड़ता नहीं; किन्तु अधिक काम देता है अर्थात् भींगने पर सूत्र द्वारा कर्षण शक्ति का तेज शीघ्रता से भ्रमने लगता है !

प्र०– सूत्र अर्थात् तार में क्या-क्या गुण हैं ?

उ०– यह कर्षण के तेज द्वारा गुप्त प्रकट—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, शीत, उष्ण को प्रवाहित कर ज्ञान कराने वाला तथा पदार्थों को एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाने वाला है.

प्र०– इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो हम इस तेज संचारित तार द्वारा घर बैठे, कोसों की खबर सुन सकते तथा वार्तालाप कर सकते हैं; इसीके द्वारा दूर देश की घंटियां बजा सकते, ताले खोल सकते तथा ट्राम आदि यंत्र चला सकते हैं; देखो ! हम तेज संचारक ऐनक लगा, इसी तार के द्वारा ओट की चीजें देख सकते हैं; सोने चांदी आदि की वाष्प कर, अनायास मुलम्मा चढ़ा सकते हैं; घर-घर विद्युतप्रभा फैला सकते हैं; इसीके द्वारा पदार्थों के स्वाद, सुगन्ध आदि का

ग्रहण त्याग कर सकते हैं; औषधियों के गुणों को बढ़ा सकते हैं तथा बादलों तक की बिद्युत उतार सकते हैं; देखो! हम बचपन में इन्हीं सूत के तारों से कानाबत्तू बना आपस में बातें किया करते थे!! बुन्देलखण्ड के ठग अपनी दीवारों में छिद्र रख तथा कानाबत्तू द्वारा घर-घर अपनी गुप्त बातों की सूचना पहुंचा दिया करते थे !!!

प्र०– क्या अब हम कानाबत्तू से काम ले सकतें हैं ?

उ०– कदापि नहीं ! क्योंकि ऐसा करना राजनियम के विरूद्ध माना गया है !

प्र०– यज्ञोपवीत कितना लम्बा रक्खें ?

उ०– नाभि या कटि तक.

प्र०– यज्ञोषवीत किस तरह धारे ?

उ०– यजन के लिये, इस तरह धारे कि वह उस दशा से सदा हृदय व नाभि पर रहे.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि ऐसा करने से कर्षणशक्ति का तेज का यजन मुलम्मे के यंत्र के समान इच्छानुरूप हो सकता है.

प्र०– मुलम्मे के यंत्र में तो जल भरा हुआ होता है ?

उ०– उसी तरह हममें रक्त भरा हुआ है.

प्र०– मुलम्मे के यंत्र में तो स्फुरणा उपजाने वाले दो पात्र होते हैं ?

उ०– उसी तरह हममें स्फुरने वाले दो स्थान हैं अर्थात् नाभि और हृदय.

प्र०– उन पात्रों पर तो गुजरता हुआ, वृत्ताकार तांबे का तार लगा होता है ?

उ०– उसी तरह हमारे हृदय व नाभि पर से गुजरता हुआ, वृत्ताकार यज्ञोपवीत होता है.

प्र०– उस तार द्वारा तो किसी पात्र भूषण आदि पर मुलम्मा किया जाता है ?

उ०– उसी तरह यज्ञोपवीत द्वारा मन पर तेज डाला जाता है.

प्र०– मुलम्मे के लिये तो उस तार से स्वर्ण बांधा जाता है ?

उ०– उसी तरह तेज डारने के लिये, यज्ञोपवीत में ब्रह्मग्रंथी आदि लगाई जाती है; जिसे मात्र गुरु बताता है.

प्र०– मुलम्मे के द्वारा तो आभूषण स्वर्णमय प्रतीत होता है ।

उ०– उसी तरह तेज के द्वारा मन अमनस्कता को प्राप्त होता है.

प्र०– अमनस्कता से क्या लाभ होता है ?

उ०– ज्ञानाधिकार प्राप्त होता है.

प्र०– यज्ञोपवीत धारण करने के कितने प्रकार हैं ?

उ०– तीन प्रकार हैं; सव्य, अपसव्य और मालावत.

प्र०– सव्य से क्या लाभ है ?

उ०– यह शरीरगत कर्षणशक्ति के तेज को भ्रमाता है.

प्र०– मालावत से क्या लाभ है ?

उ०– यह रक्तगत तेज को भ्रमाता है.

प्र०– अपसव्य से क्या लाभ है ?

उ०– यह वीर्यगत तेज को भ्रमाता है.

प्र०– मलमूत्र के त्यागने के समय यज्ञोपवीत कर्ण पर क्यों चढ़ा लिया जाता है ?

उ०– क्योंकि ऐसा करने से वह सुखपूर्वक नाभि तथा हृदय स्थल से हटा रहता है.

प्र०– हट जाने से क्या होता है ?

उ०– उपरोक्त यजन की गति मात्र भंग हो जाती है.

प्र०– उस गति के भंग से क्या लाभ ?

उ०– क्योंकि ज्यों-ज्यों मलमूत्र बाहर निकलता जाता है; त्यों-त्यों बाहरी वायु भीतर घुसने लगती है; तब बहुतसी दुर्गंधित उष्मा ऊपर चढ़ने लगती है; उस समय यदि यज्ञोपवीत नाभि हृदय पर टिका रहे; तो तद्गति से उपजा तेज हृदय को दूषित कर देगा.

प्र०– इससे क्या सिद्ध हुआ ?

उ०– कि जो सदा मलीन रहते हैं या नीच वस्तुओं का स्पर्श करते हैं या बुरी चीजें खाते हैं या नीच कर्म करते हैं; यदि वे यज्ञोपवीत

धारेंगे ! तो उनका हृदय अनायास दूषित हो जावेगा ! ! इसी हानि से बचने के लिये स्त्रियों तथा शूद्रों को यज्ञोपवीत की आवश्यकता नहीं ! ! ! देखो ! ऋतुमती स्त्री की छूत से आई हुई आंख में फूली पड़ जाती है ! इसी तरह दूषित मनुष्य के मलमूत्र पर मलमूत्र त्यागने से तथा उसका उल्लंघन करने से भी तनमन दूषित हो जाता है ! ! तभी तो गर्मी, खाज आदि रोग अनायास एक दूसरे को लग जाते हैं ! ! !

प्र०– तो फिर शूद्र आदि का उद्धार किस तरह होगा ?

उ०– सबका अनायास उद्धार जिस तरह हो सकता है; वह सब उपाय मोक्षादेश में दिया गया है !

प्र०– यज्ञोपवीत के लिये, एकही तार तीन वरता क्यों किया जाता है ?

उ०– इस चिरज्ञान के लिये, कि सत् और चित् शक्ति से युक्त, आनंदमय, वही केवल एक सच्चिानन्द प्रभू है !

प्र०– फिर उसे दक्षिणावर्त तथा वामावर्त बल देकर, त्रिगुणात्मक क्यों करते हैं ?

उ०– इस चिर ज्ञान के लिये, कि वह चित्तशक्ति-प्रभू की इच्छा (स्फुरणा) से बहिरंतर्मुख हो त्रिगुणात्मक हो गई !

प्र०– फिर उसे तिहरी कर, फंदा बना, तीन बार लपेट, तीन ग्रंथी लगा, क्यों फांस देते हैं ?

उ०– इस चिरज्ञान के लिये, कि वह सतशक्ति (सत्ता) भी उस स्फुरणा से त्रिगुणात्मक हो गई तथा उसके तीनों भेद उपरोक्त स्फुरणा के तीनों भेदों से मिल, प्रत्येक त्रिगुणात्मक हो गये; जिससे सत्ता के नव भेद हो गये; वही एक शक्ति-केवल सच्चिदानन्द के आश्रित रहकर, चराचर विश्व को उपजाती, ठहराती तथा नसाती है और वही व्यापक वाप्य भाव से सबको अपनी गति के फंदे में फांसे हुए हैं !

प्र०– उस ग्रंथी में सत्ताईस तन्तुओं का ओतप्रोत समावेश क्या चिताता है ?

उ०— यह चिताता है, कि पच्चीस तत्व, छब्बीसवां महतत्व और सत्ताईसवीं प्रकृति-ये सब उस सच्चिदानन्द की इच्छा मात्र है तथा उसी के आश्रित हैं !

प्र०— उस ग्रंथी को ब्रह्म ग्रंथी क्यों कहते हैं ?

उ०— जिस तरह यज्ञोपवीत का हर तन्तु उस ग्रंथी में उपस्थित है; उसी तरह चराचर विश्व का हर पदार्थ उस ब्रह्म में स्थित है; और जिस तरह यज्ञोपवीत के हर अंश का आधार सूत्र है; उसी तरह अखिल विश्व के हर अंश का सूत्राधार ब्रह्म है; इसलिये उस ग्रंथी को ब्रह्म की उपमा दी है ! सिवाय वह तेज की बढ़ानेवाली तथा संग्रह करने वाली है !! और ब्राह्मण को उस ब्रह्म का तथा उसके विस्तार का स्मरण करानेवाली है !!!

प्र०— सूत्र कब त्यागे ?

उ०— जब त्रिगुणात्मक शक्ति का जय हो जाय !

प्र०— दंडी सन्यासी क्योंकर यज्ञोपवीत को उतार कर, अपने हस्तगत दंड से बांधे रहते हैं ?

उ०— यह जताने के लिये, कि हम त्रिगुणात्मक शक्ति का जय कर चुके ! और वह लोकोत्तर शिक्षा के हितार्थ हमारे हस्तगत है !

प्र०— यज्ञोपवीत के द्वारा तेज आदि की प्राप्ति होती है; इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०— वेद में देखो ! यथा—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापर्येयत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्रंप्रतिमुंच शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।।

अर्थात् (यज्ञ) कशिस को उपगति देनेवाला, परमपवित्र, उत्पादक शक्ति को अनायास अग्रसर करने वाला, आयुष्य को बढ़ानेवाला, छुटकारा कराने वाला, शुभ्र यज्ञोपवीत, बल और तेज का दाता है; (सो सब मुझे प्राप्त हो) !

दोहा

आयुष्य मेधा तेज बल, ज्ञान पदारथ चार ।
यज्ञोपवीत जु देत हैं, ब्रह्मचर्य सो तार ।।१।।

विप्र सूत को शान्ति हित, क्षत्री सन बल एव ।
वैश्य ऊन को तर्क हित, पहिने विधि यजनेव ॥२॥

सोचिये

करत रहे क्रीड़ा शिशू, लगा सूत को तार ।
ताके आज प्रतापसों, भो जग किमी प्रसार ॥३॥
कछू बाहर कछू भीतरे, डारि सूत को तार ।
जल के पूरण पात्र में, लखो चुवै क्यों बारि ॥४॥
ऊन सूत्र इमि डारिये, जल अरु अर्क मिलाय ।
वो केवल जल छोड़के, लै किमि अर्क खिचाय ॥५॥
तेल चढ़े क्यों सूत सों, जल क्यों करै प्रकाश ।
कस खैंची ता गंध को, देवै किमी निकास ॥६॥
शब्द स्पर्श औ रूप रस, शीत उष्ण औ बास ।
सूतही नाना गुण बसै, खैंचै देय निकास ॥७॥
ये कर्षण चिरकाल ही, शोध पोष ठहरात ।
एक वस्तु के हटत ही, दूजी तहं पहुंचात ॥८॥

उपदेश १९

नित्यकर्म

प्र०– हमारा प्रात:काल का कृत्य क्या है ?

उ०– ब्रह्ममुहूर्तहि उठि प्रभु चिंती, प्रथम स्वकरतल पेखिये ।
ते घस चूम उतारो सिर ते, अन्य श्रेष्ट फिर देखिये ॥
कर से भूछू सिर से छूई, भू पददे दृग धोइये ।
द्वय कुल्ले कर नैऋत जाई, रवि दहिने मल खोइये ॥१॥
लिंग दोय गुद पांच वामदश, हाथ दुई हय बारये ।
पदहि तीन कर तीन बार फिर, माटि लगा धोडारिये ॥
मल त्यागे कर बारह कुल्ले, मूत्रहि त्यागे चार ये ।
कर दतौन ले बारह अंगुल, मुखादि मल धोडारिये ॥२॥

बारह कुल्ले कीजै नंतर, स्नान हेत पग धारिये ।
जल को छू के दृग सिर छूई, भ्रमाय गोता मारिये ।।
बाहर आ तन पोंछ अंगोछा, शुष्क वस्त्र फिर धारिये ।
उत्तर पूरब आसन डासी, बैठ सु आसन मारिये ।।३।।
शिखा बांध तन भस्म लगा के, माल रुद्राक्षहि धारिये ।
त्रय अचमन सह प्रभुको सुमरी, प्राणायाम सम्हारिये ।।
मार्जन करि रवि अर्घ हि देई, निजको चक्कर मारिये ।
रवि थापी संध्या करि होमा, पदजु बड़न के धारिये ।।४।।
जप तप पूजन दान करी फिर, घरको काज सम्हारिये ।
काज सु पहिले रवि सन्मुख ले, पय पी दंड निकारिये ।।

प्र०—हमारा मध्यानकाल का कृत्य क्या है ?

उ०— दुपहर में पुनि शिखा बांधतन, भस्म रुद्राक्षहि धारिये ।
आचमन प्राणायाम करिके, मार्जी अर्घज डारिये ।।
परिक्रमा करि रवि उत्थायी, सन्ध्या में चित धारिये ।
तर्पण करिके वैश्व देवकर, श्राद्ध कर्म संवारिये ।।१।।
जिमा अतिथि गो विप्र दीन को, स्वान काक बलि डारिये ।
तब भोजन कर सह परिवारा, फिर निज काज सम्हारिये ।।

प्र०— हमारा सायंकाल का कृत्य क्या है ?

उ०— संध्या को पुनि संध्या करिके, सायं होम संवारिये ।
दीप लगा गुरु जनपदबंदी, निजहित काज विचारिये ।।
हिलमिलजुल सब भोजन करि फिर, शयनागार पधारिये ।
पय पी प्रभु को सुमरत सोवै, नमि के बारम्बारये ।।

प्र०—नित्यकर्म द्वारा पूर्ण सिद्धि किसे होती है ?

उ०— शिक्षा सूत्र भू भूत शुचि, प्राण प्रतिष्ठा ध्यान ।
यह ज्ञान युत जो करै, होय सिद्ध ना आन ।।

प्र०— इन कर्मों से क्या होता है ?

उ०— नित्य कर्मसों तेज बढ़, तेज सुबाढ़ै ज्ञान ।
ज्ञानसु दोनों लोक में, होय सदा कल्याण ।।

उपदेश २०

प्रातरुत्थान काल

प्र०– सोकर कब उठना ?

उ०– ब्रह्म मुहुर्त्त में.

प्र०– ब्रह्म मुहुर्त्त किसे कहते हैं ?

उ०– जब एक प्रहर रात्रि बाकी रहे; उस काल को ब्रह्म मुहुर्त्त कहते हैं.

प्र०– ब्रह्म मुहुर्त में क्योंकर उठना चाहिये ?

उ०– क्योंकि रात्रि का पिछला प्रहर कफ का उत्पादक है, उस वक्त सोने से कफ रोग की उत्पत्ति होती है; वह कफ मनुष्य को निस्तेज तथा आलसी बना देता है; जिसके द्वारा बल, पराक्रम, आरोग्यता तथा आयुष्य घटता है.

प्र०– पिछला प्रहर कफ उत्पादक है; इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो पिछली रात को कफ रोगी बहुत खांसते हैं; किन्तु जब वे उठ बैठते हैं; तब खांसी का जोर कम पड़ जाता है.

प्र०– ब्रह्म मुहुर्त्त का अर्थ क्या है ?

उ०– उन्नति का मुहुर्त्त अथवा ब्रह्म के चिंतन या कीर्त्तन का मुहुर्त्त.

प्र०– ब्रह्म मुहुर्त्त में उठते ही प्रथम क्या करना चाहिये ?

उ०– ईश्वर का स्मरण, कीर्त्तन या ध्यान करना चाहिये.

प्र०– क्यों ?

उ०– मोक्षादेश पढ़ देखो !

दोहा

तेज आयु बल बुद्धिप्रद, वर्द्धक ब्रह्म मुहुर्त ।
जागि भजै प्रभु सब लहै, सोय लहै दुख धूर्त ।।१।।

उपदेश २१

प्रातःकाले दर्शनीय पदार्था :

प्र०– ब्रह्म मुहुर्त्त में उठते ही प्रथम किस वस्तु का अवलोकन करे ?

उ०– अपने करतल का.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि निद्रावस्था में ऊष्मा के इकट्ठे होनेसे नेत्र सुकुमार हो जाते हैं; यदि उस वक्त अचानक कोई दुष्ट पदार्थ देखने में आ जावे; तो नेत्रों को हानि पहुंचती है; सिवाय नेत्रों में इकत्र हुआ, बहुतसा तेज निरर्थक चला जाता है; किन्तु स्वकरतल के अवलोकन से वह तेज अपने हाथों द्वारा प्रविष्ट हो, अपने शरीर में व्याप जाता है ?

प्र०– तीन बार परस्पर करतलों को रगड़कर, चूमकर, मुंह पर क्यों फेरते हैं ?

उ०– क्योंकि रगड़ने से विद्युत उपजकर, दो भागों में विभक्त हो जाती है ! चूमने से मुख के भीतर की विद्युत उसमें आ मिलती है ! फिर उसे मुंह पर फेरने से सिर तथा आंखों की जड़ता व सुस्ती दूर हो जाती है ! सिवाय वह शरीर गत तेज अपने शरीर ही में भ्रमने लग जाता है !

प्र०– इसके बाद किन पदार्थों को देखें ?

उ०– अग्नि, मणि, सुन्दर गौ, धर्मात्मा या उनकी मूर्ति, जल, तुलसी, बट, पीपल, भारद्वाज, मयूर, चाष, सर्षप, स्वर्ण, घृत, दही, नकुल, दर्पण या दर्पण में अपना मुख या अन्य कोई श्रेष्ट वस्तु देखे ! तथा माता, पिता, गुरु आदि महानुभावों का वन्दन सहित दर्शन करे !

प्र०– प्रभात में नेत्र खुलते ही किन पदार्थों को न देखे ?

उ०– पापी, दुर्भग, दुर्गन्धित द्रव्य, कुरूप, भयंकर, भल्लातक, कर्षफल, काक, मार्जार, मूषक, क्लीव, गर्दभ, धूर्त्त, काना, नकटा, व्यभिचारी आदि को न देखे !

प्र०– प्रभात के दर्शन में विधि निषेध का झगड़ा क्यों लगाया गया है ?

उ– क्योंकि पदार्थों के गुणदोष के अनुसार हमारे तनमन तथा नेत्रों पर न्यूनाधिक अच्छा बुरा असर अवश्य पड़ता है !

प्र०— क्या प्रमाण ?

उ०— तभी तो किसी की पीड़ित आंख पर दृष्टि जमाने से, या झुमक तुरई के फूलों पर एकाग्र दृष्टि जमाने से बहुधा आंखें दुखनी आ जाती हैं ! उग्र दृष्टि से बहुधा बच्चे बीमार हो जाते हैं या कभी-कभी मर तक जाते हैं ! उग्र दृष्टि से खानपान आदि का स्वाद बिगड़ जाता है ! कभी-कभी पत्थर तक फूट जाते हैं ? चुम्बक पत्थर तथा विद्यु न्मय पदार्थ को एकाग्र अवलोकन करने से ध्याता पर कैसा अनोखा असर पड़ता है !

प्र०— ऐसा क्योंकर होता है ?

उ०— क्योंकि जब ध्याता की नेत्र ज्योति् की किरणें किसी ध्येय पदार्थ में घुसने लगती हैं या उस पदार्थ से टकराती हैं। तब उसके बदले में वे किरणें गुणदोष सहित उसका प्रतिबिम्ब लेकर वापिस नेत्रों में घुसने लगती है ! इसीसे ध्येय के गुणदोष का असर नेत्रों पर पड़ता है ! उसीकी प्रतिच्छाया मन पर पड़ती है ! तब पदार्थ दृष्टिगोचर होने लगता है ! साथही उस पदार्थ के गुणदोष का प्रभाव मन पर पड़ कर, तनपर भासने लगता है !

प्र०— जबकि अवलोक का असर हर वक्त हो सकता है ! तो फिर प्रातः-काल के लिये इतनी विशेषता दिखाने की क्या आवश्यकता है ?

उ०— क्योंकि निद्रा में नेत्रों के बन्द होने पर, उन्हें बाह्य पदार्थों के अवलोकन का कुछ काम नहीं पड़ता; उस दशा में वे रूपादिक के विकारों से रहित, कोरे बर्तन के समान हो जाते हैं; इसलिये प्रभात में खुलते ही प्रथम जिस पदार्थ का अक्स उनमें पड़ता है; उसीका प्रभाव अधिक होता है; जिस तरह कोरे बर्तन में प्रथम तेल भर देने से उसका असर ऐसा दृढ़ हो जाता है; कि फिर उसमें चाहे जो पदार्थ रखा जाय; तो भी वह घट तेल के प्रभाव से मुक्त नहीं होता; बल्कि उन पदार्थों को भी दूषित कर देता है ! देखो ! शीतकाल के बने बर्तन अग्नि द्वारा पक्व होने पर भी जल को अधिक शीतल रखते हैं; वैसे उष्णकाल के बने बर्तन नहीं

रख सकते; क्योंकि शीतऋतु के बर्तनों में प्रथम शीत प्रविष्ट हो जाता है; इसलिये वही असर प्रधान रहता है !

दोहा

उठ प्रभात नितता लखो, जो दृग हितकर होय ।
सुख पावै तनमन तथा, आलस जावै खोय ।।
नेत्र तेज पड़ वस्तु जा, सो प्रतिबिंब दृगाय ।
व्है अंकित तनमन प्रती, निज निज फल दर्शाय ।।

इसलिये

लख करतल घस चूम नित, तीन बार उठि प्रात ।
सिर दृग मुख पर फेर फिर, पेख अन्य शुचि जात ।।

क्योंकि

जहंसों इक द्रव बाहर जाय । तुरतहि दूसर तंह चलि आय ।
याको राखी सदा बिचार । शुद्धहि गही अशुद्ध निकार ।।

उपदेश २२

भूमिस्पर्शन

प्र०– प्रात:काल उठते ही पृथ्वी पर पैर रखने के पूर्व क्या करे ?

उ०– पहिले भूमि को हाथ से छूकर मस्तक से लगावे; फिर पैर पृथ्वी पर रखकर, नेत्रों को धोवे.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि रातभर आराम करने के पश्चात् प्रभात में एकदम उठ, पृथ्वी पर पैर देने से शरीरगत तेज की गति एकदम जमीन की ओर झुक पड़ती है; जिसके द्वारा परिणाम से अधिक तेज एकदम पृथ्वी में चला जाता है; इसी कारण कभी-कभी पैर में लचक आदि आ जाती ! इसलिये उस बेग को कुण्ठित करने के लिये, उठने के पहिले, तुरन्त भूमि से हाथ लगा, सिर से लगाने की जरूरत है ? क्योंकि हाथ जमीन से लगते ही वह तेज एकदम हाथ से निकल, जमीन में जाना चाहेगा; त्योंही हाथ मस्तक पर धर

देने से, उस तेज का यजन तथा प्रभाव मस्तक पर पड़, जड़ता को हरता हुआ शरीर में व्याप जायगा ! पश्चात् पैर भूमि पर देने से, जो उस तेज का प्रवाह भूमि की ओर झुकेगा; वह नेत्रों के धोने से साधारण हो जावेगा ! क्योंकि गर्मी-शीतल स्थान या शीतल पदार्थ की ओर तुरन्त जाती है !

प्र०– उस वक्त नेत्रों के प्रक्षालन करने से और क्या लाभ है ?

उ०– नेत्रों की जड़ता दूर होती है, आंखों की ज्योति बढ़ती है तथा उन्हें पीड़ित होने का कम भय रहता है ! (पश्चात् तीन कुल्ले करे !)

दोहा

कर से भू छू सिर छूई, दे पद दृग धोय ।
त्रय कुल्ला नित भोर करि, तेज सुरक्षा होय ॥

उपदेश २३

गंडूष

प्र०– कुल्ला करने से क्या लाभ है ?

उ०– यह मुख गत गर्मी, कफ, पित्त, दुर्गन्ध, ग्लानि, चिकनाई, शोष, जलन या कई प्रकार के रोगों को हरता है.

प्र०– कुल्ले की क्या विधि है ?

उ०– मुख में जल या कोई क्वाथ आदि लेकर क्षणभर या देर तक उसे कुल कुलाता रहे ! जिसमें जल तथा दवा का असर मुख में व्याप जाय तथा दांतों की संधियों का, या जीभ तालु आदि में चिपका हुआ विकार घुलकर अलग हो जाय ! पश्चात् कुल्ला कर दे अर्थात् थूंक दे !

प्र०– उठते ही प्रभात में तीन कुल्ले क्यों करे ?

उ०– क्योंकि सोने से मुख में दुष्ट उष्मा, दुर्गन्ध तथा राल आदि विकार आ जाते हैं; उन्हें हटाने के लिये.

प्र०– सूर्य के सामने कुल्ला क्यों न करे ?

उ०– क्योंकि उसके द्वारा नेत्रों की ज्योति घटती है; दंत जल्दी गिरते हैं तथा बाल असमय पक जाते हैं !

प्र०– जल में कुल्ला क्यों न करे ?

उ०– क्योंकि इसके द्वारा कफ तथा दंतरोग उपजता है; दांत शीघ्र कमज़ोर पड़ जाते हैं ?

प्र०– किसीके मलमूत्र पर कुल्ला क्यों न करे ?

उ०– इसके द्वारा तत्काल उसकी बिकारी दुर्गन्ध मुख में प्रविष्ट होती है; जो ज्ञानतन्तुओं को निर्बल करती है; दंतरोग, मुखरोग को उपजाती है; दृष्टि मंद करती है तथा स्वास्थ्य को बिगाड़ती है.

प्र०– कुत्ते पर कुल्ला क्यों न करे ?

उ०– क्योंकि उसके द्वारा चर्मकीले तथा मसे उपजते हैं !

प्र०– ऐसा क्योंकर होता है ?

उ०– क्योंकि जल प्रवाह के विरुद्ध उसका तेज गति करता है; किन्तु वह प्रवाह जिन पदार्थों पर होकर गुजरता है; उनका स्थूल सार या स्थूल गुणदोष अपने साथ-साथ नीचे की ओर बहाले जाता है, और उसका तेज उनका अत्यन्त सूक्ष्मसार या गुणदोषों का सार अपने साथ लेकर ऊपर पहुंचता है; वही मुख में घुसकर अपना प्रभाव विस्तारता है !

प्र०– इसलिये कुल्ला कहां पर करना चाहिये ?

उ०– अपने हाथ पर या गुणकारी वनस्पतियों पर या भूमि पर !

प्र०– कब कितने कुल्ले करने चाहिये ?

उ०– सोकर उठने पर तीन, मूत्र त्यागने पर चार, मल त्यागने पर बारह, भोजन के पहले आठ, भोजन के पश्चात सोलह अथवा मुख शुद्धि होने तक तथा ग्लानि मिटने तक कुल्ले करने चाहिये !

प्र०– मलमूत्र त्यागने के पश्चात् क्यों कुल्ले करने चाहिये ?

उ०– क्योंकि ज्यों-ज्यों मलमूत्र बाहर निकलता है; त्यों-त्यों अपानवायु दुष्ट ऊष्मा को लेकर ऊपर को चढ़ता है; इसलिये मुख शुद्धि की आवश्यकता है !

दोहा

कुल्ले द्वादश मल तजे, मुत्र तजे पर चार ।
अष्ट अशन के पूर्व में, द्वादश बाद अहार ।।
तीन प्रात कर यथोचित, मिटै विपुल मुखदोष ।
दाह ग्लानि दुर्गन्ध कफ, जड़ता आलस शोष ।।

उपदेश २४

विण्मूत्रोत्सर्ग विधि

प्र०– मलमूत्र कहां त्यागे ?

उ०– [वस्ती से बहुत दूर] शुद्ध भूमि पर.

प्र०– शुद्ध भूमि पर क्यों ?

उ०– क्योंकि अशुद्ध भूमि पर मलमूत्र त्यागने से शरीरगत उष्मा बिगड़-जाती है; जो अनेक रोग उपजाती है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि मलमूत्र का प्रवाह ज्योंही अशुद्ध भूमि की ओर जाने लगता है; त्योंही उस प्रवाह का तेज वहां की अशुद्ध ऊष्मा लेता हुआ; ऊपर चढ़ आता है !

प्र०– भूमि का विचार न रखने से क्या हानि ?

उ०– बहुधा औरों के मलमूत्र पर मलमूत्र त्यागने से गर्मी, परमा, खाज, दाद आदि रोग हो जाते हैं; तप्त भूमि पर मूतने से मूत्रकृच्छ्र हो जाता है; शीतल भूमि पर मूतने से मूत्रकृच्छ्र मिट जाता है !

प्र०– वस्ती से दूर क्यों मलमूत्र त्यागे ?

उ०– जिसके द्वारा किसीको कष्ट, ग्लानि तथा विकार न हो.

प्र०– किस दिशा में मलमूत्र त्यागे ?

उ०– बस्ती से बहुत दूर नैऋत्य कोण में.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि नैऋत्य का पवन बहुत कम चलता है, जिसके द्वारा बस्ती में दुर्गन्ध या बीमारी फैलने का कम डर रहता है.

प्र०– इस दुर्गन्ध आदि से बचने के लिये और क्या उपाय है ?

उ०– बस्ती से दूर, पृथ्वी में गढ़ा खोद, उसमें सूखे पत्ते बिछा, उन पर मलमूत्र त्याग, पत्तों से ढक, मिट्टी से तोप दे.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि सूखे पत्तों पर मलमूत्र त्यागने से पृथ्वीगत तेज अपने वीर्य को हानि नहीं पहुंचा सकता और ढाकने से दुर्गन्ध की रुकावट होती है तथा औरों के पैर आदि भरने का, या बीमारी फैलने का बिल्कुल डर नहीं रहता और न सूर्य की किरणें भीतर घुस गंध उड़ा सकती है.

प्र०– किस दशा को मुख करके मलमूत्र त्यागे ?

उ०– दिन को उत्तर तथा रात्रि को दक्षिण को मुख करके मलमूत्र त्यागे अर्थात् मलमूत्र के त्याग में सूर्य को सदा दाहिने हाथ पर रक्खे !

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि दाहिना कोठा जल का और बांया कोठा अन्न का है; इसलिये सूर्य की किरणें, जब दाहिने अंग पर पड़ेंगी; तब जल की वाष्प, अन्नमय कोष में घुस, मल को ढीला कर, नीचे को सरका देगी; बद्धकोष्टता तथा बादी किसी क़दर दबेगी.

प्र०– जल में मलमूत्र त्यागने से क्या हानि है ?

उ०– इसके द्वारा कब्ज़ी बहुमूत्र व बवासीर की उत्पत्ति होती है तथा शरीर निस्तेज हो जाता है.

प्र०– सूर्य के सन्मुख मलमूत्र त्यागने से क्या होता है ?

उ०– इसके द्वारा दृष्टि मंद, शुक्रश्राव, पलित तथा दंत रोग की उत्पत्ति होती है; सूर्य के सन्मुख कुल्ले करने से भी ये रोग होते हैं.

प्र०– मलमूत्र के बहिष्कार में शिखा की ग्रंथी क्यों खोलनी चाहिये ?

उ०– अशुद्ध ऊष्मा तथा तेज के विसर्जन के लिये,

प्र०– जिस पानी से आबदस्त लिया जाय या पैर धोये जांय; उस पानी से कुल्ले आदि क्यों न करे ?

उ०– क्योंकि जल की धारा ज्योंही किसी पदार्थ पर गिरती है; त्योंही प्रवाह का तेज उस पदार्थ के गुणदोष ऊपर पहुंचाता है; इसी कारण अशौच्य का बचा जल दूषित हो जाता है.

प्र०– मलमूत्र के त्याग में मौन क्यों धारे ?

उ०– क्योंकि चित्त के चांचल्य से शौच्य क्रिया ठीक नहीं होती; सिवाय लज्जा भी रक्षणीय है.

नोट–मृतिका लेपन के गुणज्ञान के लिये उप. २५ वां और कुल्ले के लिये उप. २३ वां देखो !

दोहा

नैऋत पुरसो दूर नित, कर दहिनो लै भान ।
पत्र बिछा करि गर्त्त में, पुनि ढक तजि मलान ।।१।।
रवि सन्मुख ना त्यागिये, ना लोटा लै हात ।
ऊष्मा चढ़ि ऊपर तदा, उपजावत रुज गात ।।२।।
लिंग दोय गुद पांच औ, वाम हस्त दश बार ।
माटी से मल धोइए, उभय हस्त हय बार ।।३।।
तीन बार पद दुअनको, मृत्तिका लेपी धोय ।
उभय हस्त पुनि यत्न सो, मलके मल दे खोय ।।४।।
कुल्ले द्वादश मल तजे, लघुशंका गत चार ।
जाविधि सो व्है शुद्धता, ताविधि कर उपचार ।।५।।

उपदेश २५

मृतिका लेपन

प्र०– मृतिका किसे कहते हैं ?

उ०– जो अंडज, पिंडज, स्वदेज तथा उद्भिज आदि के सड़ने गलने के योग से बनती है.

प्र०– इस मृतिका में कितने तत्व हैं ?

उ०– इस संसार भर के समग्र तत्व मिश्रित है.

प्र०– उन तत्वों से क्या लाभ है ?

उ०– चराचर प्राणियों का पालन, पोषण तथा रक्षण होता है.

प्र०– मृतिका लगाकर शरीर के अवयव धोने तथा स्नान करने से क्या लाभ है ?

उ०– यह मल, गंध, चेप, चिकनाई, विष तथा अन्तर्गत अपवित्र ऊष्मा को हरती है; चर्म रोगों को शोधती है तथा रोम कूपों के मुख खोलती है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि मृतिका में चूना, सज्जीखार, जवाखार, जंग, फास्फरस, गंधक, शोरा, फिटकरी, नौसादर, खड़िया तथा वनस्पति सम्बन्धि पदार्थ आदि हैं; सिवाय इसमें बड़ी भारी आकर्षण शक्ति है.

प्र०– मृतिका उपरोक्त विकारों को क्योंकर खैंच सकती है ?

उ०– कर्षण शक्ति के द्वारा.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो वह जल को सोख सकती तथा गर्मी सर्दी का ग्रहण त्याग कर सकती है ! यदि हम किसी पके हुये घाव या फोड़े फुन्सी पर इसका लेप कर दें ! तो वह उसे शोधकर मलरहित कर देती है ! मलमूत्र पर डालने से दुर्गन्ध हर लेती है !

प्र०– शौच्य के बाद हाथों को अनेक बार क्यों मटियाते हैं ?

उ०– क्योंकि मूल द्वार के प्रक्षालन से वहां की अशुद्ध ऊष्मा हाथों में व्याप जाती है; उसे निकालने के लिये.

प्र०– मृतिका के बदले साबुन क्यों नहीं लगाते ?

उ०– क्योंकि साबुन-त्वचा के जिस भाग पर लगाया जाता है, वहां का मल दूर करके चर्बी को फाड़ता हुआ; उल्टा अपना गंध बसा देता है; पर भीतर की दुर्गन्ध को खैंच नहीं सकता; किन्तु मृतिका मल भी शोधती है, व गंध तथा दुष्ट ऊष्मा को भी हर लेती है; सिवाय साबुन हमारी प्रकृति के विरुद्ध है.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि मृतिका प्राकृतिक और साबुन कृत्रिम है.

प्र०— कौनसी मृतिका शरीर के शोधने तथा बालों के धोने के काम में लानी चाहिये ?

उ०— जो स्वाद में मधुर अथवा कषाय हो, अर्थात् काली, गोपीचन्दन आदि.

प्र०— शौच्य के बाद लोटे को क्यों मटियाते हैं ?

उ०— क्योंकि जल की धारा से उसका तेज-मलकी ऊष्मा लेकर लोटे में बसा देता है; इसलिये उसे मटियाने से मिट्टी उस दोष को हर लेती है.

प्र०— मृतिका के तेज में कितना गुण है ?

उ०— पांच गुण हैं अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध.

दोहा

आहट आवत दूर को, भूमि लगाये कान ।
ठाड़े तसना आय क्यों, सोचो तुरत सुजान ॥१॥
स्पर्श जनक यामें कहा, शोषत पोषत जौन ।
रज में रूपक कौन है, तेज करावत तौन ॥२॥
रस कसकी, को खान है, गंध लेत, को देत ।
सबको शोधक कौन है, सोचो हेतु समेत ॥३॥
जाते ये तन बनि पलै, जाके बसे अधार ।
मरिके पुनि जामें मिलै, वही शुद्ध करतार ॥४॥
मल दूषण मृतिका हरै, अग्नि दग्ध को सेंक ।
हिम ऐंठन बर्फ हि हरै, यही सनातन टेक ॥५॥
सालहु भर में एक दिन, माटि लगा तन धोय ।
ताके तन को गंध मल, पल में जावै खोय ॥६॥
इक बालक नित गोद बस, इक खेलत नित धूर ।
दोउन में को है बली, सोचो मन भरपूर ॥७॥

अहै अखाड़ा धूल का, रौंधे नित जो कोय ।
तेज बढ़ै बल शुद्ध तन, पहलवान सो होय ।।८।।
ये माटी है कुदरती, करती लाभ अपार ।
साबुन ये प्रतिकूल तन, है हानी का द्वार ।।९।।

उपदेश २९

मुखमार्जन

प्र०– मुखमार्जन किसे कहते हैं ?

उ०– मुख, दांत, आंख, नाक तथा कान का मल आदि दूर करने को.

प्र०– दांत का मल किसके द्वारा दूर करे ?

उ०– दतौन द्वारा.

प्र०– दतोन का क्या प्रमाण है ?

उ०– दतौन कनिष्टिका के समान पतली बारह अंगुल लम्बी, ग्रंथियों से रहित, दंत तथा मुखादि के रोगों को हरने वाले वृक्षों की होनी चाहिये.

प्र०– दंत धावन के योग्य वृक्षों के नाम कहो ?

उ०– औदुंबर, वट, नीम, करंज, आम्र, कदम्ब, लोध्र, चम्पक, बदरी, धात्री, अंकोटक, खदिर, शमी, शेलु, पीलु, अपामार्ग, खर्जूरी, श्रीपर्णी, नारंग, तिनतिनी, वेणुपृष्ट, सर्ज, प्लक्ष, बिल्व, सैंध्र, अर्क, बीजापुर, दाडिम, सिन्दुवार, उटज, कुटज, जाती, करमर्दी, ककुभ आदि.

प्र०– किनकी दतौन वर्ज्य है ?

उ०– कुश, काश, निशुप, पलास की दतौन वर्ज्य है, सिवाय मृतिका, पर्ण, लोष्ट, भस्म, लोह, कोयला, अंगुली, केश, तृण आदि से दंत धावन न करे.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि कुश, काश, तृण, निशुप, पलास की दतौन मसोड़ों को चीरती है, भस्म मसोड़ों को फुलाती है, कोयला दांतों को काटता

है, लोहा दांतों की जड़ों को काटता तथा दांतों को क्षीण करता है, पत्ते दांतों को रंगते तथा चिकनास से मुख को लीसा कर देते हैं, किन्तु चिकनास हर नहीं सकते और न उनसे दांत मले जा सकते हैं; मिट्टी मुख में लेना योग्य नहीं, क्योंकि उसमें हड्डियां आदि मिली होती हैं; सिवाय मिट्टी उदर में जाने से पांडूरोग या कामलिया रोग होने का भय रहता है; उंगलियों से दांत मलना, उन्हें क्षीण करता है अर्थात् उंगलियों से निकली बिजली दांतों को कमजोर कर देती है; इसी तरह बालों की विद्युत दांतों को हानि पहुंचाती है.

प्र०– उगंलियों द्वारा बिजली निकला करती है, इसका क्या प्रमाण ?

उ०– (१) तभी तो कद्दु आदि के करे(बत्तिया) उगंलीदिखाने से गल जाते हैं, क्योंकि उगंलियों से निकली गर्मी, वे सह नहीं सकते.

(२) तभी तो भृकुटि के मध्य में तर्जनी के निशान से पीड़ा होने लगती है.

प्र०– उंगलियों की बिजली किस तरह देखी जा सकती है ?

उ०– रात के वक्त एक अंधेरी कोठरी में धुली चद्दर को तनी हुई ओढ़ कर, चित्त लेट जाओ और भीतर की ओर से नखों द्वारा चद्दर को लगातार रगड़ते रहो तो कुछ देर बाद, उंगलियों से निकलता हुआ, दीपक की लो के समान, प्रकाश दिखाई देगा, वह अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण दिन को नहीं दिखाई देता, जिस तरह दियासलाई का गुप्त तेज.

प्र०– विद्युत से दांत कमजोर पड़ जाते हैं तथा जल्दी गिर जाते हैं, इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो ब्रुश द्वारा दांत साफ करने वालों के दांत जल्दी गिर पड़ते हैं, और उपदेश २३/२४ में इसके कई प्रमाण दिये हैं, वहां देख लिजिये.

प्र०– यदि सैंधव आदिक चूर्ण से दांत मलना हो तो ?

उ०– दतौन की कुंची से मलो.

प्र०– जिन्हा को किसके द्वारा साफ करें ?

उ०– दतौन को चीर, उसे चापाकार बना, उसके द्वारा शुद्ध करें.

प्र०– काष्ट तथा वनस्पति की दातुन क्यों होनी चाहिये ?

उ०– क्योंकि इनका कटु तिक्त कसाय, रस दांतों को दृढ़ तथा रोग रहित करता है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो बंदर, बकरी, ऊंट तथा हाथी के दांत दृढ़ होते हैं तथा जल्दी नहीं गिरते हैं.

प्र०– कुशादि भी तो वनस्पति वर्ग में है ?

उ०– तो भी ये दांतों को क्षीण करने वाले हैं.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो गाय, भैस, घोड़े आदि के दांत जल्दी गिर जाते हैं.

प्र०– दंत धावन के योग्य किस वृक्ष में क्या गुण हैं ?

उ०– नाम, वृक्ष और उनके गुण निचे देखोः-

औंदुबर– कफ, पित, लोहू को दूर करता है.

वट– कफ, पित, फोड़ों को दूर करता है.

कदंब– कफ, लोहू को दूर करता है.

ककुभ– टूटे हाड़ को जोड़ता है, घाव को पूरता है तथा लोहू को दूर करता है .

लसौड़ा– फफोले, फोड़े, विष, विसर्प, कुष्ट को दूर करता है.

पीलू- वायु, पथरी, कफ को दूर करता है.

बंबूल– कफ, पित्त को दूर करता है.

अंकोर– फोड़े, विष, कृमि, पित्त, कफ, शूल को दूर करता है.

खैर– कृमि, फोड़े, सूजन, पित्त, लोहू, कफ, कुष्ट, दंत रोग को दूर करता है.

करंज– कुष्ट, बवासीर, फोड़े, कृमि, कफ को दूर करता है.

आम्र– कफ, पित्त, फोड़ों को दूर करता है.

बेर– वात, पित्त, शूल, कृमि को दूर करता है.

नारंगी– वादी को दूर करती है।

संभालू– शूल, सूजन, वात, कफ, कृमि, कुष्ट, फोड़ों को दूर करती है.

अपामार्ग– वात, कफ, दाह को दूर करता है.

नीम– रक्त, दाह, पित्त, फोड़ों को दूर करता है.

प्र०– मुख मार्जन पश्चात् कितने कुले करने चाहिये ?

उ०– बारह.

दोहा– **गुणकारी तरु की करै, विधिवत नित्य दतौन।**
द्वादश कुल्ले अंत में करें, लहै सुख तौन ॥१॥
दांत आंख मुख नाकओं, तालू जिव्हा कान।
मुखमार्जन में शोधिये, तोय शुद्ध ले छान ॥२॥

उपदेश २७

स्नान

प्र०– स्नान क्यों किया जाता है ?

उ०– पवित्रता व निरोगता के लिये स्नान की आवश्यकता है। जिसके द्वारा आलस्य, निद्रा, दाह, श्रम, मल तथा प्यास हटती है, जठराग्नि बढ़ती है, शरीर शुद्ध होता है। तथा उत्साह बढ़ता है.

प्र०– स्नान से क्यों कर लाभ पहुंचता है ?

उ०– क्योंकि स्नान द्वारा शरीर का मल दूर होता है, जिससे रोम कूपों के मुख खुल जाते हैं, जिनके द्वारा भीतर की अशुद्ध उष्मा तथा वायु बाहर निकलता रहता है। और बाहर का शुद्ध वायु तथा तेज भीतर पहुंचता रहता है, वही शरीर को शोध कर शरीर को निरोगी बनाता है.

प्र०– स्नान किस दिन करना चाहिये ?

उ०– नित्य

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि नित्य स्नान नहीं करने से मल द्वार, शरीर के रोम कूप बन्द हो जायेंगे। जिसके द्वारा अनेक प्रकार के विकार उपजते हैं.

प्र०– स्नान कब करें ?

उ०– सूर्योदय के पूर्व.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि सूर्योदय के पूर्व स्नान करने से शरीर आलस्य रहित हो जाता है, तेज, ज्ञान, बल उत्साह बढ़ता है, दुस्वप्न बन्द हो जाते हैं।

प्र०– प्रातः स्नान में क्या विशेष गुण है ?

उ०– प्रातः स्नान करने वाले को शीत ऋतु में शीत और ग्रीष्म ऋतु में गरमी कम लगती है.

प्र०– किन्तु कैसे जल से स्नान करना चाहिये ?

उ०– निर्मल, मिष्ट, तथा रंग, गंध से रहित शीतल, हल्का, विकार रहित जल से स्नान करना चाहिये। ऐसे जल को तीर्थ कहते हैं।

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि ऐसा जल सब विकारों से बचाता है.

प्र०– किस ओर मुख करके स्नान करें ?

उ०– स्थिर जल में पूर्व की ओर मुख करके स्नान करें, तथा बहते हुए जल में प्रवाह के अनुकूल मुख करके स्नान करें।

प्र०– क्यों ?

उ०– तेज प्राप्ति के लिये.

प्र०– ऐसा करने से क्यों कर तेज प्राप्त होता है ?

उ०– क्योंकि पृथ्वी-पश्चिम से पूर्व की ओर गति करती है। इसलिए उसका तेज पूर्व से पश्चिम को आता है, सो सनमुख स्नान से प्राप्त होता है, इसलिये प्रवाह के विरुद्ध, जल का तेज गति करता है, वो भी सन-मुख लेने से प्राप्त होता है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो दीक्षा ग्रहण के वक्त, सन्मुख बैठा हुआ शिष्य-गुरुका दिया तेज अनायास पा सकता है.

प्र०– स्नान किस तरह करना चाहिये ?

उ०– प्रथम जलको हस्त से छू नेत्रों को लगा, शिरपर छींट, जल में धसे, फिर उसे हस्तांगुष्ट से भ्रमाय, गोता लगाय, स्नान करे और शरीर को मलकर मल रहित करदें।

प्र०– पहिले जल स्पर्श आदि क्यों करें ?

उ०– क्योंकि एकदम जल में धस पड़ने से शरीर की ऊष्मा एकदम ऊपर चढ़, नेत्र की ज्योति को हरती है, इसलिए पहिले हस्त, नेत्र तथा मस्तक तर करके, बाद जल में धसने से, वह ऊष्मा–हानी नहीं पहुंचा सकती, बल्कि सर्वत्र हो, निकलने के कारण, उसका वेग मारा जाता है और जल को भ्रमाने से उसका तेज व्यापता हुआ, शरीर को शोधता है तथा शरीर की ऊष्मा को सर्व मुख कर देता है।

प्र०– शरीर को मृतिका लगाकर स्नान करने से क्या होता है ?

उ०– मृतिका अपनी कर्षण शक्ति से मल, ऊष्मा, दुर्गंध, चिकनाई तथा त्वचा के अनेक रोगों को हरती है, शुद्ध वायु तथा तेज को भीतर पहुंचाती है, देखो ! उप० २५ वा।

प्र०– गोमय लगाकर स्नान करने से क्या होता है ?

उ०– गोमय अपनी कर्षण शक्ति से मृतिका दोष, मल, चिकनाई विष कृमि तथा त्वचा के अनेक रोगों को हरता है। देखो ! उप०२९ वा

प्र०– भस्म लगाकर स्नान करने से क्या लाभ होता है ?

उ०– भस्म अपनी कर्षणशक्ति से मृतिका दोष, गोमयदोष, मल, गंध, चिकनाई, अशुद्ध ऊष्मा, तथा त्वचा के अनेक रोगों को हरता हुआ शुद्धवायु तथा तेज को भीतर पहुंचाता है, देखो ! उप० ३१ वा

प्र०– पंचगव्य के स्नान से क्या लाभ है ?

उ०– यह शरीरका शोधक है, देखो ! उप० २९ वा

प्र०– पंचामृत के स्नान में क्या लाभ है ?

उ०– यह शरीर की कांति पुष्टिका वर्द्धक है देखो ! उप० २९ वा.

प्र०– स्नान में कुश ग्रहण का क्या नियम है ?

उ०– दहिने हाथ में दो. बांए में तीन, शिखा में एक तथा पैरोंतले एक रक्खें.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि वे कुश–जल तथा किरणों के द्वारा, कशिसको जारी करके, शरीर की अशुद्ध ऊष्मा को शोधते तथा शुद्ध तेज भीतर पहुंचाते हैं, देखो ! उप० ३५ वा

प्र०– प्रतिदिन शिर-स्नान किसे न करना चाहिये ?

उ०– जटिल को.

प्र०– स्नान में आसन किस वस्तु का करे ?

उ०– कुश तथा शिलाका. (उप० ३० वा देखो !)

प्र०– उष्ण जल से कब स्नान करे ?

उ०– शीताधिक तथा रुग्णावस्था में.

प्र०– उष्ण जल से कौन स्नान करे ?

उ०– निर्बल, बालक, वृद्ध तथा रोगी.

प्र०– उष्ण जल के स्नान में किस बात का ध्यान रक्खे ?

उ०– शिर पर उष्ण जल न डालने का.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि शिर पर उष्ण जल डालने से नेत्रों की ज्योति घटती है.

प्र०– कौनसे पदार्थ स्नान के पूर्व खा सकते हैं ?

उ०– इक्षु, आम, फल, मूल, पय, तांबूल, और औषधि.

प्र०– कब ?

उ०– जब किसी कारण स्नान न हो सकता हो; शरीर रोगी हो ; या क्षुधा बहुत जोर से लगी हो; तब……!

प्र०– कब स्नान न करे ?

उ०– जब बीमार हो, या बीमार होने का भय हो, या चलकर आया हो या कसरत आदि परिश्रम करके उठा हो; तब स्नान न करे.

प्र०- स्नान कर चुकने पर तथा जल में से बाहर निकलने के पूर्व और क्या करे ?

उ०- जो सुभीता हो, तो वहीं पर मार्जन, तर्पण भी कर ले. देखो ! उप० ३६-४७ वां

दोहा

पित्त दोष मृतिका हरै, गोमय हर कफ दोष ।
वात दोष हर भस्म ये, सोखत लेप त्रिदोष ।। १ ।।
गंध हटे मल चेपरूज, तेज बढै सुख पाय ।
स्नान करत आलस भगै, फुरती तन में आय ।। २ ।।
भूख बढै घी अग्निबल, रोमकूप खुल जाय ।
दोष जाय गुण आय तन, आयू स्नान बढ़ाय ।। ३ ।।

उपदेश २८

वस्त्र परिधान

प्र०- स्नान करते ही क्या करे ?

उ०- शरीर को अंगोछे से पोंछ, शुष्क वस्त्र पहिन, आर्द्र वस्त्र धो, आसन पर बैठ, संध्या आदि कर्म करे.

प्र०- गीले से संध्या आदि क्यों न करे ?

उ०- क्योंकि गीला वस्त्र वायु के संचार से शरीर की उष्णता घटाकर रक्त को शीतल कर देता है; जिससे शीत व्याधि उपजती है.

प्र०- किस तरह ?

उ०- जिस तरह उष्ण जल के पात्र को गीला वस्त्र लपेट, वायु में रख देने से, तद्वत ऊष्मा बाहर निकल जाती है; जिससे जल अत्यन्त शीतल हो जाता है.

प्र०- यदि हम गीले वस्त्र से ही जप आदि करना चाहें तो ?

उ०- तो जल में बैठकर करो; वायु में बैठकर नहीं.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि प्रभात में जल उष्ण होता है; सिवाय जल का तेज, शरीर के तेज की पूर्ति करता है; सिवाय मध्यान में या तीसरे प्रहर में सूर्य का घाम रहता है; इसलिये कुछ देर तक जल में बैठे रहने से कुछ हानि न होगी, किन्तु वायु मंडल में गीले वस्त्र से बैठने से बहुत बड़ी हानि होगी ।

प्र०– जल में बैठने से हानि न होगी; इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो अधिक तैरने से कफ रोग दबता है ।

प्र०– यदि बादल हों तो ?

उ०– तब स्वभाव ही से जल उष्ण रहता है ।

प्र०– यदि जल अधिक शीतल हो तो ?

उ०– तो उसमें कदापि न बैठे ।

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि अधिक शीतल पदार्थ उष्णता का अपहरण करता है; इसलिये ठंडे जल में बैठे रहने से शरीर की गर्मी घट कर, हाथ, पैर तथा रगें आदि ऐंठ जावेंगी; जिससे रोग या मरण होगा ।

प्र०– यदि हमें दाह, पित्त, विष आदि का विकार हो तो ?

उ०– तो सहन होने योग्य जल में बैठने से वह विकार दब जावेगा ।

प्र०– सूखा वस्त्र पहनते ही गीला वस्त्र क्यों धो लेना चाहिये ?

उ०– क्योंकि संध्या के पश्चात् वस्त्र धोने से शक्ति ताड़न तथा शीत का भय रहता है ।

प्र०– संध्या के लिये ऊनी तथा रेशमी वस्त्र क्यों पहनते हैं ?

उ०– क्योंकि ये दोनों शरीर के तेज की रक्षा करते हैं; तथा बाहरी उष्ण शीत और वात को भीतर नहीं आने देते ।

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो इनमें लपेटे हुए लोहे के अस्त्र-शस्त्र को कीट (जंग) नहीं लगता ।

प्र०– ऊनी वस्त्र से किस तेज की रक्षा करें ?

उ०– निराकरणकारी तेज की।

प्र०– रेशमी वस्त्र किस तेज को रक्षता है ?

उ०– आकर्षणकारी तेज को रक्षता है।

प्र०– ऊनी तथा रेशमी वस्त्रों से क्यों कर हमारे शरीर गत तेज की रक्षा होती है ?

उ०– क्योंकि हमारे सजीव केशों की ऋण विद्युत और उन मरे बालों की धन विद्युत परस्पर मिल रुक जाती है; इसी तरह हमारी धन विद्युत और रेशम की ऋण विद्युत परस्पर मिल रुक जाती है; इसी कारण इन दोनों वस्त्रों से हमारे शरीरगत तेज की रक्षा होती है।

प्र०– वस्त्र परिधान का क्या नियम है ?

उ०– धोती पहिन कर उप-वस्त्र ओढ़ ले तथा एक अंगोछा मुंह-हाथ पोछने को प्रथक रखे।

दोहा

आकर्षण रख रेशमी, निराकरण रख ऊन।
दोऊ के संयोग सो, स्थंभन होवै दुन ॥ १ ॥
यासों तेज न डिग सके, अंगहि रहे समाय।
तीनों दोष नसाय के, बल धी आयु बढ़ाय ॥ २ ॥
धौतवस्त्र एक पहिन कर, औढ़े इक उपवर्ण।
एक अंगोछा राखिये, पोछन दृग मुख कर्ण ॥ ३ ॥

उपदेश २९

गोमयादि

प्र०– गोबर तथा गोमूत्र से लीपना क्यों चाहिये ?

उ०– क्योंकि उसके द्वारा महामारी, विषदोष, कृमिदोष, प्लेग आदि के कृमि तथा अनेक विकार दूर होते हैं; भूमि और वायु शुद्ध हो जाती है।

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि इसमें पोटास, सोड़ा, मेगनेशिया, शोरा, चूना, लोहभस्म, गंधक, फास्फरस तथा एमोनिया आदि अनेक गुणकारी पदार्थ हैं.

प्र०– यह वायु शुद्ध किस तरह करता है ?

उ०– इसमें का फास्फरस तथा गंधक का तेजाब उड़कर वायु को शुद्ध कर देता है; सेरों गंधक जलाने की जरूरत नहीं.

प्र०– गोबर में कौन-सा पदार्थ किस हिसाब से मिला हुआ है ?

उ०– जो १०० सेर गोबर लेकर परीक्षा की जावे तो उसमें पोटास (दाहकक्षार)=१७ सेर २ छटांग; सोडा (पाचकक्षार) =६ सेर ५ छटांग; मेगनेशिया (सेलखड़ी) =४ सेर ८ छटांग; केलशियम (चूना)=७ सेर ५ छटांग; लोहभस्म=३ सेर ५ छटांग; गंधक का तेजाब=३ सेर ४ छटांग; रेतका तेजाब=४१ सेर २ छटांग; फास्फरस=१७ सेर १ छटांग निकलेगा; सिवाय एमोनिया (नवसादर) भी होता है; किन्तु वह उड़ जाता है.

प्र०– उसकी प्राप्ति किस तरह हो सकती है ?

उ०– वह गोमूत्र में द्रवता के कारण बहुत मिला हुआ पाया जाता है; इसके सिवाय गोमूत्र में उपरोक्त पदार्थ भी द्रव रूप से विराजते हैं.

प्र०– पोटाश अर्थात् दाहकक्षार में क्या गुण है ?

उ०– यह विष को हरता, मल-मूत्र को शोधता, जठराग्नि को बढ़ाता, कफ, उदर रोग तथा शीतज्वर आदि का हरता है; शोरे को भून लेने से जो वस्तु रहती है; वह शुद्ध पोटाश है.

प्र०– सोड़ा अर्थात् पाचकक्षार में क्या गुण है ?

उ०– यह अन्न को पचाता है, भूख लगाता है, मल को शोधता है, उदर तथा कफ के विकारों को हरता है; सज्जी या देशी निमक को खूब जलाने पर जो रहता है; वह शुद्ध सोड़ा है.

प्र०– मेग्नेशिया अर्थात् सेलखड़ी में क्या गुण है ?

उ०– यह वात, पित्त, अम्लपित्त, प्रमेह, आम तथा रक्त दोष को हरतो है, शरीर को निर्बल होने से बचाती है; क्योंकि यह अभ्रक का मूल तत्त्व है.

प्र०– केलशियम अर्थात् चूने में क्या गुण है ?

उ०– यह अन्न का खमीर बना पचाता, मलको शोधता, रक्त को साफ करता, कफ, कृमि तथा उदर रोग को हरता है.

प्र०– लोहभस्म में क्या गुण है ?

उ०– यह वात, कफ, गुल्म, रक्त, बवासीर, उदर रोग आदि को हरता है, रक्त को शोधता है, वल, पुष्टि, आयु तथा जठराग्नि को बढ़ाता है.

प्र०– सल्फरिक एसिड अर्थात् गंधक का तेजाब क्या गुण करता है ?

उ०– कृमियों को मारता है, शरीर के रक्त को शोधता है, नेत्र ज्योति बढ़ाता है, त्वचा रोगों को हरता है, जठरानल प्रदीप्त करता है; अन्न का खमीर बनाता है, भोजन पचाता है, क्षार की तेजी मारता है, वायु शुद्ध करता है.

प्र०– रेत का तेजाब क्या गुण करता है ?

उ०– दृढ़ता, पुष्टि, बल करता है; तभी तो मणि, माणिक, हीरे आदि की भस्म से वैद्य लोग बड़े-बड़े रोगियों को निरोगी कर बलवान बना देते हैं.

प्र०– फास्फरस में क्या गुण है ?

उ०– यह जठरानल को प्रदीप्त करता है, भूख बढ़ाता है, अन्न पचाता है, शरीर, जोड़, हाड़ तथा मस्तिष्कको दृढ़ करता है, नेत्र ज्योति, बल, वीर्य, बुद्धि, आयु तथा पराक्रम को बढ़ाता है, वात, कफ तथा उदर रोग को हरता है, यह गेहूं में बहुत होता है, हड्डियों में भी होता है; किन्तु अशुद्ध.

प्र०– एमोनिया अर्थात् नवसादर में क्या गुण है ?

उ०– यह प्राय: समस्त धातुको गला पानी कर देता है, हड्डियों को भी गला डालता है, तो उसे कफ, गुल्म, प्लीह, ज्वर आदि को हरते क्या देर लग सकती है, निखालिस खाने से वीर्य को नुकसान पहुंचाता है; किन्तु गोबर तथा गोमूत्र में अन्य तेजी मारने वाले पदार्थ कुदरती मिले हुए हैं; जिनके संयोग से यह शरीर के दोषों

का बड़ा शोधक है; तो कृत्रिम दवा का क्या काम ?

प्र०– गोबर का रस तथा गोमूत्र कितने रोगों को हरता है ?

उ०– यह शरीर के बाहर भीतर का मल, विकार, आम, रक्त, पित्त, वात, कफ, कुष्ट, विष, गुल्म, अफरा, प्लीह, कृमि, अर्श, उन्माद, नेत्ररोग, अतिसार, खाज, दाद, खांसी, ज्वर, मंदाग्नि, शूल, मस्तिक रोग, हृदयरोग, उदररोग, महामारी, प्लेग आदि सेंकड़ों रोगों को हरता है.

प्र०– पंचगव्य किसे कहते हैं ?

उ०– गोबर का रस, गोमूत्र, दूध, दही, घृत के मिश्रण को.

प्र०– पंचगव्य के स्नान तथा पान से क्या लाभ है ?

उ०– यह उपरोक्त गुण के सिवाय त्वचा से लेकर अस्थिगत विकारों तक हर लेता है, शरीर को शोधकर समान कर देता है, बल, बुद्धि आयुष्य, कांति तथा आरोग्यता को बढ़ाता है.

प्र०– पंचामृत किसे कहते हैं ?

उ०– दुग्ध, दधि, घृत, मधु, शर्करा के मिश्रण को.

प्र०– पंचामृत के स्नान तथा पान में क्या गुण है ?

उ०– यह बल, वीर्य, बुद्धि, आयुष्य, कांति, नेत्र ज्योति, पुष्टि, आरोग्यताको बढ़ाता है, जरा, क्लीवता आदिका नाश करता है. (अर्थादिश–उप० १२ देखो !

दोहा

पंचामृत कर पुष्ट तन, पंचगव्य हर रोग ।
इक शोधक पोषक अहै, देत त्रान इक भोग ।। १ ।।

सुखकर दुखहर दोय ये, हों जाके निज धाम ।
सो बड़भागी जगत में, ता न वैद्य को काम ।। २ ।।

अन्हिक प्रयोग, प्रायश्चितर्थ

यत्त्वगस्थि गतं पापं देहेतिष्टितिमामके ।
प्राशनात्पंचगव्यस्य दहत्यग्निरिवेंधनं ।।

अर्थात् मेरे देह में जो त्वचा, अस्थि आदि के अंतर्गत दोष स्थित है, वे सब पंचगव्य के पान से नष्ट हो; जिस तरह अग्नि ईंधन को जलाता है !

उपदेश 30

आसन

प्र०– आसन किसे कहते हैं ?

उ०– उपस्थित रखनेवाले को.

प्र०– यह किसे उपस्थित रखता है ?

उ०– बैठनेवाले के तेज को.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि आसन के बिना, भूमि अपने तन का तेज हरती है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो शीतल भूमिपर बैठे रहने से बहुधा हमारे पैर बोझल हो जाते हैं तथा उनमें चीटियांसी रेंगने लगती है.

प्र०– किनके आसन प्रशस्त हैं ?

उ०– कुश, काँस, कंबल, भोजपत्र, देवदारु, स्फटिक, रेशम, मृगचर्म, सिंहचर्म, व्याघ्रचर्म आदि के.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि ये सब तेज के रक्षक हैं.

प्र०– किनके आसन त्याज्य हैं ?

उ०– लोहा, सीसा, रांगा, कांसा आदि धातु या आंभस पत्थर के.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि ये शरीर गत तेज के हारक हैं.

प्र०– आसनों के तंतु किस ओर रखने चाहिये ?

उ०– उत्तर दक्षिण या पूर्व पश्चिम की ओर.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि पृथ्वी की कर्षणशक्ति की गति दक्षिण से उत्तर को तथा

पश्चिम से पूर्व को है; जिसमें उसका लौटता हुआ तेज, तंतुओं द्वारा बह सके.

प्र०– तंतुओं द्वारा तेज बह सकता है ?

उ०– तभी तो रेशम की डोर द्वारा मेघज विद्युत उतारी जा सकती है.

प्र०– आसन में तो तानाबाना होता है ?

उ०– इसी कारण वह तेज इन तंतुओं में व्याप कर गति करता है.

प्र०– तो क्या दक्षिण उत्तर बहने वाला तेज-पूर्व पश्चिमको, तथा पश्चिम पूर्व को बहनेवाला तेज-उत्तर दक्षिण को बह सकता है.

उ०– अवश्य.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो रेलवे की घंटी बोल सकती है तथा पद ध्रुवदर्शक यंत्रकी सुई दिशा बदल सकती है.

प्र०– आसन की क्या विधि है ?

उ०– गोबर से लिपी भूमि पर कुशासन, उसपर मृगचर्म तथा उसपर कंबल आदि बिछा, सिद्धासन आदि लगा, पूर्वोत्तर मुख बैठे.

दोहा

आसन राखै तेज निज, खेच सकै ना भूमि ।
आ न सके तरसों कदा, शीत वात तन झूमि ।।

उपदेश 39

भस्म धारण

प्र०– मूर्खों तथा जंगलियों के समान भस्म चुपड़ने से क्या लाभ ? क्या यह ज्ञान तथा सभ्यता का लक्षण है ?

उ०– सभ्यता-ज्ञान पाकर आती है तथा ज्ञानद्वारा सब कुछ जाना जाता है ! इसलिए ज्ञानी भस्म से भी लाभ उठा सकते हैं ! मुझ सरीखे मुर्ख नहीं !

प्र०– तो सब भस्ममें बैठने तथा लोटनेवाले पशुभी ज्ञानी होने चाहिये ?

उ०– जिस तरह गधा खुदकी पीठपर लदी हुई, शक्कर का गुण

स्वाद नहीं जानता ! उसी तरह अज्ञानी-भस्म लगाता हुआ भी उसके गुणको नहीं जान सकता ! इसी कारण वह उसे निरर्थक समझता है ?

प्र०– नहीं तो फिर इस भस्म से क्या अर्थ सिद्ध होता है ?

उ०– यह हर तरह स्वतेज का रक्षक है.

प्र०– किस तेज का.

उ०– जो हमारे भुक्त अन्न को पचाता, रस रक्त बनाता, बल, घी, आयुष्य बढ़ाता; योग को सधाता, सब ज्ञान का प्रदाता तथा जीवन का मूल है !

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि ज्यों२ यह तेज घटने लगता है; त्यों-त्यों अरुची, अजीर्ण, मंदाग्नि, अशक्ति, क्षय आदि विकार उपजकर जीवनको नसाते हैं।

प्र०– कौन कहता है, कि भस्म स्वतेज का रक्षक है ?

उ०– स्वयं भस्म शब्द का अर्थ.

प्र०– क्या कहीं नाम से भी वस्तु के गुण दोष जाने जा सकते हैं ?

उ०– वेदका कोई शब्द निरर्थक नहीं है ! यहां तक कि वेद तथा हमारे त्रिकालदर्शी ऋषियों ने पदार्थों के गुण कर्म के अनुसार ही उनके नाम निर्मित किये हैं ! तभी तो [यथा नामा: तथा गुणाः] की कहावत चरितार्थ हुई है !

प्र०– अच्छा ! भस्म शब्द का क्या अर्थ है ?

उ०– जोकि भस्म शब्द (भः+म) से बना है; किन्तु (भः) का अर्थ प्रभा, तेज और (म) का अर्थ मर्यादा, चिरकाल, अमृत, रक्षक आदि है; इसलिये (भस्म) का अर्थ हुआ; तेजकी मर्यादा चिरतेज, या तेजका रक्षक.

प्र०– क्या यह अर्थ सार्थक है ?

उ०– तभी तो इसे रक्षा या राख कहते हैं; नहीं तो राख के बदले फेंक कहना चाहिये था ?

प्र०– इसके तेज रक्षकता की क्या परीक्षा ?

उ०– तभी तो भस्म चर्चन से कम ठंड लगती है।

प्र०– कोई अच्छा प्रमाण दो ?

उ०– तभी तो भस्म में गड़ा, सुलगता हुआ एक ही कंडा, अपनी आग, जितनी देर तक, कायम रखता है; उतनी देर तक मैदान में जलने वाले सौ कंडे भी नहीं रख सकते ?

प्र०– किन्तु भस्म धारण से भयंकर रोग हो सकता है तथा मनुष्य मर भी सकता है; क्योंकि रोमकूपों के बंद हो जाने से उनके द्वारा विकारी कार्बोनिक गैस क्योंकर निकल सकेगा ?

उ०– भस्म खुद कार्बोन को खैंच लेती है तथा उसे निर्धूम्र कर उड़ा देती है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! जिस तरह मैदान में रखे सुलगते हुए कंडे का धुआं, सबको कष्ट पहुंचाता है; उस तरह भस्म में गड़े कंडे का धुआं क्यों नहीं पहुंचाता ?

प्र०– भस्म चर्चन से आक्सीजन क्योंकर भीतर पहुंच सकेगा ? और उस दशा में मनुष्य क्योंकर जी सकेगा ?

उ०– भस्म खुद आक्सीजन को खैंच भीतर पहुंचाती रहती है।

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो भस्म में गड़ा कंडा सुलगता रहता है।

प्र०– इन दोनों गैसों के आवागमन का और क्या सबूत है ?

उ०– जब भस्म में दबे, सुलगते हुए, कंडे पर धाम आजाता है; तो जलतरंगके समान ऊपर नीचे आता-जाता तथा लहराता हुआ सा प्रतीत होता है या सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा वह गति देखी जा सकती है.

प्र०– भस्म में क्या गुण हैं ?

उ०– यह तेज को रक्षती, रोमकूपों को खोलती, दुर्गंध, मल तथा चेप को हरती, दुष्ट वायुको बाहर निकाल देती, शुद्ध वायु को भीतर पहुंचाती, जठरानलको बढ़ाती तथा उसे पुष्ट करती, त्वचा

को स्वच्छ करती, व्रण तथा घाव को शोधती, विषको हरती, कृमियों को नसाती, ज्वर, शीत, वात, पित्ती, शूल, पीड़ा, रक्त, महामारी, प्लेग, त्वचा के रोग तथा उदर रोग आदि अनेक रोगों को दरती है; सिवाय आयुष्य को बढ़ाती तथा ज्ञानतंतुओं को प्रबल करती है. इत्यादि.

प्र०- इसमें गुण कहां से आए?

उ०- कुदरत से.

प्र०- क्यों ?

उ०- क्योंकि इसमें पोटाश, सोडा, चूना, मग्नेशिया, लोहभस्म, एल्यू-मिना, सिलकन भस्म आदि अनेक गुणकारी पदार्थ कुदरती हिसाब से मिले हुए हैं!

प्र० - यह जठराग्नि को पुष्ट करती है; इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०- तभी तो मैदान में जलने वाले कंडे की आग पोची और भस्म में गड़े कंडे की आग परिपुष्ट होती है; इसी कारण हुक्का पीनेवाले इसे पसंद करते हैं.

प्र०- क्यों ?

उ०- क्योंकि वह जल्दी बिखर जाती है और यह नहीं बिखरती; सिवाय वह जल्दी बुझ जाती है और यह जल्दी नहीं बुझती.

प्र०- यह दुर्गंध को हरती है; इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०- (१) तभी तो भस्म में गड़े कंडे का दुर्गंध हमें नहीं सता सकता.

(२) बिगड़े पानी में भस्म डालने से उसकी दुर्गंध दूर हो जाती है.

(३) कुआर पाठे के गूदे को कपड़े में बांधकर राख में गाड़ देने से उसकी दुर्गंध चली जाती है.

(४) अन्य दुर्गंधित अपवित्र वस्तु पर भस्म डालने से उनकी दुर्गंध दब जाती है.

प्र०- भस्म से दुर्गंध क्यों दूर होती है ?

उ०- क्योंकि उसमें एल्यूमिना तथा चूना आदि है.

प्र०– भस्म किस तरह अंतर्गत दुष्ट ऊष्मा को दूर करती, शुद्ध वायु को भीतर पहुंचाती तथा जठरानल को प्रदीप्त करती है !

उ०– जिस तरह वह उसमें गड़े कंडे की दुर्गन्ध को दूर कर, शुद्ध वायु को भीतर पहुंचा, तद्वत अग्नि को सुलगाती है अर्थात् यह अग्नि के गुण की रक्षक है.

प्र०– इस गुण से क्या लाभ ?

उ०– तेज की रक्षा होती है, रोमकूप खुल जाते हैं, शरीर शुद्ध हो जाता है तथा अनेक रोग दूर भागते हैं.

प्र०– भस्म मल को हरती है; इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– [१] तभी तो गरीब लोग भट्टी की राख से अपने मैले वस्त्र धोकर साफ कर लिया करते हैं.

[२] तथा हमारे सकरे बर्त्तन मलकर साफ किये जा सकते हैं, इत्यादि.

प्र०– भस्म क्योंकर मल साफ करती है ?

उ०– क्योंकि उसमें पोटाश, सोडा तथा चूना आदि है.

प्र०– भस्म विष को हरती; इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– [१] तभी तो क्षार पाक बिच्छू आदि के विष को हरता है.

[२] पोटाश से सर्प का विष उतरता है.

[३] भस्म से बिच्छू उतारा जाता है.

प्र०– भस्म विष को क्यों हरती है ?

उ०– क्योंकि इसमें चुना, एल्यूमिना तथा पोटाश आदि है.

प्र०– भस्म विकारी कृमि कीटों को नसाती है; इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– [१] तभी तो खाकी मच्छरों के उपद्रव से बचे रहते हैं; इसी से इन्हें ज्वर का भय कम रहता है.

[२] राख पर होकर खटमल नहीं जा सकते, चीटियां लौट जाती हैं; तो प्लेग के कृमि क्यों कर चढ़ सकेंगे तथा जी सकेंगे.

प्र०– यह पित्ती शीत, वात तथा मस्तक शुल आदि को हरती है; इस वात का क्या प्रमाण ?

उ०–[१] तभी तो मस्तक पर मलने से मस्तक पीड़ा चली जाती है.

[२] तथा गरम २ राख मलके, कंबल ओढ़ लेने से शीत पित्ती दब जाती है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि इसमें पोटाश, चूना है तथा मलने से वायु मंडल का नायट्रोजन मिलकर मस्तक पीड़ा को हरता है और न मिलने से शीतवात को हरता है.

प्र०– यह गले सड़े को शोधती है; इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– [१] तभी तो जिस कूपका जल सड़कर महकने लग गया हो; उसमें भस्म डालकर यह शुद्ध हो जाता है !

[२] रोगी वनस्पतियों को अच्छा करती है.

[३] पके, सड़े गले व्रणों तथा घावों को शोधकर साफ कर देती है ! इसीसे खाकियों को फोड़े फुन्सी प्राय: नहीं होते अर्थात् यह त्वचा के रोगों को हरती है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि इसमें सोड़ा, पोटाश, एल्यूमिना, चुना आदि है.

प्र०– व्रण तो काष्टिक से जला दिये जा सकते हैं ; फिर क्योंकर भस्म लगावे ?

उ०– क्योंकि काष्टिक त्वचा को जला देती है और भस्म बिना जलाये, विकारको हरकर उसे उज्ज्वल कर देती है,

प्र०– भस्म आयुष्य को बढ़ाती है; इस बात का क्या प्रमाण ?

उ०– क्योंकि हमारा आयुष्य स्वतेज के आश्रित हैं, जबतक वह तेज इस शरीर में रहेगा, तभी तक जीवन स्थिर रहेगा; किंतु उस तेज को यह भस्म रक्षती है; इसीलिये जितने अधिक काल तक यह भस्म उस तेज को रक्षेगी; उतना अधिक आयुष्य होगा !

प्र०–वह तेज क्योंकर घटता है ?

उ०– वायु का कारण; अर्थात् वायु उस तेज का हारक और भस्म रक्षक है।

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो मैदान में रखा, सुलगता कंडा जल्दी जल जाता है; किन्तु वही भस्म में गड़ा होने से देर तक जला करता हैं; अर्थात् वह अग्नि उस वायुमंडल की अपेक्षा उस भस्म में तिगुने से अधिक समय तक सजीव रह सकती है.

प्र० - इससे क्या सिद्ध हुआ ?

उ०– जो जितनी देर तक भस्म चढ़ाया रहेगा, उससे तिगुना आयुष्य उसका होगा.

प्र०– भस्म किस तरह तथा कौन काम के लिये कौनसी लगानी चाहिये; जिससें आयुष्य वृद्धि, ज्ञान प्राप्ति तथा रोगों की निवृत्ति हो ?

उ०– यह विधि सच्छास्त्रों तथा सद्गुरु द्वारा सीखनी चाहिये ! इसी तरह भिन्न २ प्रकार के भस्म खाने से भिन्न २ प्रकार के रोग जाते हैं, जगत में ऐसा कोई रोग नहीं जो भस्म द्वारा भस्म न हो जाय; किन्तु यह विषय वैद्यक शास्त्र का है ! कहाँ तक कहें ! भस्म हर तरह सबकी रक्षा करके अपना नाम सार्थक करती है ! देखो ! भस्म में धरा, या भस्म में गोमूत्र मिला तथा सुखाकर उसमें धरा अन्न वर्षों तक ज्यों का त्यों बना रहता है ! इत्यादि. [इसकी विभूति गोपनीय हैं.]

दोहा

भस्माकर्षण तेजकर, तेज हरै सब रोग।
वासो बाढ़ै आयु बल, लहै ज्ञान सत योग ।।

यथाश्रुतिः (भस्म धारण का मंत्र)

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्यत्र्यायुषं ।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषं ।।

अर्थ

(त्र्यायुषं जमदग्नेः)=जमदग्नि का मत है, कि भस्म लगाने वाले की तिगुनी आयु होती है; इसी तरह (कस्यपस्य त्र्यायुषं)=कश्यप का मत है, कि भस्म लगाने वाले की तिगुनी आयु होती है। (यद्देवेषु त्र्यायुषं)=जिन देवों में तिगुनी आयु करने की शक्ति हो; (तन्नो अस्तु त्र्यायुषं)=वे सब हमारी तिगुनी आयु करने वाले हों !

भस्म धारण का मंत्र २

प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने।
सँसृज्य मातृभिष्टंव ज्योतिष्मान्पुनरासदः ॥

अर्थ

(अग्ने) हे अग्निदेव (त्वं) तुम (भस्मना) भस्मद्वारा या अपने चिर तेज द्वारा (योनी) जन्ममरण के कारण को या कारणरूप, (अपः) जलको (च) और (पृथिवीं) पृथ्वी को (प्रसद्य) प्राप्त होकर या शुद्ध करके। सिवाय (मातृभिः) अपनी तीनों शक्तियों के द्वारा (संसृज्य) अच्छी तरह त्यागकर अथवा उपजाकर (पुनः) फिर से (ज्योतिष्मान्) तेजसे युक्त (आसदः) होते हो ॥

भस्म धारण का मंत्र ३

अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म। जलमिति भस्म। स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म। **सर्वँ** हवा इदं भस्म। मन एतानि चक्षुंषि भस्मानीति। (संस्पृशेत्)

अर्थ

अग्नि भी उस चिर तेज द्वारा रक्षित है। वायु भी उस चिर तेज-द्वारा रक्षित है। जल भी उस चिर तेज द्वारा रक्षित है। स्थल भी उस चिर तेज द्वारा रक्षित है। आकाश भी उस चिरतेज द्वारा रक्षित है। सभी उस चिरतेज द्वारा रक्षित है। इसलिये भस्मों को, नेत्रादिक अंगों के प्रति लगाओ !

अन्य अर्थ

अग्नि भी उस चिरतेज का रूपांतर मात्र है। वायु भी उस चिरतेज का रूपांतर मात्र है। जल भी उस चिरतेज का रूपाँतर मात्र है। स्थलभी उस चिरतेज का रूपांतर मात्र है। आकाश तत्व भी उस चिरतेज का रूपांतर मात्र है। सभी उस चिरतेज का रूपांतर मात्र है। इसलिये उस तेजकी रक्षक भस्मों को नेत्रादिक अंगों के प्रति लगाओ !

उपदेश ३२

प्र०– माला शब्द किस धातु से बना ?

उ०– मल् धातु से.

प्र०– मल् का अर्थ क्या है ?

उ०– धारण करना.

प्र०– माला किसे कहते हैं ?

उ०– धारी जाय या जो दिव्य तेज को धारे.

प्र०– माला वृत्ताकार क्यों है ?

उ०– क्योंकि नक्षत्र मंडल वृत्ताकार है.

प्र०– माला में १०८ पारे क्यों रखे जाते हैं ?

उ०– चाहे राशि के विचार से देखो ! नक्षत्र के विचार से देखो ! समस्त नक्षत्र मंडल १०८ चरणों में विभक्त है ! उसी तरह हमारे शरीर में १०८ मर्मस्थान है ! इसी कारण १०८ पारेकी माला उत्कृष्ट समझी जाती है !

प्र०– माला के पारे (मणिये) गोल क्यों हैं ?

उ०– क्योंकि हर नक्षत्र गोल है.

प्र०– माला फेरी क्यों जाती है ?

उ०– क्योंकि समस्त नक्षत्र मंडल फिर रहा है.

प्र०– नक्षत्रों की गति से, उनके व्यय होने वाले तेज का बहुत बड़ा भाग, परस्पर एक दूसरे में होता हुआ, पुनः लौटकर उन्हें मिलता है ?

उ०- उसी तरह पारों की गति से हमारे हस्तद्वारा निकलते हुए तेज का बहुत बड़ा भाग उन सबमें होता हुआ, पुनः लौटकर हमें मिलता है.

प्र०- वह हमें क्या लाभ पहुंचाता है ?

उ०- यह रक्त को गति देता है तथा ज्ञानतंतुओं को प्रबल करता है.

प्र०- कब ?

उ०- जब तर्जनी को दूर कर, केवल मध्यमा से माला फेरी जाय.

प्र०- वह तेज हम में क्योंकर लौट आ सकता है ?

उ०- क्योंकि माला के पारे-तेज के रोधक तथा माला का सूत्र या तारतेज का वाहक होता है, (बिना गुरु के इसका गुप्त भेद नहीं विदित हो सकता).

प्र०- किस तरह संबंध इन दोनों का है ?

उ०- जिस तरह इस सूत्र के आश्रित ये सब पारे हैं; उसी तरह उस सूत्राधार के आश्रित वे सब तारे हैं ! जिस तरह इस सूत्र में बल है; उसी तरह उस सूत्राधार में सब शक्ति है !

प्र०- किन पदार्थों की माला बनाई जाती है ?

उ०- अरिष्ट बीज, पद्माक्ष, मणि, मुक्ता, स्फटिक, प्रवाल, शंख, कुश-ग्रंथी, इन्द्राक्ष, भद्राक्ष, रुद्राक्ष तथा तुलसी आदि की.

प्र०- रुद्राक्ष किसे कहते हैं ?

उ०- जो निराकरणकारी तेज को रोकती, फैलाती तथा घुमाती है.

प्र०- क्या प्रमाण ?

उ०- तभी तो असली रुद्राक्ष शुद्ध ताम्र के संपुट में आपही भ्रमने लग जाती है.

प्र०- रुद्राक्ष धारने से क्या लाभ है ?

उ०- शरीर से बहिर्गत होने वाले निराकरणकारी तेज का बहुतसा हिस्सा माला के तार में भ्रमता हुआ, हमारे अनेक विकारों को हरता हुआ, हमें आयुष्मान् करता है.

प्र०- तुलसी किसे कहते हैं ?

उ०- तेज तथा गति को समतुल्य रखने वाली तुलसी है; सिवाय त्रिदोष को शमन करती है.

प्र०- माला-गोमुखी में क्यों जपते हैं ?

उ०- माला में प्राप्त हो, भ्रमते हुए, स्वतेज की रक्षा के लिये.

दोहा

रुद्र रुलावत जगतको, वाहि आप लो जीत।
वा हित नाना यतन ये, कहत वेद के गीत ।।१।।
तेज विकर्षी रुद्रको, अक्षत ये रुद्राक्ष।
याते याही धारिये, जो लेवे ता अक्ष ।।२।।
रुद्र हेत रुद्राक्ष ये, भद्र हेत भद्राक्ष।
इन्द्र हेत इन्द्राक्ष धर, ता गति हित पद्माक्ष ।।३।।
मुक्ता मूंगा स्फटिक मणि, तुलसी रक्षत काश।
शंख अरिष्टजु विघ्नहर, कुश ग्रंथी रुज नाश ।।४।।

उपदेश 33

आचमन

प्र०- आचमन किस तरह करें ?

उ०- उर्द्द तुल्य शुद्ध जल तीन बार प्राशन करें.

प्र०- क्यों ?

उ०- क्योंकि ऐसा करने से कंठ गत कफ तथा हृदय गत दाह दूर होकर अग्नि प्रदीप्त होती है.

प्र०- किस तरह ?

उ०- जिस तरह प्रज्वलित अग्नि पर किंचित् जल सींचने से वह उद्दीप्त हो उठता है; किन्तु अधिक जल डालने से बुझ जाता है; इसलिये अधिक जल से कदापि आचमन न करे; न अत्यन्त न्यून से; अर्थात् ब्रह्मतीर्थ से आचमन करे !

प्र०– आचमन के लिये शुद्ध जल न मिले; तो क्या करे?

उ०– तो नाभि, हृदय, कंठ, बाहु, सिर, शिखा, नेत्र, कर्ण का स्पर्श करे.

प्र०– क्यों?

उ०– क्योंकि इन स्थानों के स्पर्श से रक्त में गति उपजती है; जिससे अग्नि प्रदीप्त होती है.

दोहा

करत शुद्ध त्रय आचमन, जठरानल अधिकाय।
हरै दाह कफ कंठ को, प्राणायाम बढाय॥

आचमन का मंत्र

वृष्टिरसिवृश्च मे पाप्मानं सत्येन वृतमुपैभ्यापः सत्य मयी वृतं॥

अर्थ

(आपः) हे जलो! तुम्हारा (वृतं) वर्द्धमान तेज (सत्यमयी) अमृत से युक्त है और तुम (वृष्टिरसि) वृष्टिरूप हो, अर्थात उस अमृत के सींचने वाले हो; इसलिये (मे) मेरे (पाप्मामं) अवनति के कारणों का (वृश्च) क्षालन करो; क्यों कि मैं (सत्येन) उस अमृत मयी सत्ता के द्वारा (वृतं) निज तेज की वृद्धि (उपैमि) किया चाहता हूं.

उपदेश ३५

प्राणायाम

प्र०– प्राणायाम किसे कहते हैं?

उ०– प्राण वायु के निग्रह करने को.

प्र०– प्राणायाम के द्वारा क्या होता है?

उ०– शरीरगत अग्नि, वात, पित्त, कफ, आम, रस, रक्तादि सप्त धातु

तथा समस्त नाड़ियों का शोधन होता है; जिसके द्वारा आरोग्यता, बल, आयु तथा गति बढ़ती है.

प्र०– क्यों कर ?

उ०– क्योंकि सूक्ष्म होने के कारण शरीर के हर भाग में घुस, वहां की रुकावट आदि को दूर कर, मल दोष तथा दुर्गंध आदि विकारों को बाहर निकाल देता है.

प्र०– प्राणायाम की क्या विधि है ?

उ०– यमनियम सहित सात्विक खान-पान वाला-सुन्दर, निर्विघ्न निर्वात स्थानमें कुशासन पर मृगचर्म तथा उसपर ऊनी वस्त्र बिछा, दृढासन लगा बैठे, फिर बंध त्रययुत रेचक, पूरक, कुंभक करता हुआ तथा क्रम से बढ़ाता हुआ ८० पर्यंत प्राणायाम करे; किन्तु पूरक से रेचक दूना तथा कुंभक तिगुने से अधिक होना चाहिये !

प्र०– यदि पूरक से रेचक में दूना समय न लगाया जावे; तो क्या होगा ?

उ०– बल, पराक्रम घटेगा ?

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह कसरत में जल्दीर स्वास लेने से बल घटता है; किन्तु जो जितना कम स्वास लेता है या कम हांफता है; वह उतना अधिक बलवान होता है और वह जल्दी थकता भी नहीं.

प्र०– कुंभक क्यों अधिक बढ़ाया जाय ?

उ०– प्राणवायु के निग्रह के लिये.

प्र०– मनुष्य के सिवाय और कौन पवन घुमाना तथा रोकना जानते हैं ?

उ०– **कुछ जानत गिरगट इसे, कुछ जानत अहि बात ।**

बदलत रंगाहि अन्य त्वक्, मरे न बिन अपघात ।। १ ।।

सिंह व्याघ्र गज काक बक, शूकर मेंडक कच्छ ।

कोष्ट भ्रमर औरे कछ, उल्लू अजगर मच्छ ।। २ ।।

प्र०– प्राणायाम आदि का पूर्ण ज्ञान किसके द्वारा होता है ?

उ०– योगशास्त्र के पढ़ने तथा गुरु द्वारा समझ लेने से.

प्र०– बलशाली तथा शीघ्रगामी किस प्राणायाम से हो सकते हैं ?

उ०- सगर्भ से.

प्र०- क्या प्रमाण ?

उ०- (१) देखो ! जो जितना कम हाफता है या कम स्वास लेता है या दम रोक सकता है; वह उतना ही अधिक साहसी, पराक्रमी तथा परिश्रमी होता है !

(२) और देखो ! बाइसिकल या मोटर के पहियों में वायु भर देने से वह कितनी हल्की व फुरती से चल सकती है !

प्र०- वायु मंडल में अधर चलने व ठहरने का सामर्थ्य किस प्राणायाम द्वारा होता है ?

उ०- सगर्भ से.

प्र०- क्या प्रमाण ?

उ०- तभी तो गुब्बारे अधर चल फिर सकते हैं !

प्र०- किन्तु उनमें सूक्ष्म बाष्प नीचे से भरी जाती है ?

उ०- उसी तरह मूलाधार से वायु खैंच, उदर में भ्रमा जठराग्नि से बाष्प बना, ऊपर स्थित करने से मनुष्य भूमि त्याग, अधर हो सकता है.

प्र०- कौनसा प्राणायाम कर्षणकारी है ?

उ० - अगर्भ.

प्र०- क्या प्रमाण ?

उ०- (१) तभी तो वायु से रहित पात्र प्रवलता से कर्षता है.

(२) ऐसे दो पात्रों के मध्य में रखा पदार्थ चुर हो जाता है.

(३) यदि हम चकमक का पिष्ट किसी कष्टित या अच्छे अंग पर मलके स्वास रहित मुख द्वारा कर्षते हैं, तो वहां से बगेर चीरे खून वहने लग जाता है.

(४) वायु से शून्य पात्र, शरीर पर औंधा रखते ही जोर से मांस को भीतर खैंचने लगता है.

(५) **थाली बिच जल दीप घर, घट औंधो दे तोप ।**
वायु जलत ही पात्र जल, खैंचत व्है क्यों लोप ।।

प्र०- ऐसा क्यों होता है ?

उ०- वायु मंडल के दबाव से.

प्र०- तो फिर छिद्र रहित, वायु से शून्य-पात्र क्यों नहीं कर्षता ?

उ०- वह आकाश तत्व से पूर्ण हो जाता है.

प्र०- क्यों ?

उ०- क्योंकि जिस पात्र में वायु नहीं घुस सकती, उसमें भी आकाशतत्व संचार कर सकता है.

प्र०- यदि हम किसी युक्ति से आकाशतत्व (ईथर) को भी हटा दें, तो ?

उ०- इसे हटाना असंभव है, यह सब पदार्थों में घुस सकता है, इसे मात्र शक्ति हटा सकती है; किन्तु वह कशिस किसी स्थान को खाली नहीं रहने देती; एक पदार्थ के हटते ही उस स्थान पर अन्य को पहुंचाती है; सब तत्व तो हट भी सकते हैं किन्तु यह शक्ति किसी तरह हटाई नहीं जा सकती, जो इसे आधीन कर लेता है, उसके आधीन अखिल विश्व हो सकता है ।

प्र०- तो फिर योगी लोग, इसे पार किस तरह कर सकते हैं ?

उ०- केवल प्रभु कृपा से ध्यान द्वारा.

प्र०- जो विद्या अविद्या अर्थात् तेज तथा शक्ति को जय कर लेता है; उसे क्या सिद्धि होती है ?

उ०- वह ब्रह्मज्ञानी सब कुछ करने की सामर्थ्य पा जाता है अर्थात् वह मरे को जिला सकता है, गुप्त प्रकट हो सकता है, एक सृष्टि से अन्य सृष्टि में जा सकता है, पिंडों के समान भारी पदार्थों को अनाधार चला फिरा तथा ठहरा सकता है, चाहे जो असंभव कार्य कर सकता है; जिस तरह विश्वामित्रादिक कर सके थे !

प्र०- प्राणायाम का इन बातों से क्या संबंध ?

उ०- प्राणवायु के जय होते ही आकाश तत्व में मन की स्थिति होती है, फिर आकाश तत्व के जय होते ही शक्ति तत्व में मन की स्थिति होती है, फिर शक्ति तत्व के जय होते ही ब्रह्मानंद की प्राप्ति होती है; इसका साधनक्रम मोक्षादेश के योगोपदेश में देखो !

सोरठा

वायु पित कफ आम, सप्त धातु मल अग्नि को।
शोधो प्राणायाम, घी बल वय गति बढ़ावत ॥ १ ॥

दोहा

पूरक पूरै आयु को, रेचक रेचै रोग।
कुंभक देवै शांति को, तुरत सधावै योग ॥
परको कर्षो पूरिये, पर में रेची प्रवेश।
कुंभक रक्षत है सदा, प्राणायाम निवेश ॥ २ ॥
इक बाहर इक भीतरै, कुंभक दोय सगर्भ।
इक नीचै इक ऊपरै, कुंभक दोय अगर्भ ॥ ३ ॥
गर्भ अगर्भ सुमध्य में, भ्रू नाशा मंझार।
केवल कुंभक है वही, केवक पद दातार ॥ ४ ॥
कुंभक होवत है तहां, जहां लीन मन होय।
स्वासास्वास सुरहित कल, अलख लखै थिर जोय ॥ ५ ॥

उपदेश ३५

कुशपवित्रीधारण

प्र०– पवित्री किस वस्तु की बनाई जाती है ?

उ०– दर्भ या कुशकी.

प्र०– दर्भ या कुश में कैसा गुण है ?

उ०– मूंज के समान.

प्र०– दर्भ का क्या अर्थ है ?

उ०– प्रकाश का सत्कार करने वाला.

प्र०– कुश का अर्थ है ?

उ०– चमकाने तथा आलिंगन देने वाला.

प्र०– पवित्री किसे कहते हैं ?

उ०– पवित्र करने वाली को.

प्र०– पवित्र का क्या अर्थ है ?

उ०– मल से रहित या मल से प्रथक होना.

प्र०– पवित्री धारण से क्या लाभ ?

उ०– यह शरीरगत तेज तथा उसकी गति को शोधती है.

प्र०– पवित्री कहां धारे ?

उ०– अनामिकाओं में.

प्र०– पवित्री नित नयी क्यों होनी चाहिए ?

उ०– क्योंकि यह मार्जन आदि के उपरांत शरीर की दुष्ट ऊष्मा से दूषित हो जाती है.

प्र०– किन पदार्थों की पवित्री केवल धोने से पवित्र हो जाती है ?

उ०– स्वर्ण, रजत तथा ताम्र की.

प्र०– इन्हें कब स्वीकारे ?

उ०– कुश आदि के अभाव में.

प्र०– स्नानादिक के वक्त कितने कुश धारे ?

उ०– दाहिने हाथ में दो, वायें हाथ में तीन, शिखा में एक तथा पैरों के नीचे एक.

दोहा

कुश पावन कुश सुधाकर, कुश शोधत तन काश।
कुश द्विज को बड़ अस्त्र है, याते रख नित पास।।१।।
विष्णु शक्ति द्वै कुश बसत, इक शोषत इक पोष।
जल भासो पोषत सतत, रवि भासो अघ शोष।।२।।

यथाश्रुतिः

पवित्रेस्थो वैष्णव्यो सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। देवीरापो अग्रेगुवो अग्रेपुवोग्र इममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिँ सुधातुँ यज्ञपतिं देवयुवं.

अर्थ

तुम दोनों ! (पवित्रे) इस पवित्री के प्रति, (सवितुः) सविता की (प्रसवे) कृपा से (वैष्णव्यो) विष्णु शक्ति वाले हो; और (वः) हे जलो ! तुम्हारे सहारे) या तुम तीनों के सहारे (अच्छिद्रेण पवित्रेण) इस छिद्र रहित पवित्री के द्वारा प्राप्त हुई (सूर्यस्य रश्मिभः) सूर्य की किरणों द्वारा (उत्पुनामि) मैं पवित्र होता हूं। इसलिये (आपः) हे जलो ! आप (देवी) अपनी ज्योति को (अग्रेगुवो) अग्रभाग की ओर चलाने वाले, (अग्रेपुवो) अग्रभाग में पवित्र करने वाले (अद्य) आज (इमं यज्ञं) इस यज्ञ को (अग्र) आगे बढ़ाओ; (सुधातुं) अमृत के लिये (यज्ञपति) यज्ञपति को, (देवयुवं) तेज प्राप्ति के लिए (यज्ञपतिं) यज्ञपति को अग्रे-नयत्) अग्रभाग की ओर ले चलो या आगे बढ़ाये चलो !

उपदेश ३९

मार्जन

प्र०– मार्जन किसे कहते हैं ?

उ०– शोधने, मलने, झाड़ने तथा बुहारने को.

प्र०– मार्जन किसे झाड़ता है ?

उ०– शरीरगत सूक्ष्म दोषों को.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह झाड़ने बुहारने से घर में का, कूड़ा कचरा दूर होता है.

प्र०– मार्जन किसके द्वारा करे ?

उ०– जिस दोष को हरना हो; उसी दोष के हरने वाले पदार्थ के द्वारा.

प्र०– कौनसा पदार्थ किस विकार को हरता है ?

उ०– इसके लिए आयुर्वेद तथा निघंट पढ़ देखो !

प्र०– मार्जन किन दोषों को झाड़ता है ?

उ०– तेजगत, रक्तगत तथा वीर्यगत दोषों को.

प्र०– कर्मकांड ने इन विकारों के झाड़ने के लिए कौन से पदार्थ बताए हैं.

उ०– कुश, अपामार्ग तथा दूर्वा.

प्र०– कुश किसे झाड़ता है ?

उ०– विशेषकर तेजगत दोषों को.

प्र०– अपामार्ग किसे झाड़ता है ?

उ०– विशेषकर रक्तगत दोषों को.

प्र०– दूर्वा किसे झाड़ती है ?

उ०– विशेषकर वीर्यगत दोषों को.

प्र०– कुश में क्या गुण है ?

उ०– यह विसर्प, दाह, रक्त, मूत्राशय तथा नेत्ररोग को हरता है.

प्र०– अपामार्ग में क्या गुण है ?

उ०– यह कफ, वायु, दाह, बवासीर, खुजली, उदर रोग, अपची, रक्त, पित्त तथा विष दोष को हरता है.

प्र०– दूर्वा में क्या गुण है ?

उ०– यह विसर्प, रक्त, पित्त, कफ, दाह, प्यास तथा क्षयी को हरती है.

प्र०– मार्जन कितने प्रकार का है ?

उ०– तीन प्रकार का है अर्थात् सीधा, उल्टा और वृत्ताकार.

प्र० – ये तीनों मार्जन किस तरह किये जाते हैं ?

उ०– (१) सिर से पैर की तरफ, सीधा (२) पैर से सिर की तरफ– उल्टा और (३) पंखे आदि से वृताकार मार्जन किया जाता है.

प्र०– उल्टा मार्जन (अपामार्जन) कब करना ?

उ०– गर्मी, गर्म लू, दुर्गंध, अशुद्ध ऊष्मा, पित्त तथा ऊष्णवात के निवारणार्थ.

प्र०– सीधा मार्जन कब करना ?

उ०– शीत, ठंडी लू, कफ, शीतवात, विष-बाधा आदि के निवारणार्थ.

प्र०– वृत्ताकार यजन कब करना ?

उ०– शांति तथा तेज के रक्षणार्थ.

प्र०– मार्जन द्वारा जल सींचने से क्या होता है ?

उ०– क्योंकि जब शुद्ध जल बिन्दु शरीर पर गिरते हैं, तब शरीरगत अशुद्ध ऊष्मा वाष्प बनकर बाहर निकलने लगती है और उसके

बदले बाहर की शुद्ध वायु और सूर्य की किरणें भीतर पहुंचने लगती हैं, ऐसा लगातार होने से शरीरगत ऊष्मा शुद्ध हो जाती है.

प्र० - किस तरह शरीर से अशुद्ध ऊष्मा वाष्प बन, बाहर निकल जाती है?

उ० - (१) जिस तरह तप्त भूमि पर शीतल जल के सींचने से वाष्प निकलने लगती है.

(२) देखो ! शीतकाल में प्रातःकाल, शीतल जल से स्नान करते ही, शरीर से कैसी वाष्प निकलने लगती है.

प्र० – वह निकलती हुई उष्णकाल में क्योंकर दिखाई नहीं देती ?

उ० – क्योंकि ग्रीष्म ऋतु में वायुमंडल उष्ण तथा रूक्ष रहता है, जिसके द्वारा वाष्प अति सूक्ष्मरूप धार, अदृश्य हो, ऊपर चली जाती है; किन्तु शीतकाल में समस्त वायुमंडल शीतल तथा तर रहता है; इसी कारण वाष्प सूक्ष्मता को न प्राप्त हो तथा शीत से घनीभूत हो, हमें दृष्टिगोचर होती है.

प्र० – मार्जन का अवशिष्ट जल क्यों फेंक देते हैं ?

उ० – क्योंकि कुशादि शरीर का विकार लेकर जल में छोड़ देते हैं.

प्र० – मार्जन विकारों को हरता है; इस बात का क्या प्रमाण ?

उ० – (१) तभी तो कुश के मार्जन से आंख का दुःखना या आना बंद हो जाता है.

(२) अपामार्ग के मार्जन से तत्काल बिच्छू उतर जाता है.

(३) दूर्वा के मार्जन से दाह, व्याकुलता दूर होती है. इत्यादि.

दोहा

मार्जन हरै त्रिदोष विष, शोधै सकल शरीर ।
करै यथाविधि सर्वदा, बैठि जलाशय तीर ।।१।।
व्है शुचि मांजत पात्र जिमि, झाड़त व्है शुचि धाम ।
तिमि तन मार्जत व्है शुचि, साधै नाना काम ।।२।।

१ मार्जन का मंत्र (जलगुण)

आपो हिष्टामयो भुवस्तान ऊर्जे दधातन । महेरणाय चक्षसे ।। योवः शिवतमोरसस्तस्य भाजयतेहनः । उशतीरिवमातरः ।। तस्मा अरंगमामवो यस्यक्षयाय जिन्वथ । आपोजनयथाचनः ।।

अर्थ

(आपो) हे जलो ! तुम (हि) निश्चयपूर्वक (अमयोभुवः) रोगरहित या मलरहित करनेवाले (स्थः) हो । (ऊर्जे) दिव्यरस के लिये या सूक्ष्म तेज के लिये, (महेरणाय) महद्गतिके लिये या दिव्य-शक्ति के लिये, (चक्षसे) दिव्य ज्ञान के लिये (तान) उन सबको या उन तीनों को (आदधातन) मुझमें विस्तार सहित स्थापन करो ।। (यो) जो (वः) आपका (शिवतमः) अत्यन्त कल्याणकारी (रसः) रस है ! (इह) वह यही रस है । (तस्य) उसका (नः) हमको (भाजयत) विभाग दो । (इव) जिस तरह (मातरः) माताएं या तीनों शक्तिएं (उशतीः) प्रसन्नता को या प्रभा को "विस्तारती हैं, देती है, स्थापन करती हैं या धारण करती हैं."

२ मार्जन का मंत्र (अपामार्ग का गुण)

अपाघमप किल्विषमप कृत्यामपोरपः ।
अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्नँ सुव ।।

अर्थ

(अपामार्ग) हे अपामार्ग (त्वं) तुम (अस्मत्) हमारे (अघं) मानसिक दोषों को (अप) दूर करो । (किल्विषं) शारीरिक दोषों को (अप) दूर करो । (कृत्यां) हमें हानि पहुंचाने वाले औरों के किये कर्म जनित दोषों को (अप) दूर करो । (रपः) औरों की छूत को (अप) दूर करो, (उ) और (दुःष्वप्नं) दुष्ट स्वप्नको (अपसुव) निर्मूल करो.

३ मार्जन का मंत्र (दूर्वागुण)

काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि ।
एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेनच ।।

(दूर्वे) हे दूर्वे ! जिस तरह तू (काण्डात्काण्डात्) एक कांड से अन्य कांड तक अर्थात् एक जोड़ से अन्य जोड़ तक, (परुषः परुषः) एक पर्व से अन्य पर्व तक अर्थात् एक पेरुवे से अन्य पेरुवे तक (परि) सब ओर(प्ररोहन्ती) अंकुरित होती है या फैलती है। (एव) उसी तरह निश्चयपूर्वक (शतेन) सैकड़ों तरह से (च) और (सहस्रेन) हजारों तरह से (नः) हमको (आप्रतनु) हर तरह विस्तारो अर्थात् हमारी वृद्धि करो ।

नोट— चौथा कुशका मंत्र उप० ३५ में देखो !

उपदेश ३७

अघमर्षण

प्र०– अघमर्षण किसे कहते हैं ?

उ०– मानसिक दोषों के क्षालन करने को.

प्र०– अघमर्षण कब किया जाता है ?

उ०– भूत शुद्धि तथा मार्जन के पश्चात्.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि बहुधा शारीरिक दोष ही मनको दूषित कर दिया करते हैं.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो शरीर में हुआ रोग-मनको दुखित कर सकता है; इसलिये पहिले शारीरिक दोषोंको दूर करके मानसिक दोषोंका क्षाल्लन करे.

प्र०– मानसिक दोषों का क्षालन किसके द्वारा हो सकता है ?

उ०– सुभावनाके द्वारा.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि जिस तरह कुभावना से मन दूषित हो जाता है, उसी तरह सुभावना से वह दोषरहित हो जाता है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो वह कुभावना द्वारा इस तन को कुकर्म में और सुभावना द्वारा सुकर्म में प्रवृत करता है.

प्र०– तो क्या भावना के अनुसार शरीर वर्त्तता है ?

उ०– अवश्य.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! पहिले जब आपके मनमें यह भावना उत्पन्न हुई, कि इस पुस्तक को पढ़ें, तब हाथ ने इसे उठाकर खोला, आंखों ने देखा, मुखने पढ़ा, साथ ही इसके संस्कार मन में आंकित हो गये.

प्र०– इससे क्या सिद्ध हुआ ?

उ०– कि भावना द्वारा मनका प्रभाव तन पर और तन का प्रभाव मन पर पड़ता है, अर्थात् शारीरिक तथा मानसिक सुख दुःख का मूल कारण यह एक भावना है !

प्र०– तो क्या भावना से दुःख रोग की निवृत्ति तथा सुख की प्राप्ति हो सकती है ?

उ०– अवश्य !

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो यंत्र, तंत्र, मंत्र, भाड़ा फूंकी (हिप्नोडिजम) आदि से अनेक रोग तथा बिच्छू सर्प आदि का विष बिना दवा खाये, अनायास भावना मात्र से उत्तर जाता है ! यदि दृढ़ भावना से किसी विशेष रोग नाशक वनस्पति या जल आदि के द्वारा कोई प्रयोग या भाड़ा फूंकी की जावे; तो सद्यफलप्रद होती है !! यह सिद्धान्त अघमर्षण का है !!!

दोहा

निश्चय सों रोगी बचै, शंका सों मरजाय ।
उतरे बिच्छू भावसों, भावहि सों चढ़जाय ॥१॥
नसत दोष सब भावसों, भावहि सों जन्मात ।
प्रभु दर्शन दे भावसों, आवागमन नसात ॥२॥

यथाश्रुति

सुमित्रियान आप ओपधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योस्मान्द्वेष्टियञ्च वयन्द्विष्मः ॥

अर्थ

(आपः) ये जल (औषधयः) ये औषधिएं (न) हमें (सुमित्रियाः) परमहितकारी (सन्तु) हों । (यः द्वेष्टि) जो हमसे द्वेष करता है, (च) और (यंद्विष्मः) जिसके प्रति हम द्वेष करते हैं; (तस्मै) उसके लिये (दुर्मित्रिया) अनहितकारी (सन्तु) हों ॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विनः स्नातो मलादिव ।
पूतं पवित्रेणे वाज्यमापः शुन्धन्तुमैनसः ॥

अर्थ

[आपः] ये जल [माएनसः] मेरे दोषों को शोधें या दूर करें । [इव] जिस तरह पैर [द्रुपदात्] खड़ाऊ से [मुमुचानः] पृथक हो जाते हैं । अथवा [इव] जिस तरह [स्विन्नः] स्वेदवाला [स्नात्तः] स्नान करते ही [मलात्] मल से रहित हो जाता है । [वा] अथवा [इव] जिस तरह [पवित्रेण] कुश या ऊनकीछन्नी द्वारा [पूतं] छाना हुआ [आज्यं] घृत 'मलरहित हो जाता है' ॥ इत्यादि०

उपदेश ३८

अर्घ्यप्रदान

प्र०– अर्घ्यप्रदान किसे कहते हैं ?

उ०– अर्घ्य देने को.

प्र०– अर्घ्य का अर्थ क्या है ?

उ०– मूल्यवान करने वाला.

जिस तरह पात्र को मलकर, शुद्ध कर लेने पर उसमें दूध भरने से वह नहीं बिगड़ता, उस तरह मार्जन आदि के पश्चात् अर्घ्य से तेज की पूर्त्ति करने पर वह गुण करता है.

प्र०– सूर्य के सन्मुख अर्घ्य क्यों दिया जाता है ?

उ०– उसकी किरणों का उपयमन करने के लिये.

प्र०– सूर्य, चंद्र, ध्रुव, शुक्र, वृहस्पति, अगस्ति, आदि के सन्मुख अर्घ्य क्यों दिया जाता है ?

उ०– अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार उनके तेजका उपयमन करने के लिये.

प्र०– जल, दूध, दहि, मधु, घृत, शर्करा, सोमरस, सुगंधि द्रव्य तथा अनेक औषधियों का अर्घ्य क्यों दिया जाता है ?

उ०– अपनी आवश्यकता के अनुसार उनका गुणकारी तेज लेने के लिये.

प्र०– अर्घ्य द्वारा तेज किस तरह प्राप्त होता है ?

उ०– धारा में होकर.

प्र०– मंदेहासुर का क्या अर्थ है ?

उ०– जोकि मंदेहासुर [मन् + दिह् + आ + असुर] से बना है और [मन् = मनन या चिंतन करना,] [दिह्] व्यापना, लीपना, फैलाना, [आ] [सब ओर से [असुर] प्रकाशरहित ∴ [मंदेहासुर] = ध्येय प्रकाश को सब ओर से छिपाने वाले अर्थात् मानसिक अंधकार.

आन्हिक

तेन वज्रोदकेनाशु नश्यन्ते मंदेहासुरान ।।

अर्थ

[तेन उदकेन वज्रेण] उस जलात्मक बिद्युत के द्वारा [आशु] शीघ्र ही [मंदेहासुरान्] ध्येय प्रकाश को छिपाने वाला अर्थात् मानसिक अंधकार नाश को प्राप्त होता है.

पुनः

स्थानादोतु स्थितं तेजः स्फाटिकं ज्योतिषा समं ।
उतीर्य तच्च संप्राप्तं दक्षिणेन पथाञ्जलीन ।।
पुनर्जलं गृहीत्वैवं तेजो मत्रं च संस्मरन् ।
पूर्ववद्वाम मार्गेण स्मृत्वा संस्थाप्य चात्मनि ।।

अर्थ

[स्थानादौतु] स्थानादिकों में [स्थितं] रहने वाला [स्फाटिकं ज्योतिषासमं] स्फटिक की ज्योति के समान [तेजः] प्रकाश [उत्तीर्य] उतर कर [तच्च] वही [दक्षिणेन पथांजलीन्] दहिनी अंजली के मार्ग द्वारा [संप्राप्त] अच्छी तरह प्राप्त हो। [पुनर्जलं प्रहृत्वा] फिर से जल लेकर [तेजोमत्रं च संस्मरन्] उस दिव्य तेज का स्मरण करते हुए; [पूर्ववत्] पहिले के समान [वाम मार्गेण स्मृत्वा] बांई ओर के मार्ग से आता हुआ मान कर, [संस्थाप्य च आत्मनि] उस तेज को अपने आत्मा के विषै स्थापन करै ।।

दोहा

आवत विद्युत तोयकी, जिमि मच्छी चढ़ि धार ।
हरत हृदय तम रुज महा, करत अर्घ उजियार ।।

उपदेश ३९

परिक्रमा

प्र०– परिक्रमा किसे कहते हैं ?

उ०– अपने या किसी अन्य पदार्थ के आस-पास चक्कर लगाने को.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्यों कि यह तेज को बढ़ाता तथा प्राप्त हुए, तेज की रक्षा करता है.

प्र०– क्यों कर ?

उ०– क्यों कि वृत्ताकार गतिस्तंभनकारी है.

प्र०– परिक्रमा को प्रदक्षिणा क्यों कहते हैं ?

उ०– क्यों कि यह शीघ्र दखल कराती है.

प्र०– किस में ?

उ०– उस दिव्य तेज के अंतर्गत.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– [१] तभी तो कुंडलनी के परिभ्रमण से ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश हो, उस दिव्य तेज में लय होता है.

[२] षट्चक्रों का भेदन होकर उसी तेज में लय होता है.

प्र०– ऐसा क्यों होता है ?

उ०– क्योंकि चक्राकार गति से दोनों शक्तियों का अर्थात् आकर्षण निराकरण का संयोग होता है, उस संयोग से दिव्य तेज प्रकटता है, फिर तेज में प्रवेश हो सकता है, आगे तीनों गतियों का लय होकर आत्मानंद को अनुभवता है.

दोहा

लखत सुनत सब ओर तब, चखत वदत सब ओर ।
गहत चलत सब ओर गत, दोय शक्ति त्रय छोर ।।१।।
चक्कर मैटे बहिर्गति, आवागमन दुराय ।
वा चक्कर के भेद बिन, भटक भटक दुःख पाय ।।२।।

यथाश्रुति

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वस्पात् । संबाहुभ्यान्धमति संपतत्रैर्द्यावा भूमि जनयन्देव एकः ।।

अर्थ

[विश्वतश्चक्षुः] वह सब ओर नेत्रवाला [उत] और [विश्वतोमुखः] सब ओर मुखवाला [विश्व तो बाहु] सब ओर भुजावाला

[उत] और [विश्वतस्पात्] सब ओर चरणवाला; [एकः] वही एक [देवः] देव [द्यावाभूमी] द्युलोक और भूलोक को [जनयन] उपजाता हुआ । वही [बाहुभ्याम्] दोनों शक्तियों द्वारा या दोनों शक्तियों के प्रति या दोनों शक्तियों से पृथक [सन्धमति] संधि में प्राप्त होता है । जहां [पतत्रैः] तीनों गतियां [सम्] लयको प्राप्त होती हैं ।।

उपदेश ४०

सूर्योपस्थान

प्र०– सूर्योपस्थान किसे कहते हैं ?

उ०– अध्यात्म सविता को हृदय विषै उपस्थित करने को.

प्र०– किस युक्ति से यह उपस्थित होता है ?

उ०– दोनों हाथों में दो-दो दर्भ ले, उर्द्ध बाहु हो, गुरु की दिखाई, युक्ति से सूर्य को देखे.

प्र०– ऐसा करने से क्या होता है ?

उ०– स्वल्प प्रयत्न से वह तेज हृदय में उपस्थित हो जाता है.

प्र०– कौनसा तेज ?

उ०– सूर्य की किरणों सहित वायु का सूक्ष्म तेज.

प्र०– इस तेज में क्या गुण है ?

उ०– यह विष, रोग, मूर्च्छा नसाता तथा बल, आयु, ज्ञान बढ़ाता है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– (१) तभी तो अचेतन पुरुष को चैतन्यता प्राप्त होती है.

(२) सर्प विष या अन्य विष तक उतर जाता है.

(३) हृदय की स्फुरण शक्ति कम हो गई हो या एकदम बन्द हो गई हो, तो वह फिर से जारी हो जाती है.

प्र०– यह बात असंभव है ! क्योंकि वह मूर्च्छित क्योंकर उपस्थान कर सकेगा और रात में होना तो अशक्य है ?

उ०– इस बात की अन्य सरल युक्ति है, जो सरलता पूर्वक अन्य मनुष्य

के द्वारा की जा सकती है तथा उसके द्वारा उस रोगी को लाभ पहुंचाया जा सकता है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– रोगी के पीछे बैठ, या खड़े होकर, उसके दोनों हाथ पकड़, बार २ खूब ऊपर और नीचे करता रहे !

प्र०– कब तक ?

उ०– जब तक उसका विष न उतरे या मूर्च्छा जाकर होश न आये या हृदय न स्फुरे ! तब तक यही क्रिया करता रहें !

प्र०– इस क्रिया से कौनसा तेज प्राप्त होता है ?

उ०– वायु का सूक्ष्म तेज.

प्र०– उपस्थान द्वारा अध्यात्मसविता किस तरह उपस्थित होता है ?

उ०– यह युक्ति गुरु मुख से प्राप्त होती है !

दोहा

सूर्य उपस्थित हुए बिन, तम उरको ना जाय ।
मिलै न आत्मानंदये, नर तन फल ना पाय ।।१।।
दिव्य चक्षु अध्यात्म रवि सबको आत्मा एक ।
आयु बढ़ावत ज्ञान बल, नासत रोग अनेक ।।२।।

यथाश्रुतिः

तच्चक्षुर्देव हितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतञ्जविमशरदः शतँशृणुयामशरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।।

अर्थ

[तच्चक्षुः] वह अध्यात्म सवितारूपी दिव्य नेत्र [शुक्रं] सबल निर्मल शुक्ल [देवहितं] हितकारी तेज या ज्योति को [पुरस्तात्] पूर्व से या पहिले ही से [उच्चरत्] प्रकाशता हुआ । उसकी कृपा से हम [पश्येमशरदः शतं] सौ शरदपर्यन्त देखने को समर्थ हों ! [जीवेम शरदः शतं] सौ शरदपर्यन्त जीने को समर्थ हों [शृणुयामशरदः शतं]

सौ शरदपर्यन्त सुनने को समर्थ हों। [प्रब्रवामशरदः शतं] सौशरद पर्यन्त बोलने को समर्थ हों। [अदीनाः श्याम शरदः शतं] सौ शरद पर्यन्त खाने पाने को समर्थ हों या दिनता रहित हों। या [भूयश्च शरदः शतात्] सौ शरद ऋतुओं से भी अधिक काल तक सब तरह समर्थ हों ।।

उपदेश ४१

अभिषेक

प्र०– अभिषेक किसे कहते हैं ?

उ०– किसी के ऊपर धारा छोड़ने को.

प्र०– किस पर धारा छोड़े ?

उ०– जिस पदार्थ के तेज की हमें आवश्यकता हो, या जिस अंग की पीड़ा या रोग आदि दूर करना हो, उसी पर धारा छोड़ें.

प्र०– किस की धारा छोड़ें ?

उ०– जल, दूध, दही, मधु, शर्करा, पंचामृत, पंचगव्य, या किसी औषधि आदि की धारा छोड़ें, जिसको हमें आवश्यकता हो !

प्र०– अर्घ्य और अभिषेक में क्या अन्तर है ?

उ०– अर्घ्य की धारा पदार्थ के सन्मुख छोड़ी जाती है और अभिषेक की धारा पदार्थ के सिर पर छोड़ी जाती है, केवल इतना अन्तर है, किन्तु विशेष कर अर्घ्य ज्ञान का कर्त्ता तथा अभिषेक रोग का हर्त्ता है !

प्र०– यह किन रोगों को हरता है ?

उ०– विष, चोट, रक्त, घाव, पीड़ा, जलन, मूर्च्छा, उन्माद, पित्त, कफ, ज्वर आदि अनेक रोगों को हरलेता है, इसके द्वारा अल्प मृत्यु, अकाल मृत्यु तक दूर हो सकती है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्यों कि चराचर प्राणियों की उत्पत्ति जल ही से होती है, जिन्हें हम खाते पाते हैं, उनकी उत्पत्ति भी जल ही से हुई है, उन्हीं जल

से उपजी वस्तुओं द्वारा हम पलते तथा रोगी होते हैं, इसलिये वे रोग भी जल ही द्वारा निवृत हो सकते हैं, अन्य से नहीं !

प्र०- क्यों ?

उ०- क्योंकि जिस से उपजा, विकार उसी से जाता है, यह स्वाभाविक नियम है.

प्र०- क्या प्रमाण ?

उ०- तभी तो विष के प्रयोग से बिच्छू सर्प आदि के विष दूर हो जाते हैं, सेकने से जला हुआ अंग शीघ्र अच्छा हो जाता है, शीतला के टीके से शीतला निवृत्त होती है, इसी तरह जल के तेज से जल संबंधि रोग निवृत्त होते हैं.

प्र०- जल का तेज और किस काम में आता है ?

उ०- हमारी समस्त स्पृधाओं को पूर्ण करता है.

यथाश्रुतिः

अपांफेनेन नमुचे शिरऽइन्द्रोंदवर्त्तयः । विश्वायदजयस्स्पृधः ।।

अर्थ

[इन्द्र] हे देवराज या दिव्यतेज तुमने [अपां] जलके [फेनेन] फेनसे [नमुचे] जल प्रपात का [शिरः] शिर या शीर्ष [उदअवर्त्तयः] काटा । [यत्] जिससे [विश्वाः] सब [स्पृधः] स्पृधाएं जीती ।। अर्थात् ऊपर से नीचे गिरने वाले जल के फेन से, जो बिजली पैदा होती है, वह जल प्रपात के शीर्ष की और उतराती है, जो सब प्रकार की इच्छाओं को पूर्ण करती है.

दोहा

जसरुज हो तस वस्तु पर, तस द्रवसो अभिषेक ।
करत हरै वो विघ्न सब, अचल धारसो एक ।।१।।
जा दिक जाकी जाहि पै, जो सन्मुख जो डार ।
ता तिन सब को तेज गुण, मिलै तुरत पथ धार ।।२।।

ताहि भ्रमा तन लीनकर, हृदय मध्य दे थाप ।
तो निज सविता प्रकटवर, व्है संध्यासो आप ।।३।।
अर्घ्य बढ़ावत तेज नित, हरत रोग अभिषेक ।
चक्कर आवागमन गति, थांभै धरिके टेक ।।४।।

उपदेश ४२

संध्या

प्र०– संध्या का क्या अर्थ है ?

उ०– ∵ (सं)= उत्तम प्रकार से, हर तरह से (ध्या)= ध्यान करने योग्य या ध्याया जाय ∵ संध्या-हर तरह ध्याने के योग्य, जिससे सब कुछ ध्याया जाय, सबसे अच्छा ध्यान.

प्र०– तो फिर संध्या किसे कहना चाहिये ?

उ०– उस दिव्य ध्यान को, जिसके द्वारा सब कुछ प्राप्त होता तथा सब कुछ जाना जाता है.

प्र०– यह ध्यान कब प्राप्त होता है ?

उ०– दीक्षा द्वारा.

प्र०– दीक्षा कब प्राप्त होती है ?

उ०– स्वतेज की वृद्धि द्वारा.

प्र०– स्वतेज की वृद्धि कब हो सकती है ?

उ०– निज तन की शुद्धि द्वारा.

प्र०- तन की शुद्धि कब हो सकती है ?

उ०– मन की शुद्धि द्वारा.

प्र०- मन की शुद्धि कब हो सकती है ?

उ०- सुइच्छा द्वारा.

प्र०– ध्यान के प्राप्त होने पर आत्मज्ञान कब होता है ?

उ०– उसके अंतर्गत वृत्ति के लीन होते ही.

प्र०– इस वृत्ति का निरोध या लय कब हो सकता है.

उ०– योग द्वारा.

प्र०– किसके योग द्वारा ?

उ०– प्राण और अपान के योग द्वारा, या दोनों शक्तियों के योग द्वारा या दोनों गतियों के योग द्वारा या दोनों तेजों के योग द्वारा या दोनों नाड़ियों के योग द्वारा चित की वृत्तियों का लय होता है.

प्र०– किन्तु तब आत्मज्ञान किस दशा में हो सकता है ?

उ०– जब दृढ़ासन पूर्वक कोई मुद्रा लगा प्रणव को उच्चरते हुए, उस अध्यात्म सवितागत, योनि के मध्यवर्त्ती तेज के अंतर्गत, एकाग्र दृष्टि से, अर्द्ध मात्रा के सहारे, वृत्तिको लीन करे, तब !

प्र०– इसे स्वाध्याय क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि यह अपने में अपने द्वारा आप ही ध्याने योग्य है, ध्याया जाता है और जाना जाता है.

यथाश्रुतिः

।। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धी मही धियोयोनः प्रचोदयात् ।
परोरजसे सावदोम् ।।

अर्थ

[तत्] उस [सवितुः] अध्यात्मक सूर्य के [देवस्य] तेज के [वरेण्यं] सर्वोत्कृष्ट [भर्गो] अन्तर्वर्त्ती तेज को [धी महि] हम सब ध्याते हैं । [यो] जो [नः] हमारी [धियो] बुद्धिओं को [प्रचोदयात्] प्रेरता है । [असौ] यह [ॐ] ॐकार [परोरजसे] उस परंज्योतिको [अत्] प्राप्त होता है, या प्राप्त कराता है । अथवा [स] वह [ॐ] ॐकार उस [परोरजसे] परंज्योतिको [अवत्] प्राप्त कराता है । अथवा [सा] उस [परोरजसे] परंज्योति के लिये [ॐ] ॐकार [बद] कहो । अथवा [स] वह [ॐ] ॐकार [परोरजसे] उस परंज्योतिको [अवत्] छिपाये हुए है, रक्षता है या प्राप्त कराता है, इत्यादि.

अन्यश्रुतिः

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं आदित्य वर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पंथाविद्यतेयनाय ।।

अर्थ

(अहं) मैं (एतं) इस (आदित्य वर्णं) सूर्यात्मक या सूर्यस्वरूपी (महान्तं) महान (पुरुष) पुरुष को या सर्व व्यापी को (वेद) जानता हूं। (तमसः परस्तान्) जो अंधःकार के परे है। (तमेवविदित्वा) केवल उसे जानना (मृत्युं) आवागमन को (अत्येति) निवृत्त करता है। (अयनाय इसके सिवाय) अन्यः पंथा (कोई अन्य मार्ग) न विद्यते नहीं है।

पुनःश्रुतिः

प्रजापतिश्चरतिगर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योन परि पश्यंति धीरास्तस्मिन्ह तस्थु भुंवनानि विश्वा ।।

अर्थ

(गर्भे) उस मध्यवर्त्ती तेज के अंतर्गत (प्रजा पति) उत्पादक शक्ति (चरति) वर्त्तती है। जो (अंतः) अंतर्मुखत्व के द्वारा (अजा-यमानः) न जन्मनेवाली है। किन्तु वही बहिर्मुखत्व के कारण (वहुधा-विजायते) अनेक बार जन्माती है। (तस्ययोनि) उसकी योनि को (धीरा) धैर्यवानज्ञानी पुरुष (परिपश्यन्ति) सब ओर से सब ओर देखते हैं। (तस्मिन्ह) उसी के अंतर्गत (विश्वा) अखिल (भुवनानि) ब्रह्मांड (तस्थुः) स्थित हैं ।।

पुनःश्रुतिः

युंजते मन उत युंजते धियो विप्राविप्रस्य वृहतो विपश्चितः।
विहोत्रादधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ।।

अर्थ

(विप्रा) ब्राह्मण लोग उसमें (मन) मन को (युंजते) युक्त करते हैं (उत) और (धियो) बुद्धयों को (युजते) युक्त करते हैं। उस (विप्रस्य) आदि पुरुष के (होत्रा) यज्ञ द्वारा (वृहतः) बढ़ाने वाले (विपः) नसाने वाले (चितः) चिताने वाले या ज्ञान कराने वाले सामर्थ्यको (विदधे) मैं धारण करता हूं। उसकी (वयुना) गति द्वारा

(एक इत) एक इसी (सवितु:) सविता के (मही) सर्वोत्कृष्ट (देवस्य) तेज की (परिष्टुति:) सब ओर फैली हुई कीर्ति (वित्) जानी जाती है ।।

पुनःश्रुतिः

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापि हितं मुखं ।
योसावादित्ये पुरुषः सोसावहं ।।

अर्थ

(सत्यस्य) उस सत्य स्वरूपी परमात्मा का (मुखं) मुख या मार्ग या द्वार (हिरण्मयेन पात्रेण) हिरण्यगर्भरूपी योग्य रक्षक द्वारा (अपि हितं) ढका हुआ है या रक्षित है । (यो) जो (सो) वह (आदित्ये) आदित्य के अंतर्गत (पुरुष) पुरुष या सर्वव्यापी है । (सो) वह (असौ) यह (अहं) आत्मा है ।।

पुनःश्रुतिः

यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्मयी ।
अंगान्यन्हुता तस्य तं मात्रा समजी गमं ।।

अर्थ

(यस्यै) जिसके लिये (ते) तेरे (यज्ञिय:) यज्ञ संबंधि (गर्भ.) गर्भने, (यस्यै) जिसके लिये (हिरण्मयी) सुवर्ण के सदृश (योनि:) योनिने, (यस्य) जिसके (अंगानि) अंगों को (अन्हुता) छिपाया है ; (तं) उसे (मात्रा) अर्द्ध मातृका के द्वारा (सम्) अच्छी तरह (जी) सर्वोत्कर्ष के साथ (अगमं) मैंने पार किया.

दोहा

अध्यात्मक रविगत बसे, योनी गत जो काश ।
वसत सत्य ताके परे, वह निज आत्मा खास ।।१।।
आतम ज्ञान सो होत फिर, परमात्माको ज्ञान ।
ताकी दीक्षा देत ये, संध्याको वर ध्यान ।।२।।
जगमें या सम ज्ञान मख, ना व्रत जप तप ध्यान ।
ना तीरथ ना दान है, या बिन ना कल्यान ।।३।।

गुरू वही सत सूर्य वो, अध्यात्मक दिखलाय ।
शिष्य हृदयको तम हरो, सत पथ दे दरसाय ।।४।।
वो सविता वर धर्म हित, भर्ग अर्थ हित ध्योम ।
धी प्रेरे सत्कर्म हित, वदे मोक्ष हित ओम ।।५।।
चार पदारथ देतये, गायत्रीको ध्यान ।
ज्ञान भेद ये पाय जो, ताको व्है कल्यान ।।६।।
धर्म एक पद अर्थ द्वै, काम मुख्य पद तीन ।
मोक्ष चार दातार ये, गायत्री पद पीन ।।७।।
एक पाद गुण देत सब, दोय पाद सब ज्ञान ।
तीन पाद सब शक्ति दे, गति समस्त चौथान ।।८।।

उपदेश ४३

मुद्रा

सुमुखं संपुटं चैव विततं विस्तरं तथा । द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतु: पंचमुखं तथा । षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकाँजलिकं तथा । शकटं यमपाशंच ग्रंथितं चोन्मुखोन्मुखं । प्रलंबं मुष्टिकं चैव मत्स्य: कूर्मो वराहकं । सिंहाक्रांतं महाक्रांतं मुद्गरे पल्लवं तथा ।। एतामुद्रा न जानाति गायत्री निष्फला भवेत् । तस्मादाचार्येणाध्येतव्यणामेताश्चतुर्विंशतिर्मुद्रा । इति कर्त्तव्यतयावश्यमेव शिक्षणीया: । तेन गायत्री सुप्रतिष्ठिता सफला च भवति ।।

प्र०– इनके सिवाय और कौनसी मुद्राएं उपयोगी हैं ?

उ०– धेनु, शंख, घंटा, कुंभ, योनि, पंकज, लिंग, निर्वाण, अस्त्र, गंध, पुष्प, धूप, नैवद्य, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, प्राण, गरुड, प्रार्थना आदि...!

नोट—चौवीस मुद्राओं का गुप्त रहस्य चौवीस अवतारो में दर्शाया गया है ; अवतारादेश पढ़ देखो !

दोहा

मुद्रा मुद्रित लक्ष कर, फल दाता तत्काल ।
योगीको ये गुप्त धन, सब दे नासै काल् ।।१।।
मुद्रा बिन संध्या नहीं, ना गायत्री ध्यान ।
रिद्धिसिद्धि ना योग फल, ना आत्माको ज्ञान ।।२।।

उपदेश ४४

जप

प्र०– जपका क्या अर्थ है ?

उ०– जन्म की प्राप्ति या जन्म का पालन या जन्म का पतन करने वाला

प्र०– जप जन्म प्राप्ति का हेतु क्यों है ?

उ०– क्योंकि जिसके हृदय में जिसका संकल्प दृढ़ बस जाता है अर्थात् जिसका जैसा जप निरंतर हृदय में हुआ करता है, उसे वैसा जन्म अवश्य प्राप्त होता है.

प्र०- क्यों ?

उ०– क्योंकि जब जीव जिसे जलता, डरता या अपनाता हुआ, उसीके संकल्प रूपी जप में तल्लीन हो जाता है ; तब वह तन त्यागते ही अपनी वृत्ति के स्वाभाविक सोहं जप के कारण वैसाही जन्म पाता है.

प्र०- जप-जन्म का प्रति पालक क्यों कर है ?

उ०- क्योंकि जब तक वृत्ति इस सोहं का जप करती है ; तभी तक जन्म का निर्वाह है.

प्र०- इसे जप यज्ञ क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि जप द्वारा यजन और यजन द्वारा तेज की प्राप्ति होती है ; इसलिये इसे जप यज्ञ कहते हैं.

प्र०– किसके द्वारा किसका, किसमें यजन करने से जन्म मरणका फंदा छूट जाता है ?

उ०– इस वृत्ति द्वारा सुरतिका अर्द्ध मातृका में यजन करने से आवागमन छूट जाता है.

प्र०– जप कितने प्रकार का है ?

उ०– तीन प्रकार का है अर्थात् वाचिक, उपांशु और मानसिक.

दोहा

जो जप आवागमनको, हेत देत हर लेत ।
भटक्यो अबलों याहिते, जान्यो अबतो चेत ।।

उपदेश ४५

तप

प्र०– तप का अर्थ क्या है ?

उ०– तेज की प्राप्ति या तेज का पालन या (पर) तेज का पतन करने वाला.

प्र०– पंचाग्नि किसे कहते हैं ?

उ०– पांचों तत्वों के अंतर्गत विराजने वाले अग्निको.

प्र०– पंचाग्नि तप किसे कहते हैं ?

उ०– पंच भूतात्मक अग्निका तेज प्राप्त करने को.

प्र०– इन तेजों से क्या लाभ ?

उ०– इन तेजो से शारीरिक, व्यवहारिक, अध्यात्मिक, दैविक तथा पारलौकिक कार्य सुसिद्ध होते हैं.

प्र०– इन तेजों से शारीरिक क्या लाभ है ?

उ०– ये शरीर को शोधते हैं, रोगों को हरते हैं, बल, विक्रम, आयु तथा तेज को बढ़ाते हैं.

प्र०– इन तेजों से व्यवहारिक क्या लाभ है ?

उ०– ये अनेक प्रकार के शिल्प तथा कला कौशिल्य के काम आते हैं.

प्र०– इन तेजों से अध्यात्मिक क्या लाभ है ?

उ०– ये बुद्धि ज्ञान बढ़ाते हैं तथा आत्मज्ञान करते हैं.

प्र०– इन तेजों से दैविक क्या लाभ है ?

उ०– चराचर पदार्थों की रचना तथा उनका गुप्त भेद जाना जाता है.

प्र०– इन तेजों से पारिलौकिक क्या लाभ है ?

उ०– अन्य पिंडोंका हाल जाना जाता है; जीवका आवागमन, नर्क, स्वर्ग, जीन्मुक्ति तथा विदेह मुक्ति का भेद विदित होता है.

प्र०– तप यज्ञ क्यों कहा जाता है ?

उ०– क्योंकि तेज द्वारा यजन और यजन द्वारा तेज प्राप्त होता है.

प्र० - परम तप किसे कहते हैं ?

उ० – योगाभ्यास तथा ध्यानको.

प्र०– हठयोग में किसके द्वारा, किसका, किसमें यजन किया जाता है ?

उ०– कुंडलिनी द्वारा प्राण अपान का जठराग्निमें यजन किया जाता है.

प्र०– इसके द्वारा किसका जय होता है ?

उ०– आकर्षण, निराकरण तथा स्थंभनशक्ति का अर्थात् त्रिगुणात्मक क्रियाशक्ति का.

प्र०– राजयोग में किसके द्वारा, किसका, किसमें यजन किया जाता है ?

उ०– वृत्ति द्वारा नादका बिन्दु में यजन किया जाता है.

प्र०– इसके द्वारा किसका जय होता है ?

उ० - त्रिगुणात्मक इच्छा शक्ति सहित क्रियाशक्ति का.

प्र०– बिन्दु किसे कहते हैं ?

उ०– उस अध्यात्म सविता के मध्यवर्त्ती बिन्दु को.

प्र०– किस कारण हिंसक प्राणी तपस्वियों को नहीं सता सकते ?

उ०– उनके स्वतेज वृद्धि के कारण.

प्र० - क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो कुश अजिन पर धरे, स्फटिक पर खड़े हुए, मनुष्य पर रेशमी वस्त्र द्वारा सीधा यजन करते ही, उसे कोई स्पर्श करने को समर्थ नहीं होता.

प्र०– इन तेजों से अध्यात्मिक क्या लाभ है ?

उ०– ये बुद्धि ज्ञान बढ़ाते हैं तथा आत्मज्ञान करते हैं.

प्र०– इन तेजों से दैविक क्या लाभ है ?

उ०– चराचर पदार्थों की रचना तथा उनका गुप्त भेद जाना जाता है.

प्र०– इन तेजों से पारिलौकिक क्या लाभ है ?

उ०– अन्य पिंडोंका हाल जाना जाता है; जीवका आवागमन, नर्क, स्वर्ग, जीन्मुक्ति तथा विदेह मुक्ति का भेद विदित होता है.

प्र०– तप यज्ञ क्यों कहा जाता है ?

उ०– क्योंकि तेज द्वारा यजन और यजन द्वारा तेज प्राप्त होता है.

प्र० - परम तप किसे कहते हैं ?

उ० – योगाभ्यास तथा ध्यानको.

प्र०– हठयोग में किसके द्वारा, किसका, किसमें यजन किया जाता है ?

उ०– कुंडलिनी द्वारा प्राण अपान का जठराग्निमें यजन किया जाता है.

प्र०– इसके द्वारा किसका जय होता है ?

उ०– आकर्षण, निराकरण तथा स्थंभनशक्ति का अर्थात् त्रिगुणात्मक क्रियाशक्ति का.

प्र०– राजयोग में किसके द्वारा, किसका, किसमें यजन किया जाता है ?

उ०– वृत्ति द्वारा नादका बिन्दु में यजन किया जाता है.

प्र०– इसके द्वारा किसका जय होता है ?

उ० - त्रिगुणात्मक इच्छा शक्ति सहित क्रियाशक्ति का.

प्र०– बिन्दु किसे कहते हैं ?

उ०– उस अध्यात्म सविता के मध्यवर्त्ती बिन्दु को.

प्र०– किस कारण हिंसक प्राणी तपस्वियों को नहीं सता सकते ?

उ०– उनके स्वतेज वृद्धि के कारण.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो कुश अजिन पर धरे, स्फटिक पर खड़े हुए, मनुष्य पर रेशमी वस्त्र द्वारा सीधा यजन करते ही, उसे कोई स्पर्श करने को समर्थ नहीं होता.

प्र०– तपस्वियों से हिंसक जीव भी क्यों प्रेम करने लगते हैं ?

उ०– केवल उनके बढ़े हुए आकर्षणकारी तेज द्वारा.

प्र० – क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो पात्रका चित्त साधक के आधीन हो जाता है.

प्र०– तपस्वी लोग किस बलसे चलते हुए पदार्थ रोक देते हैं ?

उ० – स्थंभन शक्ति द्वारा अथात् अन्य के निराकरण पर अपनी आकर्षण शक्ति के प्रयोग द्वारा.

प्र० – क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो पात्रकी निकलती हुई निराकरण पर आकर्षणकारी प्रयोग करते ही. उसके हाथ, पैर, नेत्र आदि सब स्थिर हो जाते हैं.

प्र० – स्थिर चीज कब चल सकती है ?

उ०– केवल आकर्षण अथवा केवल निराकरण का लगातार प्रयोग करने से.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो बिजली की ट्राम आदि चल सकती है.

दोहा

पंच तत्व सो तेज गही, निज को तेज बढ़ाय ।
क्रिया वृत्ति द्वै बस करै, सो तप परम कहाय ।।१।।
हरै ताप, तपके तपै, तप त्यागे दे ताप ।
तपही सर्वस देत वर, चार पदारथ आप ।।२।।

उपदेश ४९

व्रत

प्र०– व्रत किसे कहते हैं ?

उ०– तेज बढ़ाने तथा युक्त करने वाले कर्म को.

प्र०– तो फिर निराहार को क्यों व्रत कहते हैं ?

उ०– क्योंकि वह जठराग्निके तेज को बढ़ाता है.

प्र०— व्रत यज्ञ क्यों कहते हैं ?

उ०— क्योंकि उस बढ़ते हुए तेज से कशिस और कशिस से तेज बढ़ने लगता है.

प्र०— व्रत के द्वारा किसका, किसमें यजन होता है ?

उ०— दूषित तथा संचित वात, पित्त, कफ, आम, कब्जी आदि का जठराग्निमें हवन होता है.

प्र०— इससे क्या लाभ ?

उ०— इसके द्वारा जठराग्नि प्रदीप्त हो, विकारों को भस्म कर, बाहर निकाल, रोग रहित तथा आलस रहित कर देती है ; शरीर की नाड़ियां तक शुद्ध हो जाती हैं ; भूख अच्छी तरह लगती है, रुचि बढ़ जाती है ; अन्न पचने लगता है ; शरीर पुष्ट तथा सबल और ज्ञानतंतु प्रबल हो जाते हैं; तथा वंध्या दोष निवृत्त होता है.

प्र०— कब तक लंघन करे ?

उ०— जब तक जठराग्नि प्रदीप्त न हो, अच्छी तरह क्षुधा न लगे, या जब तक आम, वात, कफ, त्रिदोष, अजीर्ण, मारी, प्लेग न दब जाय; तब तक लंघन करे.

प्र०— लंघन की शिक्षा किसके द्वारा मिलती है ?

उ०— कृषक के द्वारा.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि कृषक अपनी कृषिको तभी सींचता है; जब खेत सूखने तथा कृषि कुम्हलाने लगती है.

प्र०— वह ऐसा क्यों करता है ?

उ०— क्योंकि ऐसा करने से शश्य शीघ्रता पूर्वक जलाकर्षण कर,प्रफुल्लित हो उठती हैं, सिवाय बहुतायत से बढ़ती, फुलती तथा फलती है.

प्र०— जो कृषक उपरोक्त नियम की परवाह न करके अहोरात्रि क्षेत्र को सदा जल से पूर्ण रक्खे; तो क्या होगा ?

उ०— उसकी कृषि अजीर्ण रोग से पीड़ित हो, पीली पड़ कर, गल सड़ जायगी; या उपज कम होगी या बिल्कुल मारी जायगी.

प्र०— जिसकी जठराग्नि तीव्र हो, या जिसे रक्त व पित्तका विकार हो तो

उ०— तो निराहार के बदले फलाहार करे.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि वह शोधक, पाचक तथा बलवर्द्धक होता है, आरोग्यता, आयु, बुद्धि, स्मरणशक्ति को बढ़ाता है तथा रोगों को नसाता है.

प्र०— कब तक फलाहार या निराहार की आवश्यकता है ?

उ०— जब तक शरीर के विकार दूर न हों.

प्र०— तो फिर क्यों नीरोगी मनुष्य व्रत करते हैं ?

उ०— स्वतेज के बढ़ाने तथा किसी विकार के न होने देने के अर्थ.

प्र०— किस तरह ?

उ०— जिस तरह कृषक अपनी रोग रहित कृषि को भी, उचित लंघन के पश्चात् जल देता है.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि लंघन से कृषि की कर्षणशक्ति बढ़ जाती है, जिसके द्वारा वह सरलता पूर्वक जल को खैंच सकती तथा सड़ने से बच जाती है; तब उनकी वृद्धि से अच्छी उपज होती है; किन्तु जिस शाकमें सदा पानी भरा रहता है, वह बढ़ नहीं सकती गल सड़ जाती है; इस पर से आप व्रत का महात्म समझ सकते हो !

प्र०— व्रत करने से और क्या लाभ है ?

उ०— वंध्या दोष की निवृत्ति होती है.

प्र०— क्या प्रमाण ?

उ०— तभी तो वात, कफ आदि के विकारों द्वारा बांझ हुए, गो, भैंस, घोड़ी आदि पशुओं को, लंघन के सहारे गर्भ धारण कराया जाता है.

प्र०— व्रत कब कर सकते हैं ?

उ०— चाहे जिस तिथिवार आदि को.

प्र०— फिर क्यों कर व्रतों के भेद प्रभेद किये गये ?

उ०— देश, काल, वय, जठराग्नि, सबलता, निर्बलता, प्रकृति तथा विकारों के विचार से.

प्र०— अधिकतर किस बात का लक्ष रक्खा गया है ?

उ०— अपनी स्वाभाविक प्रकृति का.

प्र०— किस तरह ?

उ०— अर्थात् सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्रादिक की कर्षण शक्ति तथा उनके तेजके उन अंश कलादिकों का प्रभाव;-जो विभिन्न भेद के कारण हमारी विभिन्न प्रकृति का कारण हुआ है; केवल उस प्रकृति जन्म दोषों को शमन करने वाले अंश, कलादिकों का व्रत हमें विशेष लाभ पहुंचा सकता है; इसी कारण अनेक व्रत की सृष्टि हुई.

प्र०— तो फिर क्यों सबके लिये एक–एकादशी व्रत ही अवश्य करणीय माना गया ?

उ०— क्योंकि जहाँ पर हम स्थित हों, वहां पर वहां की हर अष्टमी के मध्यमें सूर्य तथा चन्द्रकृत आकर्षण शक्ति, के तेज की प्रबलता-न्यून हो जाती है; पश्चात् क्रम से बढ़ती हुई, अमावश्या या पौर्णिमा को पूर्ण वृद्धि को प्राप्त हो जाती है; इस लिये ह्रास और वृद्धि की आदि अंतवाली तीन २ या अढ़ाई २ तिथियों को छोड़, मध्य की तिथि में व्रत करने से सबको लाभ पहुंच सकता है.

प्र०— पूर्ण एकादशी व्रत किस तरह किया जाता है ?

उ०— दशमी को एक भुक्त करे, एकादशी को निराहार सहित रात्रि को जागे, तथा द्वादशी के दिन भी एक ही बार मृदु भोजन करे; किन्तु दिन को कदापि न सोये.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि रात्रि में जागने से गर्मी और दिन में सोने से सर्दी बढ़ जाती है.

प्र०— इससे क्या हानि ?

उ०— क्योंकि जिस लाभ के लिये व्रत किया था, वह न होते हुए, उल्टा वात, कफ या शीत बढ़ जाता है, जिसके द्वारा जड़ता उपजती है; इसलिये चाहे रात्रि को न भी जागे; किन्तु दिन को कभी न सोवै;

केवल वही रातको जागे जिसे आम, वात, कफ का विकार हो.

प्र०– नियम पूर्वक एकादशी व्रत करने से क्या होता है ?

उ०– पंद्रह दिन का संचित आम, वात, कफ, मल, अजीर्ण आदि का विकार शरीर से निकल जाता है; शरीर शुद्ध हो जाता है; जठराग्नि बढ़ जाती है; ज्ञानतंतु प्रबल हो जाते हैं; इत्यादि.

प्र०– रविवार को अलोना व्रत क्यों किया जाता है ?

उ०– क्योंकि छे दिन तक जो न्यूनाधिक क्षार, अम्लः कटु, तीक्ष्ण, तेल, शाक, मधु आदि खाने में आते हैं, उनका अवशिष्ट रस तथा विपाक बहुधा फोड़े, फुन्सी, दाद, खाज, कुष्ट, रक्तपित आदि रोग उप जाता है; उसके शमनार्थ अलोना भोजन किया जाता है.

प्र०– उस अवशिष्ट रस या विपाक को अलोना भोजन किस तरह हर लेता है ?

उ०– जिस तरह धूल या भस्म चिकनाई आदि को.

प्र०– प्रदोष किसे कहते हैं ?

उ०– (प्र) पहिले के (दोष) विकार; अर्थात् पहिले दिन के वे दोष, जो एकादशी करने पर भी शेष रहजाय, वे त्रयोदशी के दिन एक भुक्त सायं भोजन द्वारा निवृत हो जाते हैं.

प्र०– वर्षा ऋतु में देव सो गये, ऐसा मानकर अनेक व्रत क्यों किये जाते हैं ?

उ०– क्योंकि वर्षा ऋतु में दिनमान के घटने तथा वात के कुपित होने पर सब तेज मंद पड़ जाते हैं; इसलिये जठराग्नि के रक्षणार्थ तथा दीपनार्थ व्रत किये जाते हैं.

प्र०– ये देव वर्षा काल में अधोलोक; शीतकालमें मध्यलोक तथा ग्रीष्म-काल में उर्ध्व लोक को चले जाते हैं ! इसका तात्पर्य क्या है ?

उ०– अर्थात् वर्षा ऋतु में तेज की विशेषता पैरों में; शीत ऋतु में पेट में ग्रीष्म ऋतु में सिर पर होती है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो वर्षाकाल के जल से पैरों में सर्दी नहीं मालूम होती;

शीतकाल में भूख बहुत लगती है तथा ग्रीष्म में सिर पर शीघ्र गर्मी चढ़ जाती है.

प्र०– गणेश चतुर्थी के व्रत में मोदक दूर्वा क्यों ली जाती है ?

उ० - वीर्य मेधाके शोधन तथा वर्द्धन के अर्थ.

प्र०– नाग पंचमी का व्रत क्यों किया जाता है ?

उ०– वर्षा ऋतु में उपजने वाले नाग नामक वायु से तथा सर्पों के विष से बचने के लिये, व्रत करके सिरसकी छाल, पुनर्नवा, नागदौन, काली मिर्च तथा सरसों का सेवन किया जाता है.

प्र०– श्रावणी किसे कहते हैं ?

उ०– जिस युक्ति से मल अशुद्ध ऊष्मा तथा दोषों का श्राव किया जाकर स्वतेज की वृद्धि की जाती है; उसे सावणी कहते हैं.

प्र०– रक्षाबंधन के व्रत से क्या उपदेश मिलता है ?

उ०– स्वतेज को बढ़ाते हुए रक्षों ! नहीं तो मंदाग्नि के कारण रुग्न हो जाओगे !

प्र०– कृष्णजयंती व्रत क्या उपदेश देता है ?

उ०– कर्षण शक्ति को जीत, स्वतेज की रक्षा करो ! क्योंकि अब चंद्र कृत आकर्षण बढ़ रहा है; स्वतेज घट रहा है; इसलिये जिस तरह श्री कृष्णजी ने असुरों को जीत, स्वतेज बढ़ाया; उसी तरह आप भी तेज हारक विकारों को नसा; स्वतेज बढ़ाओ !

प्र०– मिश्री, तुलसी दल तथा काली मिर्च के भक्षण से क्या लाभ ?

उ०– यह नारू, विषमज्वर आदि नसाने वाला योग है.

प्र०– कुआंर में विशेष कर तर्पण क्यों किया जाता है ?

उ०– पित्तके शमनार्थ.

प्र०– तब मधुर तथा सच्चिकन पदार्थों का विशेष सेवन क्यों किया जाता है ?

उ०– वातपित्त के शमनार्थ.

प्र०– कुआंर सुदी में नव दिन निराहार पूर्वक हवन क्यों किया जाता है?

उ०– वर्षा ऋतु के समस्त वायु के विकार नसाने के लिये.

प्र०– विजयादशमी का व्रत क्या उपदेश देता है ?

उ०– आप अपने सब काम सिद्ध किया चाहो; तो अब शीघ्र कटिबद्ध हो, शुभ उद्योग में लग जाओ !

प्र०– शरदोत्सव क्या चिताता है ?

उ०– अब पित्त बढ़ा ! दुग्ध शुद्ध हुआ ! इसलिये अब बल, बुद्धि तथा आयुष्य की वृद्धि के लिये; पित्त की शांति के लिये; आज से दुग्ध पीना प्रारंभ करो !

प्र०– अब देव जग उठे ! पाताल से यहां आगये ! इसका तात्पर्थ क्या है ?

उ०– अर्थात् अब जठराग्नि जग उठी ! उसका तेज पैरों द्वारा उदर में आगया !

प्र०– दीपोत्सव से क्या लाभ है ?

उ०– इसके द्वारा गृहों के बहिरंतर्गत का शीतवात जनित विकार नष्ट हो जाता है; सिवाय उससे बचने के लिये तैल के सेवन का उपदेश मिलता है.

प्र०– तिल संक्रांति क्या कहती है ?

उ०– आज से वात के विकारों से बचने के लिये तिलका सेवन करो ! नहीं तो वसंत में कफ तथा वर्षा में वात दबा लेगा !

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो जिन गाय बैलों को ठंड काल में तेल या तिलहन की कच्चर आदि नहीं दी जाती ! वे गर्मी या वर्षा में रोगी हो प्रायः मर तक जाते हैं !

प्र०– वसंतोत्सव में केशर, कुसुम, अगर, अबीर, गुलाल आदि क्यों परस्पर फैंका जाता है ?

उ०– क्योंकि ये पदार्थ कफ के हारक तथा बलवीर्य के वर्द्धक हैं !

प्र०– हर घर पर होली क्यों जलाई जाती है ?

उ०– समस्त वायु के शोधन के अर्थ, जिसमें आगे होने वाले रोगों के बीज समूल नष्ट हो जांय !

प्र०– पीछे धूल, गोबर तथा राख बाजी क्यों करते हैं ?

उ०– क्योंकि जो कभी मृतिकास्नान, गोमयस्नान व भस्मस्नान नहीं कर पाते; उनका काम इसी बहाने निकल जाता है; उप० २५/२७/२९/३१ पढ़ देखो !

दोहा

मृतिका ऊष्मा गंधमल, गोमय विष कृमि रोग ।
हरै भस्म सब दोषको, राखै सदा निरोग ।।१।।
जो शिशु खेलत धूल नित, बली पुष्ट क्यों सोय ।
गोद वसनयुत हीन क्यों, हेतु बताओ दोय ।।२।।

प्र०– चैत्र में नव दिन का निराहार क्यों किया जाता है ?

उ०– समस्त शीत तथा कफ के विकार नसाने के अर्थ.

प्र०– रामजयंती व्रत क्या उपदेश देता है ?

उ०– सब में रमने वाले तेजको जीत कर, स्वतेज की रक्षा करो ! क्योंकि अब सूर्यकृत आकर्षण बढ़ रहा है; सिवाय उदर गत तेज घट रहा है; इसलिये जिस तरह श्री रामजी ने असुरों को जीत स्वतेज को बढ़ाया; उसी तरह आप भी अपने समस्त विकारों को हर स्वतेज को बढ़ाओ !

प्र०– व्रत के द्वारा किस अमूल्य वस्तु की वृद्धि होती है ?

उ०– स्वतेज की.

प्र०– स्वतेज वृद्धि से क्या प्राप्त होता है ?

उ०– उस अध्यात्म सविता की दीक्षा प्राप्त हो सकती है.

प्र०– उस सविता के दर्शन द्वारा क्या लाभ होता है ?

उ०– वेद में तथा उस सविता में प्रवेश होने का सामर्थ्य प्राप्त होता है.

प्र०– उसमें प्रवेश होने से क्या होता है ?

उ०– दिव्य चक्षुकी प्राप्ति होती है; जिसके द्वारा हर बात के कारण जाने जाते हैं; तब वेद, ईश तथा इस स्वयं सिद्ध धर्म पर श्रद्धा उपजती है.

प्र०– उस श्रद्धा के द्वारा क्या होता है ?

उ०– उस सत्य की तथा सत्य ज्ञान की प्राप्ति होती है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– उप० १५ वा देखो !

दोहा

अग्निरूप व्रतको करी, क्रमसो तेज बढ़ाय ।
वासो दीक्षा दक्षता, श्रद्धा सत्य जु पाय ।।

चोपाया छंद

व्रत न करे ते तन रस बाढ़ै, विषम पाय बन पित्त विकारी ।
रक्त बिगाड़ै धातू फाड़ै, वमन दस्त मूर्च्छा भ्रम जारी ।।
मंद अग्नि से वो रस कफ बन, सूजन स्वासजु करे खखारी ।
आशय में जा आम अजीरण, संगरनी अतिसार जु मारी ।।
या वो आम वात उपजावै, पीहायकृत लकवा गोला ।
गर्भ गिरावै रोकै मारे, बांझ शूल सुस्ती कर चोला ।।
लिखों कहां तक नाम अनेकन, ये सब तन में करै फफोला ।
व्रत हरता उस विषमय रसको, जो सब रोगनका है मौला ।।

उपदेश ४७

तर्पण

प्र०– तर्पण का अर्थ क्या है ?

उ०– ∵ (तृ) पारजाना; (पण)=उद्योग करना या मूल्य करना; ∵ (तर्पण)=पार जाने का उद्योग या मूल्य; अर्थात् दोषों से रहित होने का उद्योग या मूल्य.

प्र०– मूल्य क्यों कर है ?

उ०– जिस तरह मूल्य देने से औषधि प्राप्त होती है; जिससे रोगों की निवृत्ति होती है; उसी तरह तर्पण में जलरूपी मूल्य देने से अमृत

के समान गुणकारी उसकी ज्योति का रस मिलता है; जो संपूर्ण विकारों को हर शांति प्रदान करता है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– आपोहिष्टा० का अर्थ देखो ! उप. ३६ वा.

प्र०– वास्तविक में तर्पण किसे कहना चाहिये ?

उ०– जो तृप्त करे.

प्र०– किसे ?

उ०– तेज की उग्रता को.

प्र०– यदि हम तर्पण न करें; तो ?

उ०– तो तेज की उग्रता संपूर्ण शरीर में फैल कर, रक्त को सूखावेगी या रक्त में विषमता फैलावेगी; फिर वह उग्रता तथा विषमता- रक्त से होती हुई, वीर्य आदिक में पहुंच, उन्हें बिगाड़ेगी या सुखा- वेगी; जिसके द्वारा दाह, शोष, जलन, चक्कर, मूर्च्छा, अंधेरी धातुदोष, द्रवता, वीर्यपात, स्वप्नदोष, विस्मरण आदि विकार उपजेंगे; इसलिये देव, ऋषि तथा पितृ तर्पण किया जाता है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– देखो ! याज्ञवल्क्य सूत्र ।। अतर्पित देहाद्रुधिरं पिवंति ।। अथ व्याख्या: ।। एते पूर्वोक्ता अतर्पिता: सन्तो देहात् अतर्पयितु: शरीरात् रुधिरं पिवन्ति ।। तर्पणस्याकरण प्रत्यवायाद्देह रुधिर शोषो भवतीत्यर्थ: ।। एतदनिष्ट निवारणार्थे तर्पणमवश्यमेवं कर्त्तव्यं ज्ञेयं ।।

प्र०– देव तर्पण किसे कहते हैं ?

उ०– शरीरगत तेज के तृप्त करने को.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि देव का अर्थ प्रकाश ने वाला अर्थात् तेज है.

प्र०– ऋषि तर्पण किसे कहते हैं ?

उ०– रक्त गत तेज के तृप्त करने को.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि ऋषि का अर्थ गमनागमन करने वाला या रिसने वाला (रक्त) है.

प्र०– पितृ तर्पण किसे कहते हैं ?

उ०– वीर्य गत तेज के तृप्त करने को.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि पितृ का अर्थ जन्माने वाला अर्थात् वीर्य है.

प्र०– देव तर्पण अर्थात् शरीर गत तेज के तर्पण के लिये क्या करे ?

उ०– पूर्व मुख हो, यज्ञोपवीत सव्य कर, देवतीर्थ पूर्वक, दर्भाग्र द्वारा, नित्य लगभग ४०, यवमिश्रित जलांजलियां दे.

प्र०– देवतीर्थ किसे कहते हैं ?

उ०– ∵ (देव)=तेज; (तीर्) पार होना, पूर्ण करना; (थ)=स्थान इसलिये जो स्थान शरीरगत तेज को पार करने वाला या पूर्ण करने वाला है; उसे देव तीर्थ कहते हैं ?

प्र०– वह स्थान कहां है ?

उ०– करांगुलियों के अग्रभाग की ओर.

प्र०– ऋषि तर्पण अर्थात् रक्त गत तेज के तर्पण के लिये क्या करे ?

उ०– उत्तर मुख हो, ऋषि तीर्थ सह, दर्भ के मध्य भाग द्वारा निवीती पूर्वक १४ और सव्य पूर्वक १४, यवमिश्रि जलाँजलियां दे.

प्र०– ऋषि तीर्थ किसे कहते हैं ?

उ०– रक्त गत तेज के पार करने वाले या पूर्ण करने वाले स्थान को.

प्र०– वह स्थान कहां है ?

उ०– कनिष्टिका के छे यव नीचे.

प्र०– देव तथा ऋषि तर्पण में यव क्यों लिए जाते हैं ?

उ०– क्योंकि यव-दुष्ट ऊष्मा के हारक, रक्त के शोधक तथा तेज के शोधक वर्द्धक हैं.

प्र०– पितृ तर्पण अर्थात् वीर्यगत तेज के तर्पण के लिये क्या करे ?

उ०– दक्षिण मुख हो, अपसव्य कर, पितृ तीर्थ पूर्वक, दर्भ के मूल भाग द्वारा नित्य ६३ या इससे अधिक, तिलमिश्रित जलाँजलियां दे.

प्र०- पितृ तीर्थ किसे कहते हैं ?

उ०- वीर्यगत तेज के पार करने तथा पूर्ण करने वाले स्थान को.

प्र०- वह स्थान कहां है ?

उ०- अंगुष्ट तर्जनी के मध्य में.

प्र०- पितृ तर्पण में तिल क्यों लिये जाते हैं ?

उ०- वात दोष के शमनार्थ.

प्र०- फिर उपवस्त्र को चौवरता कर भूमि पर क्यों निचोड़ देते हैं ?

उ०- जल दोष के परिहारार्थ. (केश)

प्र०- तर्पण कब करे ?

उ०- शीताधिक्य में अर्घ्य से पूर्व और उष्णाधिक्य में अर्घ्य के पश्चात्.

प्र०- तर्पण के लिये कौन से पात्र ग्राह्य हैं ?

उ०- सुवर्ण, रजत, ताम्र, कास्य तथा औदंबर के.

दोहा

तर्पण तर्पे तेज को, हरै उग्रता आसु ।
एक वर्ष करि जांचिये, सत मिथ्या फल तासु ।।
बीज दोष भ्रम पित्त तम, वमन स्वप्नरुज दाह ।
हरत रोग बेदाम ये. वैद्यहि जो अवगाह ।।

उपदेश ४८

श्राद्धतर्पण

प्र०- श्राद्ध शब्द किसके द्वारा बना ?

उ०- श्रद्धा के द्वारा.

प्र०- श्रद्धा शब्द किसके द्वारा बना ?

उ०- (श्रत्+धा) के द्वारा.

प्र०- श्रत् का क्या अर्थ है ?

उ०- श्रवित होने वाला या सत्.

हो जाती है; उन सब विकारों से बचने के लिये श्राद्ध तर्पण करना चाहिये.

प्र०– तब क्षीर आदि मधुर तथा सच्चिकन पदार्थ क्योंकर अधिकता से खाये जाते हैं?

उ०– उग्रपित्त के शमनार्थ.

प्र०– क्या नित्य श्राद्ध में भी इतनी अधिक आवश्यकता है?

उ०– नहीं.

प्र०– तो फिर मृतक पुरुषों के लिये श्राद्ध तर्पण करने से क्या लाभ है?

उ०– तीन लाभ हैं; प्रथम तो किरणों के दोषों की निवृत्ति तथा उनके शुद्ध हुए अमृत तुल्य तेज की प्राप्ति; द्वितीय-स्पर्शास्पर्श तथा जलाने के कारण, जो मृतक का धनंजय वायु का दूषित अंश, हम में आ घुसता है; उसकी निवृत्ति; तृतीय-पितरों की तृप्ति.

प्र०– पितरों की तृप्ति क्यों कर हो सकती है?

उ०– श्रद्धा के द्वारा.

प्र०– यह श्रद्धा किसके द्वारा प्राप्त होती है?

उ०– उस अध्यात्म सविता के द्वारा.

प्र०– क्यों?

उ०– क्योंकि बिना अध्यात्मविद्याके, न तो गुप्त रहस्यों का यथार्थ ज्ञान हो सकता है और न संशय ही निवृत्त हो सकता है; इसलिये विधिवत दीक्षा लेकर ब्रह्मचर्य पूर्वक अपने नित्य नैमितिक कर्मों द्वारा स्वतेज बढ़ा; उस अध्यात्म सविता के अंतर्गत वृत्ति को लीन करे; तब ज्ञान दृष्टि द्वारा गुप्त रहस्य विदित हो सकता है.

प्र०– तो क्या देव, ऋषि तथा पितरों का होना सत्य है?

उ०– अवश्य!

प्र०– क्यों कर?

उ०– क्योंकि अध्यात्मक ध्यान के द्वारा विदित हो चुका है; कि इस स्थूल सृष्टि की अपेक्षा सूक्ष्म सृष्टि अपार है; चराचर प्राणियों की असंख्य आत्माएं इसी भूमंडल पर स्थित हैं; यदि वे सब

आत्माएं एक साथ अपनी २ निज काया धारलें; तो उन्हें इस पृथ्वी पर स्थान तक मिलना असंभव है; उन्हीं में हमारे देव, ऋषि तथा पितर विराजते हैं.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो मेस्मिरेजम द्वारा पात्र को ज्ञात, अज्ञात आत्माओं का अनुभव होता है; जिनमें कई आत्माएं ज्ञानी, कई सुखी तथा कई दुखी पाई जाती हैं; अपना सुख, दुःख तथा अनुभव दर्शा सकती हैं; रोग, दुख तथा विघ्न निवृत्ति के उपाय बता सकती हैं; सिवाय जितना हम श्रद्धा पूर्वक उनका आदर सत्कार करते हैं; उतनी अधिक वे हमसे प्रसन्न होती हैं.

प्र०– वे आत्माएं तो केवल पात्र को ही दिखाई पड़ती हैं; किन्तु हमें या प्रयोगकर्त्ता को नहीं ?

उ०– हमें भी दिव्य चक्षु द्वारा दिख सकती हैं.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो एक्सरे अर्थात् ऋण विद्युत् की किरणों द्वारा मरे हुए पितरों के फोटो तक लिये जा सकते हैं.

प्र०– किसके द्वारा वे आत्माएं हमारे तथा पात्र के सन्मुख आ, उपस्थित होती हैं ?

उ०– निष्केवल श्रद्धा पूर्वक आवाहन द्वारा.

प्र०– यदि हम आवाहन न करें; तो ?

उ०– तो वे आत्माएं बिना कारण कभी न आवेंगी.

प्र०– इन सब बातों से क्या सिद्ध हुआ.

उ०– कि उन आत्माओं का आना तथा न आना हमारी श्रद्धा के आधीन है; न कि मेस्मिरेजम के; और चाहे वे आत्माएं हमें दिखें; चाहे न दिखें; किन्तु अवश्य वे आत्माएं श्रद्धा पूर्वक आवाहन करने से हमारे सन्मुख आ उपस्थित होती हैं तथा हमारे स्वागत से प्रसन्न व निरादर से अप्रसन्न होती हैं; तभी तो उनके श्रद्धा पूर्वक स्वागत को श्राद्ध कहते हैं.

प्र०– तो क्या वे आत्माएं हमारा दिया अन्न-जल भोग सकती हैं ?

उ०– अन्न-जल तो स्थूल पदार्थ है; उसे सूक्ष्म सृष्टि वाली आत्माएं नहीं खा, पी सकतीं; किन्तु उन्हें हमारी दृढ़ भावना द्वारा केवल उन पदार्थों का स्वाद, सुगंध आदि प्राप्त हो सकता है.

प्र०– किस तरह ?

उ०– जिस तरह मेस्मिरेजस द्वारा पात्र गत आत्माओं को या खुद पात्र को हमारी इच्छा के अनुसार स्वाद, सुगंध, शीत, उष्ण, शांति, तृप्ति आदि प्राप्त होती है.

प्र०– तो क्या बिना अन्न दान के श्राद्ध हो सकता है ?

उ०– अवश्य हो सकता है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी ऐसे भावनामय श्राद्ध को धर्म शास्त्र ने चट श्राद्ध कहा है.

प्र०– फिर क्यों कर भोजन प्रदान द्वारा श्राद्ध किया जाता है ?

उ०– सामर्थ्य होने पर लौकिक व्यवहार के अर्थ.

प्र०– इस लौकिकं श्राद्ध से क्या होता है ?

उ०– उधर तो भावना के द्वारा पितरादिकों की आत्माएं तृप्त तथा तुष्ट हो जाती हैं; और इधर भोजन द्वारा ब्राह्मण, पंडित, विद्वान, अतिथि, इष्ट मित्र तथा जाति भाइयों का परस्पर सत्कार तथा प्रीति संमेलन हो जाता है; सिवाय सूर्य की किरणों से उपजे पित्तवात के विकार अनायास शांत हो जाते हैं; जिसके द्वारा अपनी व अपने समाज की वृद्धि तथा रक्षा होती है.

प्र०– पितरों को हम क्यों तृप्त करें ?

उ०– क्योंकि हम उनके चिर कृतज्ञ तथा ऋणी हैं; उनसे उपकृत हमें होना चाहिये; सिवाय वंशजों का हित करना हमारा पवित्र कर्त्तव्य है; तिसपर श्राद्ध तर्पण द्वारा हमारा ही भला होता है.

प्र०– यदि वे पितर जन्म चुके हों; तो ?

उ०– तो भी हमें अपने हित के लिये श्राद्ध तर्पण करना चाहिये ?

प्र०– तो फिर हमें अन्य के हितके लिये निरर्थक अन्न जल क्यों खुटाना चाहिये ?

उ०– क्योंकि किसी किये कर्म का फल निरर्थक नहीं जाता; और यह जीव हर बार नर तन भी नहीं पाता; यह मनुष्य देह बड़े पुण्य से प्राप्त होता है: यही सद्‌गति तथा दुर्गतिका द्वार है; इस शरीर से चाहे मुक्ति का साधन करो; चाहे भक्ति ! चाहे भोग करो; चाहे योग! यह शरीर सब प्रकार कांक्षित फल देने वाला है ! ऐसे दुर्लभ शरीर को पाकर भी, जो पर हित का लक्ष नहीं रखते; जीवों पर दया नहीं करते; तो कहिये ! जब वे काया पलट के चक्कर में पड़, अनेक योनिया भोगते फिरेंगे ! तब उन पर कौन दया करेगा ! इसलिये हमें निज हित के लिये सब पर दया रखनी चाहिये !

प्र०– यदि हमें अन्य जन्म के सुख.दुख का विश्वास न हो; तो ?

उ०– तो ईश्वर का होना भी असिद्ध होगा !

दोहा

अध्यात्मक विद्या बिना, मिलै न याको भेद ।
श्रद्धा जड़ या श्राद्ध की, गुप्त रहस्य वर वेद ।।१।।
ताप हटारुज, तनसधा, धर्म अर्थ पद काम ।
तेज बढ़ा, वर पथ लखा, देत मनहि विश्राम ।।२।।
स्वधा सुधाकर पितर को, वीर्य शोध बलवान ।
धी, गो, मेधा, तेज दे, करै सत्य को ज्ञान ।।३।।

उपदेश ४७

तिलक

प्र०– तिलक शब्द किसके द्वारा बना ?

उ०– (तिल्+अक) के द्वारा.

प्र०– इसका अर्थ क्या है ?

उ०- (तिल्)=जाना, व्यापना और (अक)=गति देने वाला या करने वाला.

प्र०- इसलिये तिलक किसे कहना चाहिये ?

उ०- गति देने वाले या व्याप्त करने वाले को.

प्र०- यह किसे गति देता व्याप्त करता है ?

उ०- कर्षण शक्ति के तेज को.

प्र०- किसके द्वारा ?

उ०- मृतिका के द्वारा.

प्र०- किस मृतिका के द्वारा ?

उ०- गोपीचंदन नामक मृतिका के द्वारा; जो गंगा के निकटस्थ प्रदेशों में होती है.

प्र०- गोपीचंदन शब्द किसके द्वारा बना ?

उ०- (गो+पी+चन्द्+अन) के द्वारा.

प्र०- इनका क्या अर्थ है ?

उ०- (गो)=विद्युत्, (पी)=पालने वाली, (चंद्)=चमकना या आनंद पाना, और (अन)=वाला, जाना, समर्थ होना.

प्र०- इसलिये गोपीचंदन किसे कहना चाहिये ?

उ०- जो विद्युत् को रक्षे या उसकी आनंद प्रद ज्योति को गति दे.

प्र०- वह कहां लगाई जाती है ?

उ०- ऊर्ध्व भाग के उन उत्कृष्ट मर्मस्थानों पर, जिनका मन, बुद्धि तथा बल आदि से संबंध है.

प्र०- क्यों लगाई जाती है ?

उ०- दुष्ट ऊष्मा के संशोधन आदि के अर्थ.

प्र०- उन जोड़ों में दूषित ऊष्मा किस तरह आई ?

उ०- जिस तरह संगम स्थान में हर नदी का कूड़ा कचरा आ पहुंचता तथा भंवर में पड़ चकराने लगता है; उसी तरह संधिस्थलों में हर नाड़ी के अंतर्गत की दुष्ट ऊष्मा आ पहुंचती तथा परस्पर

मिल, आवर्त में पड़, वहीं भ्रमने लग जाती है; जो अनेक रोगों को उपजाती है.

प्र०– मृतिका किस तरह उस दुष्ट ऊष्मा का संशोधन आदि करती है ?

उ०– वह अपनी कर्षण शक्ति के द्वारा, वहां की दूषित ऊष्मा को भीतर से खैंच, बाहर निकालती रहती है और बाहर के वायु तथा तेज को शोधकर भीतर पहुंचाती रहती है; सिवाय मस्तिष्क को शीतल बनाये रहती हैं.

प्र०– फिर क्यों कर सुगंधि पदार्थों का तिलक करते हैं ?

उ०– क्योंकि वे भी मृतिका के रूपांतर मात्र हैं.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि गंध पृथ्वी का मुख्य गुण है; सिवाय वे सब पदार्थ पृथ्वी से ही उपजते हैं.

प्र०– सुगंधि द्रव्यों में क्या विशेषता है ?

उ०– वे अपने भिन्न २ गुणों से भिन्न २ रोगों को हरते हुए, मन को प्रसन्न करते हैं; जिनमें से विशेष कर उष्ण वीर्य वाले–शीत वात को और शीत वीर्य वाले उत्ताप तथा पित्त वात को हरते हैं.

प्र०– केवल ऊपरी मर्मस्थलों पर ही, क्यों तिलक लगाते हैं ?

उ०– क्योंकि जब मृतिका आदि का तिलक–भीतरी ऊष्मा को कर्षता है, तब अपानवायु को ऊर्ध्व गति प्राप्त होती है और ज्यों २ वाष्प बाहर निकलती जाती है; त्यों २ शुद्ध तेज तथा वायु भीतर पहुंचता रहता है; किन्तु इसके विपरीत नीचे के मर्मों में लगाने से हानि पहुंचती है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि वैसा करने से अपान वायु अधोगति करेगा; किन्तु जिसके अधोभाग से वारंवार अपान निकला करता है; उसकी जठराग्नि मंद पड़ जाती है.

प्र०– चंदन निजका घिसा हुआ, क्यों श्रेष्ठ है ?

उ०– क्योंकि (१) इधर तो ओरसे पर चंदन के मुठ्ठे की ज्यों २

घिसाई होगी; त्यों २ उससे उपजी–गुणकारी विद्युत् हाथों द्वारा शरीर में जा फैलेगी; और (२) उधर वारंवार नलों के घूमने से जठराग्नि वर्द्धक नौली क्रिया अनायास हो जाती है.

प्र०– नौली क्रिया में क्या विशेषता है ?

उ०– **नलहि भ्रमावत अनिल भ्रम, जासु अनल उर डोल ।**
तासु जगे ये कुंडली, ब्रह्मरंध्र दे खोल ॥

प्र०– त्रिपुंड किसे कहते हैं ?

उ०– जो अष्ट कपाली के तीनों जोड़ों पर अर्थात् मस्तक पर लेपा जाता है; जिसे आड़ा तिलक या शिव तिलक भी कहते हैं.

प्र०– इसे शिव तिलक अर्थात् कल्याणकारी तिलक क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि यह संपूर्ण मस्तक की दुष्ट उष्मा हरता हुआ; मस्तिष्क को शुद्ध, पुष्ट तथा शीतल करता है; जिसके द्वारा बुद्धि तथा धारणा शक्ति बढ़ती है और शुद्ध तेज के संचार से ध्यान अच्छा लगता है.

प्र०– ऊर्ध्वपुंड्र किसे कहते हैं ?

उ०– यह उन तीनों नाड़ियों पर लेपा जाता है; जो शिर के ऊर्ध्व भाग से आकर भ्रूनाशा के मध्य में मिल, ब्रह्मरंध्र तक अपने सूक्ष्म तंतु पहुंचाती हैं; इसे खड़ा तिलक अर्थात् विष्णु तिलक भी कहते हैं.

प्र०– इसे विष्णु तिलक अर्थात् व्यापक तिलक क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि यह उन्हीं नाड़ियों के द्वारा दुष्ट ऊष्मा खैंचता हुआ, शीतल तथा शुद्ध तेज भीतर पहुंचाता है; जो ब्रह्मरंध्र के अंतर्गत व्याप्त हो योगी के ध्यान को स्थिर करता है.

प्र०– दोनों में कौनसा तिलक श्रेष्ठ है ?

उ०– दोनों श्रेष्ठ हैं; जिसमें आड़ा तिलक विशेष कर दोषों का शोधक तथा खड़ा तिलक तेज का व्यापक है; इसलिये दोनों प्रकार के लगाने चाहिये !

प्र०– ऐसा क्यों कर हो सकेगा ?

उ०– संध्या के वक्त भस्म धारण करना पड़ता है; वह केवल आड़ा

धारा जाता है; पश्चात् चंदन आदि का तिलक खड़ा तथा आड़ा, दोनों प्रकार का लगाया जा सकता है.

प्रमाण (आन्हिक)

गंगाती समुद्भूतां मृदं मूर्ध्ना विभर्त्तियः ।
विभर्त्ति सोऽर्कस्य तेजः तमो नाशाय केवलं ॥

अर्थ

(यः) जो (गंगाती) गंगा के तट की (सम्) दिव्य (उद्भूतां) उपजी (मृदं) मिट्टी को (मूर्ध्ना) मूर्ध्ना के ऊपर अर्थात् मस्तक पर (विभर्ति) लेपता है; (सः) वह (अर्कस्य) सूर्य के (तेजः विभर्त्ति) तेज को व्याप्ता है अर्थात् तेज से व्याप्त होता है; (केवलं) केवल (तमः) अंधःकार को (नाशाय) नशाने के अर्थ.

अन्य प्रमाण

ऊर्ध्व पुंड्रं मृदा कूर्याद्भूस्मनातु त्रिपुंड्रकं ।
उभयं चंदने नैव अभ्यंगोत्सव रात्रिषु ॥

अर्थ

(ऊर्ध्व पुंड्रं) खड़ा तिलक (मृदा) मृतिका से अर्थात् गोपीचंदन द्वारा; (त्रिपुंड्रकं) आड़ा तिलक (भस्मना) भस्म के द्वारा; (तु) और (उभयं) दोनों प्रकार के तिलक (चंदनेन) चंदन के द्वारा (कुर्यात्) करें ! (एव) यही नियम (अभ्यंग) स्थान (उत्सव) खुशी तथा (रात्रिषु) हर रात दिन के लिये है.

उपदेश ५०

भोजन

प्र०– हमारा जीवन दाता तथा जीवन हर्त्ता कौन है ?

उ०– खान पान.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि हम इन दोनों के दोषों से रोगी तथा गुणों से नीरोगी होते हैं.

प्र०– इसलिये क्या उचित है ?

उ०– कि निर्दोष पदार्थों को ले, अच्छी तरह देख, छान, बीन, धो, पोंछ, तपा, सुखा; शुद्ध पात्र में रांध, ढक या रख कर खावे पीवे.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि न जाने उसमें किसी के संपर्क से कोई दोष आ गया हो या आजाय अथवा चूहा, सर्प, छिपकली, आदि की बीट या कोई कीट आदि गिरजाय; तो हमारी क्या दशा होगी ?

प्र०– भोजन के आदि में कैसे पदार्थ खावे ?

उ०– चिकने, पपले, कोमल तथा मधुर.

प्र०– क्यों ?

उ०– वात के दबने तथा आंतों के कोमल होने आदि के लिये.

प्र०– भोजन के मध्य में कैसे पदार्थ खाने चाहिये ?

उ०– पौष्टिक तथा गरिष्ट पदार्थ.

प्र०– क्यों ?

उ०– पित्त के दबने, बलके बढ़ने तथा क्षुधा निवृत्ति के अर्थ.

प्र०– भोजन के अंत में कैसे पदार्थ खाने चाहिये ?

उ०– पतले, तीखे, खारे, कडुवे तथा खट्टे पदार्थ.

प्र०– क्यों ?

उ०– कफ के दबने, अन्नके पचने तथा मुख के साफ़ होने के लिये.

प्र०– आदि अंत में पतले व कोमल और मध्य में गरिष्ट पदार्थ के खाने से क्या लाभ है ?

उ०– आंतों को कष्ट नहीं पहुंचता तथा अजीर्ण होने नहीं पाता.

प्र०– उदर पूर्त्ति का क्या परिमाण है ?

उ०– उदर का अर्द्ध भाग अन्न से, चौथाई भाग जल से भरे और शेष चौथाई भाग वायु के संचार के लिये खाली छोड़े.

प्र०– कब भोजन न करे ?

उ०– असमय, अजीर्ण, सन्निपात, महामारी तथा प्लेग में.

प्र०– पटे पर बैठ, ऊनी तथा रेशमी वस्त्र पहिनकर भोजन क्यों करे ?

उ०– जठराग्नि के उस बढ़ते हुए–तेज के रक्षणार्थ; जो ग्रासके उठाने, चबाने, चघलने तथा निगलने से उपजता है.

प्र०– इसके क्या लाभ ?

उ०– इसके रक्षण से अन्न का पचन तथा नीरोगता होती है.

प्र०– पूर्व मुख हो, भोजन करना क्यों श्रेष्ठ है ?

उ०– क्योंकि पृथ्वी तथा आकर्षण शक्ति की गति पूर्व की ओर है, इसलिये पूर्व मुख बैठने से उसका लौटता हुआ–तेज प्राप्त होता है.

प्र०– गोमय से लिपी भूमि पर बैठ कर क्यों जीमें ?

उ०– दूषित कृमियों से बचने के अर्थ.

प्र०– भोजन के अंत में तक्र या दधि क्यों लिया जाता है ?

उ०– अन्न के पचने के अर्थ.

प्र०– तब दूध लेने से क्या फायदा ?

उ०– षट रसों की तेजी मारकर, उसे एक रस करने के लिये.

प्र०– भोजन से पहिले त्रिफला या सेंधवसुंठी आदि क्यों लेते हैं ?

उ०– जठराग्नि के उद्दीपनार्थ.

प्र०– भोजन के पश्चात् पान क्यों खाते हैं ?

उ०– मुख दोष, त्रिदोष तथा कफ आम के गलाने के लिये.

प्र०– यह कफ आम को क्यों कर गला सकता है ?

उ०– क्योंकि इसका रस चूने के संयोग से कफ, आम में खमीर उठा गला देता है; जिस तरह सोड़ा, सुहागा.

प्र०– भोजन के पश्चात् १०० कदम टहल कर, क्षण भर बांई करवट से क्यों लेटे ?

उ०– अन्न के यथोचित स्थान पर पहुंचने, अग्नि के बढ़ने तथा ठीक २ पचने के अर्थ.

प्र०– वामकुक्षि से क्यों लेटे ?

उ०– क्योंकि वामकुक्षि अन्नकी और दक्षिण कुक्षि जलकी है; इसलिये वामकुक्षि से लेटने से अन्न शीघ्र पचता है.

प्र०– भोजन करते में परस्पर क्यों न छुए ?

उ०– क्योंकि उस वक्त जो चर्वण, चोषण के कारण कर्षण को विशेष गति प्राप्त होती है; उसके द्वारा एक का तेज, दोषों को ले दूसरे से आ जा, सकता है.

प्र०– उच्छिष्ट तथा कदान्न से क्या हानि ?

उ०– झूंठे भोजन से औरों के विकार अपने में आसकते हैं; बासी भोजन से जड़ता तथा आलस्य उपजता है और बिगड़े हुए अन्न से अनेक रोग उपजते हैं.

प्र०– दिन को भोजन के पश्चात् सोने से क्या होता है ?

उ०– कफ या शीत वात उपजता है; पित्त तथा उत्ताप को हरता है.

दोहा

भोजन घी बल वीर्य तन, जनको जीवन मूल ।
हितप्रद ता जो नियमसो, करै नतरु जन शूल ।।

उपदेश ५१

दीपक

प्र०– दीपक शब्द किसके द्वारा बना ?

उ०– (दीप्+अक) के द्वारा.

प्र०– इसका अर्थ क्या है ?

उ०– प्रकाश ने वाला.

प्र०– दीपक को फूंक से क्यों न बुझावें ?

उ०– क्योंकि ज्यों ही हम फूंक द्वारा उसे बुझाकर, स्वास लेंगे; त्यों ही उसकी दूषित वायु मुख में हो, तन में घुस हानि पहुंचावेगी.

प्र०– दीपको उत्तर मुख या पूर्व मुख क्यों रक्खे ?

उ०– तेज की अनुकूलता के अर्थ.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि पृथ्वी की गति पूर्व मुख तथा खिंचाव उत्तर मुख है.

प्र०– घृत की ज्योति से क्या होता है ?

उ०– पित्त, उष्ण वात तथा नेत्र रोग हटता और ज्योति, शांति, धृति तथा मेधा शक्ति बढ़ती है.

प्र०– तिल तैलकी ज्योति से क्या होता है ?

उ०– वात, तथा नेत्र रोग दबता है.

प्र०– अलसी तैलकी ज्योति से क्या होता है ?

उ०– उष्ण वात तथा नेत्र रोग जाता है.

प्र०– सर्वप तैलकी ज्योति से क्या होता है ?

उ०– शीत, वात तथा नेत्ररोग जाता है.

प्र०– दुर्गंधयुत विकारी तैलों की ज्योति से क्या होता है ?

उ०– खांसी, स्वास, तिमिर, धुंध, जाला तथा किसी प्रकार का नेत्ररोग आदि उपजता है; क्योंकि भिन्न २ पदार्थों की ज्योति के गुण भिन्न २ होते हैं; सो निघंट या आयुर्वेद द्वारा जाने जाते हैं.

प्र०– दीपक की लौ कितनी बड़ी रक्खे ?

उ०– न अत्यन्त बड़ी, न अत्यन्त सूक्ष्म; जिसमें न धुआं प्रतीत हो और न धुंधलापन.

प्र०– रोमज तथा कोशज बत्ती से क्या होता है ?

उ०– विकारी वायु उपजता है.

प्र०– सूत के जलने पर भी कार्बोन पैदा होता है ?

उ०– किन्तु वह शुद्ध होता है; सिवाय अनेक गुणों का दाता है; इसी लिये सूत की बत्ती बर्त्ती जाती है.

दोहा

पूर्वोत्तर मुख दीप की, धूमरहित शुचि जोत ।
सूर्य अस्त सों उदय तक, धरै लाभ अति होत ॥

उपदेश ५२

शयन

प्र०– कब सोवे ?

उ०– एक प्रहर रात्रि व्यतीत होने के पश्चात्.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि प्रथम प्रहर में सोने से वात की वृद्धि होती है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि दिन के तीसरे प्रहर से एक प्रहर रात तक उष्ण वात के वृद्धि का समय है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो इस बीच उष्ण वात वाले रोगियों की पीड़ा बढ़ जाती है.

प्र०– इस बीच सोने से केवल वात वृद्धि क्यों होती है ?

उ०– क्योंकि इस समय सोने से उष्णता दब जाती है; इसलिये केवल वात वृद्धि को प्राप्त होता है.

प्र०– वर्षा में कृमियों से तथा ग्रीष्म में उत्ताप से बचने के लिये कहां सोवे ?

उ०– खटिया पर अथवा ऊपरी पर.

प्र०– शीलकाल में ठंड से बचने के लिये कहां पर सोवे ?

उ०– गोमय से लिपी भूमि पर.

प्र०– किस तरह सोवे ?

उ०– अग्नि तथा आयु वृद्धि के अर्थ बायी करवट से; बल वृद्धि के अर्थ चित्त; उष्णतां तथा अग्नि मंद करने के लिये दहिनी करवट से; और थकावट मिटाने के लिये औंधा सोवे.

प्र०– दिशा के विचार से किस तरह सोवे ?

उ०– दक्षिण को सिर और उत्तर को पैर करके सोवे अथवा पूर्वको सिर और पश्चिम को पैर करके सोवे.

प्र०– दक्षिण को सिर तथा उत्तर को पैर करके क्यों सोवे ?

उ०– क्योंकि पृथ्वी की कशिस दक्षिण से उत्तर की ओर तथा हमारी कशिस सिर से पैर की ओर खींचाव कर रही है; उसी तरह उसका तेज उत्तर से दक्षिण की ओर तथा हमारा तेज–पैरों से सिर की ओर गति कर रहा है.

प्र०– इन दोनों की सानुकूलता से क्या लाभ होगा ?

उ०– हमारे तेज, बल तथा शरीर की स्थिति में व्याघात उपस्थित न होगा.

प्र०— भूमध्य रेखा के दक्षिण दिशावालों को किस तरह सोना चाहिये ?

उ०— उत्तर को सिर तथा दक्षिण को पैर करके.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि वहां कशिस का खिचाव उत्तर से दक्षिण की ओर होता है.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि ईषद्दंड पृथ्वी के हर केन्द्र को सदा ध्रुवों की ओर बनाये रहता है.

प्र०— ईषद्दंड किसे कहते हैं ?

उ०— पृथ्वी और ध्रुवकी मध्यवर्त्ति आकर्षण शक्ति को.

प्र०— पूर्वको सिर तथा पश्चिम को पैर करके क्यों सोवे ?

उ०— क्योंकि पूर्व वाहिनी कशिस में पृथ्वी इस तरह बही जा रही है; जिस तरह बहाव की और नाव; और पृथ्वी पर हम इस तरह सवार हैं; जिस तरह नाव पर केवट; किन्तु वही केवट सुरक्षित रह सकता है; जो गति की ओर मुख रखता है.

प्र०— सोने के इन दोनों नियमों में विरुद्धता क्यों ?

उ०— स्थिर तथा अस्थिर के विचार से.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि दक्षिण उत्तर वाहिनी कशिस पृथ्वी के हर केन्द्र को सदा ध्रुवों की ओर अचल बनाये रखती है; किन्तु यह पूर्व वाहिनी कशिस पृथ्वी को अपने बहाव की ओर भ्रमाती हुई ले जारही है; इसलिये (प्रमाण) जिस तरह भंवर में पड़ा मनुष्य गति के विरुद्ध तैरने से डूब मरता है; किन्तु वही उस गति के सानुकूल तैर कर प्रयत्न द्वारा बाहर निकल, बच जाता है; अथवा जिस तरह नदी के बहाव की ओर तैर कर पार होना-जितना सुलभ है; उतना चढ़ाव की ओर नहीं.

प्र०– इसलिये पूर्व को सिर तथा पश्चिम को पैर करके सोने से क्या होता है ?

उ०— बल तेज की प्राप्ति रक्षा होती है.

प्र०- सोने के लिये क्या बिछावे ?

उ०- नीचे दर्भासन, मध्य में मृगचर्म तथा ऊपर कंबल आदि ऊनी या रेशमी या सूती वस्त्र बिछावे.

प्र०- क्यों ?

उ०- शीत, वात आदि से बचने के अर्थ

प्र०- अनायास वात, पित्त तथा कफ क्यों उपजता है ?

उ०- पिछली रात या दिन को सोने से शीत या कफ; सायंकाल को सोने से वात; और अवशेष रात को जागने से पित्त उपजता है,

दोहा

पूरब दक्खन सिर करी, पच्छम उत्तर पैर ।
कुश मृगतन पर वस्त्र धर, करै शयन व्है खर ।।१।।
प्रथम प्रहर निशि वात कर,अंत पहर कफ जात ।
सोवत दिन व्है शीत कफ, शेष जगे पित रात ।।२।।

उपदेश ५३

संस्काराः

प्र०- यहां संस्कार का क्या अर्थ है ?

उ०- दिव्यकृत्य, सर्वोत्कृष्ट कर्म हर तरह उमदा काम.

प्र०- संस्कार किस दिव्य कर्मको कहना चाहिये ?

उ०- जिसका दिव्य प्रभाव तन, मन में व्याप्त हो, बल, बुद्धि, पराक्रम आयु, नीरोगता, सभ्यता, सुसंतति आदि को बढ़ावे तथा लोक पर लोक में सद्गति करे.

प्र०- जन्म से मरण पर्यंत कितने संस्कार किये जा सकते हैं ?

उ०- अनेक.

प्र०- मुख्य कितने हैं ?

उ०- अड़तालीस, पच्चीस, अठारह, सोलह, बारह, आठ अथवा कोई दो चार संस्कार को ही मुख्य मानते हैं.

प्र०- गर्भाधान संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०- रजोदर्शन से लेकर गर्भ स्थापन तक के कर्त्तव्य को.

प्र०- रजोधर्म का क्या विचार है ?

उ०- खरगोशके रक्त के समान रजका होना शुभ है, किन्तु इसके विरुद्ध काला, नीला, पीला, स्वेत तथा विचित्र वर्ण का होना सर्वथा अशुभ है ?

प्र०- क्यों ?

उ०- क्योंकि ऐसा रज स्त्री पुरुष तथा संतति के लिये हानिकारक है.

प्र०- रजोशांति किसे कहते हैं ?

उ०- जिन औषधियों द्वारा गर्भाधान के योग्य शुद्ध रज उत्पन्न होता है उन वनस्पतियों के द्वारा मार्जन, तर्पण, यज्ञ आदि करके अथवा खान-पान द्वारा रजको शुद्ध बनाना; रजोशांति संस्कार का काम है.

प्र०- वे कौनसी बूटियां हैं; जिनसे रजकी शुद्धि तथा गर्भ की स्थिति हो सकती है ?

उ०- त्रायमाना, सहमाना, सरस्वति, स्वेतसिंह्या, लक्ष्मणा, न्यग्रोधशृंगा, सहदेव्या, विश्वदेव्या, अश्वगंधा, सहस्रमूला आदि.

प्र०- पुत्र, कन्या तथा नपुंसक होने का क्या कारण है ?

प्र०- स्त्री का रज बलवान होने से कन्या; पुरुषका वीर्य बलवान होनेसे पुत्र; तथा दोनों का रज वीर्य समान बल रखता हो; तो नपुंसक उपजता है.

प्र०- पुंसवन संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०- जो गर्भ स्थिति के पश्चात स्त्री के गर्भस्थ दोषों तथा उनके बीजों को नसाने और बालक में ज्ञान, पुरुषत्व आदि लाने के लिये किया जाता है.

प्र०- सीमन्तोन्नयन किसे कहते हैं ?

उ०- जो संस्कार पुंसवन के पश्चात् अष्टम मास के भीतर गर्भ के बढ़ने, रक्षणे तथा गर्भज दोषों के हटाने के लिये किया जाता है.

प्र०- विष्णु बलि संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०– अष्टम मास के पश्चात् गर्भ के परिपुष्ट होने तथा सुखपूर्वक प्रसवने के अर्थ किया जाता है.

प्र०– जातकर्म संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०– जो प्रसवने के प्रश्चात् नाल के छेदने, गर्भ संबंधि दूषित जलके निकालने, आयु तथा मेधावृद्धि के अर्थ किया जाता है.

प्र०– गर्भ संभूत दूषित जल के निकाल देने से क्या होता है ?

उ०– बालक को माता नहीं निकलती या कम निकलती है; किन्तु इतना अधिक भी न निकाल दे; जिसमें बालक सदा के लिये कमजोर हो जाय.

प्र०– षष्टी संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०– जो प्रसूतिका के तथा ग्रहदोष निवारण और धूप से धूपित करने आदि के लिये किया जाता है; षष्टी संस्कार में या इसके पहिले जिन वस्तुओं का संपर्क या घूंटी आदि दी जाती है; उसका विपाक स्थाई हो जाता है.

प्र०– तब प्रसूतिका के गृह में सर्षप क्यों बखेरी जाती है ?

उ०– सर्पबाधा के निवारणार्थ.

प्र०– नामकरण संस्कार क्यों किया जाता है ?

उ०– व्यवहारार्थ; क्योंकि बिना नाम के, किसी पदार्थ का ज्ञान या पता लगना आदि असंभव है.

प्र०– पर्यंकारोहण संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०– पहिली खटिया त्याग, अन्य खटिया पर प्रसूतिका को लिटाने आदि का कृत्य किया जाता है.

प्र०– दुग्धपान का संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०– जब तक माता का अशुद्ध दुग्ध निचोड़ने आदि द्वारा शुद्ध न हो जाय; तब तक शिशु को अन्य धात्री का या गोदुग्ध शंख द्वारा पिलाया जाता है; इत्यादि कृत्य को दुग्धपान संस्कार कहते हैं.

प्र०– कर्णबेध संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०– नवीन दंत निकलने के पूर्व, कर्ण की शिरा सूर्य के प्रकाश में बेधी

जाती हैं; जिसके द्वारा बधिरत्व, दांतों के निकलने का कष्ट, अंत्र वृद्धि आदि विकार कम होते हैं.

प्र०– सूर्यावलोकन संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०– तीसरे महिने हवनादि करके शिशु को सूर्य दिखाया जाता है; नीरोगता तथा ज्ञान तंतुओं के प्रबल होने के लिये.

प्र०– चंद्रावलोक संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०– चौथे महिने हवनादि करके शिशु को चंद्र दिखाया जाता है; नीरोगत, पुष्टि तथा मेधा शक्ति के वृद्धि के अर्थ.

प्र०– उपवेशन संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०– पांचवे महिने शिशु को भूमि पर बिठाकर, हवन आदि किया जाता है; जिसमें बालक नीरोग रहे तथा ज्ञानतंतु प्रबल हों.

प्र०– अन्नप्राशन संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०– छटे महिने या दांतों के निकल आने पर शिशु का तेज, बल, बुद्धि तथा आयुवर्द्धक पदार्थ दधि, मधु, घृत से युक्तकर, सुवर्ण की सलाका से तीन बार चटा, हवनादि किया जाता है.

प्र०– वलवर्द्धन संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०– वर्ष के अन्त में जन्म तिथि के दिन मधु, घृत, दधि तथा दूर्वा के द्वारा शिशु के बल वर्द्धनार्थ हवनादि किया जाता है; यह कर्म प्रतिमास या प्रति वर्ष जन्म तिथि को किया जा सकता है.

प्र०– चौल संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०– पहिले, दूसरे, तीसरे पांचवें या सातवें वर्ष-शिशु के गर्भ संभूत बीज आदि के संशोधनार्थ मुंडन तथा हवनादिक किया जाता है.

प्र०– चूड़ा कर्म किसे कहते हैं ?

उ०– गर्भज तथा शारीरिक दोषों के निवारणार्थ नाँदीमुख श्राद्ध तथा हवनादिक करके; जो शिशु को कड़े आदि आभूषण पहिराये जाते हैं; उसे चूड़ा कर्म कहते हैं.

प्र०–नांदी मुख श्राद्ध किसे कहते हैं ?

उ०– [नांदी] बढ़ती हुई, [मुख] गति के [श्रात्] श्राव से [घ] बचाना, रोकना या धारना; उसे नांदीमुख श्राद्ध करते हैं.

प्र०— इसका तात्पर्य क्या है ?

उ०— अर्थात् शिशु की वर्द्धमान कशिस के द्वारा जो तेज का श्राव हो रहा है; उस तेज को स्वर्ण आदि के आभूषणों द्वारा रोकना या बचाना.

प्र०— इसके द्वारा तेज की रक्षा क्यों कर होगी ?

उ०— क्योंकि स्वर्ण, रजत, ताम्र तथा कांसे में विद्युत शक्ति शीघ्र संचार करती है.

प्र०— सब आभूषण प्रायः वृत्ताकार क्यों पहिने जाते हैं !

उ०— क्योंकि वृत्ताकार गति द्वारा विद्युत धारी तथा बचाई जा सकती है.

प्र०— आभूषणों में मोती, मूंगा, स्फटिक, मणि, लाल, हीरा, पन्ना तथा नीलम आदि क्यों जड़े या लटकाये जाते हैं ?

उ०— क्योंकि ये विद्युत के रोधक हैं; इनमें विद्युत घुस नहीं सकती; यदि घुस जाय, तो शीघ्र निकल नहीं सकती.

प्र०— मेखला, शिखा, सूत्र कब से धारा जाता है ?

उ०— उपनयन संस्कार से.

प्र०— उपनयन संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०— उस ज्ञान रूपी नेत्र प्राप्ति के संयमसाधन को कहते हैं; जिसके द्वारा वह अध्यात्म सविता दिखाने वाली दीक्षा प्राप्त होती है.

प्र०— मेधा जनन संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०— जिसके द्वारा धारणा शक्ति तथा स्मरण शक्ति बढ़ती है.

प्र०— उपनयन पुष्टि के लिये और कौन से संस्कार किये जाते हैं ?

उ०— महानाम्नीव्रत, महाव्रत, उपनिषत्व्रत, गोदानव्रत्, प्रायश्चित् तथा समावर्त्तन आदि.

प्र०— अंतेष्टी या मृतक संस्कार किसे कहते हैं ?

उ०— जो मृत्यु के पश्चात् किये जाते हैं ?

प्र०— मृतक को जलाना ठीक है या गाड़ना आदि ?

उ०— जलाने से विशेष लाभ होता है ?

प्र०— क्यों ?

उ०– क्योंकि फेंके तथा गड़े हुए-मृतक के सड़ने गलने से वायु दूषित हो, अनेक रोग उपजाती है; किन्तु जलाने से सब तत्व पृथक २ हो, अपने पूर्व रूप को प्राप्त हो जाते हैं.

प्र०– किसे गाड़ना उचित है ?

उ०– जो प्राण वायु को जीत समाधिस्थ हुआ है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि उसका प्राण ब्रह्मांड में स्थित होता है; इसलिये उसे जलाना–मानो जीते मनुष्य को जलाना है.

प्र०– दश दिन की छूत क्यों मानी जाती है ?

उ०– मृतक के जलाने तथा स्पर्शास्पर्श के द्वारा, जो धनंजय वायु की छूत शरीर में व्याप जाती हैं; उसे दूर करने के लिये तथा औरों को उस छूत से बचाने के लिये, दश दिन का सूतक माना जाता है; जिस तरह प्लेग की छूत से बचने के लिये क्कारंटाईन !

प्र०– दक्षिण दिशा में शव दहन क्यों किया जाता है ?

उ०– क्योंकि दक्षिण का पवन प्रायः कम चलता है; जिससे दहन की दुर्गंधि बस्ती की ओर नहीं आसकती; सिवाय बड़ा भारी विचार दक्षिणोत्तर वाहिनी आकर्षण शक्ति का है.

प्र०– क्या विचार है ?

उ०– यदि कोई मनुष्य किसी विकार से मूर्छित हो गया हो या उसकी शारीरिक क्रिया रुक गई हो; किन्तु यथार्थ में मरा न हो; उसे शव के समान स्नान आदि करा, त्रिकटी पर डाल दक्षिण दिशा को दो तीन मील तक लेजाने से प्रायः वह चैतन्य लाभ कर सकता है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि उस पर निवर्त्तक यजन अनायास हो जाता है.

प्र०– जलाने से और क्या लाभ है ?

उ०– गाड़ने से जो भूमि रुक जाती है; क्षारवाली हो जाती है; सो नहीं होने पाती.

नोटः- इसी तरह ब्रह्मचर्य, विवाह, पुनर्विवाह, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास आदि के संस्कार सकारण है; अर्थादेश पढ़ देखो.

सिवाय हमारे व्यवहारिक सद्गति के तथा सदाचरण के ग्राह्य संस्कार निम्न लिखित हैं.

दोहा

गुणी मिलै या औगुणी, सबको मान समान ।
दोष लखो ना दोषियै, अघ लखि क्रोध न आन ।।१।।
मित्रहि शत्रुहि अन्य ही, समझो आप समान ।
सब ही को दुख मेटियै, दया सहित सन्मान ।।२।।
तन मन वच क्रम सो कदा, कोऊ देवै त्रास ।
तोभी क्रोध न आन मन, रखो क्षमा चिर पास ।।३।।
खाय अखाद्य न च्युत कदा, करे अपेय न पान ।
निंदित करै न संग चिर, रखै शुद्ध तन प्राण ।।४।।
अनामास जिमि काज व्है, क्रम क्रम कीजे तेम ।
बुरे समूल जु त्यागिये, भले स्विकारे नेम ।।५।।
कष्टार्जित सो दान दे, पर धन छल ना आप्त ।
ताहीमें संत्तोष रख, जो प्रभु इच्छा प्राप्त ।।६।।
मोद न माने आदरे, निरादरे ना त्रास ।
दूर रहे निज कीर्तिसों, निज निंदाके पास ।।७।।
आधो पेट जु अन्नसों, पाव पेट भर नीर ।
पाव पेट खाली रखै, पवन हेत गुण धीर ।।८।।
भूल न त्यागे वीर्यको, काम कला ना ध्येय ।
साधन संयम नियम सह, प्रभु पद में चित देय ।।९।।
शत गुण गौरव गुरू को, दश गुण पाठक केर ।
सहस गुणो कर पिता को, लक्ष गुणो मातेर ।।१०।।
परम गुरू को कोटि गुण, प्रभु नृप केर अनंत ।
यथा योग्य सबको करै, सतज्ञानी गुणवंत ।।११।।

नोट:- इसी तरह ब्रह्मचर्य, विवाह, पुनर्विवाह, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास आदि के संस्कार सकारण है; अर्थादेश पढ़ देखो.

सिवाय हमारे व्यवहारिक सद्गति के तथा सदाचरण के ग्राह्य संस्कार निम्न लिखित हैं.

दोहा

गुणी मिलै या औगुणी, सबको मान समान ।
दोष लखी ना दोषिये, अघ लखि क्रोध न आन ।।१।।
मित्रहि शत्रुहि अन्य ही, समझी आप समान ।
सब ही को दुख मेटिये, दया सहित सन्मान ।।२।।
तन मन वच क्रम सो कदा, कोऊ देवै त्रास ।
तोभी क्रोध न आन मन, रखो क्षमा चिर पास ।।३।।
खाय अखाद्य न च्युत कदा, करे अपेय न पान ।
निंदित करै न संग चिर, रखै शुद्ध तन प्राण ।।४।।
अनामास जिमि काज व्है, क्रम क्रम कीजे तेम ।
बुरे समूल जु त्यागिये, भले स्विकारे नेम ।।५।।
कष्टार्जित सो दान दे, पर धन छल ना आप्त ।
ताहीमें संत्तोष रख, जो प्रभु इच्छा प्राप्त ।।६।।
मोद न माने आदरे, निरादरे ना त्रास ।
दूर रहे निज कीर्तिसों, निज निंदाके पास ।।७।।
आधो पेट जु अन्नसों, पाव पेट भर नीर ।
पाव पेट खाली रखै, पवन हेत गुण धीर ।।८।।
भूल न त्यागे वीर्यको, काम कला ना ध्येय ।
साधन संयम नियम सह, प्रभु पद में चित देय ।।९।।
शत गुण गौरव गुरू को, दश गुण पाठक केर ।
सहस गुणो कर पिता को, लक्ष गुणो मातेर ।।१०।।
परम गुरू को कोटि गुण, प्रभु नृप केर अनंत ।
यथा योग्य सबको करै, सतज्ञानी गुणवंत ।।११।।

जब तक हों नाराज प्रभु, मातपिता गुरुराज ।
तब तक कछु ना सिद्ध व्है, जप तप संयम काज ।।१२।।
जो तोपै उपकार कर, तापै कर उपकार ।
निज उपकारी के प्रती, भूल न कर अपकार ।।१३।।
उपकारी सो काहु बिध, बदी करै जो कोय ।
जप तप संयम नियम सह, अवश नसत है सोय ।।१४।।
झूंठ कपट छल छिद्रसों, काहू ना दे त्रास ।
लगा रहे सत काज में, परकी करै न आस ।।१५।।
प्रति उत्तर ना दीजिये, काहू विध तम धार ।
करत अधोगति वचन कटु, मधुर वचन दे तार ।।१६।।
मधुर कटुक या तीव्र हो, जो सत हित उपदेश ।
शिरो धार्यसो कीजिये, क्षमा मांगि आदेश ।।१७।।
आसन वाहन ते उतर, बड़े जननको बंद ।
छल त्यागी सेवा करो, तब कटि हैं सब दंद ।।१८।।
जब तक जीवत मातु है, जब तक जीवत बाप ।
तब तक जप तप व्यर्थता, तिन त्यागे लग पाप ।।१९।।
तिनकी सेवा ही सदा, है जप तपसे दून ।
करके लख लो तासु फल, ना सुरतरु सो न्यून ।।२०।।

उपदेश ५४

कर्मसार

हमारे कर्मकांड का उद्देश यह है; कि हमें इस लोक तथा पर-लोक में सुख मिले ! स्वार्थ तथा परमार्थ अनायास सधै !! इसलिये उसने परा तथा अपरा विद्या का हर नित्य नैमित्तिक कर्म में समावेश किया है !!!

परा केवल अध्यात्म विद्या का शुद्ध उपदेश देती है ! उसी उपदेश के आधार से योगत्रय का जन्म हुआ है ! जिनके साधन के मार्ग

लाखों हैं ! ! किन्तु सबका लक्ष, सबका स्थल तथा सबका ध्येय पदार्थ एक ही है ! ! !

पराकी सिद्धि के लिये अपरा–लौकिक विद्या का उपदेश देती है ! कि जिसमें किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित न हो ! ! सिवाय साथ ही स्वार्थ और परमार्थ दोनों सिद्ध हों !

स्वार्थ सिद्धि के लिये यह अपरा सब पदार्थोंका गुण तथा उनका उपयोग बताती है ! चाहे उनसे विघ्न निवृत्त करो ! ! चाहे उनसे शिल्प कला की उन्नती कर, अपनी २ इच्छा पूर्ति करो ! ! !

सिवाय यह अपरा अपने प्रभाव से शक्ति, तेज, पराक्रम, बुद्धि, आयु, संतति आदि बढ़ाने वाली ! समस्त रोगों की निवृत करने वाली! ! और अध्यात्म ज्ञान के लिये अपनी शक्ति तथा ज्योति के द्वारा पराके मार्ग पर चला देने वाली है ! ! !

यह हर बात का ऐसा प्राकृतिक प्रयत्न या उपचार बताती है ! जिसका साधन सबसे उत्तम, सबसे सस्ता, सरल, अमूल्य तथा अव्यर्थ है !

देखो ! मृतिका संबंधि विकार मृतिका से; जल संबंधि विकार जल से, वायु संबंधि विकार वायु से; अग्नि संबंधि विकार अग्नि से; आकाश (ईथर) संबंधि विकार आकाश से; विद्युत् संबंधि विकार विद्युत से; शक्ति संबंधि विकार शक्ति से; तन संबंधि सब विकार विद्युत शक्ति से तथा मन संबंधि सब विकार अध्यात्म विद्या से ! जितनी अच्छी तरह निवृत्त हो सकते हैं ! उस तरह किसी अन्य सर्वोत्कृष्ट कृत्रिम औषधि से निवृत्त होना असंभव है ! ! !

क्योंकि प्राकृतिक उपचार स्वयं सिद्ध है ! तथा कृत्रिम उपचार जन सिद्ध है ! ! इसलिये कृत्रिम उपचार से प्राकृतिक उपचार सर्वथा बलवान है ! ! !

बहुधा कृत्रिम उपचार कुछ काल के लिये रोग को दबा देता है या रोग को दबाकर अन्य रोग को उपजा देता है ! किन्तु प्राकृतिक उपचार ऐसा नहीं होने देता ! ! बल्कि विकारों के बीजों तक को समूल नष्ट कर देता है ! ! !

क्योंकि

जासों उपजत रोग है, ताही सों रुज जात ।
जस उपजत तरु तोय सों, तरुको तोय नसात ।।

हमारे प्रत्येक लौकिक काम इन्द्रियों द्वारा संपन्न होते हैं किन्तु इन्द्रियां भी उसको तभी कर सकती हैं; जबकि उनमें उस काम के करने की शक्ति हो ! पर शक्ति भी उस काम को तभी कर सकती है; जबकि हमारी इच्छा हो ! पर इच्छा भी उस शक्ति से तभी ठीक २ काम ले सकती है; जबकि हमारी आत्मिक प्रेरणा या हमारा पूरा २ लक्ष उस काम की ओर हो ! अर्थात् जैसी हमारी अध्यात्मिक प्रेरणा या लक्ष होगा ! उसके अनुसार क्रिया शक्ति सब कार्य सुसिद्ध कर देगी !! अन्यथा नहीं !!!

जिस तरह मेस्मिरेजम (यजन) में हम अपनी शक्ति का, चाहे जितना प्रयोग पात्र पर करें ! तो भी हमारी प्रेरणा के बिना; केवल हमारी शक्ति से हमारा कोई काम सुसंपन्न नहीं होता ! न हिप्नोडिजम (मार्जन) से कोई विकार जा सकता है!! अर्थात् हमारे भाव या लक्ष के बिना सब प्रयोग निरर्थक हो जाते हैं !!!

इसी विचार से कर्मकांड में मंत्र, विनियोग तथा संकल्प दिया गया है ! जो मनुष्य मंत्र के विचार से अपना विचार नहीं मिलाता ! विनियोग से कर्म का योग नहीं करता ! संकल्प के अनुसार क्रिया तथा अपना भाव नहीं रखता ! उसे कर्म का पूरा फल क्यों कर मिल सकता है ?

क्रिया शक्ति, इच्छा शक्ति तथा ज्ञान शक्ति; ये तीन प्रबल शक्तियां प्राणि मात्र में होती हैं ! किन्तु कार्य तभी सुफल हो सकता है ! जबकि प्राकृतिक ज्ञान के लक्ष के अनुसार इच्छा और उस इच्छा के अनुसार क्रिया हो !! अन्यथा नहीं !!!

जो उस प्राकृतिक (कुदरती) ज्ञान शक्ति का लक्ष नहीं रखता ! वल्कि अपनी इच्छा में आवे ! वैसी क्रिया करने लगता है !! उसे पागल समझो !!!

क्योंकि पागल भी तो अपनी इच्छा के अनुसार अनेक प्रकार की क्रिया करता रहता है ! परंतु ज्ञान न होने के कारण उसका कोई काम सुसिद्ध नहीं होता !! न उसे उसके द्वारा होने वाले लाभा-लाभ का पता लगता हैं !!!

इस अभाव पूर्त्ति के लिये वेद ने विशेष करके कर्मकांड में क्रिया शक्ति का प्रभाव; उपासनाकांड में इच्छा शक्ति का प्रभाव तथा ज्ञान-कांड में ज्ञान शक्ति का प्रभाव दिखाने की चरम सीमा कर दी है ! किन्तु वस्तुतः तीनों कांडों में तीनों का न्यूनाधिक समावेश भी है !! क्योंकि तीनों परस्पर हेतु हेतुमान है !!!

इन तीनों शक्तियों से काम लेने का अधिकार सबको है ! किन्तु काम लेने के मार्ग भिन्न २ हैं ! क्योंकि हमारी आवश्कताएं विभिन्न हैं !! इसलिये हमारी ईच्छा, क्रिया तथा गुण कर्म विभिन्न हैं !!!

वह क्रिया शक्ति त्रिधागति के कारण तीन भेदों में विभक्त हैं अर्थात् आकर्षण, निराकरण, और स्थंभन ? ब्राह्मण इन तीनों शक्तियों से काम लेता है; किन्तु वह सब की वृद्धि के लिये ब्राह्मी (आकर्षण) शक्ति से अधिक संबंध रखता है ! इसलिये वह ब्राह्मी शक्ति द्वारा स्वतेज बढ़ाकर ध्यान धारणा सहित अपना ब्रह्मकर्म करता है ! अर्थात् सबकी वृद्धि का काम करता है !

क्षत्री भी इन तीनों शक्तियों से काम लेता है; किन्तु वह सबकी रक्षा तथा दुष्टों के दमनार्थ रौद्री (निराकरण) शक्ति से अधिक संबंध रखता है ! इसलिये वह रौद्री शक्ति द्वारा स्वतेज बढ़ाकर ध्यान धारणा सहित अपना क्षात्रकर्म करता है ! अर्थात् सबकी रक्षा का काम करता है !

वैश्य भी इन तीनों शक्तियों से काम लेता है; किन्तु वह सबके पालन पोषण के लिये, वैष्णवी (स्थंभन) शक्ति से विशेष संबंध रखता ! इसलिये वह वैष्णवी शक्ति द्वारा स्वतेज बढ़ाकर ध्यान धारणा सहित अपना वैश्य कर्म करता है !

शूद्र अर्थात् कर्मा को तो अपने शिल्प कर्म के लिये तीनों शक्तियों से प्रतिक्षण काम पड़ता है ! इसलिये उसे तीनों से समान संबंध रखना पड़ता है ! किन्तु निज शिल्प संबंधि पदार्थों के गुण कर्म जानने के लिये तथा अपने शिल्प कर्म की उन्नति करने के लिये, वह अपने उपयोगी पदार्थों से, जी चाहे उस शक्ति का ग्रहण त्याग कर सकता है! तथा उस शक्ति के तेज से अपना स्वतेज बढ़ाकर ध्यान धारणा सहित सबके तोषणार्थ अपना शिल्प कर्म करता है !

अर्थात् जिन पदार्थों का जिसे रात-दिन काम पड़ता है ! वह उन्हीं पदार्थों द्वारा शक्ति तेज का ग्रहण त्याग कर सकता है ! ऐसा करने से समय, द्रव्य, तथा परिश्रम की बचत होकर, उन पदार्थों के गुण-कर्म अच्छी तरह जाने जाते हैं ! जिनके सहारे शिल्प की उन्नति होती है ! और उसके संस्कार हममें तथा हमारी संतान में सदा के लिये व्याप जाते हैं ! इसलिये वेद ने कर्मकांड के अंतर्गत सब चीजों से शक्ति तेज लेने की युक्ति बताई है !

अर्थात् पन चक्की, पवन चक्की, चक्की, चक्र, सूर्प, खूर्पी, ऊखल-मूसल, सिलबट्टा, घट, ईंट, झाड़ू, चलनी, सूत, चर्म, अस्थि, पंख, रेशम, ऊन, बाल, तृण, वनस्पति, वृक्ष, काष्ट, धातु, मोती, रत्न, सुई, मृतिका, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मेघ, सूर्य, चंद्र तथा नक्षत्र आदि सबसे शक्ति तेज का ग्रहण त्याग किया जासकता है !

तो फिर क्या वास्ता है ! कि पन चक्की वाला अपने मुफ्त तथा अनायास मिलने वाले बल तेज की परवाह न करके, सिवाय अपना कामकाज खोटी करके, अपना द्रव्य तथा अमूल्य समय व्यर्थ खोता हुआ, अन्य कर्म द्वारा शक्ति तेज के गृहणार्थ अन्यत्र कष्ट उठाता फिरे !

इस तरह अपने २ कर्म से सब कोई उस शक्ति तेज का ग्रहण त्याग कर सकते हैं ! तथा इसके द्वारा अपना बल तेज बढ़ा सकते हैं ! जिस तेज के सहारे ध्यान धारणा करते हुए ! उस अध्यात्म विद्या को अनायास पा सकते हैं !

अर्थात् भक्ति मुक्ति का अधिकार सबको समान है !
केवल शक्ति तेज का स्वीकार का हेतु अपना गुण काम है !

दोहा

भक्ति मुक्ति को एक पथ, शक्ति तेज को भिन्न ।
जो जाने या भेद को, होय कदा ना खिन्न ।।१।।
श्रीवशिष्ट श्री रामजी, विदुर स्वपच प्रह्लाद ।
इनकी करनी देख के , चलो सुपथ तजि वाद ।।२।।
अपने अपने कर्म से, बल, धी, तेज बढ़ाय ।
रोग शोक भव मेटिये, आत्म ज्ञान को पाय ।।३।।
भाव लक्ष बिन कर्मना, कर्म बिना ना ज्ञान ।
ज्ञान बिना ना मोक्ष व्है, मोक्ष बिना कल्याण ।।४।।
ऐसे चारों वर्ण में, हैंगे अभी सुजान ।
जो अपने गुण कर्म से, वरैं तेज बल ज्ञान ।।६।।

इति श्रीपरमगुरुप्रेरितस्वधर्मसर्वस्वसारस्य
कर्मादिशो नाम तृतीयो भागः समाप्तः

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ।। शुभं भवतु सर्वस्य ।।

।। हरिः ॐ हर ।।

स्वधर्मसर्वस्व

चतुर्थ भाग–मोक्षादेश

उपदेश १

मोक्ष

प्र०– मोक्ष का अर्थ क्या है ?

उ०– छुटकारा.

प्र०– मोक्ष किसे कहते हैं ?

उ०– जिसके द्वारा यह जीव कुछ काल, बहुत काल या चिरकाल के लिये आवागमन के चक्कर से छुटकारा पा जाता है; उसे मोक्ष कहते हैं.

प्र०– मोक्ष कितने प्रकार का है ?

उ०– प्रवृत्ति के विचार से चार प्रकार का; निवृत्ति के विचार से दो प्रकार का; किन्तु प्रवृत्ति निवृत्ति से रहित–केवल एक ही प्रकार का मोक्ष है.

प्र०– प्रवृत्ति संबंधी चारों मोक्ष कौन से हैं ?

उ०– सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य.

प्र०– निवृत्ति संबंधी दोनों मुक्तियां कौमसी हैं ?

उ०– जीवन्मुक्ति तथा विदेहमुक्ति.

प्र०– प्रवृत्ति निवृत्ति से रहित–कौनसा मोक्ष है ?

उ०– कैवल्य मोक्ष. (सब मोक्षों की व्याख्या उप० १५ में देखो !)

प्र०– मुक्तहोने की अर्थात् छूटने की किसे आवश्यकता है ?

उ०– बद्धजीव को अर्थात् बंधे हुए जीव को.

प्र०– यह जीव किससे बंधा हुआ है ?

उ०– अविद्या अर्थात् आवागमनकारिणी माया के फंदे से बंधा हुआ है.

प्र०– किस कारण ?

उ०– मोह के कारण; देखो ! उप० २

प्र०– जीवको मोह क्यों कर उपजता है ?

उ०– बहिर्मुख वृत्ति से.

प्र०– बहिर्मुख वृत्ति क्यों होती है ?

उ०– अपने आपको भूल जाने के कारण; देखो ! उप० ३-४

प्र०– जीव अपने आपको क्यों भूल जाता है ?

उ०– श्री सच्चिदानंद आनंदकंद का लक्ष्य न रखने से; देखो ! उप. ३-४

दोहा

आपहि भूलो जीव ये, पड़ि माया के फंद ।
भोगत दुख सुख नित्य ये, जानो छूटत द्वंद ।।

उपदेश २

मोहपंचक

प्र०– मोहपंचक किसे कहते हैं ?

उ०– शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध द्वारा मोहित होना, मोहपंचक कहाता है ?

प्र०– शब्द द्वारा मोहित मनुष्य किस तरह नष्ट होता है ?

उ०– जिस तरह व्याध का गान सुन, मृग मोहित हो, फिर उसी व्याध के बाण से मारा जाता है; उसी तरह वेश्या के तान से मनुष्य मोहित हो, फिर उसी वेश्या द्वारा नष्ट होता है ।

प्र०– स्पर्श से मोहित हो, मनुष्य किस तरह नष्ट होता है ?

उ०– जिस तरह हथिनी से मोहित हो, हाथी बंधन में पड़, सदा के लिये दुखी हो जाता है; उसी तरह मनुष्य, स्पर्श से मोहित हो, स्त्री के फंदे में पड़, सदा के लिये दुखी हो जाता है ।

प्र०– रूप से मोहित हो, मनुष्य किस तरह नष्ट होता है ?

उ०– जिस तरह पतंग अग्नि के रूप से मोहित हो, उसी में गिर कर जल मरता है, उसी तरह मनुष्य स्त्री के रूप से मोहित हो, उसी द्वारा अपने को नष्ट कर लेता है ।

प्र०– रस से मोहित हो मनुष्य किस तरह नष्ट होता है ?

उ०– जिस तरह मच्छी बंसी के मांस के मोह से कंठ छिदा प्राण गमाती है, उसी तरह मनुष्य रस के मोह से अपेय, अखाद्य व्यसनों द्वारा अपना जीवन संकट में डाल नष्ट करता है ।

प्र०– गंध के मोह से मनुष्य किस तरह नष्ट होता है ?

उ०– जिस तरह भ्रमर गंध से मोहित हो, कमल में रुक दुख पाता है; उसी तरह मनुष्य अपनी कीर्ति तथा कमला के गंध से मोहित हो, अपने आपको नष्ट कर लेता है ।

प्र०– मोह द्वारा किन की उत्पत्ति होती है ?

उ०– काम, क्रोध, लोभ, द्वेष, मद, अहंकार रूपी षटरिपु की ।

प्र०– किस तरह ?

उ०– स्त्री पर मोहित होने से काम उपजता, किसी पदार्थ पर मोहित होने से लोभ उपजता, इन दोनों के न मिलने तथा बाधा पड़ने से क्रोध तथा द्वेष उपजता, और मिल जाने से मद तथा अहंकार उपजता है; और फिर इन से अनेक कुव्यसन जन्मते हैं, इसलिये सब अनर्थों का कारण केवल एक यही मोह है ।

प्र०– इस मोह का जन्म किसके द्वारा होता है ?

उ०– अज्ञान पिता तथा कुइच्छा माता के द्वारा ।

प्र०– अज्ञान तथा कुइच्छा का नाश किसके द्वारा होता है ?

उ०– सुइच्छा के द्वारा.

दोहा

षड्रिपु में से एक हू, जा नर के तन होय ।
ताको रिपू जहान है, तन धन यश धी खोय ।।१।।

मोह अपर बल है महा, याही कीजै नास ।
नातर ये सब नासि हैं, कही बात ये खास ।।२।।
दुरइच्छा जड़ मोह की, सदइच्छा सों काट ।
ज्ञान लही सुख पाइये, अंधकार चिर छाट ।।३।।

उपदेश ३

जीवाजी व्यापारी

प्र०- जीवाजी की कथा कैसी है ?

उ०- ईश्वरचन्द ने अपने पुत्र जीवाजी दास को अच्छी पोशाक पहना तथा अच्छी पूंजी दे, आज्ञा दी कि हे बेटा ! तू मेदिनीपुर जा, तथा वहां किसी अच्छे व्यापार द्वारा, इस पूंजी की वृद्धि कर मुझे दिखा, तो मैं परमानंदित हो, तुझे कभी बार बार भटकने न दूंगा; किन्तु मेदिनीपुर की अच्छी राह कभी मत छोड़ना, नहीं तो अपार दुःख पावेगा ! जीवाजी, पिता की आज्ञा पा, प्रणाम कर मेदिनीपुर पहुंचा, पर एक उचक्के के बहकाने में आ, पुर का ख्याल छोड़, वन का मार्ग पकड़ लिया, अन्त को बीयाबान में पहुंचा, इधर रात हो गयी, उधर चोरों ने आ घेरा, तथा लूट लिया; तब जीवाजी रंक हो, पूर्व कर्मा नदी के किनारे भटकने लगा, इधर अंधेरा छा गया, उधर बादल गिर आये, इधर सांप फुफकारने तथा शेर डकारने लगा, उधर बिजली कड़कने तथा बादल गरजने लगे, इतने में जीवाजी एक सूखे अंध कूप में जा गिरा, किन्तु बीच ही में एक वट की शाखा आ गयी, जिसे पकड़ जीवाजी अधर लटका रह गया, उतने में बिजली चमकी तो क्या देखता है कि, नीचे एक भयंकर सर्प बैठा है; और ऊपर एक काला तथा एक सफेद चूहा उसी शाखा को काट रहा है यह देख जीवाजी बहुत घबराया और ऊपर चढ़ जाने की प्रबल इच्छा की; किन्तु बीच ही में आलस दानव ने आ कहा कि मत घबरा,

मैं ऊपर खींच लेता हूं, यह सुन जीवाजी निर्भय हुआ; जंभाई आई और मुंह फटा त्यों ही ऊपर से मधु मक्खी के छत्ते से बही मधु की धारा उसके मुंह में आ गिरी, फिर क्या पूछो; मजे के चस्के में पड़ सब कुछ भूल, बार बार मधु की बाट जोहने लगा, इधर ज्यों ज्यों मधु घटने लगा, त्यों त्यों मोह प्रबल हो गया, उधर चूहों ने शाखा काट दी, इधर आप भयंकर सर्प के मुख में जा पड़े; तब जीवाजी अपनी करनी को याद कर पछताने लगा, किन्तु फिर क्या वश था पिता की अवज्ञा का फल, सदा ऐसा ही हुआ करता है इसलिये उनकी आज्ञा के विरुद्ध कदापि मत वर्तो !

दोहा

सत मारग पर पग धरो, रखो मौत को याद ।
आवागमनहिं मेट दो, तज करनी मनुजाद ।।

ईश्वरचंद=ईश्वर; जीवाजी=जीव; अच्छी पोशाक=नर तन; अच्छी पूंजी=ज्ञान; बार बार भटकना=आवागमन; मेदिनीपुर=भूलोक; उचक्का=मन अर्थात् कुइच्छा; पुर=आपा; पुर का मार्ग=सुमार्ग, धर्म मार्ग; वनका मार्ग=कुमार्ग, अधर्म मार्ग; अँधेरा=अज्ञान; चोर=कामादि, व्यसनादि; पूर्व कर्मा नदी=पूर्वार्जित कर्मों के संस्कार; सांप का फुफकारना=राज शासन; सिंह का डकारना=राज दंड; बादल=हितू तथा जाति वृन्द; गर्जन=कटु वाक्यों से समझाना; बिजली की चमक=ज्ञानी का उपदेश; अंधकूप=व्यभिचारादि; वट शाखा=आयुष्य; भयंकर सर्प=काल, मृत्यु; काला चूहा=रात; सफेद चूहा=दिन; शाखा काटना=आयुष्य व्यतीत होना; आलस दानव=आलस्य; मधु मक्खी=स्त्री; मधु=विषय सुख; अच्छा व्यापार=सदाचरण.

उपदेश ४

अंगदेश का जमीदार

प्र०- यह कथा कैसी है ?

उ०- पहिले किसी समय राधा किशन साहू ने, जीवनदास को कुछ पूंजी

वृद्धि करने के लिये दी; जिसे जीवनदास ने उद्योग द्वारा इतनी बढ़ाई, कि उसके द्वारा वह अंग देश की एक अच्छी ज़मीदारी खरीद सका ; किन्तु ज़मीदार बनते ही वह नाना प्रकार की क्रीड़ा में लग गया; पर उसके रक्षक अंग देश की रक्षा करते रहे; जिससे अंग देश अत्यंत उन्नत हो गया. उसे देख जीवनदास मारे अहंकार के फूल गया, तथा मद से अपने आपको भूल गया, फिर क्या था, जैसा उसे सूझा वैसा किया, पर हानि लाभ ज़रा न सोचा. जब फ़ज़ूल खर्ची से जीवनदास की सब संपत्ति नष्ट हो गयी; तब राधा किशन साहूने ज़मीदारी के सब हक़ छीन लिये, और सुपरडंटी बैठा दी; अब जीवनदास ज़रा २ सी बात के लिये तरस रहा है; अब उसके नौकर उस पर हुकूमत चला रहे हैं; अब उसका और उसके मुल्क का हाल ऐसा हो रहा है; सुनिये ! निबल सिंह वल्द वात सिंह के सबब मस्तकपुर थरथराट करता है ! इसलिये अब किसी चूं तक करने की हिम्मत नहीं; नयनावाद के नज़र अली खां गैरहाजिर हैं ! इसलिये अब वहां रैयत नज़र नहीं आती ! नागपुर की सड़क बिगड़ गयी, इसलिये अब वहां के गंधी यहां नहीं आते ! कानपुर की बस्ती उजाड़ हो गयी, इसलिये अब वहां मनुष्य के बच्चे तक का बोल, नहीं सुन पड़ता , दंतपुर का व्यापार बंद हो गया, क्योंकि उसके कोट के कंगूरे हाट बाट में जहां तहां गिर गये, इसलिये व्यापारियों को माल रखने तथा सरकाने की बड़ी अड़चन पड़ती है; जिभ्या कुटनी के वह मजे अब चले गये, बहकती हुई बोलती है, क्योंकि वह हवा निकल गयी; इधर मदनपुर के मदनसिंह ठाकुर का मद उतर गया; लेकिन तो भी मन ही मन कामता प्रसाद की बातें याद आती हैं अब पेटला बाद में माल नहीं खपता, अधिक माल रखने से उल्टा नुकसान उठाना पड़ता है; लोहितपुर की आमदनी घट गयी ! लेकिन खर्च न घटा ; बीजापुर का खजाना खाली हो गया, इसलिये अब भगवती भूखी रहती है, बलदेव प्रसाद पुजारी को साथ लेकर

कुल की देवी शक्ति माता कहीं रूठ कर चली गयी, पर आशा देवी पूरा पूरा साथ दे रही है; तृष्णा नदी के पूर का ठिकाना नहीं; चारों ओर मनसूबों का जल ही जल दिखाई देता है; जिस में बड़ी बड़ी लहरों के साथ तरंग उठ रहे तथा भँवर पड़ रहे हैं; चितापुरी में दिन रात आग भभक रही है, बुझने की आशा नहीं दिखती; इधर गांठ की पूंजी चुक गयी; सिवाय उधर राधा किशन साहू की अमानत का भी पता नहीं, सब गड़प हो गयी; बहुत ऋण चढ़ गया, ब्याज तक दिया जाता नहीं, इसलिये अब कोई मदद देता नहीं, सब हँसी करते हैं, किन्तु बिचारा लकुटसिंह अकेला सहारा देता है, केवल उसी के सहारे सिसकता हुआ, जीवनदास कुछ काम कर पाता है; धौलाजी चिठ्ठीरसा कल बैरंग चिठ्टी लाया है, विषम कामदार ने बुखार पटेल और क्षयसिंह ठाकुर के सामने जरुरी खबर पढ़ सुनाई, कि राधा किशन साहूने अमानत में खयानत का जुर्म जीवनदास पर लगाया है; और गिरफ्तारी का वारंट भी जारी करा दिया है, जमपुरी के मेजिष्ट्रेटने वास्ते तामील के, गिरफ्तारी का वारंट पुलिस के हवाले कर दिया है; जमनगर पुलिस के सिपाही दमसिंह और कफसिंह, ठाकुर सन्निपात वर्मा थानेदार के साथ, गिरफ्तारी का वारंट लेकर दमदमाते हुए, जीवनदास की ड्योढ़ी पर पहुंच गये, फिर किसी की भी परवाह न कर, घर में घुस, जीवनदास को गिरफ्तार कर लिया; न कोई रोक सका, न कोई टोक सका, अविचारी जीवनदास को, ऊर्द्ध श्वास लेते हुए, मजबूरन उनके साथ जाना पड़ा; वह फौरन जमनगर के मेजिष्ट्रेट के सामने पेश किया गया, उसे सरकारी गबन व नुकसान का सबब पूछा गया, मगर वह सफाई का सबूत न दे सका; इसलिये जन्म कैद किया गया; इधर कई तरह की काल कोठरियों की तकलीफ उधर बरकन्दाजों की तंगी से जीवनदास को अपनी करनी याद आती है, लेकिन फिर पछताने से क्या होता है; उधर घर वाले दो चार

दिन रो, धोकर उसे भूल गये; न किसी ने साथ दिया, न पाप, दुख का भाग लिया; देखो ! जिसने किया उसीने भोगा । इसलिये चेतो, और ऐसा काम कभी मत करो; जिसमें जमनगर की जैल में जाना पड़े; हमेशा, राधा किशन साहू की प्रार्थना करो और आज्ञा पालो; जिसमें वह सदा खुश रहे और तुम्हारी रक्षा करे !

दोहा

बार बार ये ना मिलै, नर तन पामत भूल ।
सत करनी कर मेट दे, जन्म-मरण को मूल ।।

अंग देश की अच्छी जमीदारी = नर तन; रक्षक = माता पिता; अंग देश का उन्नत होना = जवानी; सम्पत्ति = ज्ञान, बल, आयु आदि; हक्क = इन्द्रियों की कार्त्तृत्व शक्ति; सुपर डंडी = पुत्रादिक के आधीन होना; बीजापुर = वीर्य तथा मस्तिष्क; ऋण = पाप; ब्याज = प्रायश्चित्त; लकुटसिंह = लकड़ी, लट्ठ; धौलाजी = सफेद बाल; बैरंग चिट्ठी = बद सूरती, विपर्य्य चर्य्या; जीवनदास = जीव, प्राण, आत्मा; राधा किशन = ईश्वर, परमात्मा; जन्म कैद = आवागमन रूपी बंधन; काल कोठरी = गर्भस्थयातना, नर्कयातना.

उपदेश ५

शरीर

प्र० - सुख दुःख का कारण क्या है ?

उ० - केवल शरीर भाव.

प्र० - शरीर कितने है ?

उ० - तीन हैं; स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण.

प्र० - स्थूल शरीर किसे कहते हैं ?

उ० - इस पंच भौतिक देह को स्थूल शरीर कहते हैं; जिसमें सबसे अधिक पृथ्वी तथा जल संबंधी पदार्थों का समावेश है तथा प्राण वायु के आधार से यह टिका हुआ है अर्थात् श्वास न मिलने से

इसका तत्काल विसर्जन होकर जीव सूक्ष्म देह को प्राप्त होता है.

प्र०– यदि हम वायु को जीत लें; तो ?

उ०– तो हमें सूक्ष्म देह की सिद्धि प्राप्त हो सकती है तथा स्थूल शरीर बहुत काल तक टिक सकता है.

प्र०– सूक्ष्म शरीर कैसा है ?

उ०– वायुमय है; किन्तु जब तक जीव इस वायुमय शरीर को धारे रहता है; तब तक यह मनोमयी कहाता है; क्योंकि जीव अपने मन के अनुसार इसे छोटा बड़ा गुप्त प्रकट आदि कर सकता है; इस शरीर के मोह से भी जीव को सुख दुख आदि होता है.

प्र०– सूक्ष्म शरीरधारियों को हम किस तरह देख सकते हैं ?

उ०– योग, दृष्टियोग, गुप्तांजन, हाजीरात, मेस्मिरेजम आदि द्वारा उन्हें देख सकते हैं, उनके साथ बात चीत आदि कर सकते हैं तथा एक्सरे के प्रकाश द्वारा उनका फोटो तक ले सकते हैं.

प्र०– सूक्ष्म शरीर का पतन होने पर जीव किस शरीर को पाता है ?

उ०– कारण शरीर को.

प्र०– कारण शरीर कैसा है ?

उ०– प्रकाशमय तेजस है; किन्तु जब तक जीव इस तेजस शरीर को धारे रहता है; तब तक इसे चिन्मय या वासनामय शरीर कहते हैं; क्योंकि इस शरीर में वासना के सिवाय और कोई स्थूल सूक्ष्म विकार नहीं है; यदि वासना का भी क्षय हो जाय, तो यह जीव अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त हो; मोक्ष का आनंद अनुभवता है.

प्र०– ये वासनामय तेजस शरीरधारी क्या कहलाते हैं ?

उ०– देव कहलाते हैं; इन्हें भी वासना के कारण सुख दुख का अनुभव होता है तथा उपरोक्त साधन से कभी कभी देखे जाते हैं.

प्र०– तीनों शरीरों का क्या परिमाण है ?

उ०– स्थूल ३॥ हाथ का; सूक्ष्म अंगुष्ट प्रमाण तथा कारण शरीर के शाग्र के सहस्रांश के सहस्रांश से भी छोटा है; किन्तु पिछले

दोनों शरीर धारी अपनी इच्छा से उसे छोटा बड़ा आदि कर सकते हैं.

प्र०- इन तीनों शरीर का ग्रहण त्याग किस क्रम से होता है ?

उ०- मानो ! हमने तीन अंगरखे पहिने हैं; तेजस, वातल, और मटीला ! किन्तु ऊपर मटीला होने से हम मटीले मालूम होते हैं ! यदि मटीला उतार दें ! तो हम वातल मालूम होते हैं ! यदि वातल उतर दें ! तो हम तेजस मालूम होते हैं ! यदि तेजस भी उतार दें ! तो हमारा शुद्ध स्वरूप मालुम होता है, यदि पुनः तेजस पहिनलें ! तो हम तेजस मालूम होने लगेंगे ! उस पर वातल पहिनलें ! तो हम वातल मालूम होने लगेंगे ! उस पर मटीला पहिनलें ! तो हम मटीले मालूम होने लगेंगे !! यही क्रम तीनों शरीर के ग्रहण त्याग का है !!! जिन में से शुद्ध स्वरूपवाला मुक्त है ! तेजस वरणवाला देव है ! वातल वरण वाला पितर है ! मृतिका वरणवाला यह मनुष्य आदि है !

प्र०- इस क्रम का क्या प्रमाण ?

उ०- जगत के समस्त पदार्थों का यही क्रम है ! देखो ! अति कठोर पदार्थ भी द्रवित हो, सूक्ष्म वायु के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है ! फिर वही सूक्ष्म वायु प्रज्वलित हो प्रकाशता है ! जल कर भी वह पुनः सूक्ष्म वायु बन, द्रव हो, दृढ़ता को प्राप्त हो सकता है ! अर्थात् पिंड से वायु; वायु से तेज; पुनः तेज से वायु और वायु से पिंड बन सकता है.

प्र०- कौन किसे त्यागता है ?

उ०- स्थूल देह को सूक्ष्म देह अर्थात् प्राण वायु त्यागता है ! प्राण वायु को कारण शरीर अर्थात् तेजस देह त्यागता है !! और तेजस को स्वयं आत्मा त्यागता है !!!

प्र०- जबकि हम तीनों शरीर धारे हुए हैं ! तो फिर क्यों तीनों के सामर्थ्य का पूर्ण प्रभाव तथा आत्मानुभव प्रतीत नहीं होता ?

उ०- क्योंकि आत्मा के प्रभाव को कारण शरीर दबाये बैठा है ! कारण शरीर के प्रभाव को सूक्ष्म शरीर दबाये बैठा है ! तथा सूक्ष्म

शरीर के प्रभाव को यह स्थूल शरीर दबाये बैठा है !

प्र०– तो फिर तीनों का आभास किस तरह होता है ?

उ०– स्थूल का आभास प्रत्यक्ष है ! सूक्ष्म का आभास स्वप्नावस्था में होता है ! कारण का आभास मात्र सुषुप्ति है ! किन्तु उसमें कुछ भान नहीं होता ! (तीनों आवरणों के तमाच्छादन से).

प्र०– कौन किसमें प्रविष्ट हो सकते हैं ?

उ०– स्थूल में सूक्ष्म शरीर वाले प्रविष्ट हो सकते हैं ! स्थूल और सूक्ष्म दोनों में कारण शरीर वाले प्रविष्ट हो सकते हैं ! तथा सब में यह आत्मा प्रविष्ट हो सकता है !

प्र०– देह का अर्थ क्या है ?

उ०– आवरण, आच्छादन.

दोहा

सूक्ष्म देह अंगुष्ट सम, साढ़े त्रय कर स्थूल ।
सहस्त्र अंश केशाग्र से, कम तन कारण मूल ।। १ ।।
आत्मा तेजस में बसे, तेजस वातज मांय ।
वातज बसता स्थूल में, स्थूल सृष्टि के ठांय ।। २ ।।

उपदेश ९

आवागमन

प्र०– आवागमन किसे कहते हैं ?

उ०– बार बार आने जाने को; अर्थात् जन्म मरण को.

प्र०– जन्म मरण किसे कहते हैं ?

उ०– शरीर के ग्रहण का नाम जन्म और त्याग का नाम मरण है.

प्र०– आत्मा का शरीर से क्या संबंध है ?

उ०– जो संबंध वस्त्र धारी का वस्त्र से और गृहस्थ का गृह से है; वही संबंध-आत्मा का शरीर से है ! अर्थात् शरीर रूपी वस्त्र का

परिधान करने वाला अथवा शरीर रूपी गृह में रहने वाला—यह जीवात्मा है.

प्र०– निर्विकार आत्मा क्यों कर विकारमय शरीर को प्राप्त होता है ?

उ०– अपनी वासना के कारण.

प्र० - केवल वासनाद्वारा निराकार में आकार की संभावना क्यों कर हो सकती है ?

उ०– (१) तभी तो इच्छा होते हो इच्छित वस्तुका स्वरूप हृदय में भासने लगता है !

(२) जिस वस्तु की विशेष कामना हृदय में होती है; वह स्वप्नावस्था में प्रत्यक्ष भासती है !

(३) गुप्तांजन, हाजीरात, मेस्मिरेजम आदि में पात्र को भावना के कारण ही सब कुछ प्रत्यक्ष भासता है.

(४) मनन के प्रताप से हो विद्यार्थियों के हृदय में भूगोल, खगोल रेखा आदि की आकृति ज्यों की त्यों भासती है ! इन सब बातोंसे सिद्ध होता है, कि वासना ही आकार की जननी है!

प्र०– किन्तु वासना द्वारा तीनों शरीर किस तरह उपस्थित हो सकते हैं? उदाहरण द्वारा समझाओ.

उ०– देखिये ! सुषुप्तिवाली निद्रामें आत्मा निर्विकल्प होता है; मानलो ! तत्पश्चात आप जाग उठे तथा (१) उसी क्षण एक विचित्र अंगरखे की स्फुरणा हुई ! (२) आपने तत्काल नक्शा कागज पर खींच लिया ! ! (३) उसे देख, तुरन्त जलमली अंगरखा सी कर तैयार कर लिया ! ! !

(१) यदि दैवयोग से वह जलमली अंगरखा जल जाय ! तो आप कागजी नक्शा देख; फिर से बना सकते हो !

(२) यदि वह कागजो नक्शा भी जल जाय ! तो आप अपने आत्मा में अंकित हुए-नक्शे को देख; पुनः कागजी नक्शा खींच सकते हो ! !

(३) कदाचित् उस आत्मांकित अंखरखे का किसी

कारण विस्मरण हो जाय ! तो क्योंकर वह कागजी अंग-
रखा तथा जलमली अंगरखा बन सकता है !!!

यहां पर आत्मांकित अंगरखा—कारण शरीर; अर्थात् वासनामय तेजस देह है ! कागजी अंगरखा--सूक्ष्मशरीर; अर्थात् मनोमयी वात्तज देह है !! और जलमली अंगरखा-स्थूल शरीर; अर्थात् पंच भौतिक यह जड़ देह है !!!

प्र०– इसका तात्पर्य क्या है ?

उ०– अर्थात् शुद्ध निर्विकार निराकार आत्मा को वासना के कारण-वासनामय तेजस शरीर प्राप्त होता है ! फिर वह तेजस चिन्मय शरीर–वासना की प्रबलतासे वायु में परिणित या मग्न हो; सूक्ष्म देह को प्राप्त होता है !! फिर वह वातज सूक्ष्म मनोमयो शरीर-वासना की अत्यन्त प्रबलता से जल मल में परिणित या मग्न हो; इस स्थूल जड़ देह को प्राप्त होता है !!!

प्र०– वासना द्वारा शरीर प्राप्ति का कोई शास्त्रीय प्रमाण दो ?

उ०– तभी तो जड़भरतको मृग का; पुरंजनको स्त्रीका तथा इन्द्र नामक ब्राह्मण के पुत्रों को ब्रह्मा का देह प्राप्त हुआ !

प्र०– वासना द्वारा शरीर प्राप्ति का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण दो ?

उ०– (१) तभी तो हमारे देश में कृमि से भ्रंग और अस्ट्रियामें भ्रंगसे फूलझाड़ बनजाता है.

(२) वासना ही के प्रताप से घोड़ी या स्त्री आदि की गर्भगत संततिका गुण, कर्म, रूप बदल जाता है ?

प्र०– निर्विकार निराकार आत्मा में वासना के द्वारा प्रतिबिंब किस तरह उपस्थित हो जाता है ?

उ०– जिस तरह दर्पण, जल आदि में.

प्र०– हम दृष्टान्त नहीं पूछते ! कारण बताओ ?

उ०– मोह, द्वेष तथा भयकी अत्यन्त प्रबलता से.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– (१) देखो ! हम ज्यों ही जिस वस्तु पर आसक्त या मोहित होते हैं; त्यों ही उसका प्रतिबिंब ज्यों का त्यों आत्मा पर ऐसा

अंकित हो जाता है; अर्थात् आत्मा उस आकार को इतना दृढ़ धार लेता है; कि वह किसी प्रकार हटाये नहीं हटता ! यहां तक कि आत्मा उसे रात दिन जाग्रत तथा स्वप्नावस्था में भी ज्यों का त्यों धारे रहता है !

(२) इसी तरह किसी के द्वारा ज्यों ही हम अपना स्वार्थ भंग होता देखते हैं; त्यों ही हमारा आत्मा प्रबल द्वेष के कारण शत्रु का प्रतिबिंब ऐसा दृढ़ धार लेता है; कि प्रतिक्षण वही हृदय को जलाता हुआ, सर्वत्र दिखाई देता है; न जागते चैन पड़ती है; न सोते !

(३) इसी तरह हिंसक के आक्रमण से भय-भीत हो; आत्मा उसी भयानक दृश्य को दृढ़ धार लेता है; यहां तक कि नींद में भी बार-बार चौंक उठता तथा बर्राता है !

इन बातों से यह सिद्ध हुआ; कि ज्यों ही जिस पदार्थ का राग, द्वेष तथा भय-आत्मा में बस जाता है; त्यों ही आत्मा तदाकार वृत्तिको धारण कर लेता है या प्राप्त होता है !

प्र०- किन्तु वह वासनामय आकार-किस तरह स्थूलत्वको प्राप्त हो सकता है ?

उ०- जिस तरह ऋण विद्युत् द्वारा पात्र के आत्मा विषे प्रतीत होने वाले पितरों के वासनामय कारण शरीर का सूक्ष्म अक्स-प्लेटपर तुरन्त अंकित हो जाता है; वही डवलप करने से प्रकट हो स्थूलत्व को प्राप्त होता है.

प्र०- शरीर के विसर्जन के पश्चात् क्या होता है ?

उ०- वासना के अनुसार कोई शरीर प्राप्त होता है.

प्र०- यदि वासना का क्षय हो जाय; तो ?

उ०- तो वह आवागमन से छुट्टी पा जाता है.

दोहा

जौ लों ये मन थिर नहीं, तौ लों गति थिर नाय ।
ता बिन आवागमन ये, ना कबहूं ठहराय ।।

उपदेश ७

गति

प्र०– गति का अर्थ क्या है ?

उ०– चाल, दशा, हरकत (मोशन)

प्र०– गति कितने प्रकार की है ?

उ०– दो प्रकार की है; अर्थात् सद्गति और दुर्गति.

प्र०– सद्गति तथा दुर्गति किसे कहते हैं ?

उ०– ईश्वरीय सृष्टि नियमानुकूल गति को सद्गति और उसके प्रतिकूल गति को दुर्गति कहते हैं.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि कुदरती नियम के अनुसार चलने से सुगति अर्थात् सुदशा प्राप्त होती है और उसके प्रतिकूल चलने से कुगति अर्थात् कुदशा प्राप्त होती है.

प्र०– गति का कारण क्या है ?

उ०– स्फुरणा अर्थात् वासना.

प्र०– क्या कहीं इच्छा से भी गति हो सकती है ?

उ०– तभी तो हमारी इच्छा के अनुसार हमारी इंद्रियां गति करती हैं.

प्र०– इंद्रियां तो क्रिया शक्ति के कारण चलित होती हैं ?

उ०– किन्तु क्रिया शक्ति–इच्छा के आधीन है; अर्थात् इच्छा होते ही क्रिया शक्ति तद्वत इन इंद्रियों को चलायमान करती है; और "इसी कारण पात्र तथा पात्र का शरीर हमारी इच्छा के अनुसार क्रिया करता है ।"

प्र०– इससे क्या सिद्ध हुआ ?

उ०– कि वासना के आधीन होते ही हम शरीर सहित क्रिया शक्ति के प्रवाह में पड़ते हैं; उसी के अनुसार फल पाते तथा भोगते हैं.

प्र०– क्रिया शक्ति में क्या गुण है ?

उ०– जिसतरह ट्रेन एक नगरसे दूसरे नगरको पहुंचा देती है; उसीतरह यह शक्ति हमें एक स्थान से अन्य स्थान को तथा एक शरीर से अन्य शरीर को प्राप्त कराती है; यह आकर्षण से खैंचती; निराकरण से हटाती तथा स्थंभन से रोकती है; यह परमाणुओं को मिला, अनेक प्रकार के पदार्थ रचती तथा उन्हें पृथक कर पुन: परमाणुओं के स्वरूप में परिणित करती है; इसमें अनेक गुण हैं; यहां तक कि इसके प्रवाह में पड़, अखिल ब्रह्मांड भ्रम रहा है ।

प्र०– वेग या प्रवाह का कारण क्या है ?

उ०– गति.

प्र०– गति या चाल का कारण क्या है ?

उ०– स्फूरण.

प्र०– स्फूरण का कारण क्या है ?

उ०– संयोग वियोग.

प्र०– संयोग वियोग का कारण क्या है ?

उ०– क्रिया.

प्र०– क्रिया का कारण क्या है ?

उ०– यम अर्थात् कशिस.

प्र०– यम (कशिस) का कारण क्या है ?

उ०– नियम.

प्र०– नियम का कारण क्या है ?

उ०– कुदरती स्वभाव या इच्छा.

प्र०– स्वभाव या इच्छा का कारण क्या है ?

उ०– ज्ञान.

प्र०– ज्ञान का कारण क्या है ?

उ०– चैतन्य स्वयं प्रकाशक.

प्र०— सुदशा तथा दुर्दशा क्यों प्राप्त होती है ?

उ०— सुचलन से सुदशा तथा कुचलन से कुदशा प्राप्त होती है.

प्र०— सुचलन तथा कुचलन क्यों प्राप्त होता है ?

उ०— सुइच्छा से सुचलन तथा कुइच्छा से कुचलन प्राप्त होता है.

प्र०— सुइच्छा तथा कुइच्छा क्यों होती है ?

उ०— जब इच्छा कुदरत के अनुसार होती है; उसे सुइच्छा कहते हैं और जब उसके विरुद्ध होती है; उसे कुइच्छा कहते हैं !

प्र०— इच्छा किन कारणों से उपजती है ?

उ०— जिन चीजों को हम देखते हैं या कभी देखा है; जिन शब्दों को हम सुनते हैं या कभी सुना है; जिन चीजों को हम चखते हैं या कभी चखा है; जिन गंधों को हम सूंघते हैं या कभी सूंघा है; जिनका स्पर्श हम करते हैं या कभी किया है; जिस काम को हम करते हैं या कभी किया है; जो कुछ हम कहते पढ़ते हैं या कभी कहा पढ़ा है; जिन चीजों का हम विचार करते हैं या कभी विचारा है ! केवल उन्हीं बातों की या उनसे संबंध रखने वाली बातों की इच्छा होती है !! अन्य की नहीं !!!

छंद

ईश सृष्टि नेमके, सदानुकूल जो चहा ।
है वही सु वासना, सुधर्म सद्‌गती पहा ।।
ईश सृष्टि नेमके, विरुद्ध जो मनोरथं ।
है वही कुवासना, अधर्म दुर्गती पथं ।।
ईश सृष्टि नेमके, सदानुकूल कर्म हैं ।
वो सुकर्म सद्‌गतीय, मूल सत्य धर्म हैं ।।
ईश सृष्टि नेमके, विरुद्ध जौन कर्म हैं ।
वो कुकर्म दुर्गतीय, सर्वदा अधर्म हैं ।।

दोहा

इच्छावत करनी करी, फल भोगत सब कोय ।
सद इच्छा तारत हमे, दुर इच्छा दे खोय ।।

उपदेश ८

रूपान्तर

प्र०– रूपान्तर किस तरह होता है ?

उ०– वासना से गति और गति से रूपान्तर होता है.

प्र०– रूपान्तर किसे कहते हैं ?

उ०– उपस्थित आकार के त्याग और अनुपस्थित आकार के ग्रहण को रूपान्तर कहते हैं.

प्र०– रूपान्तर कौन करते हैं ?

उ०– संसार के चराचर पदार्थ.

प्र०– क्यों ?

उ०– शक्ति (कशिस) की गति से.

प्र०– देह धारी अपने देह का रूपान्तर किस तरह करते हैं ?

उ०– भ्रंग या रेशम आदि के कृमियों के समान.

प्र०– तो फिर जन्म-मरण किसे कहते हैं ?

उ०– इसी रूपान्तर को.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि शरीरों के परिवर्त्तन से ही देहधारियों के स्वरूप में तथा उनकी दशामें अंतर पड़ता है; जिस तरह भेषों के परिवर्त्तन से भांड या नटकी आकृति में तथा उसकी दशा में अंतर भासता है; इसलिये जन्मना और मरना; मानो ! देह की आकृति तथा दशाका बदलना मात्र है.

प्र०– मैं तो पुनर्जन्म नहीं मानता ?

उ०– तो मैं आपसे पूछ सकता हूं; कि आप जन्मने के पहिले कहां थे ? किस दशा में थे ? कैसे थे ? अब कैसे हो ? तथा मरने के बाद किस दशा में रहोगे ? बस ! जिसमें जिस तरह रहोगे ! उसीको मैं देह, दशा रूपान्तर या जन्मान्तर समझता हूं ।

कहिये

प्र०— इस वक्त आपके इस देह की अवस्था क्या है ?

उ०— पचास वर्ष की आयु होने के कारण जरठ अवस्था हैं.

प्र०— पच्चीस वर्ष के पूर्व क्या अवस्था थी ?

उ०— तरुण.

प्र०— पैंतीस वर्ष के पूर्व क्या अवस्था थी ?

उ०— किशोर.

प्र०— चालीस वर्ष के पूर्व क्या अवस्था थी ?

उ०— बाल.

प्र०— पैंतालीस वर्ष के पूर्व क्या अवस्था थी ?

उ०— शैशव.

प्र०— पचास वर्ष के पूर्व आपका शरीर कहां था ?

उ०— माता के गर्भ में; (गर्भरूप).

प्र०— पचास वर्ष सात मास पूर्व कैसा था ?

उ०— पिंडरूप.

प्र०— पचास वर्ष नव मास पूर्व कैसा था ?

उ०— कललरूप.

प्र०— पचास वर्ष दश मास पूर्व कहां था ?

उ०— पिता के वीर्य में.

प्र०— कैसा ?

उ०— कृमिरूप.

प्र०— वीर्य तो मज्जा से बना है ?

उ०— तब हम मज्जागत एक कृमि थे.

प्र०— मज्जा तो बसा से बनी है ?

उ०— तब हम बसागत एक कृमि थे.

प्र०— बसा तो रक्त से बनी है ?

उ०— तब हम रक्तगत एक कृमि थे.

प्र०— रक्त तो रस से बना है ?

उ०– तब हम रस गत एक कृमि थे.

प्र०– रस तो अन्न से बना है ?

उ०– तब हम अन्न गत एक कृमि थे.

प्र०– अन्न तो वनस्पतियों के रस से बना है ?

उ०– तब हम वनस्पति के रस गत एक कृमि थे.

प्र०– वनस्पतियों के रस का कारण तो जल है ?

उ०– तब हम जल गत एक कृमि थे.

प्र०– जल तो मेघों द्वारा वर्षा है ?

उ०– तब हम मेघ गत एक कृमि थे.

प्र०– मेघ तो बाष्प से बना है ?

उ०– तब हम बाष्प गत एक कृमि थे.

प्र०– किस तरह आप बाष्प के अंतर्गत से होते हुए, इस नर तन को प्राप्त हुए ?

उ०– हम बाष्प द्वारा मेघ में; मेघ द्वारा जल में; जल द्वारा वनस्पति में अर्थात् वनस्पति की जड़में धस, पेड़, शाखा, प्रशाखा, फूल, पराग में होते हुए, अन्न में पहुंचे ! फिर उस अन्न या फल आदि के साथ-साथ पिता के उदर में पहुंच, क्रम से रस, रक्त, बसा, मज्जा में होते हुए, वीर्य में आए ! फिर हम पिता के वीर्य के साथ-साथ रज से मिल, माता के गर्भ में पहुंच, कलल के पिंड और कलल के अंतर्गत स्थित हुए, फिर रजपान करते हुए तथा क्रम से बढ़ते हुए, कलल से पिंड; और पिंड से शरीर धारी बन! अधोमुख हो, माता के उदर से निकले ! फिर दुग्ध पान तथा भोजन के द्वारा क्रम से बढ़ते हुए शिशु, बालक, कुमार किशोर, युवा, जरठ तथा वृद्ध कहलाये !

प्र०– इस शरीर के त्यागने बाद क्या होता है ?

उ०– मिट्टी का अंश मिट्टी में, जल का अंश जल में, वायु का अंश वायु में, तेज का अंश तेज में तथा आकाश में आकाश विलीन हो जाता है और अवशिष्ट प्राण वायु अपनी पूर्व वासना के अनुसार पुनः त्रियक गति को प्राप्त होता है.

अथवा

(१) जो इस मनुष्य शरीर में आत्मा का अनुभव प्राप्त कर ब्रह्मानंद को अनुभवता है; वह तीनों देहों से रहित (मुक्त) हो; तदाकार वृत्ति से ब्रह्मानंद को अनुभवता है ! उप० १३ देखो !

(२) जिसे मनुष्य शरीर में उपरोक्त ज्ञान नहीं हुआ; किन्तु जो योग, कर्म आदि (तप) से स्वतेज बढ़ा, तेज का ध्यान करता है; वह स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर को त्याग, वासनामय तेजस शरीर को पा, देव बन, अपनी वासना के अनुसार न्यून या अधिक दिव्य भोग इसी आकाश के काश में भोगता है ! देखो ! उप० ९ वा.

(३) जो मनुष्य शरीर पाकर ब्रह्मानंद को न प्राप्त हुआ और न योग द्वारा स्वतेज का ध्यान कर पाया; किन्तु अन्य शुभा-शुभ कर्म के साथ साथ कुछ स्मरण करता या नहीं करता; वह स्थूल शरीर त्याग, वायुमय सूक्ष्म शरीर को पा; पितर भूत, प्रेत आदि बन; अपनी वासना के अनुसार, इसी वातावरण में मनुष्यों से अधिक सुख या दुख भोगता है ! देखो ! उप० ९ वा.

(४) जो मनुष्य अच्छे बुरे कर्म करता हुआ, कभी शांत नहीं होता; बल्कि जिसे अहोरात्रि किसी अच्छे या बुरे भोग भोगने की प्रबल कामना बनी रहती है; वह अपनी वासना के अनुसार फल भोगने के लिये स्थूल देह त्यागते ही, पुनः काया पलट के चक्कर में पड़ जाता है !

प्र०– फिर वह किस तरह मनुष्य शरीर तक पहुंच पाता है ?

उ०– स्थूल शरीर त्यागते ही उसका प्राण वायु सूर्य के ताप से तप्त तथा किरणों से कर्षित हो, ऊपर पहुंच, उदान से मिल, मेघ बन, विचरता; फिर विद्युत् से मिश्रित तथा द्रवित और शीतसे जलाकार हो, वर्षता है; तृण आदि वनस्पतिया का भक्ष्य बन, उनका

रस बनता; फिर शाखा प्रशाखाओं में विचरता हुआ; पत्र, फूल, फल तथा धान्यादिकों में पहुंचता है ! फिर वह काटा, पीटा, कूटा पीसा, पीरा, चीरा, छेदा, गूंदा, भूना, उबाला, तला, चबाया जलाया, खाया तथा पीया जाता है; फिर जठराग्नि में पचकर, रस बनता; फिर रससे रक्त, मांस, मेद, वसा, मज्जा आदि बन; कदाचित् वीर्य तक पहुंच पाता है; फिर संयोगवश माता के गर्भ में पहुंच, रजपान करता हुआ, तथा अपवित्र स्थान में दश मास तक बढ़ता हुआ, नराकार धारता है; फिर अत्यन्त संकीर्ण मार्ग से कठिन यंत्रणा सहता हुआ, बाहर गिरता है; तथा फिर क्रम से बाल, तरुण, तथा वृद्ध होता हुआ तथा त्रिताप सहता हुआ; पुनः इस शरीर को त्याग कर उसी दारुण काया पलट के चक्कर में पड़कर, असंख्य योनियों के असंख्य दुःख भोगता फिरता है ! कदाचित् देवयोग से पुनः नर तन पाता है !

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि धान्यादिकों को अन्य पशु, पक्षी आदि भी खाते हैं; जिनसे उन्हीं का रजवीर्य बनता है ! सिवाय जो कुछ हम खाते, पीते हैं; यदि उनके जीव-वीर्य तक न पहुंच पाये; या बीच ही में रह गये; या मल मूत्र खकार द्वारा बाहर गिर गये; या वीर्य तक पहुंच कर पतित हो गयेः या गर्भ तक पहुंच कर भी गर्भ सहित गलित हो गये; तो कहिये ! वे जीव क्यों कर नरतन पा सकते हैं ?

प्र०– तो फिर किस युक्ति से पुनः नर तन प्राप्त होता है ?

उ०– मनुष्य भाव तथा उसके मनन की प्रबल वासना से; देखो ! उप० २२ वां.

दोहा

संस्कार को फल उदय, होत जु अवसर पाय ।
रज पराग जस मिलत ही, द्रुम बीजा फल आय ।।१।।
भवसागर के काज की, गति है वृत्ताकार ।
जाको जासे जा मिलत, संस्कार की धार ।।२।।

भलो बुरो नित काज ये, नहीं निरर्थक जात ।
भलो सहायक होत जग, बुरो जु चित दुखात ॥३॥
संस्कार अवशेष तक, आवागमन न जाय ।
याते याही नसाइये, सब संकल्प विहाय ॥४॥
चित्तमें ना धर कामना, निसदिन कर शुभ काम ।
तन मन धन पर हेत तज, तब मिलि है विश्राम ॥५॥
सब हि दशा का भोगता, केवल है यह जीव ।
तौ लों सत सुख ना लहै, जौं लों लहे न पीव ॥६॥

उपदेश ७

धर्मराज अर्थात् यमराज

प्र०– धर्मराज का अर्थ क्या है ?

उ०– मुख्य स्वभाव; मुख्य धारक या मर्यादा का दिव्य धारक.

प्र०– यमराज का अर्थ क्या है ?

उ०– दिव्य निग्रहकारी; दिव्य आकर्षणकारी.

प्र०– सूर्य का पुत्र यमराज क्यों है ?

उ०– क्योंकि सूर्य से दिव्याकर्षण उपजता है ?

प्र०– सूर्य सुत यमराज को धर्मराज क्यों कहते हैं ?

उ०– क्योंकि सूर्य का स्वभाव ही दिव्याकर्षणकारी है और सूर्यका दिव्य निग्रहकारी स्वभाव है अथवा सूर्य का सामर्थ्य सब का धारक और निग्रहकारी है.

प्र०– यम दूत का अर्थ क्या है ?

उ०– आकर्षण रूपी दूत अथवा आकर्षण स्वयं दूत है.

प्र०– यम के दूत कौन हैं ?

उ०– अग्नि, वायु, विद्युत्, किरणें आदि.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि ये सब सूर्य कृत आकर्षण के सहायक हैं.

प्र०– क्यों कर ?

उ०– क्योंकि जिन सबको सूर्यकृत् आकर्षण अपनी ओर खींचता है; उन सबको ये सब अनायास ऊपर पहुंचाते हैं.

प्र०– यमपुरी का अर्थ क्या है ?

उ०– आकर्षण द्वारा अग्रसर करना; या अग्रभाग की ओर लेजाना; या आकर्षण से व्याप्त स्थान में ले जाना; अर्थात् आकाश.

प्र०– क्यों !

उ०– क्योंकि आकाश-दिव्याकर्षणकारी है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– तभी तो वायु से रहित पात्र कर्षणकारी होता है.

प्र०– यमदूत जीवों को यमपुरी लेजा, सूर्य के पुत्र धर्मराज उर्फ यमराज के सन्मुख उपस्थित करते हैं; इसका तात्पर्य क्या है ?

उ०– अर्थात् (अग्नि, वायु, किरणें आदि) आकर्षणकारी दूत-जीवों को आकर्षण द्वारा अग्रसर कर आकाशगत सूर्य के स्वाभाविक दिव्याकर्षण के सन्मुख उपस्थित कर देते हैं.

प्र०– धर्मराज का चित्र गुप्त लेखक है; जो सबका धर्माधर्म का लेखा लिखलेता है; इसका तात्पर्य क्या है ?

उ०– अर्थात् दिखने में न आवे; ऐसा कर्त्तव्य, कर्त्तव्य का गुप्त अक्स, इसी दिव्याकर्षण के कारण, प्राणी मात्रके हृदयपटल पर, स्वभाव ही से अंकित हो जाता है.

प्र०– क्या प्रमाण ?

उ०– (१) तभी तो हमें अपने तथा और के चित्र चरित्र ज्यों के त्यों भासते हैं.

(२) गुप्ताजन आदि द्वारा औरों के व्यतीत चित्र चरित्र ज्यों के त्यों देखे जाते हैं.

(३) विश्व दर्शक यंत्र द्वारा विश्व भर के चित्र चरित्र देखे जा सकते हैं.

(४) एक्सरे द्वारा गुप्त चित्र अंकित किये जा सकते हैं.

(५) इसी कारण चित्र रेखा घर बैठे, ऊषा को, विश्व भर के चित्र दिखा सकी थी.

(६) इसी कारण संतानका रंग आकार बदल दिया जा सकता है.

प्र०– चित्रगुप्त के लिखे अनुसार, धर्मराज उर्फ यमराज जीवों को सुख-दुःख भुगतवाता है; इसका क्या तात्पर्य है ?

उ०– अर्थात् अच्छी बुरी वासनाओं के, जो संस्कार आत्मा पर अंकित हो जाते हैं; उसीके अनुसार यह सूर्य से उपजा, स्वाभाविक दिव्याकर्षण जीवों को सुख दुःख भुगतवाता है.

प्र०– पाप से नरक ?

उ०– क्योंकि (प) = पतन; (आप) = प्राप्त होना और (नृ) = लेजाना (क) = जल; इसलिये (पाप से नर्क) = पतन को प्राप्त हो जल में जाना.

प्र०– यमराज पापी को नर्क देता है ?

उ०– अर्थात् वह दिव्याकर्षण पतन होने वालों को जल में ले जाता है.

प्र०– पुण्य से स्वर्ग ?

उ०– क्योंकि (प) = पतन; (उण्य) रहित होना; और (स्वः) = आप से, आप ही; (ग) = गमन करना; इसलिये (पुण्य से स्वर्ग) = पतन से रहित हो, स्वतंत्रता पूर्वक विचरना.

प्र०– धर्मराज पुण्यात्मा को स्वर्ग देता है ?

उ०– अर्थात् वह सूर्य का स्वाभाविक दिव्याकर्षण न गिरने वाली आत्माओं को स्वतंत्रता पूर्वक विचरने देता है.

प्र०– इस दिव्याकर्षण का प्रभाव किन पर नहीं होता ?

उ०– जो अध्यात्म सविता का ध्यान करते हैं तथा जो आत्मानंद या ब्रह्मानंद को अनुभवते हैं; उन पर इस दिव्याकर्षण का प्रभाव नहीं पड़ता.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि इस दिव्याकर्षण की उत्पत्ति तेज से हुई है; इस लिये तेज

पर आकर्षण का प्रभाव नहीं पड़ता; बल्कि आकर्षणकारी पदार्थ को तप्त करने से उसकी आकर्षण शक्ति नष्ट हो जाती है.

प्र०— इसलिये वेदने क्या आज्ञा दी है ?

उ०— जीवों के उद्धार के लिये (तप) तेज प्राप्ति की.

प्र०— तब कर्मकांडने क्या किया ?

उ०— तेज के प्राप्ति के अनेक मार्ग बताये.

प्र०— तेज वृद्धि से क्या होता है ?

उ०— दीक्षा प्राप्त होती है; अर्थात् अध्यात्म सविता दिखने लगता है; फिर उसके मध्यवर्त्ती तेज में वृत्ति का लय होने से आत्मज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है.

प्र०— लोक किसे कहते हैं ?

उ०— जो अवलोकन करने में आवे.

प्र०— लोक कितने हैं ?

उ०— पृथ्वी, अंतरीक्ष, द्यु.

प्र०— स्थूल शरीर वाले कहां रहते हैं ?

उ०— इस पृथ्वी के आश्रित.

प्र०— सूक्ष्म शरीर वाले कहां रहते हैं ?

उ०— अंतरीक्ष में अर्थात् इस वातावरण के आश्रित.

प्र०— कारण शरीर वाले कहां रहते हैं ?

उ०— द्यू में अर्थात् तेज के आश्रित.

प्र०— मुक्त कहां रहते हैं ?

उ०— उस स्वयं प्रकाश के आश्रित.

दोहा

आकर्षण निज शक्ति जग, आकर्षण यमदूत ।
आकर्षण कर्षत तजत, सबहि गहे निजबूत ।। १ ।।
बांधत कर्षत तजत ये, रुचि करनी अनुसार ।
जाने दोऊ बस करी, ता से ये गो हार ।। २ ।।

जाने कर्षण हे हर्यो, वही होत भवपार ।
ये जग ता सुखरूप है, ता तारे करतार ।। ३ ।।

श्रुतिः

सूर्याद्यज्ञाः पर्जन्योऽन्नमात्मा ।।

अर्थ

सूर्य से यज्ञ (कशिस) । यज्ञ से पर्जन्य (वर्षा) । पर्जन्य से अन्न और अन्न से आत्मा (जीव) । (आवागमन करता है) अर्थात् सूर्य के दिव्याकर्षण से इस तरह परिवर्त्तन या रूपान्तर हुआ करता है.

उपदेश १०

उत्पत्ति स्थिति लय

प्र०— उत्पत्ति, स्थिति तथा लयका करण, कारण, कर्त्ता तथा आधार कौन है ?

उ०— नारायण.

प्र०— नारायण का अर्थ क्या है ?

उ०— क्योंकि पंच तत्वों के उपजाने वाले महतत्व को नर कहते हैं, इसलिये पंच तत्वों से उपजने वाले पच्चीस तत्वों का नार नाम हुआ; किन्तु इन छब्बीसों का केवल एक चैतन्य ही अयन है; इसी कारण उसका नाम नारायण पड़ा.

प्र०— जल नारायण कहने से क्या लाभ ?

उ०— क्योंकि जल की उपमा उस नारायण को देने से, उसके द्वारा उत्पत्ति. स्थिति तथा लयका बहुत कुछ बोध होता है.

प्र०— उत्पत्ति, स्थिति तथा लय किसके द्वारा होता है ?

उ०— प्रकृति द्वारा.

प्र०— वह प्रकृति क्या वस्तु है ?

उ०— उस चैतन्य की इच्छायुत क्रिया शक्ति.

प्र०— चैतन्य में चिद्रूप इच्छाशक्ति किस तरह बिराजती है ?

उ०— जिस तरह जल में स्फुरणा.

प्र०— चैतन्य में सद्रूप क्रियाशक्ति किस तरह बिराजती है ?

उ०— जिस तरह जल में द्रवता.

प्र०— चैतन्य की चित्‌शक्ति में स्वयं प्रकाश किस तरह बिराजता है ?

उ०— जिस तरह जल की स्फुरणा में विद्युत प्रभा.

प्र०— चैतन्य की सत्‌शक्ति में श्यामता किस तरह बिराजती है ?

उ०— जिस तरह जल की द्रवता में छाया.

प्र०— उष्ण तथा शीत कहां पर स्थित है ?

उ०— जिस तरह जल की स्फुरण में उष्णता और द्रवता में शीतलता उपस्थित है; उसी तरह प्रकाशमान चित्‌शक्ति में उष्णता तथा तमरूप सत्ता में शीतलता बिराजती है.

प्र०— गति और जड़ता क्योंकर उपजी ?

उ०— उस उष्णता से गति और शीतलता से जड़ता उपजी.

प्र०— वह गति क्या करती है ?

उ०— जिस तरह जल की स्फुरणशील गति के कारण द्रवता त्रिविध हो, लहराती है; अर्थात् कोई लहर सन्मुख आती, कोई विमुख जाती तथा कोई वृत्ताकार चकराती है; उसी तरह चैतन्य की चिद्रूप ऐच्छिक गति के कारण वह सत्ता त्रिगुणात्मक हो, आकर्षण निराकरण तथा स्थंभन (आवर्त्त) रूप से वर्त्तती है.

प्र०— तो क्या आवर्त्त स्थंभनकारी होता है ?

उ०— अवश्य.

प्र०— क्या प्रमाण ?

उ०— देखो ! रस्सी से बंधा, भ्रमता हुआ, जल पूर्णपात्र, औंधा होने पर भी नहीं ढुलता और इसी कारण भंवर में पड़ी नाव, बाहर न निकल, उसी में भ्रमती हुई, डुब जाती है.

प्र०— महत्तत्व किसे कहते हैं ?

उ०— जिस तरह जल की स्फुरणा के कारण, द्रवतागत त्रिविध तरंगों

से उपजे वृत्ताकार आवर्त्त को भंवर कहते हैं; उसी तरह चैतन्य की इच्छा के कारण सत्तागत, त्रिगुणात्मक शक्ति से उपजे, महत् वृत्ताकार आवर्त्त को महत्तत्व कहते हैं.

प्र०– उस महत्तत्व में प्रभा, श्यामता तथा ध्वनि कहां से आयी ?

उ०– चैतन्य प्रेरित सत्ता के कर्षणाकर्षण द्वारा.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि दो वस्तुओं के घर्षण द्वारा स्वभाव ही से प्रभा, श्यामता तथा ध्वनि उपजती है.

प्र०– किस तरह उस महत्तत्व में प्रभा, श्यामता तथा ध्वनि बिराजती है ?

उ०– जिस तरह जल की स्फुरणा में प्रभा, द्रवता में छाया तथा लहरों के घर्षण में शब्द तथा सबका समावेश आवर्त्त में परिणत होता है; उसी तरह चैतन्य की इच्छा से विद्यारूप प्रभा, सत्ता से अविद्यारूप श्यामता. तथा इच्छायुत सत्ता के कर्षणाकर्षण से ध्वनि उपज कर महत्तत्व के स्वरूप को धारती है.

प्र०– वह महत्तत्व कहां बिराजता है ?

उ०– वह इस महा शून्यकार पोल के अन्तर्गत व्याप्त है; जिसका प्रकट तेज, अनन्त सूर्य्यों के स्वरूप में विराजता है.

प्र०– जहां तक महत्तत्व का तेज व्याप्त है, उसे क्या कहते हैं ?

उ०– आकाश.

प्र०– आकाश का अर्थ क्या है ?

उ०– (आ) का अर्थ तक सब ओर से; और (काश) आ अर्थ प्रकाश, प्रभा है; इसलिये (आकाश) का अर्थ हुआ, प्रकाश से परिपूर्ण व्याप्त; (ईथर).

प्र०– वह प्रकाश हमें क्यों नहीं दिखाई देता ?

उ०– सत्ता की श्यामता के कारण.

प्र०– आकाश द्वारा वायु कैसे उपजा ?

उ०– जब आकाश गत सूर्य्य की उष्णता, शीतल भाग की ओर, तथा शीतलता, उष्णभाग की ओर, आने जाने लगी, तब वायु उपजा.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि उष्णता फैलाती तथा शीतलता सुकड़ाती है, जिसके द्वारा जो वहनशील गति उपजती है, उसीको वायु कहते हैं.

प्र०– वायु के मुख्य भेद कितने हैं ?

उ०– पांच है, अर्थात् प्राण, अपान, समान उदान तथा व्यान, किन्तु कारण परत्व इसके दससे लेकर उनपचास भेद तक होते हैं.

प्र०– वायु द्वारा अग्नि किस तरह उपजा !

उ०– वायु की अति सूक्ष्म वाष्प सूर्य्य की तेजी से या स्वत: रगड़ से भड़क उठने के कारण अग्नि उपजा; इसीलिये अनिल से उपजे अग्निको अनल कहते हैं.

प्र०– अग्नि द्वारा जल कैसे उपजा ?

उ०– जिस तरह यज्ञाग्नि से जली वायु तथा बनी वाष्प के द्रवने या सूर्य्य द्वारा उसके जल उठने से जल उपजा; और इसी कारण जल नाम रक्खा; इसमें आठ भाग प्राण तथा एक भाग उदान वायु मिला है; यह भी कारण परत्व अनेक प्रकार का हो जाता है.

प्र०– जल का अन्य अर्थ क्या है ?

उ०– (ज) का अर्थ जन्माने वाला, (ल) का अर्थ पृथ्वी है; इसलिये (जल) का अर्थ हुआ; पृथ्वी का जन्माने वाला.

प्र०– जल द्वारा पृथ्वी किस तरह उपजी ?

उ०– जिस तरह उष्ण, शीत तथा वायु आदि के न्यूनाधिक्य से जल में काञ्जी आदि उपजती तथा पुनः सड़कर मिट्टी बन जाती है; उसी तरह लगातार बनते रहने से यह पृथ्वी बन गयी; जोकि इसमें सब तत्वोंका मिश्रण है, इसलिये मृत्तिका अनेक प्रकार की हो गयी.

प्र०– पृथ्वी के सप्तावरण तथा उनका प्रमाण क्या है ?

उ०– (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, महत्तत्व, शक्ति) ये क्रम से दश गुणे बढ़ते गये हैं.

प्र०– यह सप्तावरणी पृथ्वी कहां है ?

उ०– अन्य अनन्त पिंडों के समान यह भी इस चैतन्य पूर्ण महा शून्याकार पोल के अन्तर्गत स्थित है.

प्र०— इस मदाशून्य व्यापी चैतन्य प्रेरित त्रिगुणात्मक सत्ता के अन्तर्गत अनंत सूर्य्य किस तरह चकारा रहे हैं ?

उ०— जिस तरह महासागर व्यापी जल की स्फुरणा से त्रियक गतिवाली द्रवता के अन्तर्गत अनेक भँवर पड़ते हैं.

प्र०— ग्रह, पृथ्वी आदि अनेक पिंड सूर्य्य के चौगिर्द किस तरह घूमते हैं ?

उ०— जिस तरह भँवर के चौगिर्द तृण, पत्र, काष्ट आदि घूमते हैं.

प्र०— इन का नाश किस तरह होता है ?

उ०— जिस तरह भ्रमती हुई वस्तुएं भँवर में पड़ गड़प हो जाती हैं; उसी तरह ग्रहादि पिंड निज २ सूर्य्य तक पहुंच नष्ट हो जाते हैं.

प्र०— प्रलय कितने होते हैं ?

उ०— जिस तरह स्वप्न, सुषुप्ति, तथा मृत्यु रूप तीन प्रलय इस देह के होते हैं; उसी तरह लघु प्रलय, कल्पात प्रलय तथा महाप्रलय नामक तीन प्रलय इस पृथ्वी के होते हैं.

प्र०— लघु प्रलय कब होता है ?

उ०— हर कलियुग के अन्त में.

प्र०— किस तरह ?

उ०— जिस तरह कभी-कभी भँवर के चौगिर्द घूमने वाली वस्तु भँवर के निकट पहुंच, फिर से अपनी राह पर लौठ आती है; उसी तरह घूमती हुई पृथ्वी हर कलियुग के अन्त में सूर्य्य के कुछ निकट पहुंच, फिर से अपनी कक्षा पर लौट आती है; इसके द्वारा प्रथम समग्र पृथ्वी अति तृप्त होती और फिर भारी जल वृष्टि होती है, जिससे कलियुगी देहधारियों का नाश हो, प्रायः सभी पृथ्वी जल मय हो जाती है, नंतर सतयुग का आरंभ होता है; और ऋषि, मुनि आदि समाधि त्याग प्रकट हो, अपनी संतान वृद्धि के कार्य में लग जाते हैं; और धीरे-धीरे जल दूर हों, पृथ्वी खुलती जाती है.

प्र०— तब तक ऋषि, मुनि लोग किस तरह रक्षित रहते हैं ?

उ०— जिस तरह कृषक आगामी वर्ष के कृषि कार्य के योग्य उत्तम बीज सुरक्षित रखना है; उसी तरह प्रभु आगामी युग के योग्य, समाधिस्थ ऋषि मुनियों को सुरक्षित रखता है.

प्र०— कल्पान्त प्रलय कब होता है ?

उ०— जब चारों युग सहस्त्र बार व्यतीत हो चुकते हैं, तब होता है.

प्र०— किस तरह ?

उ०— जिस तरह भँवर के चौगिर्द घूमने वाली वस्तु कदचित भँवर के अति निकट पहुंच, फिर अत्यन्त दूर चली जाती है; उसी तरह सूर्य्य के अति निकट पहुंच, फिर अपनी कक्षा से अत्यन्त दूर चली जाती है, इसके द्वारा प्रथम, समग्र पृथ्वी के चराचर जीवधारी, जल भुनकर नष्ट हो जाते हैं और समुद्र तक खौल उठता है; नन्तर भयंकर वृष्टि होती है, जिस जल से सम्पूर्ण पृथ्वी एक कल्प तक डूबी रहती हैं, फिर जल के टूटते ही सतयुग का प्रारंभ होता है; और ऋषि मुनि आ, निज२ सृष्टि का विस्तार करते हैं.

प्र०— ऐसे भयंकर समय में वे किस तरह बचे रहते हैं ?

उ०— योगबल से बचे रहते हैं, या अन्य ब्रह्माडों में चले जाते हैं.

प्र०— युग तथा कल्प का क्या मान है ?

उ०—सतयुग १७,२८,०००, त्रेतायुग १२,९६,०००, द्वापरयुग ८,६४,००० और कलियुग ४,३२,००० वर्ष का होता है; इन चारों युगों की एक चौकड़ी और हजार चौकड़ियों का एक कल्प होता है.

प्र०— महाप्रलय कब होता है ?

उ०— ३६,००० कल्पों के व्यतीत होते ही अन्तिम कल्पान्त प्रलय के साथ-साथ महाप्रलय होता है.

प्र०— किस तरह ?

उ०— जिस तरह भँवर के चौगिर्द घूमनेवाली कोई वस्तु बार-बार भँवर के निकट पहुंच २ फिर से दूर चली जाया करती है, किन्तु किसी समय एकाएक भँवर में पड़ गड़प हो जाती है; उसी तरह सूर्य्य के चौगिर्द घूमनेवाली पृथ्वी ३६,००० बार सूर्य्य के अत्यन्त पहुंच २ दूर चली जाया करती है, किन्तु अन्तिम समय सूर्य्य में पड़ नष्ट हो जाती है.

प्र०— किस क्रम से ?

उ०— जब पृथ्वी अन्तिम कल्पान्त प्रलय के जल से परिपूर्ण हो, सूर्य्य के बिलकुल पास पहुंच जाती है, तब सूर्य्य के ताप द्वारा अमोघ जलप्रद वायु उपज, शंख द्राव के समान पृथ्वी को जलवत द्रव कर देती है, फिर वह पानी तेज में लय हो, सूक्ष्म वायु के रूप को धारता है, फिर वह आकाश तत्व में लीन होकर सूर्य्य में लीन हो जाता है.

प्र०— फिर सूर्य्य क्या करता है ?

उ०— किरणों द्वारा सब तत्व अन्य पिंडों को देता, लेता रहता है.

प्र०— पिंड कितने प्रकार के हैं ?

उ०— तीन प्रकार के हैं, अर्थात् पहिले सूर्य्य के समान स्वयं प्रकाश वाले, दूसरे पृथ्वी के समान प्रकाशने वाले, और तीसरे प्रकाश से रहित, अंधकारमय (इनकी उत्पत्ति सूर्य्य के निस्तेज होने के साथ तद्गत सामग्री के जमजाने से होती है.)

प्र०— अन्धकारमय पिंडों का लय किस तरह होता है ?

उ०— जब वे भी किसी सूर्य्य के ताप व शक्ति के अन्तर्गत आजाते हैं; तब उनका भी उपरोक्त क्रम से लय होता है.

प्र०— आकाश मार्ग से अग्नि तथा लोह आदि की वर्षा, क्यों हुआ करती है ?

उ०— ज्वाला मुखी या अन्य पिंडों के प्रलय द्वारा.

प्र०— प्रलय के द्वारा एक पिंड की वस्तु अन्य पिंड पर क्यों कर गिर सकती है ?

उ०— निराकरण शक्ति के प्रबल वेग के कारण.

प्र०— निराकरण शक्ति का वेग क्यों बढ़ जाता है ?

उ०— क्योंकि जब पिंडों की आकर्षण शक्ति घटती है, तभी उन पर की वस्तुएं निराकरण द्वारा अन्य पिंडों पर जा गिरती हैं.

प्र०— क्यों ?

उ०— क्योंकि प्रलयकारी पिंडों की अपेक्षा जिन पिंडों का आकर्षण प्रबल

होता है, उन्हीं पर वे वस्तुएं जा गिरती हैं; कारण ज्वलन से चुंबक की कशिश नष्ट हो जाती है ?

प्र०— पत्थर के कोयले आदि की उत्पत्ति क्यों कर हुई ?

उ०— प्रलयाग्नि द्वारा.

प्र०— तो क्या सदा इसी तरह उत्पत्ति, स्थिति तथा लय हुआ करेगा ?

उ०— ऐसा होते २ एक ऐसा समय आ उपस्थित होगा, जब सिवाय परमात्मा के अन्य कोई न रहेगा.

प्र०— वह समय कब आवेगा ?

उ०— जब पृथ्वी संबंधी तत्व जल में, जल संबंधी तत्व अग्नि में, अग्नि संबंधी तत्व वायु में, वायु संबंधी तत्व आकाश में, आकाश संबंधी तत्व सूर्य्य में अर्थात् महत्तत्व में, महत्तत्व शक्ति में, और शक्ति परमात्मा में विलीन हो.

प्र०— परमात्मा कब तक इस तरह स्थित रहता है ?

उ०— जब तक उसकी इच्छा हो.

प्र०— फिर किसके अनुसार उत्पत्ति, स्थिति, तथा लय होता है ?

उ०— पूर्व स्मृति के अनुसार.

प्र०— क्यों ?

उ०— जीवों को अपने २ शेष संस्कारों के फल भुगताने के लिये.

प्र०— लय को प्राप्त हुआ विश्व, परमात्मा में किस तरह बिराजता है.

उ०— जिस तरह बीज के अन्तर्गत, वृक्ष के संस्कार बिराजते हैं.

प्र०— परमात्मा की सृष्टिलीला किस तरह की है ?

उ०— जिस तरह मकड़ी आप हि में से तंतु निकाल, ताना बाना कर, जाल बुन, आप ही उस में रमती है; और फिर आप ही उसे निगल, अपने आप में उसे रख लेती है; अथवा जिस तरह समुद्र में उपजने वाला विश्वकंद, अपनी पुष्प, फल, पत्रयुत लता को जब चाहे तब अपने भीतर रख लेता या बाहर निकाल विस्तारित करता है; भेद केवल इतना ही है, कि यह अखिल विश्व, सब दशा में सदा प्रभू में बिराजता है, जिस तरह जलगत बल्ली उसमें उपजती, ठहराती तथा नसाती रहती है.

प्र०– प्रथम चैतन्य की स्फुरणा द्वारा सत्ता के चंचल होते ही क्या ध्वनि उपजी ?

उ०– सो हूँ.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि चंचल हुई सत्ता के, आकर्षण द्वारा (सो) और निराकरण द्वारा (अहूँ) जपजा; जिस तरह स्वास के कर्षण से (सो) और त्याग से (अहं) उपजता है.

प्र०– उस शब्द के उपज से ही क्या हुआ ?

उ०– वह प्रति ध्वनित हो सर्वत्र व्याप गया.

प्र०– वह किस तरह प्रतिध्वनित हुआ ?

उ०– जिस तरह किसी मन्दिर या कन्द्रागत शून्य में शब्द करने से तद्वत अनेक शब्द प्रतिध्वनित हो उठते हैं; इसी तरह इस महा शून्य के अन्तर्गत सोहँ शब्द होते ही, सर्वत्र सोहँ सोहँ प्रतिध्वनित होने लग गया.

प्र०– वह शब्द इस महाशून्याकाश में किस तरह व्याप गया ?

उ०– जिस तरह गायक का गान फोनोग्राफ में.

प्र०– वह शब्द इस महाशून्य के जिस भाग में व्याप्त है; उसे क्या कहते हैं ?

उ०– चिदाकाश.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि इसका कारण चैतन्य की दिव्य चिद् शक्ति है.

प्र०– इसलिये उस सोहँ की प्रतिध्वनियां क्या कहलाती हैं ?

उ०– चिन्दावलियां.

प्र०– कब तक ?

उ०– जब तक हर चिदणु उसे धारे रहता है.

प्र०– चिदणु किसे कहते हैं ?

उ०– जिस तरह जल का हर परमाणु बून्द कहाता है; उसी तरह चैतन्य का हर अंश चिदणु कहाता है.

प्र०– सोहँ वृत्ति को धारने वाली चिदणुरूप चिदावलियों से क्या लाभ है ?

उ०– जब तक चिदावलियां चैतन्याभिमुख रहती हैं, तब तक तदाकार वृत्ति द्वारा परमानंद को अनुभवती हैं; किन्तु ज्योंही उन्मुख होती हैं, त्योंही कारणत्व को प्राप्त हो, जीव कहाती हैं.

प्र०– इस दशा में चैतन्य किसे कहते हैं ?

उ०– जिस तरह अनन्त अणुरूप जीवों के आधार स्वरूप जल को जीवन कहते हैं; उसी तरह अनन्त चिदणुरूप चिदावलियों के आधार स्वरूप स्वयं प्रकाश को चैतन्य कहते हैं.

प्र०– वह उन्मुख होने वाली चिदावली जीव बन किस देह को पाती हैं ?

उ०– जो कुछ सन्मुख देखती या अनुभवती है, वैसा ही देह धार लेती हैं.

प्र०– क्यों ?

उ०– सोहँ वृत्ति के कारण.

प्र०– इसलिये बंध तथा मोक्ष का कारण क्या है ?

उ०– सोहँ वृत्ति.

प्र०– सबकी उत्पत्ति, स्थिति तथा लय का कारण क्या है ?

उ०– इच्छा.

प्र०– चैतन्न को इच्छा क्यों कर होती है ?

उ०– क्योंकि उसका यह स्वाभाविक धर्म है.

प्र०– यह अखिल जगत चैतन्य में किस तरह स्थित है.

उ०– जिस तरह जल में कज्जी, सिवार, फेन आवर्त्त आदि.

प्र०– जगत की उत्पत्ति आदि किस तरह होती है ?

उ०– जिस तरह जल के स्वाभाविक धर्म के कारण, उसके अन्तर्गत कज्जी आदि उपजती, ठहरती तथा नसाती रहती है; उसी तरह इस चैतन्य के स्वाभाविक धर्म के कारण ही उसके अन्तर्गत अनेक पिण्ड आदि उपजते, ठहरते तथा नसाते रहते हैं.

प्र०– इतने पर भी उसमें किस तरह विषमता नहीं आती ?

उ०– जिस तरस सब पदार्थों के उपजने, ठहरने तथा नसाने से आकाश में विषमता नहीं आती.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि वह चिदघन रूप से इस तरह स्थित है, जिस तरह आकाश में घट तथा घट में आकाश स्थित है.

प्र०– उसका ज्ञान हमें कब हो सकता है ?

उ०– आत्मज्ञान द्वारा.

प्र०– वह संसार में किस तरह स्थित है ?

उ०– जिस तरह कज्जी में जल अथवा शरीर में हम हैं.

दोहा

जस राजत हम देह तस, प्रभु राजत संसार ।
करै शक्ति निज काज सब, निज इच्छा अनुहार ।।१।।
चैतन सों चितरुचि मयी, रुचि सों सत्ता तीन ।
तिन सों भो महतत्व ये, सोहँ तागत चीन ।।२।।
स्वयं प्रभा चित शक्ति में, श्यामलता सत गांहि ।
सभय शक्ति के कारणे, सोहँ व्है जन्मांहि ।।३।।
सो आकर्षण सो उदय, अहँ विकर्षण पाय ।
जिमि सो कर्षत स्वास सों, तजत अहँरव आय ।।४।।
जीव जन्म लय मोक्ष जग, सबको सोहँ हेतु ।
प्रभु इच्छा माया जनित, यही तरण भवसेतु ।।५।।
याते इच्छा बस करी, संस्कार कर छीन ।
तब पावै चैतन्य पद, जब आत्मा ले चीन ।।६।।
संस्कार के छय बिना, आवागमन ना छूट ।
अमित प्रलय के बादहू, फिर फिर यम ले लूट ।।७।।
याते रुचि से यम हरो, जो हम से प्रतिकूल ।
नियम पंथ सों चिर चली, पावो पद अनुकूल ।।८।।
जीव होत तेजाब में, जीवजु आगी मांहि ।
सूरज हूमें जीव हैं, बिना–जीव थल नांहि ।।९।।

उपदेश ११

ईश्वरास्तित्व

शिष्य–ईश्वर किसे कहते हैं ?

गुरु– जो अखिल संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा लयका कारण है ।

शि०– कदापि नहीं !

गु०– क्यों ?

शि०– क्योंकि यह संसार सनातन है ।

गु०– सनातन तो उसे कहते हैं, जिसका कभी नाश न हो; किन्तु इस संसार का तो कोई पदार्थ भी नाशरहित नहीं दिखता !

शि०– नहीं साहब ! यह सृष्टि स्वभाव सिद्ध है ।

गु०– किस तरह ?

शि०– जिस तरह वृक्ष से बीज और बीज से वृक्ष उपजा करते हैं । उसी तरह स्वाभाविक सब कुछ हुआ करता है ।

गु०– अच्छा ! सबसे पहिले बीज उपजा या वृक्ष ?

शि०– ये तो अनादिकाल से स्वाभाविक ही परस्पर हेतु हेतुमान हैं !

गु०– तो क्या फिर भुने हुए बीज से भी वृक्ष हो सकता है ?

शि०– कदापि नहीं ।

गु०– क्यों ?

शि०– क्योंकि ऐसा होना सृष्टि नियम के विरुद्ध है ।

गु०– अच्छा ! यह सृष्टि नियम किसने बनाया ?

शि०– आपका यह प्रश्न अनुचित है ।

गु०– क्यों ?

शि०– क्योंकि अखिल संसार गुण, कर्म, तथा काल के अनुसार हुआ करता है ।

गु०– केवल इतना कहना भी ठीक नहीं ।

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि पदार्थ के आधीन गुण, कर्ता के आधीन कर्म व गति के आधीन काल रहता है ।

शि०– तो भी कुछ चिन्ता नहीं ।

गु०– क्यों ?

शि०– क्योंकि गुरण, कर्म तथा काल के अनुसार स्वयं प्रकृति अपने प्रभाव द्वारा परमाणुओं का संयोग वियोग करती हुई, सब कुछ किया करती है ।

गु०– किन्तु प्रकृति द्वारा ऐसा होना क्योंकर संभव है ?

शि०– क्योंकि वह अपनी आकर्षरणशक्ति तथा उसके तेज द्वारा सब कुछ करने को समर्थ है ।

गु०– क्या प्रमारण ?

शि०– देखो ! चुंबक जड़ होने पर भी सूई को अपनी आकर्षरण शक्ति द्वारा खेंचता और विकर्षरण शक्ति द्वारा हटाता है कि नहीं, और विद्युत शक्ति द्वारा अनेक यंत्र आप ही आप चलते तथा मनुष्यों की अपेक्षा सहस्रगुरण अधिक काम करते हैं कि नहीं; इसी काररण शून्य आकाशमें अनन्त पिंड ठहरे हुए गति कर सकते हैं ।

गु०– तो क्या परिचालक तथा नियामक के बिना ही यह जड़ शक्ति अनन्त ब्रह्मांडों की उत्पति, स्थिति तथा लय किया करती है ?

शि०– जी हां ।

गु०– क्या शक्ति नियम विरुद्ध काम कर सकती है ?

शि०– कदापि नहीं । (इससे नियामक का होना सिद्ध हुआ)

गु०– क्या आप बिना परिचालन किये किसी शक्ति द्वारा उचित काम ले सकते हैं ?

शि०– कदापि नहीं । (इससे शक्ति का कोई परिचालक होना सिद्ध हुआ)

गु०– क्या शक्ति को हानि लाभ का ज्ञान है ?

शि०– नहीं । (इससे शक्ति की अज्ञता, परतंत्रता तथा परिचालक की सर्वज्ञता सिद्ध हुई)

गु०– तो फिर ऐसी अद्भुत सृष्टि को, जिसकी रचना तथा अनन्त पिंड़ों की गति, कितनी विचित्र और अगम विचारणीय है; जिसे देख बड़े-बड़े विचारशील वैज्ञानिक तथा बुद्धिमान की भी बुद्धि, चक्रित

तथा स्थंभित हो जाती है; क्या परिचालक तथा नियामक के बिना ही वह जड़, ज्ञान शून्य, परतंत्र शक्ति स्वयं रच सकती है ?

शि०– तो फिर यह सृष्टि किस तरह उपजती है ?

गु०– ईश्वर की इच्छा मात्र से क्रिया शक्ति, तद्वतबर्त, संसार रच देती है.

शि०– किस तरह ?

गु०– जिस तरह हमारी इच्छावत हमारी शक्ति हर काम करती हुई वर्तती है।

शि०– तो क्या क्रिया शक्ति का परिचालक तथा नियामक केवल वही एक ईश्वर है ?

गु०– अवश्य।

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि नियामक तथा परिचालक के भिन्न होने पर अवश्य त्रुटि पड़ती है; किन्तु सृष्टि क्रम में वह पायी नहीं जाती, इसलिये सब का वही एक प्रेरक तथा नियंता है।

शि०– उसकी मुख्य शक्तियां कितनी हैं ?

गु०– दो हैं; इच्छा शक्ति तथा क्रिया शक्ति।

शि०– वह इच्छा शक्ति किन नामों से पुकारी जाती है ?

गु०– स्फुरण, ज्ञान शक्ति, परा शक्ति, विद्या, भक्ति, नियम शक्ति, सत्य शक्ति, विलपावर आदि।

शि०– वह क्रिया शक्ति किन नामों से पुकारी जाती है ?

गु०– माया, महामाया, शक्ति, महाशक्ति, अविद्या, यमशक्ति, प्रकृति, अपरा, सत्ता, एक्टिंग पावर आदि।

शि०– वह ईश्वर किन नामों से पुकारा जाता है ?

गु०– उसे वेदांती परब्रह्म सच्चिदानन्द; तत्वदर्शी-परमतत्व; जीववादी-परमजीव; पौराणीक-पुराण पुरुष; कालवादी-काल; प्रकृतिवादी-स्वभाव, धर्म, गुण; शक्ति उपासक-परम ज्योति, महाशक्ति जैनी-शून्य; वैष्णव-विष्णु; शैव-शिव; मुसलमान-खुदा, अल्ला; ईसाई-गॉड; कर्म्मवादी-कर्म; सत्यवादी-सत्य, नित्य; इत्यादि असंख्य नामों से पुकारा जाता है।

दोहा

निज शक्ति निज बुद्धि बिन, करि न सकै बर काम ।
तिमि प्रभु इच्छा के बिना, शक्ति न कर सकै काम ।।१।।
धी प्रेरत हम लेत नित, निज शक्ति सों काम ।
टिमि प्रभु लेवे शक्ति सों, यथारुची सब काम ।।२।।
वही नियंता प्रेरता, वही एक जग लोक ।
द्वै में दुबिधा होत है, भूल परत अबसोक ।।३।।

उपदेश १२

ईश्वरे सृष्टयाभास

शि०– ईश्वर सृष्टि रचने के लिये सामान कहां से लाया ?

गु०– उसे सामान लाने की क्या आवश्यकता है ?

शि०– क्यों नहीं ?

गु०– क्योंकि उसकी इच्छा मात्र से सब कुछ हो सकता है ।

शि०– क्यों कर ?

गु०– क्योंकि वह सत्य संकल्प है ।

शि०– तो क्या संकल्प मात्र से ही सृष्टि का उदय अस्त संभव है ?

गु०– तभी तो (पात्र) ध्याता को अपने स्वस्वरूप के अन्तर्गत संकल्प मात्र ही से समस्त गुप्त, प्रगट होनी तथा अनहोनी, सृष्टि भासने लगती है और वह साधक संकल्प मात्र ही से सब कुछ सुनने, देखने तथा सुगंध, स्वाद आदि अनुभवने लगता है ।

शि०– ऐसा क्यों कर होता है ?

गु०– क्योंकि यह मनोमयी सृष्टि प्रभु के संकल्प मात्र से उसके स्वस्वरूप में उदय हुई है, वही संस्कार हम में भी स्थित है ।

शि०– किस तरह ?

गु०– जिस तरह बीज में वृक्ष का और वृक्ष में बीज का संस्कार स्थित रहता है ।

शि०– यह सृष्टि तो हमें भास रही है, यदि संकल्प मात्र होती तो हमें क्यों भासती, देखो ! दृष्टि योगवाले की तो मानसिक सृष्टि हमें भासती ही नहीं, अर्थात् मनोमयी सृष्टि जिसकी जिसी को भासती है.

गु०– हम भी तो उसी सृष्टिगत तथा उसीके हैं, तभी तो हमें भास रही है ।

शि०– यदि हम उसे अन्य समझें तो ?

गु०– तो भी कुछ चिन्ता नहीं ।

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि अन्य सृष्टि भी अन्य को दिखा सकती है ।

शि०– कब ?

गु०– जब साधक का दृढ़ाभ्यास द्वारा सत्य संकल्प सिद्ध हो जाता है, तब वह अपनी मनोमयी सृष्टि, संकल्प मात्र से औरों को दिखा सकता है ।

शि०– क्या प्रमाण ?

गु०– तभी तो कई साधक अपने संकल्प मात्र से चलते हुए, प्रबल यंत्रों को बिना छुए रोक देते, दूर देश की गुप्त तथा अनोखी वस्तुएं मंगा देते और अनेक प्रकार का स्वाद, सुगंध चखा देते हैं ।

शि०– उन्हें तो संकल्प सिद्धि के लिये साधन करना पड़ता है, तो क्या ईश्वरने भी साधन किया है ?

गु०– उसे साधन करने की क्या आवश्यकता है ।

शि०– क्यों नहीं ?

गु०– क्योंकि वह स्वयं सत्य संकल्प है ।

शि०– ईश्वर के स्वरूप में सृष्टि किस प्रकार स्थित है ?

गु०– जिस तरह सरोवर के जल से कज्जी, सिवार आदि ।

शि०– सिवारादिक तो सरोवर के जलही में उपजती, ठहरती तथा लयको प्राप्त होती है ?

गु०– उसी प्रकार सृष्टि भी ईश्वर के स्वरूप में उपजती, ठहरती तथा लयको प्राप्त हुआ करती है !

शि०– कज्जी का कारण तो जल है ?

गु०– उसी तरह सृष्टि का कारण ईश है ।

शि०– कज्जी का तो कोई अंश भी जल से रहित नहीं ?

गु०– उसी तरह सृष्टिका भी कोई अंश ईश्वर से रहित नहीं, अर्थात् वह व्यापक व्याप्य भाव से सर्वत्र स्थित है ।

शि०– कज्जी पर तो विचरने वाले अनेक कृमि होते हैं ?

गु०– उसी तरह सृष्टि में विचरने वाले हम सब हैं ।

दोहा

प्रभु में ये जग इमि बसा, जिमि कज्जी जल बीच ।
होत रहत वा से सदा, पालन पोषण मीच ।। १ ।।
प्रभु जल में जग कज्जिवत, हम कृमि कज्जी बीच ।
होत बढ़त पोषत रमत, वा बिच वासों मीच ।। २ ।।

उपदेश १३

ईश्वर दर्शन

शि०– जब कि यह सम्पूर्ण सृष्टि उस ईश्वर में स्थित है, तो भी वह हमें क्यों नहीं दिखाई देता है ?

गु०– सृष्टिरूपी दृश्याच्छादान से ।

शि०– किस तरह ?

गु०– जिस तरह कज्जी के आच्छादन से जल नहीं दिखाई देता ।

शि०– जल तो कज्जी के हटाने से दृष्टिगोचर हो सकता है ?

गु०– उसी तरह सृष्टिरूपी आच्छादन के हटाने से ईश्वर का दर्शन होता है ।

शि०– इसका हटाना तो असंभव है ?

गु०– किन्तु युक्ति तथा प्रयत्न से असंभव भी संभव हो सकता है ।

शि०– किस तरह ?

गु०– जिस तरह सरोवर के जल पर छाई हुई कज्जी पर फिरने वाला जल कृमि मन चाहे जहां पर, जब चाहे तब, इच्छा होते ही नीचे मुख घुसा, जल पा लेता या जल में पहुंच जाता है; उसी तरह जहां चाहें तहां और जब चाहें तब, प्रेम सहित अन्तर्मुख वृत्ति करने से हम उसे देख सकते या प्राप्त हो सकते हैं ?

शि०– अन्तर्मुख वृत्ति किसके द्वारा प्राप्त हो सकती है ?

गु०– मनकी एकाग्रता के द्वारा।

शि०– यह एकाग्रता कब मिल सकती है ?

गु०– चित्त की वृत्तियों का निरोध होने पर।

शि०– यह संकल्प, विकल्प किसके द्वारा रुक सकता है ?

गु०– योग के द्वारा।

शि०– योग का क्या अर्थ है ?

गु०– योग का अर्थ मिलाप है।

शि०- जबकि वह ईश्वर व्यापक व्याप्य भाव से सर्वत्र व्याप्त ही है, उस दशा में उसका योग कैसा? योग की आवश्यकता तो उसे है जिसका वियोग हुआ हो।

गु०- यदि कोई मनुष्य ऊपर दृष्टि किये, आकंठ जल में खड़ा हो, आकाश के तारे गिनता रहे और सहसा नीचे न देखे, तो क्या वह उस दशा में आपको देख सकेगा ?

शि०– कदापि नहीं ?

गु०– बस ! यही उसी की दृष्टि में आपका न दिखना-वियोग तथा फिर से दिखना-योग है।

शि०– किसी अन्य उदाहरण द्वारा समझाओ ?

गु०– मान लो कि एक सरोवर में इतनी कज्जी छाई हुई है, कि जल-लवलेश भी नहीं दृष्टि आता, उस पर एक कृमि जल की अभि-लाषा से भटक रहा है, किन्तु वह यह नहीं जानता, कि जल कैसा होता है, तथा वह कब, कहां, किस तरह मिल सकता है; भला बताओ उसके लिये वह जल कैसा है ?

शि०— होता हुआ भी नहीं के समान है ।

गु०— बस ! यही उस दशा में उसके लिये जल का वियोग तथा फिर उसे अन्तर्मुख गति से पा लेना योग है ।

शि०— जीव को कब संसार तथा कब ईश भासता है ?

गु०— जब वह बहिर्मुख होता है, तब संसार तथा जब अन्तर्मुख होता है, तब ईश भासता है ।

शि०— किस तरह ?

गु०— जैसे कज्जी पर बैठा जल कीट, नीचे मुख घुसाने से जल ही जल तथा बाहर निकालने से कज्जी ही कज्जी देखता है ।

शि०— क्या ऐसा हो सकता है, कि चिरकाल ईश्वर का दर्शन होता रहे, तथा जगदावरण का अत्यंत अभाव हो जावे ?

गु०— अवश्य हो सकता ।

शि०— कब ?

गु०— जब, जो सर्व काल अन्तर्मुखही रहे तथा जिसकी वृत्ति का कभी उत्थान न हो, तब वह जगदावरण से रहित हो, तन्मय हो जाता है ।

दोहा

जिमि कृमि अन्तर बहिरमुख, व्है लख .नीर सिवार ।
तिमि व्है लख चिर ईश जग, करि सत आप विचार ।। १ ।।
जो प्रभु प्रेमाशक्त व्है, अन्तर्मुख लौ लीन ।
ताके सन्मुख चिर वही, रहै चहै तल्लीन ।। २ ।।

उपदेश १५

तन्नाम

शि०— उसका नाम क्या है ?

गु०— वास्तविक में तो उसका कोई नाम नहीं है ?

शि०— शास्त्रों में तो उसके अनेक नाम लिखे हैं ?

गु०— वे सब सांकेतिक गुणवाचक मात्र हैं ।

शि०— उन सब में मुख्य कौन है ?

गु०— ॐ ३ ।

शि०— क्यों ?

गु०— क्योंकि यह प्राकृतिक चराचर में व्याप्त हो, स्वयं प्रतिध्वनित हो रहा है ।

शि०— बाकी नाम कैसे हैं ?

गु०— उसके गुणों के अनुसार शास्त्रों ने रख लिये हैं ।

शि०— उनमें मुख्य कौन है ?

गु०— राँ ३ ।

शि०— क्यों ?

गु०— क्योंकि यह भी संयम द्वारा अनायास ध्वनित होने लग जाता है ।

शि०— यदि उसके सांकेतिक गुणवाचक नाम न होते, तो क्या होता ?

गु०— उसका जानना दुस्तर हो जाता ।

शि०— उसके सांकेतिक गुणवाचक नामों से क्या २ लाभ हैं ?

गु०— उस प्रभू पर श्रद्धा उपजती तथा हमें शिक्षा मिलती है ।

शि०— किन बातों की शिक्षा मिलती है ?

गु०— उसके गुणों का अनुकरण करने तथा उसके पाने के मार्ग की शिक्षा मिलती है ।

शि०— उसे अद्वैत क्यों कहते हैं ? और उसके द्वारा हमें क्या शिक्षा मिलती है ?

गु०— इसके चार अर्थ होते हैं; सुनो !

१ (अद्वैत) = (द्वैत रहित) = (उसके सिवाय दूसरा कोई नहीं) अर्थात् वही केवल एक है, इसलिये हमें भी एक हो रहना चाहिये ।

२ (अद्वैत) = (द्वैत रहित) = (उसके सिवाय दूसरा कोई नहीं) = (वही सब कुछ है) अर्थात् अखिल ब्रह्मांड ही ब्रह्ममय है; इसलिये हमें किसी का अपकार न करना चाहिये ।

३ (अद्वैत)=(द्वैत भाव रहित)=(दुई रहित)=(द्विस्वभाव रहित) अर्थात् वह सबको एक सदृश देखता है, द्वैत भाव से नहीं; इसलिये हमें किसी के साथ द्वैत भाव न रखना चाहिये, अर्थात् सबको अपने तुल्य समझना चाहिये।

४ (अद्वैत)=(द्वैतातीत) अर्थात् वह द्वैतावरण के हटाने से जाना जाता है; इसलिये हमें उसे अन्तर्मुख दृष्टि द्वारा जानना चाहिये।

शि०– उसे निराकार क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि आकारवाला पदार्थ, सीमाबद्ध होता है और प्राणी प्रयत्न से सीमा पार कर उसके परे अन्य पदार्थ को पाता है; परन्तु ईश्वर का पार किसी ने नहीं पाया और न उसके परे कोई है, इसलिये उसे निराकार कहते हैं।

शि०– निराकार का क्या अर्थ है और उससे क्या बोध होता है ?

गु०– (निराकार)=(आकार रहित)=(आकारके परे) अर्थात् आकार रूपी आवरण के हटाने से वह जाना जाता है; इसलिये उसे अन्तर्मुख गति से देखना चाहिये।

शि०– निराधार किसे कहते हैं ?

गु०– जो सबका आधार है, किन्तु उसका आधार कोई नहीं; अर्थात् वह सब आधारों से परे है; इसलिये आधाररूपी आवरण के हटाने बाद उसका बोध होता है।

शि०– उसे निर्विकार क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि वह सब प्रकार के दोष तथा विकारों से रहित है और विकार रूपी आवरण के हटाने से जाना जाता है; इसलिये निर्विकार बन, अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा उसे जानना चाहिये।

शि०– अगोचर किसे कहते हैं ?

गु०– जहां पर इन्द्रियां नहीं पहुंच सकती, जो इन्द्रियों से परे है; जो इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जा सकता; अर्थात् वह इन्द्रीरूपी

आवरण के हटाने से जाना जाता है, उसे अगोचर कहते हैं।

शि०– निर्गुण किसे कहते हैं ?

गु०– (निर्गुण)=(गुणातीत)=(गुणों से परे) अर्थात् जो सत्व, रज, तमोगुणादि से परे है, और जो गुणों का आवरण हटाने से जाना जाता है।

शि०– देहातीत किसे कहते हैं ?

गु०– जो स्थूल, सूक्ष्म, तथा कारण देह से रहित होने पर जाना जाता है और जो तीनों देह से परे है।

शि०– अवस्थातीत किसे कहते हैं ?

गु०– जो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुर्या से परे है, और इन चारों अवस्थाओं के हटने पर परिपूर्ण रूप से जाना जाता है।

शि०– उसे अनाम क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि वह नाम तथा शब्द से परे है; अर्थात् शब्द रूपी आवरण के हटने बाद जाना जाता है; अनाम कहने का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि उसका चाहे जो नाम अत्यंत विचार पूर्वक रक्खें; तौ भी उस नाम का अर्थ, उसके समग्र गुणों की पूर्ति नहीं कर सकता।

शि०– उसे अनिर्वचनीय क्यों कहते हैं ?

गु०– जो कहने में नहीं आ सकता; उसे अनिर्वचनीय कहते हैं।

शि०– जो कहने में नहीं आ सकता; तो शास्त्रों ने उसका वर्णन किस तरह किया ?

गु०– जिस तरह अनुभव की हुई वस्तु का वर्णन, संकेत मात्र किया जाता है।

शि०– अनुभव होने पर भी उसका वर्णन ज्यों का त्यों क्यों नहीं हो सकता ?

गु०– क्योंकि वह शब्दातीत, रूपातीत होने के कारण वाणी तथा नेत्र का विषय नहीं है, तिसपर जिस दृष्टि से देखा जाता है, उसको जिव्हा नहीं है, और जिस जिव्हा से कहा जाता है, उसे वह दिव्य

दृष्टि नहीं है, और न संसार में तद्वत उदाहरण है; इसलिये वह अनुभवगम्य होते हुए भी अनिर्वचनीय है।

शि०– परम आश्चर्य है ! कि अनुभव की हुई, वस्तु का भी वर्णन नहीं हो सकता ?

गु०– अच्छा ! घृत का स्वाद कैसा है ?

शि०– मधुर !

गु०– क्या शर्करा तुल्य ?

शि०– इतना मीठा नहीं, किन्तु कुछ फीकापन लिये हुए.

गु०– क्या तेल तुल्य ?

शि०– बिल्कुल तेल तुल्य नहीं। किन्तु सुगंध युक्त।

गु०– क्या किसी इतर के समान ?

शि०– उसका सुगंध कुछ और ही ढंग का है।

गु०– तो फिर उसका स्वाद सुगंध ठीक किसके तुल्य समझें ?

शि०– घृत के तुल्य तो कोई अन्य पदार्थ ही नहीं है, जिसकी उपमा दूं; उसका स्वाद, सुगंध तो केवल अनुभव ही से जाना जा सकता है।

गु०– तब तुम्ही कहो ! कि उस दृश्यातीत का ज्यों का त्यों वर्णन किस तरह हो सकेगा।

शि०– उसे सच्चिदानन्द क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि वह नित्य, शुद्ध, पावन, सत्य, न्यायी होने के कारण सद्रूप तथा चिद्घन, चैतन्य, सर्व शक्तिमान होने के कारण चिद्रूप तथा शब्द रूप से परे, निर्विकार होने से आनन्द रूप कहाता है; इसलिये उस ॐकार को सच्चिदानन्द कहते हैं।

शि०– आनन्द का अर्थ तो सुख होता है, किन्तु सुख भोगने के बाद दुख अवश्य होता है, ऐसा दुख का बीज जिसमें विद्यमान हो, वह शुद्ध निर्विकार क्यों कर हो सकता है ?

गु०– सांसारिक सुख को सुख नाम नहीं शोभता, उसे ज्ञानी सुखाभास कहते हैं; किन्तु जो त्रय गुण, त्रय ताप, त्रय अवस्था, त्रय देह से रहित है, वह अचल सुख है।

शि०- उसे धर्म क्यों कहते हैं ?

गु०-क्योंकि वह स्वयं चिर अपनी मर्यादा को धारे हुए तथा जिसकी मर्यादा सबको धारे हुए तथा जिसके भय से सब अपनी अपनी मर्यादा को धारे हुए हैं; इसलिये उसे धर्म कहते हैं। इसी तरह अन्य नामों के अर्थ करके समझलो।

ओम् राम् प्रभुनाम ये, निर्गुण सगुण दोय।
बीज मूल उद्धार के, जो जप जाने सोय॥

उपदेश १५

ईश्वराराधनावश्यकता

शि०- ईश्वर की आराधना करने की क्या आवश्यकता है ?

गु०- भोग तथा मोक्ष प्राप्ति के लिये।

शि०- भोग तथा मोक्ष तो पुरुषार्थ द्वारा सिद्ध होते हैं ?

गु०- किन्तु पुरुषार्थ की सिद्धि तभी हो सकती है, जब कि अध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधि दैविक विघ्न उपस्थित न हों.

शि०- वे भी तो पुरुषार्थ द्वारा निवृत हो सकते हैं, अर्थात् (१) मानसिक विघ्न तो सतशास्त्रों के श्रवण तथा पठन से और रोगादिक औषधियों से, (२) शीत बस्त्र से, ताप छत्र से, (३) और हिंसक जीवों की बाधा, औषधि तथा शस्त्रों से दूर हो सकती है.

गु०- तो क्यों फिर बड़े बड़े विद्वानों में भी दुर्गुण पाये जाते हैं ? उनके मानसिक विकारों को श्रवण पठन क्यों नहीं हर लेता ? औषधादिक से निवृत हुए रोग, कालान्तर में फिर से क्यों कर उत्पन्न हो जाया करते हैं ? वस्त्र तथा छत्रधारी भी शीत, उष्ण से रोगी हो क्यों कर मर जाया करते हैं ? मंत्रौषधी से सर्पादिकों को वश्य में करने वाले तथा तीव्र शस्त्रों द्वारा हिंसक जीवों को अचुक हनन करने वाले भी बहुधा उन्हीं द्वारा क्यों कर मारे जाते हैं ? इससे सिद्ध होता है, कि विघ्नों की अत्यन्त करके निवृत्ति तुम्हारे

कहे उपायों द्वारा नहीं हो सकती; इसलिये निर्विघ्नता पूर्वक भोग, मोक्ष की प्राप्ति के लिये ईश्वराराधन की आवश्यकता है.

शि०– तो फिर क्यों ईश्वराराधन करने वाले दुःखी पाये जाते हैं ?

गु०– तभी तक दुःखी पाये जाते हैं, जब तक उनके पूर्वार्जित दुष्ट संस्कार समूल क्षय न हों.

शि०– किस तरह ?

गु०– जिस तरह सिकलीगर तभी तक खड्ग को कलसान पर चढ़ाता है जब तक उसका मोरचा समूल नष्ट नहीं हो जाता.

शि०– अच्छा ! दुष्ट संस्कारों के नष्ट होने बाद क्या होता है ?

गु०– फिर कोई विघ्न नहीं होता.

शि०– जब सब संस्कार नष्ट हो जाते हैं, तब क्या होता है ?

गु०– वह सब विघ्नों से रहित हो मुक्त होता है.

शि०– मुक्ति आदि तो ऋषी लोग भी दे सकते हैं, जैसे नारदजी की कृपा से ध्रुवको राज तथा अचल लोक मिला, और दत्तात्रयजी की कृपा से अलर्क को मोक्ष मिला ?

गु०– केवल ऋषि लोग गुरु तुल्य उपदेश द्वारा मोक्ष मार्ग के प्रदर्शक अवश्य हैं. किन्तु वे स्वतः मोक्ष नहीं दे सकते देखो ! विरोचनको ब्रह्माजी के उपदेश द्वारा भी मोक्ष का ज्ञान न हुआ, क्योंकि ब्रह्म ज्ञान स्वानुभवही से होता है.

शि०– तो क्यों फिर देवताओं के आराधन द्वारा सालोक्यादिक मोक्ष की प्राप्ति शास्त्रों में लिखी है.

गु०– किस तरह ?

शि०– अर्थात्–(१) जो अपने इष्ट देव की उपासना किसी मन्दिर में जाके करता है, वह उसी देवता के लोक में जाके बसता है; उसे सालोक्य मोक्ष कहते हैं.

(२) जो इष्ट देव की मूर्त्ति सदा पास रख कर उपासमा करता है, वह उसी देवता के लोक में जाकर, उसके

समीप निवास करता है; उसे सामीप्य मोक्ष कहते हैं.

(३) जो अपने इष्ट देवका मानसिक ध्यान करता है, वह देहान्त होने पर वही रूप हो उसी देवता का साथी बन उसीके निकट निवास करता है; उसे सारूप्य मोक्ष कहते हैं.

(४) और जो अपने इष्ट देव के ध्यान में रत हो तन्मय हो जाता है, वह देहान्त होने पर उसी देवता में जाकर मिल, समा जाता है; उसे सायुज्य मोक्ष कहते हैं.

गु०– इन चारों मोक्षों से क्या क्या लाभ होता है ?

शि०– चारों ही अपने अपने प्रयत्न के फलानुसार दिव्य भोग भोगते हैं, फिर वही पुण्य के क्षय होने के अनन्तर इस लोक में आ, अच्छे कुल में जन्मते हैं; और सायुज्य मोक्षवाला तो अपने इष्ट देव में मिल, परम दिव्य भोग भोगता रहता है; किन्तु जब कभी वह देव कहीं जन्मता है, तो वह भी उसके साथ जन्मता है अर्थात् उसकी उस इष्ट देव के तद्वत गति होती है.

गु०– तो फिर इस आवागमन रूपी मोक्ष से क्या लाभ ?

शि०– परम दिव्य भोग तो भोगने को मिलते हैं.

गु०– तुम्हारा कहना भ्रम मात्र हैं.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि जो हम मंत्री को प्रसन्न करें, तो वह अपने अधिकार गत काम कर देगा; किन्तु मंत्रित्व तथा राजत्व नहीं दे सकेगा, और जो राजा को राजी करें तो वह मंत्रित्व तथा राज्य दोनों दे सकता है; किन्तु सार्वभौमत्व नहीं और जो सार्वभौमको प्रसन्न कर लेवें, तो वह पिछली सब पूर्ति कर सकता है. इसी तरह प्रसन्न हुए देवता भी अपनी अपनी शक्ति के अनुसार दे सकते हैं, अधिक

नहीं और वह सामर्थ्य भी तो उन्हें ईश्वराराधन ही से मिला है. तो फिर उसी ईश्वर का आराधन क्यों न करें, जो सब कुछ दे सकता है ?

शि०- कदाचित् देवताओं की अपेक्षा ईश्वर बहुत विलंब तथा कठिनता से प्रसन्न होता होगा, जैसे सेवक शीघ्र तथा राजा देर से प्रसन्न होता है ?

गु०- कदापि नहीं.

शि०- क्यों ?

गु०- क्योंकि देवताओं के लिये तो विधि विधान तथा बड़ा भारी आडंबर करना पड़ता है, तो भी वे कठिनता से प्रसन्न होते हैं. किन्तु ईश्वर केवल सच्चे प्रेम अर्थात् सद्भक्ति से प्रसन्न हो जाता है, तथा अपने भक्त को विघ्नरहित, निर्मल ज्ञान देकर मुक्त करता है.

शि०- ज्ञान तो केवल कर्म द्वारा होता है.

गु०- ईश्वराराधन भी तो एक सर्वोत्कृष्ट कर्म है और इसी को परम पुरुषार्थ, महायज्ञ, परम ध्यान, परम तप, संध्या आदि कहते हैं.

शि०- ज्ञान क्या वस्तु है ?

गु०- वस्तु के यथार्थ बोध होने को ज्ञान कहते हैं.

शि०- संसार में तो अनेक वस्तु है ?

गु०- सांसारिक वस्तुओं के बोध को व्यवहारिक ज्ञान कहते हैं, जिसके द्वारा समग्र लौकिक कार्य सम्पादन होते, तथा ईश्वर के आस्तित्व का पता लगता है, किन्तु मोक्षदाता ज्ञान तो केवल ईश्वर के यथार्थ बोध होने ही को कहते हैं.

शि०- भोग तथा मोक्ष में क्या अन्तर है ?

गु०- भोग तो जन्म मरण का दाता और मोक्ष आवागमन का हर्ता है.

शि०- मुक्ति कितने प्रकार की है ?

गु०- एक ही मुक्ति कुछ कारण से दो प्रकार की कहाती है, किन्तु अनुभव एक ही है.

शि०- भेद का कारण क्या है ?

गु०– केवल संदेह तथा विदेह पनाही भेद का कारण है ?

शि०– जीवन मुक्त किसे कहते हैं ?

गु०– जो शरीर के होते हुए भी केवल्य का परम सुख अनुभवता है, वह जीवन मुक्त कहाता है.

शि०– विदेह मुक्त किसे कहते हैं ?

गु०– जो तन त्याग, उसी परमपद को प्राप्त होता है, उसे विहेद मुक्त कहते हैं.

शि०– किस अवस्था में यह मोक्ष प्राप्त होता है ?

गु०– तुर्यातीत में.

शि०– तुर्यातीत कब प्राप्त होती है ?

गु०– जब वृत्ति संकल्प विकल्प से रहित हो, निर्विकल्प हो जाती है.

शि०– मुक्त की मुक्तावस्था में क्या दशा होती है ?

गु०– उसकी वृत्ति तदाकार हो जाती है.

शि०– तो क्या वह अन्य ईश्वर हो जाता है ?

गु०– नहीं जी ! केवल उसकी वृत्ति तन्मय हो, ब्रह्मानन्द को अनुभवती है.

शि०– किस तरह ?

गु०– जिस तरह मानसरोवर के अथाह जल में यदि एक तिछ सम निमक की कंकरी गिर जाय तो, उस कंकरी की क्या दशा होगी, और मान सरोवर में क्या विकार उपजेगा ?

शि०– न मान सरोवर खारा होगा, न कंकरी वह मान सरोवर बनेगी और न अन्य मान सरोवर बनेगी, किन्तु जलाकर हो, मिष्ट बन, केवल उस मान सरोवर को अनुभवेगी, किन्तु उससे अलग भी न हो सकेगी.

गु०– इसी तरह मुक्त के कारण, न ईश्वर में द्वैतभाव आता है न मुक्त पूर्ण ब्रह्म बन जाता है, न अन्य ब्रह्म बनता है; किन्तु तदाकार तन्मय हो उसके गुण ग्रहण कर; केवल उस ब्रह्म के आनन्द को चिर अनुभवता है, और उससे अलग होना तो असंभव ही है, क्योंकि ईश्वर से रहित कोई अन्य स्थान ही नहीं है. देखो ! मुक्त

दशा में भी मुक्त पर ईश्वर का स्वामित्व पूर्ववत अक्षयरूप रहता है, इसलिये ईश्वराराधन अवश्य करना चाहिये.

शि०– हम भी तो उसी स्वरूप में बिराज रहे हैं, तो फिर हम में तथा मुक्त में अंतर ही क्या है ?

गु०– केवल ज्ञान का.

शि०– भोगत्रय किसे कहते हैं ?

गु०– धर्म, अर्थ, काम को.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि धर्म करने से पुण्य होता है, जिसका फल स्वर्ग सुख भोगना है, और अर्थ नाम धनादिक का है, जो भी भोगने के अर्थ है, तथा जितने संसारी काम हैं, वे भी सब भोगरूप ही हैं, इसलिये इन्हें भोगत्रय कहते हैं.

शि०– अच्छा ! जिसे भोग तथा मोक्ष की इच्छा नहीं, वह क्यों कर ईश्वराराधन करे ?

गु०– क्योंकि उस दयालु ईश्वरने हमें ऐसी बुद्धिरूपी कल्पलता दी है, जिसके द्वारा हम अद्भुत कार्य कर सकते और लौकिक पारलौकिक तत्वों को कारण सहित जान सकते तथा अनुभव सकते हैं. यह हम पर उसका असीम उपकार है, देखो ! उपकारी के उपकार को कुत्तेतक मानते तथा कृतज्ञता प्रकट करते हैं. तो क्या हमें कृतघ्न बनना चाहिये ? तिस पर वह जगत का स्वामी है, जबकि हम अपने समान अनेक नर देहधारियों को नमते तथा उनकी आज्ञा पालते हैं, तो क्या हमें उस परम उपकारी जगदीश्वर का आराधन करना अनुचित है ?

चौपाया छन्द

उचित सदा आराधन उसका; तन मन बच सों कीजिये ।
करी नियम संयम यम साधन, संसकार दुर छीजिये ।।
अन्तर्मुख व्है बिघ्न नसाई, चार पदारथ लीजिये ।
जो न बने कछु शरण गही के, चिर चिन्तन चित दीजिये ।।

उपदेश १९

तद्रूप

शि०– उस ईश्वर के कितने रूप हैं ?

गु०– दो.

शि०– कौन कौन से ?

गु०– साकार और निराकार, जिसमें निराकार का वर्णन पीछे हो चुका.

शि०– साकार किसे कहते हैं ?

गु०– उस आदि अन्त से रहित अत्यन्त विस्तीर्ण विराट स्वरूप को कहते हैं, जिसमें अनन्त ब्रह्मांड तथा अपरिमित गुप्त, प्रकट, दिव्य अदिव्य पदार्थ उपस्थित हैं.

शि०– वह विराट कहां है ?

गु०– यह असंख्य पिंडों सहित अखिल संसार ही जीवन मुक्त को विराट स्वरूप भासता है.

शि०– वह हमें क्यों नहीं भासता ?

गु०– दृष्टि दोष से, जैसे मोतियाबिन्दवाले को संसार.

शि०– वह रोग किस औषधी से और कब निवृत्त होगा ?

गु०– अन्तर्मुख रूपी औषधी से आरोग्य रूपी तुर्यावस्था में.

शि०– अन्तर्मुख वृत्ति से तो दृश्यावरण निवृत्त होता है, किन्तु विराटस्वरूप तो स्वतः दृश्याकार है, तो फिर इसके द्वारा उसका क्यों कर ज्ञान हो सकता है ?

गु०– जिस तरह गुप्तांजन तथा दृष्टि योग द्वारा गुप्त प्रकट दोनों पदार्थ दिख सकते हैं.

शि०– स्पष्टरूप से समझाइये ?

गु०– (१) अर्थात् अन्तर्मुख दृष्टि द्वारा स्थूल आवरण के हटते ही, तुर्यावस्था प्राप्त होकर सूक्ष्म शरीर से विराट भासने लगता है.

(२) फिर उसी दृष्टि से सूक्ष्म आवरण नष्ट होकर, कारण

शरीर द्वारा, विराटगत स्थूल, सूक्ष्म पदार्थों का कारण सहित यथार्थ बोध हो जाता है.

(३) अन्त को उसी दृष्टि से, कारणरूपी आवरण दूर होते ही, तुर्यातीत हो, तदाकार वृत्ति द्वारा निर्विकार ब्रह्म के आनंद को अनुभवता है.

शि०– ईश्वर तो केवल एक पूर्ण ब्रह्म है, फिर अद्वैत में द्वैत भावना क्यों की गयी ?

गु०– जिस तरह विस्तीर्ण सरोवर को कज्जी, फेन, सिवार, बुद-बुद तथा तरंग सहित देखो, चाहे इनसे रहित; किन्तु उभय दशा में वह सरोवर मात्र एक ही है. उसी तरह ईश्वर को जगन्मय देखो, चाहे विरहित; किन्तु उभय दशा में वह मात्र एक ही है.

शि०– अच्छा ! वह विराट होने पर भी सूक्ष्म क्यों कहाता है ?

गु०– (१) क्योंकि जैसे विस्तीर्ण आकाश में दृश्या दृश्य अनेक पदार्थ हैं, किन्तु सब में वही आकाश व्याप्त है, जैसे दूध में मक्खन; उस दशामें पदार्थों की अपेक्षा आकाश सूक्ष्म है.

(२) फिर वह आकाश विस्तीर्ण महत्तत्व में स्थित है, किन्तु वही महत्तत्व उस आकाश में व्याप्त है; जैसे मक्खन में घृत. उस दशा में आकाश की अपेक्षा महत्तत्व सूक्ष्म है.

(३) फिर वही महत्तत्व विस्तीर्ण शक्ति में स्थित है, किन्तु वही शक्ति महत्तत्व में व्याप्त है, जैसे घृत में द्रवता, उस दशा में महत्तत्व की अपेक्षा शक्ति सूक्ष्म है.

(४) फिर वही शक्ति ईश्वर के विराट स्वरूप में स्थित है, किन्तु वही प्रभु उस शक्ति में व्याप्त है, जैसे घृत के हर परमाणु में सुगंध-उस दशा में शक्ति की अपेक्षा ईश्वर सूक्ष्म है. इसलिये वह सब से सूक्ष्म तथा सब से बड़ा है.

शि०– आप तो थोड़े में समझा दो ?

गु०– देखो ! जब कि सरोवर के जल में कज्जी स्थित है, उस दशा में कज्जी, से जल बड़ा अर्थात् स्थूल है. किन्तु जब कज्जी के हर

परमाणु में वही जल व्याप्त है (जो निचोड़ने से निकल सकता है) उस दशा में कज्जी की अपेक्षा वही जल छोटा अर्थात् सूक्ष्म है. उसी तरह जिस स्वरूप में ये चरा-चर अनंत सृष्टियां स्थित हैं; वह इन सृष्टियों से हर तरह स्थूल अर्थात् बड़ा है. किन्तु जब वही इन सब में व्याप्त है, उस दशा में वह सब से सूक्ष्म अर्थात् छोटा है.

शि०– इससे क्या सिद्ध हुआ ?

गु०– कि, न वह बड़ा है न छोटा है, किन्तु सदा एक रस स्थित है.

दोहा

सगुण निर्गुण रूप सो, ईशहि भेद न आय ।
फेन सहित या रहित हो, सरवर तऊ कहाय ।।१।।
जामें सब जग व्है रह्यो, जग से वही महान ।
पुनि जो व्याप्यो जगत में, वही सूक्ष्म भव प्राण ।।२।।
जिमि जल में कज्जी रहै, पुनि जल कज्जी व्याप ।
उभय दशामें एक ही, लखे बड़ो लघु आप ।।३।।

उपदेश १७

ज्ञानयोग भूमिका

प्र०– योग तथा ज्ञान की सप्त भूमिका कौनसी है ?

उ०– शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभावनी, तुर्यगा.

प्र०– प्रथम भूमिका किसे प्राप्त होती है ?

उ०– जो सतत ईश्वरीय सृष्टि नियमानुकूल वर्तता, स्वधर्म कर्म में तत्पर रहता, अपने प्रति ग्लानि तथा औरों के प्रति सत्कार करता परहित के लिये, तन, मन, धन, यश लगा देता, बार-बार सत शास्त्रों का अवलोकन तथा सज्जनों के मुख से श्रवे अमृत तुल्य सिद्धान्तों

का श्रवरण करता रहता है. उसे शुभेच्छा नामक ज्ञान की प्रथम भूमिका प्राप्त होती है ?

प्र०– द्वितीय भूमिका किसे प्राप्त होती है ?

उ०– जो उपरोक्त शुभेच्छू सदा सत शास्त्र तथा सज्जनों द्वारा श्रवरण किये हुए सिद्धान्नों का लगातार मनन करता हुआ, वैराग्य पूर्वक उसका अभ्यास करता रहता है, उसे विचाररणा नामक ज्ञान की द्वितीय भूमिका प्राप्त होती है.

प्र०– तृतीय भूमिका किसे प्राप्त होती है ?

उ०– जो सदा शुभेच्छा सहित विचाररणा द्वारा इन्द्रियों के उपद्रवों को रोकता हुआ, श्रवरण, मनन पूर्वक, निदिध्यासन करता रहता है. उसी को तनुमानसा नामक ज्ञान की तृतीय भूमिका प्राप्त होती है.

प्र०- चतुर्थ भूमिका किसे प्राप्त होती है ?

उ०- जो उपरोक्त तीनों भूमिकाओं के अभ्यास द्वारा चित्त को अपने शुद्ध सत्यात्मा के विषे ठहरा पाया है, उसी को सत्वापत्ति नामक ज्ञान की चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है.

प्र०- पंचम भूमिका किसे प्राप्त होती है ?

उ०- जिसका चित्त उपरोक्त चारों भूमिकाओं के अभ्यास द्वारा आत्मारामी हो जाने के कारण विषय आदि के सम्पर्क से बिलकुल रहित हो जाता है. उसी को असंसक्ति नामक ज्ञान की पंचम भूमिका प्राप्त होती है.

प्र०- षष्टम भूमिका किसे प्राप्त होती है ?

उ०- जिसका चित्त उपरोक्त पांचों भूमिकाओं के चिर अभ्यास द्वारा दृढ़ आत्मारामी हो, समग्र पदार्थों का अभाव देखता है. अर्थात् सब में आत्मा ही देखता है. उसी को पदार्थाभावनी नामक षष्टम भूमिका प्राप्त होती है.

प्र० - सप्तम भूमिका किसे प्राप्त होती है ?

उ०- जिसका चित्त उपरोक्त छहों भूमिकाओं के चिर अभ्यास द्वारा भेदभाव से रहित हो, अद्वैत पद को अनुभवता है. उसी को तुर्यगा नामक ज्ञान की सप्तम भूमिका प्राप्त होती है.

प्र०– तुर्यावस्था कहां तक साथ देती है ?

उ०– चौथी भूमिका से सातवीं तक.

प्र०– इसके पश्चात् ?

उ०– तुर्यातीत अवस्था प्राप्त होती है.

प्र०– जीवन मुक्त तथा विदेह मुक्त किसे कहते हैं ?

उ०– तुर्यस्थ योगी जीवनमुक्त तथा तुर्यातीतस्थ विदेह मुक्त कहलाता है.

दोहा

ज्ञान योग की भूमिका, कैवल वरदा सात ।
इनके सिद्धजु होत ही, जन्ममरण मिट जात ।।

उपदेश १८

योग

शि०– यहां योग का क्या अर्थ है ?

गु०– युक्त करना अर्थात् मिलाना.

शि०– क्या मिलाना ?

गु०– जीव को ईश से.

शि०– किस अवस्था में ?

गु०– तुर्य्यावस्था में.

शि०– किसके द्वारा ?

गु०– अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा.

शि०– यह वृत्ति कब प्राप्त होती है ?

गु०– जब चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है.

शि०– यह निरोध कब हो सकता है ?

गु०– जब मन, प्राण तथा दृष्टि का जय हो.

शि०– इनका जय क्योंकर हो सकता है ?

गु०– किसी एक के जय से शेष आप ही आधीन हो जाते हैं.

शि०– पर किसी एक को भी आधीन किसके द्वारा करें ?

गु०– यम, नियमपूर्वक संयम द्वारा.

शि०– संयम कितने हैं ?

गु०–संयम पांच हैं, विचारादि, दर्शनादि, श्रवणादि, वचनादि, साधनादि.

शि०– यहां विचारादि संयम किस तरह करे ?

गु०– किसी मुद्रापूर्वक एकाग्रतत्वका चिंतन करते हुए, उसी में वृत्ति को लीन कर दे. इसका सविस्तार वर्णन स्वरशास्त्र तथा तत्वशास्त्र में देखो.

शि०– यहां दर्शनादि संयम किस तरह करें ?

गु०– किसी पदार्थ को अचल दृष्टि से देखते हुए, उसी में वृत्ति को लीन कर दें.

शि०– ऐसा करने से क्या होगा ?

गु०– पहिले पहल तो नेत्रों में से जल चूने लगेगा, तथा वह पदार्थ भी दृश्यादृश्य होता रहेगा, किन्तु ज्यों-ज्यों अन्तर्मुखवृत्ति होती जावेगी त्यों-त्यों वह पदार्थ अदृश्य होता जावेगा और साथ ही साथ अंधकार भी बढ़ता जावेगा, अंत को सर्वत्र आकाश ही आकाश दिखाई देगा-जब अन्तर्मुखदृष्टि उसे भी पार कर जावेगी, तब महत्तत्व का प्रकाश दिखाई देगा; जब वह प्रकाश पूर्ण रूप से छा जावेगा, तब उसमें विराटगत पदार्थ इच्छा होते ही दिखने लगेंगे, जब वह दृष्टि उसे भी पारकर जावेगी तब शक्ति का अद्भुत प्रकाश दिखाई देगा, उसी में ईश्वर का विराट स्वरूप भासेगा, जब वह विचाररूपी सूक्ष्मदृष्टि उसे भी पार कर जावेगी, तब निराकार ब्रह्म का दर्शन पा, वृत्ति तदाकार हो, ब्रह्मानन्द को अनुभवेगी. यही दशा पांचों संयमों द्वारा होती है.

शि०– ध्यान, धारणा, समाधि किसे कहते हैं ?

गु०– अन्तर्मुखवृत्ति द्वारा किसी पदार्थ को ध्याते हुए, उसी में चित्त के लीन हो जाने को.

शि०– ऐसा होने से क्या होता है ?

गु०– उस पदार्थ तथा उसके संबंध का पूर्ण ज्ञान हो जाता है.

शि०– यदि हम सूर्य्य का ऐसा संयम करें तो क्या होगा ?

गु०– अनेक लोकों का ज्ञान होगा.

शि०– यदि हम चन्द्र का यही संयम करें तो क्या होगा ?

गु०– तारों का ज्ञान होगा.

शि०– यदि हम ध्रुव का ऐसा संयम करें, तो क्या होगा ?

गु०– गगन के सब पिंडों की गति जानी जावेगी.

शि०– जो हम अपने हृदय का ऐसा संयम करें, तो क्या होगा ?

गु०– सबके मन की बात जानने की सामर्थ्य होगी.

शि०– जो हम अपने नाभि चक्र का ऐसा संयम करें, तो क्या होगा ?

गु०– परिपूर्ण शारीरिक ज्ञान हो जावेगा.

शि०– यदि हम कंठकूपका ऐसा संयम करें, तो क्या होगा ?

गु०– हमारी क्षुधा, तृषा निवृत्त हो जावेगी.

शि०– जो हम मूर्द्धागत ज्योति का ऐसा संयम करें, तो क्या होगा ?

गु०– गुप्त सिद्धों का दर्शन हो सकेगा.

शि०– जो हम हमारे ही प्रतिबिंबका ऐसा संयम करें, तो क्या होगा ?

गु०– सब प्रकार की मानुषिक सिद्धि तथा भूत, भविष्यत, वर्तमान जानने की शक्ति प्राप्त हो सकेगी.

शि०– जो हम बल बढ़ाना चाहें, तो किसका संयम करें ?

गु०– जिसके बल का संयम करोगे, तद्वत बल प्राप्त हो सकेगा.

शि०– यदि हम वनस्पत्तियों के गुण जानना चाहें, तो किसका संयम करें ?

गु०– उन्हीं वनस्पत्तियों का.

शि०– यदि हम प्रातिभ नामक तारेका जो (कदाचित् समाधि में मूर्द्धा ज्योति के अन्तर्गत उदय होता है) संयम करें, तो क्या होगा ?

गु०– समग्र ज्ञान तथा सब सिद्धियां प्राप्त हो जावेंगी. (एवमन्या:)

शि०– श्रवणादि संयम किसे कहते हैं ?

गु०– किसी नाद या शुद्ध के श्रवण, मनन निदिध्यासको.

शि०– यह संयम कैसा किया जाता है ?

गु०– अभिलाषित नाद को सुने तथा उसे मनन करता हुआ, ऊंचे से ऊंचे और सूक्ष्म से सूक्ष्म ध्वनि में चित्त को लीन करें.

शि०– ऐसा करने से क्या होगा ?

गु०– अन्तर्मुख वृत्ति होते ही क्रम से वही दशा होगी, जो देखने के संयम द्वारा होती है.

शि०– नाद कब तक सुनाई देगा ?

गु०– शक्ति तत्व तक.

शि०– जो समाधि में केवल एक नाद ही को सुनता रहे, तो क्या होगा.

गु०– उसी नाद संबंधि सिद्धि होगी.

शि०– अच्छा ! बीन तथा ताल शब्द के संयम से क्या होगा ?

गु०– अमृत आदि की प्राप्ति.

शि०– बांसुरी के नाद के ऐसे संयम से क्या होगा ?

गु०– गूढ़ विज्ञान तथा अन्तर्यामित्व की प्राप्ति होगी.

शि०– मृदंग के नाद के ऐसे संयम से क्या होगा ?

गु०– परावाचा की सिद्धि होगी.

शि०– शंखध्वनि के ऐसे संयम से क्या होगा ?

गु०– समग्र वेदों का भेद प्राप्त होगा.

शि०– भेरी नाद के ऐसे संयम से क्या होगा ?

गु०– अदृश्य होने की शक्ति प्राप्त होगी.

शि०– मेघनाद का संयम करने से क्या होगा ?

गु०– सब वासनाओं का क्षय होकर, पर ब्रह्म का ज्ञान होता है.

शि०– मेघनाद में ऐसा क्या गुण है ?

गु०– उसमें ॐकार तथा रंरकार का उदय होता है.

शि०– किसी प्राणी के शब्द का संयम करें, तो ?

गु०– उसकी भाषा विदित होती है.

शि०– वाणी का संयम किसे कहते हैं ?

गु०— किसी नाम के जपने के संयम को.

शि०— वह किस तरह किया जाता है ?

गु०— ॐ अथवा राँ नाम को एकाग्र मन से एकान्त में स्पष्ट तथा उच्च स्वर द्वारा छः मास जपे,किन्तु सुरति उस ध्वनि के उच्च से उच्च भाग पर रक्खे; और जब जब जपना बन्द कर, तब तब कुछ देर तक सुरति, उसी चिंतन में स्थिर रक्खे-फिर छः मास धीमे स्वर से जपे और सुरतिका लक्ष पूर्ववत रक्खे-ऐसा करने से मननरूपी जप होने लगेगा फिर छः मास तक मानसिक जप करे, किन्तु लक्ष वैसा ही रक्खे-जब हृदय में या रोम मात्र में या सम्पूर्ण ब्रह्मांड में अनायास जप होने लग जाय, तब छः मास तक, उस अनायास होने वाले जप में लौलीन रहे; जब अनायास जप की दृढ़ताका निश्चय हो जाय, तब अर्ध मात्रा की उच्च ध्वनि द्वारा सुरति को ऊंचे से ऊंचे लेजाने का अभ्यास करता रहे; बस ! ज्यों-ज्यों सुरति ऊंची चढ़ेगी, त्यों त्यों आवरण हटते जावेंगे-अंतको नादका एकदम लय होकर, नामातीत, रूपातीत, निर्विकार ब्रह्मका ज्ञान होगा. और वृत्ति तदाकार हो, ब्रह्मानंद को अनुभवेगी. वाल्मीकीजी को इसी के द्वारा सिद्धि प्राप्त हुई थी.

शि०— जो अनायास जप ही में मन, लौलीन रहे, और आगे न बढ़े तो क्या होगा ?

गु०— तो भी प्रभु के सगुणरूप का दर्शन, तो अवश्य ही होगा.

शि०— यहां साधनादि संयम किसे कहते हैं ?

गु०— योग द्वारा प्राणवायु के जय करने के संयम को.

शि०— प्राणवायु का कब यथेष्ट जय हो सकता है ?

गु०— जब केवल कुंभक सिद्ध हो जाय.

शि०— केवली कुंभक किसके द्वारा सिद्ध होता है ?

गु०— शक्ति चालन द्वारा.

शि०— शक्ति संचालन किसके द्वारा होता है ?

गु०— त्रिबंधयुक्त प्राणायाम से.

शि०- प्राणायाम में किसकी आवश्यकता है ?

गु०- यम, नियम पूर्वक विधि, दृढासन तथा पथ्य की.

शि०- प्राण के जय द्वारा क्या होता है ?

गु०- समाधि प्राप्त हो सकती है.

शि०- चार प्रहर समाधिस्थ रहकर, सूर्य्य का संयम करने से क्या होता है ?

गु०- अखिल ब्रह्मांड भासने लगता है.

शि०- जो एक दिन रात समाधिस्थ रह कर, सूर्य्य का संयम करे, तो क्या होता है ?

गु०- वह दूर के पदार्थों की गंध, जान सकता है.

शि०- इसी तरह दो दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०- वह दूर के पदार्थों का स्वाद जान सकता है.

शि०- उसी तरह तीन दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०- वह दूर के पदार्थों को स्पष्ट देख सकता है.

शि०- उसी तरह चार दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०- वह दूर-दूर के पदार्थों को छू सकता है.

शि०- उसी तरह पांच दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०- वह दूर-दूर का शब्द सुन सकता है.

शि०- उसी तरह छे दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०- वह महाज्ञानी विश्व का ज्ञाता हो जाता है.

शि०- उसी तरह सात दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०- वह बड़ा तत्वज्ञानी हो जाता है.

शि०- उसी तरह आठ दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०- उसकी क्षुधा, तृषा आधीन हो जाती है.

शि०- उसी तरह नौ दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०- वह अत्यन्त गुप्त रहस्य भी जान सकता है.

शि०- उसी तरह दस दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०- उसकी वाचा सिद्धि हो जाती है.

शि०– उसी तरह ग्यारह दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०– उसके सब विग्रह दूर हो जाते हैं.

शि०– उसी तरह बारह दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०– भूचरी सिद्धि होती है, जिसके द्वारा निमेषार्द्ध में पृथ्वी प्रयटन कर सकता है.

शि०– उसी तरह तेरह दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०– खेचरी सिद्धि होती है, जिसके द्वारा पक्षियों के समान आकाश में यथेच्छ भ्रमण कर सकता है ?

शि०– उसी तरह चौदह दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०– अणिमा सिद्धि होती है, जिसके द्वारा अणु के समान लघु रूप धर सकता है.

शि०– उसी तरह सोलह दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०– महिमा सिद्धि होती है, जिसके द्वारा विकराल रूप धर सकता है.

शि०– उसी तरह अठारह दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०– गिरिमा सिद्धि होती है, जिसके द्वारा अत्यन्त बोझल हो सकता है.

शि०– उसी तरह बीस दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०– लघिमा सिद्धि होती है, जिसके द्वारा अत्यन्त हलका बन सकता है.

शि०– उसी तरह बाईस दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०– प्राप्ति सिद्धि होती है, जिसके द्वारा इच्छा करते ही इच्छित पदार्थ वहीं पा सकता है.

शि०– उसी तरह चौबीस दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०– प्राकाम्य सिद्धि होती है, जिसके द्वारा वह महा पराक्रमी हो जाता है.

शि०– उसी तरह छब्बीस दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०– ईश्वरत्व की सिद्धि होती है, जिसके द्वारा योगी अनेक रूप धर सकता तथा मन चाहा सो कर सकता है.

शि०– उसी तरह अट्ठावीस दिन रात के संयम से क्या होता है ?

गु०– वशित्व की सिद्धि होती है, जिसके द्वारा सृष्टि के सब प्राणी वशीभूत हो जाते हैं.

शि०- पृथ्वी तत्व के संयम से क्या सिद्धि होती है ?

गु०- नौ मास तक समाधिस्थ रहकर, पृथ्वी तत्व का ध्यान करने से, शरीर वज्रतुल्य हो जाता है. उसे पृथ्वी रोक नहीं सकती, और वह स्वयं पृथ्वी रूप बन सकता है.

शि०- जल तत्व के संयम से क्या होता है ?

गु०- समाधि द्वारा डेढ़ साल के संयम से जल तत्व की सिद्धि होती है जिसके द्वारा वह स्वतः जल रूप बन सकता तथा उसे जल कोई हानि नहीं पहुंचा सकता.

शि०- अग्नितत्व के संयम से क्या होता है ?

गु०- समाधि द्वारा अग्नि तत्व के संयम से तीन वर्ष में सिद्धि होती है जिसके द्वारा वह स्वतः अग्नि रूप धर सकता तथा उसे अग्नि किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचा सकती.

शि०- वायु तत्व के संयम से क्या होता है ?

गु०- समाधि द्वारा वायु तत्व के संयम से छः वर्ष में वायु तत्व की सिद्धि होती है, जिसके द्वारा वह वायु रूप बन सकता तथा उसे वायु किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचा सकती.

शि०- आकाश तत्व के संयम से क्या होता है ?

गु०- समाधि द्वारा आकाश तत्व के संयम से बारह वर्ष में उसकी सिद्धि होती है, जिसके द्वारा वह आकाश रूप धर सकता, तथा उसे आकाश किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचा सकता.

शि०- शक्ति तत्व के संयम से क्या होता है ?

गु०- चौबीस वर्ष की समाधि द्वारा शक्ति तत्व के संयम से उसकी सिद्धि होती है, उसे अखिल ब्रह्मांड हस्तामलकवत हो जाता है, वह प्रलयकाल में इस सृष्टि को छोड़, अन्य सृष्टि में जा सकता तथा खुद इच्छा होने से अन्य सृष्टि रच सकता है. जिस प्रकार विश्वामित्रजी ने रची.

शि०- जो वह सिद्धियां न चाहे, तो ?

गु०- तो सब आवरणों से रहित होकर, उस निर्विकार ब्रह्म को पा,

तदाकार हो ब्रह्मानन्द को अनुभवता हुआ, जीवित दशा में जीवन मुक्त तथा तन त्यागे बाद विदेह मुक्त हो जाता है, या तन के होते हुए भी विदेह मुक्ति का आनन्द भोगता है ?

शि०- संध्या में योग की क्या आवश्यकता है ?

गु०- क्योंकि योग बिना दर्शन नहीं, तथा दर्शन बिना ज्ञान नहीं तथा ज्ञान बिना प्रेम नहीं, तथा प्रेम बिना ध्यान नहीं, तथा प्रभु के ध्यान बिना कुछ नहीं सिद्ध होता, इसीलिये संध्या में योग की आवश्यकता है.

शि०- योग क्या विद्या है ?

गु०- योग वह विद्या है, जिसका वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास आदि ग्रंथ प्रतिपादन करते तथा भारत वर्ष के सिवाय चीन, तिब्बत, जापान, अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, इंग्लेंडादि देशों में तथा बौद्ध, जैन, यामन, शैव, शाक्त, वैष्णवादि सर्व मतमतांतरों में सर्वत्र ही इसका आदर समान है, और बड़े बड़े देव, ऋषि, मुनि तथा दैत्यों ने भी इसे सहर्ष स्वीकार, योग साधन किया, व अनेक अद्‌भुत सिद्धियां पायीं. तथा अनेक प्रकार की विलक्षण विद्याएं संयम द्वारा उपजाई इसी के द्वारा जीव मात्र की भाषा जानी जाती है. यही धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की देने वाली और भक्ति तथा ज्ञान की खानि है. इससे बढ़कर संसार में न कोई विद्या है और न होगी.

शि०- योग के कितने अंग हैं.

गु०- आठ अंग हैं. अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ध्यान धारणा, समाधि.

शि०- प्रत्याहार किसे कहते हैं ?

गु०- जब-जब मन चंचल हो, इधर-उधर जाय, तब-तब उसे घेर घार कर आत्मा या ध्येय विषे युक्त कर दिया करे. उसी को प्रत्याहार कहते हैं.

दोहा

यम सु नियम आसन दृढ़ा, प्राणायामहि साध ।
प्रत्याहार स ध्यान धर, तन्मय लगा समाध ।।

छन्द

योग बिना प्रभु दर्श नहीं, प्रभु दर्श बिना नहिं ज्ञाना ।
ज्ञान बिना प्रभु प्रेम नहीं, प्रभु प्रेम बिना नहिं ध्याना ।।
ध्यान बिना कछु सिद्धि नहीं, बिन सिद्धहि सर्व नसाना ।
भक्ति करो प्रभु योग चहो, यदि चार पदारथ पाना ।।

चौपाया

योग यजन युत जो कर ध्यान । ताको तुरत होय कल्यान ।।१।।
विधि कर्षण सिधि देत महान । ताको यजन तुरत कर ज्ञान ।।२।।
उभय नाड़ि कहं देहुं दबाय । सुरति तुरति गगन चढ़ि जाय ।।३।।
जो दोउन को देय मिलाय । सुरति तुरत ये थिर व्है जाय ।।४।।
रहित सहित अध उर्द्ध चढ़ाय । तौभी कुंभक थिर व्है जाय ।।५।।
सहित रहित बहिरन्तर माय । धारै कुंभक थिर व्है जाय ।।६।।
कठिन मार्ग ये लिख्यो न जाय । गुरु मुख सों सब कोऊ पाय ।।७।।
याके हैंगे माग अनेक । पर इक साधे धरिके टेक ।।८।।

उपदेश १९

स्वरज्ञान

प्र०– स्वर: शब्द किस तरह बना ?

उ०– (स्व+र:) के योग से.

प्र०– इनका अर्थ क्या है ?

उ०– (स्व)=स्वयं, सनातन, अपना और (र:)=सर्वत्र रमने वाला, प्रकाशने वाला, उच्चरित होने वाला, बहने वाला तथा गति करने वाला आदि.

प्र०– इसलिये स्वर का अर्थ क्या हुआ ?

उ०– जो स्वयं उच्चरित होता, रमता, प्रकाशता, बहता तथा गति करता है.

प्र०– वह वहनशील स्वर अर्थात् श्वासात्मक वायु कितने प्रकार का है ?

उ०– तीन प्रकार का.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि वह कभी नासीका के बायें, कभी दाहिने तथा कभी दोनों छिद्रों से बहता है.

प्र०– बायां स्वर किन नामों से पुकारा जाता है ?

उ०– ईड़ा, गंगा, चन्द्र तथा वामस्वर के नाम से पुकारा जाता है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि वाम स्वर गंगा नामक ईड़ा नाड़ी से बहता है, किन्तु वह शीतल है और इसके अंतर्गत लय करने से चंद्रतुल्य तेज प्राप्त होता है; इसलिये उसे चन्द्र भी कहते हैं.

प्र०– दाहिना स्वर किन नामों से पुकारा जाता है.

उ०– पिंगला, यमुना, सूर्य तथा दक्षिण स्वर के नाम से पुकारा जाता है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि दाहिना स्वर यमुना नामक पिंगला नाड़ी से बहता है, किन्तु यह उष्ण है और इसके अंतर्गत लय करने से सूर्य तुल्य तेज प्राप्त होता है; इसलिये इसे सूर्य भी कहते हैं.

प्र०– एक साथ दोनों चलने वाले स्वर किन नामों से पुकारे जाते हैं ?

उ०– सुषुम्ना, सरस्वति तथा अग्नि के नाम से पुकारे जाते हैं.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि यह मध्यवर्ती प्रचंड अग्नि के समान, सरस्वती नामक सुषुम्ना नाड़ी से बहता है, और इसके अंतर्गत लय करने से स्वयं अग्नि की प्राप्ति होती है.

प्र०– चन्द्र स्वर किन कार्यों के लिये प्रशस्त है ?

उ०– जल पान, स्नान, मूत्र त्याग, औषध, शान्ति, पुष्टि तथा स्थिर कार्य के अर्थ.

प्र०– सूर्य स्वर किन कार्यों के लिये प्रशस्त है ?

उ०– भोजन, औषध, मल त्याग, चंचल तथा क्रूर कर्म के अर्थ.

प्र०– सुषुम्ना किन कर्मों के लिये प्रशस्त है ?

उ०– यह उग्र अग्नि रूप सब कर्मों का नाशक तथा प्राणहारी है. इसलिये इसमें केवल ईश्वराराधन तथा योगाभ्यास करना उचित है.

प्र०– यदि हम इन के विपरीत वर्तें तो ?

उ०– तो अवश्य कुछ न कुछ अपकार होता है, अधिक ज्ञान के लिये स्वर शास्त्र देखो !

प्र०– सगुण स्वर किसे कहते हैं ?

उ०– भीतर की ओर धसने वाले-स्वास को.

प्र०– निर्गुण स्वर किसे कहते हैं ?

उ०– बाहर की ओर निकलने वाले प्रस्वास को.

प्र०– इनसे क्या उच्चरित होता है ?

उ०– सगुण स्वर से (सो) और निर्गुण स्वर से (ऽहँ) उच्चरित होता है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि आकर्षणकारी सगुण निराकरणकारी निर्गुण स्वर है.

प्र०– यह (सोहँ) क्या वस्तु है ?

उ०– यह उस चैतन्य महाप्रभु की इच्छा से उपजा, वही सोहमात्मक महतत्त्व है. जो चिदाकाश गत चिदणुओं में व्याप, जीवों की उत्पत्ति स्थिति तथा लय का कारण हुआ. जिसका वर्णन १० वें उपदेश में हो चुका है.

प्र०– वह सोहँ हम में क्यों उच्चरित होता है ?

उ०– क्योंकि हम वही चिदणु हैं, जो बहिर्मुख हो, उसी सोहँ वृत्ति के कारण क्रम से कारण, सूक्ष्म तथा स्थूल देह को प्राप्त हुए.

प्र०– प्रज्ञानमानन्द ब्रह्म का क्या अर्थ है ?

उ०– (१) वह ब्रह्म सदा प्रज्ञान को और आनन्द को लिये रहता है, अर्थात् वह ब्रह्म, प्रज्ञान और आनन्द रूप है.

(२) वह चैतन्य (प्रज्ञानं) पूर्व स्मृति को और (आ+नन्द) दिव्य नवगतियों को लिये हुए (ब्रह्म) समग्र विस्तार करता है.

प्र०– अयमात्मा ब्रह्म का क्या अर्थ है ?

उ०– (१) यह आत्मा ही ब्रह्म है, अर्थात् यह आत्मा, उस विस्तारने वाले चैतन्य का अंश है. इसलिये–

(२) (अयं) यह (आत्मा) आत्मा ही (ब्रह्म) सब प्रकार के विस्तार को प्राप्त होता है.

प्र०– तत्वमसि का क्या अर्थ है ?

उ०– (तत्) उसी विस्तारने वाले चैतन्य के अंश (त्वं) तुम (असि) हो.

प्र०– अहं ब्रह्मास्मि का अर्थ क्या है ?

उ०– (१) (अहं) मैं भी (ब्रह्म) उस विस्तारने वाले का अंश (अस्मि) हूं.

(२) इसलिये (अहं) मैं (ब्रह्म) विस्तार को प्राप्त होने वाला (अस्मि) हूं. अर्थात् यह चैतन्य विशिष्ट अहं ही अखिल विस्तार का कारण है.

प्र०– क्यों ?

उ०– क्योंकि इस आत्मारूपी जीव की अर्थात् मेरी सोहँ वृत्ति है.

प्र०– सोहमस्मि का क्या अर्थ है ?

उ०– (सो) वह (अहं) मैं (अस्मि) हूं.

प्र०– (वह मैं हूं) इस वृत्ति के द्वारा जीव का क्या हाल होता है ?

उ०– जब वह जिसकी भावना करता हुआ, लय को प्राप्त होता है, तब वह उसी के गुणों को लिये हुए, उसी आकार, विस्तार आदि को प्राप्त होता है.

प्र०– यदि हम उस अहं वृत्ति को, उस पर ब्रह्म परमात्मा में युक्त कर दें, तो ?

उ०– तो हमारी वृत्ति तदाकार हो, उसी आनन्द को अनुभवेगी. अर्थात् मैं ही शिव, मैं ही ब्रह्मा, मैं ही विष्णु और मैं ही सब कुछ हूं तथा

यह सब विस्तार मेरा ही किया हुआ है, इत्यादि; यह सविकल्प अवस्था विषे जीवन मुक्त अनुभवता है.

प्र०— इससे क्या हानि है ?

उ०— जब तक निर्विकल्प अवस्था नहीं प्राप्त होती, तब तक उस जीवन मुक्त को भी जन्म आदि लेना पड़ता है, किन्तु उसे सब दशा में पूर्व स्मृति तथा आत्मा विषे आनन्द रहता है.

प्र०— कब आवागमन से छुटकारा मिलता है ?

उ०— जब आत्मा विषे स्थित वृत्ति अहं, त्वं को त्याग, निर्विकल्प हो, उस केवल शुद्ध स्वयं प्रकाश चैतन्य में लय को प्राप्त हो जाय, तब वह परमानन्द को अनुभवती हुई, आवागमन रूपी बंधन से छूट जाती है, अन्यथा नहीं; किन्तु वह कैवल्य पद प्रभु कृपा के बिना कदापि नहीं मिलता, इसलिये अहं, त्वं को त्याग उसकी सद्भक्ति करनी चाहिये, तभी तो मुक्त भी भक्ति को आदरते हैं.

चौपाया छन्द

स्वयं उच्चरत स्वर कहलावत, सोहँ हंसो ताको नाम ।
ओम भयो ता निर्गुण सूचक, सगुण निर्गुण सूचक राम ।।
सोहँ मोक्ष बंध को हेतू, परम तत्व गत चिन्मय ठाम ।
परम हंस मन तन्मय सोहँ, योगी ओम हि भक्त हि राम ।।१।।

दोहा

सो कर्षत ये प्राण चिर, कर्षत अहं अपान ।
सोभ्रू नाशा मध्य में, हं गुद लिंग बिचान ।।१।।
सो सूचक चैतन्य को, अहं जु सूचक जीव ।
तब लों ना विश्राम पद, जब लौं लहैन पीव ।।२।।
सोहं कृति को बीज यह, अहं पुरुष को बीज ।
सब संसार यासे भयो, या बिन अन्य न चीज ।।३।।
सो शक्ति पद अहं शिव, सो रति ये हं काम ।
अहं वीर्य सो रज महां, अहं पुरुष सो बाम ।।४।।

सो योनी बर लिंग ये, अहं चराचर व्याप ।
दोऊ के संयोग में, यह वह हम तुम आप ।।५।।
सो राधा हं कृष्ण ये, सो सीता हं राम ।
सो उज्वल हं श्याम ये, सो स्वरूप हं नाम ।।६।।
सो ईश्वर हं जीव ये, सो स्वामी हं दास ।
असौ ब्रह्म चिर हं सदा, स्वयं अंश चित काश ।।७।।
अहं ब्रह्म शिव अहं रवि, अहं महद हं खर्व ।
सोहं सो सर्वज्ञ अहं, हं सोहं ये सर्व ।।८।।
जब लों हं को गर्व ये, तब लों मन सविकल्प ।
ना हं ना त्वं भेद गत, केवल शुद्ध अकल्प ।।९।।
यथा हरी ऐनक लगे, वस्तु हरी लख सर्व ।
तथा अहं ऐनक लगे, अहं जु भासे सर्व ।।१०।।
नाहं रूप न नाम हं, ना हं महत न खर्व ।
केवल चैतन शुद्ध हं निर्विकल्प गत सर्व ।।११।।
मिलत न प्रभु की दया बिन, निर्विकलपता कोय ।
याते ताकी भक्ति कर, तन मन अर्पी सोय ।।१२।।

उपदेश २०

ईश्वर भक्ति

शि०— भक्ति किसे कहते हैं ?

गु०— प्राकृतिक प्रेम को.

शि०— किसका प्राकृतिक प्रेम है ?

गु०— जीव ईश का.

शि०— इस बात का क्या प्रमाण !

गु०— अजपा (सोहँ)

शि०— तिस पर क्यों यह जीव, उस ईश से उन्मुख है.

गु०— निज अज्ञानवश.

शि०— इसे अज्ञानता क्यों हुई ?

गु०— सांसारिक मोह के कारण.

शि०— तो फिर यह अजपा किस तरह जप रहा है ?

गु०— जिस तरह मदिरा से चूर मनुष्य कुछ बकता हुआ भी, उस अपने बकने को नहीं समझता, और न निज कर्त्तव्य को.

शि०— इसके लिये ईशने क्या किया ?

गु०— इसे योग, भक्ति का उपदेश दिया.

शि०— जब कि केवल योग ही से ज्ञान हो सकता है, फिर क्यों भक्ति का उपदेश दिया ?

गु०— क्योंकि भक्ति रहित योगी की उस नट के समान गति होती है, जो हजारों वर्ष समाधि में रहा, किन्तु उसे सिवाय घोड़े के अन्य कुछ भी न दिखा.

शि०— क्यों ?

गु०— क्योंकि योग रूपी क्रियाशक्ति, भक्तिरूपी इच्छा शक्ति के आधीन है. कारण क्रिया जड़ तथा इच्छा चैतन्य है. तिसपर इच्छा रूपी वृत्ति जब जैसा चिंतन करती है, तब वह वैसी ही हो जाती है, तथा सब कुछ कर सकती व क्रियाशक्ति से करा सकती है. किन्तु क्रियाशक्ति स्वयं कुछ भी नहीं कर सकती, इसलिये ईश्वर भक्ति बिना किये, केवल योग द्वारा ही ईश का ज्ञान नहीं हो सकता.

शि०— ईश्वर भक्ति किसे कहते हैं ?

गु०— ईश्वर में प्राकृतिक प्रेम करने को.

शि०— ईश्वर में प्राकृतिक प्रेम क्यों करना चाहिये ?

गु०— क्योंकि प्रकृति के विरुद्ध प्रेम हो ही नहीं सकता, किन्तु हो सकता है विरोध, जो अधर्मका उत्पादक है.

शि०— क्यों ?

गु०— क्योंकि प्रकृति के विरुद्ध करने से सदा अनर्थ ही होता है.

शि०— क्या कृत्रिम प्रेम को भक्ति नहीं कह सकते ?

गु०— कदापि नहीं.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि कृत्रिम प्रेम करना, तो उन छली लोगों का काम है, जो अनुचित स्वार्थ साधन के लिये, मिथ्या प्रेम प्रपंच रच औरों का विश्वासघात करते हैं.

शि०– ईश्वर भक्ति कितने प्रकार की है ?

गु०– दो प्रकार की, सकाम और निष्काम.

शि०– सकाम भक्ति किसे कहते हैं ?

गु०– उस प्राकृतिक ईश्वर प्रेम को कहते हैं, जो धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्राप्ति के लिये किया जाय.

शि०– निष्काम भक्ति किसे कहते हैं ?

गु०– उस प्राकृतिक ईश्वर प्रेम को कहते हैं, जो केवल उस ईश्वर के प्रेम वर्द्धन के लिये ही किया जाय.

शि०– दोनों भक्तियों में श्रेष्ठ कौनसी है ?

गु०– निष्काम भक्ति.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि जो परोपकारी नित्य स्वार्थ रहित हो, जीवों पर स्वभाव ही से प्रीति करता है, उसे अनायास सब चाहने लगते हैं. किन्तु जो स्वार्थ के लिये प्रीति करता है, उसे कोई उतना नहीं चाहता, इसलिये निष्काम भक्ति श्रेष्ठ है.

शि०– कोई अन्य उदाहरण दे, समझाओ ?

गु०– अच्छा ! यदि कोई नित्य तुम्हारी सेवा स्वार्थ से करे, तो तुम उसे क्या दोगे ?

शि०– केवल उसको सेवा के तुल्य वेतन देंगे.

गु०– यदि कोई तुम्हारी नित्य सेवा स्वार्थ रहित हो. अत्यंत प्रीति तथा निष्कपटता से करे और तुमसे किसी तरह वेतन भी न ले तो तुम उसे क्या दोगे ?

शि०– कोई बढ़िया पदार्थ देंगे.

गु०– इसी तरह निष्काम भक्ति करने वाला, बिना मांगे ही, परमपद

तक पा सकता है, क्योंकि निष्काम प्रभु निष्काम भक्त से ही अधिक प्रसन्न रहता है.

शि०— निष्काम भक्त को नित्य क्या मांगना चाहिये ?

गु०— केवल उसका सत्य, पवित्र, पूर्ण, निष्काम, स्वाभाविक चिर प्रेम.

शि०— क्यों ?

गु०— क्योंकि जब तक हृदय में उसका सच्चा अनुराग रहेगा, तभी तक ईश्वराराधन में मन लगेगा.

शि०— ईश्वर भक्ति के कितने अंग हैं ?

गु०— दश अंग.

शि०— कौन से ?

गु०— साधु सेवन, श्रवण, कीर्तन, नामस्मरण, चिंतन, अर्चन, वंदन, नमन, अर्पण, आत्म निवेदन.

शि०— साधु सेवन क्यों भक्ति का अंग है ?

गु०— क्योंकि जिस मार्ग का जो भेदू है, उस पथका पूरिपूर्ण ज्ञान, उसी की कृपादृष्टि से हमें विदित हो सकता है, तिस पर महात्मा लोग ईश्वर के प्रिय पात्र हैं. इसलिये उनकी संगति तथा सेवा से हम पर भी उस ईश्वर का अनुग्रह हो सकता है.

शि०— किस तरह ?

गु०— जिस तरह कोई तुम्हारे प्रिय पुत्र का हित करे, तो तुम भी अवश्य उस मनुष्य के हित चिंतक बन जाओगे.

शि०— यहां पर श्रवण किसे कहते हैं ?

गु०— ईश्वर का नाम तथा गुणानुवाद सुनने को.

शि०— यहां पर कीर्तन किसे कहते हैं ?

गु०— ईश्वर का गुणानुवाद गाने तथा कहने को.

शि०— नामस्मरण किसे कहते हैं ?

गु०— ईश्वर का नाम जपने को.

शि०— चिंतन किसे कहते हैं ?

गु०— ईश्वर का साकार या निराकार ध्यान करने को.

शि०– निराकार का ध्यान किस तरह करें ?

गु०– निराधार के अवलंबन द्वारा.

शि०– यह तो मुझे कठिन जंचता हैं ?

गु०– तो साकार ध्यान ही करो, क्योंकि वह स्वयं अन्तर्मुख दृष्टि द्वारा निराकार हो जाता है.

शि०– अर्चन किसे कहते हैं ?

गु०– ईश्वर के यथोचित सत्कार करने को.

शि०– वंदन किसे कहते हैं ?

गु०– ईश्वर की नम्रता पूर्वक प्रार्थना करने को.

शि०– नमन किसे कहते हैं ?

गु०– ईश्वर को नम्र भाव से दंडवत, प्रणाम तथा नमस्कारादि करने को.

शि०– अच्छा ! नमस्कार द्वारा किस तरह ईश्वर प्रसन्न हो सकता है ?

गु०– जिस तरह यदि कोई दुखिया, अत्यंत नम्र भाव से बारंबार तुम्हें नमन करे तथा तुम्हारे पांव पड़े, तो क्या तुम्हें उसकी दशा पर तनिक दया भी न आवेगी ?

शि०– अर्पण क्या वस्तु है ?

गु०– एक प्रकार प्रभु के सन्मानार्थ भेंट प्रदान करना हैं.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि जिस तरह दीन मनुष्य, अपने राजा के सन्मानार्थ जो कुछ भेंट करता है, तो वह उसे स्वीकारता हुआ, छूकर वापिस करता है, या उसके बदले या उसके सहित कोई बहुमूल्य वस्तु देता है. जिसे सहर्ष वह अपने उपभोग में लाता है. उसी तरह न्याय से प्राप्त वस्तु ईश्वर को समर्पित कर, पश्चात् उसे ईश्वरदत्त समझ अत्यानंद से आदर पूर्वक काम में लाना चाहिये.

शि०– न्याय से प्राप्त सब कुछ ईश्वरदत्त ही है, फिर क्योंकर इतना टिटम्ब करना चाहिये ?

गु०– है अवश्य ! किंतु जो उसके उठाने, रखने, खाने, पीने, पकाने,

पीसने, पहिरने, ओढ़ने आदि में अनेक जीव नष्ट होते हैं; उनका प्रतिफल कौन भोगेगा ?

शि०– इसलिये क्या करें ?

गु०– ऐसी प्रार्थना करो !

दोहा.

जीव बसैं जल अन्न गत, हे प्रभु तू सब माहि ।
तव महं तव चिर सबन को, यज्ञ तेज यज्ञाहि ।।१।।
याते अर्पण तोहि ये, तब तू कर स्वीकार ।
सीत प्रसाद म देइके, दया करो उद्धार ।।२।।

शि०– आत्म मिवेदन किसे कहते हैं ?

गु०– अनन्यभाव से अर्थात् तन, मन, वचन, कम से अपने को ईश्वर के शरणागत समझें.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि हम सब उसके आश्रित हैं, और वही एक हमारा आश्रयदाता है.

शि०– किसी के शरण होने से क्या लाभ है ?

गु०– क्योंकि जो जिसके शरण होता है, उसका हिताहित का भार उसी आश्रयदाता के शिर होता है, और उसे हर दशा में अपने आश्रित की रक्षा करनी पड़ती है.

शि०– ईश्वर के प्रति आत्म निवेदन कितने प्रकार से किया जाता है ?

गु०– तीन प्रकार से किया जाता है. सुनो !

(१) उसे स्वामी, पिता, गुरु आदि और स्वतः को सेवक, पुत्र शिष्यादि समझकर आत्मनिवेदन करना.

(२) उसे जेष्ट सखादि और स्वतः को कनिष्ठ सखादि समझ आत्मनिवेदन करना.

(३) उसे अंशी और स्वतः को उसका अंश समझ कर आत्मनिवेदन करना.

शि०– अच्छा ! उसे पिता समझ आत्मनिवेदन कैसा किया जाता है ?

गु०– भो पिता ! यह पुत्र आपके शरण है ! शरण है ! रक्षा करो ! रक्षा करो ! क्योंकि जिस तरह पुत्र निज पिता के आधीन होता है, उससे भी अधिक सब तरह मैं आपके आधीन हूं ; किन्तु पिता प्रेम से उसकी हर तरह रक्षा, शिक्षा तथा हित किया करता है; उसी तरह बल्कि उससे भी अधिक मेरी रक्षा, शिक्षा तथा हितका भार आपके ऊपर है; पर पुत्र आज्ञानुवर्ती होता है, उस तरह मैं भी आपका आज्ञाकारी पुत्र हूं तिसपर भी पुत्र की त्रुटि पिता क्षमा ही करता है, इसलिये शरण जान रक्षा करो ! आपको बारंबार नमस्कार है !

शि०– सखा भाव से आत्मनिवेदन किस तरह किया जाता है ?

गु०– अहो सखा ! मैं आपके शरण हूं ! शरण हूं ! रक्षा करो ! रक्षा करो ! क्योंकि आप मेरे मित्र और मैं आपका मित्र हूं ; आप मेरे चिरसाथी और मैं आपका हूं ; जिस तरह आप मुझे अपना समझते हो, उससे बढ़कर मैं आपको अपना समझता हूं ; जो धर्म आपने स्वीकार किया है, उसी धर्म का मैं भी अनुगामी हूं ; आप बड़े होने से मेरे हितू तथा रक्षक हो; और मैं छोटा होने के कारण आपका आज्ञाकारी हूं, तिस पर बड़ा–छोटे की त्रुटि क्षमा ही करता है ; इसलिये शरणजान रक्षा करो ! आपको बारंबार नमस्कार है !

शि०– किस प्रकार अंशांशी भाव से आत्मनिवेदन किया जाता है ?

गु०– भो अंशी ! यह अंश आपके शरण है ! शरण है ! रक्षा करो ! रक्षा करो ! क्योंकि आप स्वयं चैतन्य और मैं चैतन्यांश हूं ; जैसे आप सरोवर तो मैं जलकण हूं, इसी हेतु से चिर आप मेरे और मैं आपका हूं, उसी अंश के विषे जो कुछ आप हैं, वही स्वयं मैं हूं ; इसी भाव से मुझ में व आपमें कुछ भी अन्तर नहीं, किन्तु जो अन्तर भासता है, उसे स्वयं आप सर्वतः निवृत्त करने को समर्थ हैं, इसी कारण मुझ शरणागत को अपना जान अपनाइये,आपको बारंबार नमस्कार हैं. यही–(अनन्यभक्तिका लक्ष है).

चौपाया छंद

भक्ति बिना प्रभु कबहु न रीझे, क्योंकि उसे इक प्रेम पियारा ॥टेक॥
प्रीति बिना सब रीति वृथा हैं, वृथा सभी जपजोग अचारा ॥
स्नेह बिना मन लगे न कामें, ता बिन व्है ना काहु सुधारा ॥
प्रेम हि सों जग वश्य होत सब, सिद्ध मंत्र इक प्रेम विचारा ॥
या सति सहित भक्ति के निसदिन, ता चिन्ती हो जाओ पारा ॥१॥

दोहा

नमन निवेदन संगती, अर्चन अर्पण ध्यान ।
वंदन कीर्तन श्रवण जप, भक्ति अंग ये जान ॥१॥
चिंतन सब में है बड़ो, जो भक्ती युत होय ।
छन में प्रभु सन्मुख करे, हरे पाप सब सोय ॥२॥
आत्मनिवेदन बिन किये, व्हैसक ना प्रभु ध्यान ।
सो पुनि अर्पण नमनयुत, दे भक्ति सो सान ॥३॥
भक्ति बिना ना व्है कभी, प्रभू ज्ञान वैराग ।
याते सब आशा तजी, गही शरण ता पाग ॥४॥

उपदेश २१

मूर्त्ति

शि०- मूर्त्ति को मुख है, पर बोल सकती नहीं; कान हैं, पर सुन सकती नहीं; आंख हैं, पर देख सकती नहीं; हाथ और पैर भी हैं, पर कुछ कर सकती नहीं, उसके सन्मुख प्रार्थना करना, क्या बुद्धिमानी का काम है ? ऐसी जड़ मूर्ति को आप ईश्वर कहते हैं, उस दशा में मूर्ति का बनाने वाला ईश्वर का भी ईश्वर हुआ; किन्तु उसे आप शुद्र कहते हो, उस दशा में आपकी मूर्ति महा शूद्र हुई; जिसके समक्ष आप जितनी नाक घिसनी करते हो यदि उतनी उस सिलावट की करते, तो निश्चय था, कि वह दया पूर्वक आपको चुटकी भर आटा तो अवश्य ही देता, पर वह जड़ मूर्ति आपको

क्या दे सकती है, इससे तो चक्की भली है, जो आपको पीस-पीस कर खिलाती है, उसे क्यों नहीं पूजते, यदि पत्थर पूजने से आप कुछ लाभ सिद्ध कर दें, तो मैं नित्य पहाड़ को पूजा करूं, जिससे मुझे बहुत बड़ा लाभ हो ?

गु०– क्या आपके माता, पिता, गुरु, राजा, मित्र आदि मूर्त्ति मय नहीं हैं ?

शि०– हां ! अवश्य हैं.

गु०– तो क्या आप उन्हें पूज्य दृष्टि से नहीं देखते ?

शि०– अवश्य देखते हैं, किन्तु मैं जड़ मूर्ति की पूछता हूं.

गु०– देखो ! पाव आने के टिकिट से लेकर लाखों तक के नोट केवल मूर्ति ही की बदौलत पुज रहे हैं, कि नहीं ?

शि०– इसका कारण राजाज्ञा है.

गु०– यदि जगत में सब की मूर्त्ति भिन्न-भिन्न न होती, तो घोड़ा, गधा, मनुष्य, पक्षी आदि का बोध किस तरह हो सकता; इससे सिद्ध है, कि हर एक अपनी-अपनी मूर्त्ति के बदौलत पुज रहे हैं.

शि०– अवश्य पुजते हैं; किन्तु आप शिला मूर्त्ति क्यों रखते हैं ?

गु०– अच्छा ! आप पशु, पक्षी, तथा मनुष्यों की मूर्त्तियां क्यों रखते हो ?

शि०– शोभा तथा स्मारक के लिये.

गु०– अच्छा ! हमारी ब्रिटिश सरकार जगह-जगह भद्र पुरुषों की मूर्त्तियां क्यों स्थापन करती है ?

शि०– उनकी स्मृति रक्षा के लिये.

गु०– तो क्या हम हमारे भद्र पुरुषों की मूर्त्तियां उनकी स्मृति रक्षा के लिये नहीं रख सकते ?

शि०– मजे में रक्खो; किन्तु देवताओं की क्यों ?

गु०– क्या आपने देखा है, कि देवताओं के मंत्र के प्रभाव से सर्प, बिच्छू पागल कुत्ते आदि का विष उतर जाता है, ज्वर, प्लीहा, पांडु आदि रोग नष्ट हो जाते हैं; तथा भयंकर जीव तक वश्य हो जाते हैं.

शि०– हां !

गु०– तो क्या देवता झूठें हैं ?

शि०– नहीं !

गु० - तो क्या ऐसे शक्ति संपन्न देवताओं की मूर्त्तियां उनके चिरस्मरण रखना अयोग्य है ?

शि०– किन्तु पूजते क्यों हो ?

गु०– क्योंकि पूजन का अर्थ सत्कार है.

शि०– किस तरह मूर्त्ति द्वारा देवताओं का सन्मान हो सकता है ?

गु०– जिस तरह स्वयं आपकी मूर्त्ति किसी विराट सभा में, आपकी अनुपस्थित अवस्था में रखी जाय और आपके सन्मानार्थ उस मूर्त्ति को पुष्पों की माला पहना कर आपकी कीर्त्ति लोगों को सुनाई जाय, तो क्या इस बात से आप अप्रसन्न होंगे !

शि०– कदापि नहीं.

गु०– यदि कोई धूर्त्त उस सभा में उस मूर्त्ति पर थूंके या उसे फोड़े, तोड़े, जला दे, या सब मिल उस मूर्त्ति के सन्मुख–नाम ले गालियां दें, तो क्या आप प्रसन्न होंगे ?

शि०– कदापि नहीं.

गु०– यदि आप खुद ऐसे अपमान जनक अवसर पर जा, खड़े हो जाओ तो क्या आप यह सब देख सुन खुश होंगे ?

शि०– खुश तो क्या होंगे, किन्तु उस अपमानजनक दृश्य से हमें अपना जीवन, भार हो जावेगा.

गु०– क्यों न होगा ! देखो ! अपनी ब्रिटिश सरकार मूर्त्ति पूजक नहीं है, तो भी उन्हें भारतेश्वरी विक्टोरिया की मूर्त्ति के अपमान से इतना क्रोध आया, कि उन्होंने अपमानकर्त्ता को अंतिम शिक्षा दी.

शि०– अपराधी ने क्या अपमान किया था ?

गु०– उस दुष्ट ने मूर्त्ति का मुख काला करके, जूतों की माला पहिनाई थी

शि०– इससे क्या सिद्ध हुआ ?

गु०– यह सिद्ध हुआ, कि जिसकी मूर्त्ति का सन्मान किया जावेगा, उसकी

आत्मा सन्मान कर्त्तापर अवश्य प्रसन्न होगी; यदि अपमान किया जावेगा, तो अप्रसन्न होगी.

शि०– मुझे तो अभी इस सिद्धांत पर विश्वास नहीं ?

गु०– यदि कोई चित्रकार द्वेष से आपके चित्र को बिगाड़ दे, या अकारण नकटा, काना बनाके कुत्सित परिवर्त्तन कर दे, तो क्या आप उसके व्यवहार से खुश होंगे ?

दोहा

सकल चराचर वस्तु जग, मूर्त्तीमान अनूप ।
कीर्त्ती रक्षा करत ये, सब की स्मारक रूप ।।१।।
मूरत को अपमान निज, सह्यो न पृथ्वीराज ।
सह न सकी विक्टोरिया, तो को है अस आज ।।२।।
सूरत मूरत की चहा, जो ना मन में होत ।
तो क्यों दुखी अनादरे, आदर चित्त उदोत ।।३।।

उपदेश २२

मूर्त्ति प्रभाव

शि०– क्या कोई निर्गुण निराकार की मूर्त्ति बना सकता है ?

गु०– कदापि नहीं.

शि०– तो फिर आप मूर्त्ति को क्यों ध्याते हो ?

गु०– सद्गति के होने तथा दुर्गति से बचने के लिये.

शि०– उस निर्गुण निर्विकार के होते हुए भी, जड़ पदार्थों को ध्याना क्या बुद्धि मानी है ?

गु०– तो हम उस निराकार को किस तरह ध्यावें ?

शि०– योगाभ्यास के द्वारा.

गु०– तो क्या केवल, हम दम रोक कर बैठ जांय ?

शि०– नहीं ! साहब !! उसमें कुछ ध्यान भी करना होता है,

गु०– किसका ?

शि०– भ्रूमध्य, नाशाग्र, हृदयस्थ अथवा छाया पुरुष आदि का.

गु०– क्या ये सब पदार्थ मूर्त्तिमान नहीं है ?

शि०– तो आप प्रणव या नाद या प्रकाश का ध्यान करें.

गु०– यह भी तो नाम, रूप की जड़ तथा सविकल्प सगुण उपाधि है.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि वह निर्गुण, निर्विकार प्रभु तो नादातीत, रूपातीत है.

शि०– इसलिये आप उस प्राकृतिक बिन्दु का ध्यान कीजिये.

गु०– किन्तु वह बिन्दु भी तो, आकार रखने के कारण, मूर्तिमान है.

शि०– इसकी कुछ चिन्ता नहीं.

गु०– अच्छा ! तो इसकी प्राप्ति किस तरह हो सकती है ?

शि०– निरालंभ में एकाग्र चिंतन द्वारा.

गु०– किन्तु निश्चित स्थान के स्थिर हुए बिना दृष्टि का स्थिर होना कठिन है.

शि०– इसीलिये उपरोक्त ध्यान अथवा श्वेत कागज पर काला बिन्दु लगा उसका एकाग्र चिंतन किया जाता है.

गु०– क्यों ?

शि०– क्योंकि ऐसा करने से ज्योंहि दृष्टि एकाग्र होगी, त्योंही वह बिचित्र प्रकाशयुत श्याम बिन्दु प्रकट हो जावेगा.

गु०– इस बिन्दु से क्या लाभ है ?

शि०– इसके अन्तर्गत ध्यान करने से जब अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा सब आवरण हट जावेंगे तब वह निर्विकल्प पद मिलेगा.

गु०– अच्छा ! उस श्वेत कागज के मध्य में श्याम बिन्दु लगा क्यों ध्याना चाहिये ?

शि०– क्योंकि यह उस विचित्र प्रकाश के मध्यवर्त्ती श्याम बिन्दु की प्रतिच्छाया है.

गु०– यदि हम इसी उद्देश की पूर्त्ति के लिये, श्वेत कागज के बदले श्वेत पाषाण पर और श्याम बिन्दु के बदले श्याम शिला रख, ध्यान करें, तो क्या कुछ हानि होगी ?

शि०– नहीं.

गु०– इसीलिये हमारे महर्षीगण द्वारावती शिला पर शालिग्राम शिला रख ध्याते थे.

शि०– अच्छा ! तो काली शिला पर, श्वेत शिला रख, क्यों ध्याते थे ?

गु०– जो श्याम बिन्दु को योनी मान, उसके अन्तर्गत ज्योतिरूप लिंग प्राप्ति के इच्छुक थे, अर्थात् जो आत्म ज्योति के कांक्षी थे, वे ध्याते थे.

शि०– उन्होंने केवल पाषाण का ही ध्येय, क्यों स्वीकार किया ?

गु०– चित्त की वृत्ति स्थिर तथा निर्विकल्प करने के लिये.

शि०– पाषाण द्वारा ऐसा होना क्यों कर संभव है ?

गु०– क्योंकि पाषाण स्वयं स्थिर तथा संकल्प विकल्प से रहित है.

शि०– काष्ट, मृत्ति का तथा धातुओं को ध्येय क्यों नहीं माना ?

गु०– उन्हें भी ध्येय माना है, किन्तु विशेष रूपसे नहीं.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि धातुओं में उष्णता शीघ्र प्रविष्ट हो जाती, तथा तुरन्त निकल भी जाती है, किन्तु पाषाण में कठिनता से प्रविष्ट होती तथा बहुत विलम्ब में निकलती है; इसलिये उनकी अपेक्षा पाषाण के ध्यान से शीघ्र अन्तर्मुख दृष्टि प्राप्त होती है, सिवाय पाषाण के सम्पर्क से जल, दुग्ध तथा षट् रसादिक नहीं बिगड़ते.

शि०– वह उष्णता क्या वस्तु है, कि जिसके द्वारा अन्तर्मुख दृष्टि प्राप्त होती है ?

गु०– वह शरीरगत विद्युत शक्ति की उष्णता है, जो ब्रह्मचर्य से प्राप्त होती है, तथा वही एकाग्र चिंतन के समय नेत्रों द्वारा प्रकट होकर, सुरति के संग ध्येय स्थल पर, इकट्ठी होने लगती है, और ज्यों २ उसका परिमाण बढ़ता जाता है, त्यों २ सुरति अन्तर्मुख होने लगती है,

शि०– मूर्त्ति पर हरे पत्र क्यों रखते हैं ?

गु०– दृष्टि रक्षा के लिये.

शि०– उस पर नाना प्रकार के गुणकारी तथा सुगंधि द्रव्य क्यों चढ़ाते हैं ?

गु०– क्योंकि उनके द्वारा मूर्ति सुशोभित होने से नेत्रों को लाभ तथा मन को आल्हाद प्राप्त होता है, सिवाय हमारी विद्युत शक्ति उनके गुणों को मिश्रित कर तीर्थ द्वारा हमें अनायास दिव्य औषधि प्रदान करती है.

शि०– भला ! उस शोभा के द्वारा नेत्रादिक को क्योंकर लाभ पहुंच सकता है ?

गु०– क्योंकि प्राकृतिक नियम ही ऐसा है, कि जब जिस स्थान से एक वस्तु हटती है,तो शीघ्र ही उसके स्थान पर कोई अन्य वस्तु आप ही आ जाती है; इसी कारण जभी हमारी दृष्टि का तेज किसी पदार्थ पर गिरता है, तभी उस पदार्थ का तेज लौटकर हमारी आंखों में प्रविष्ट होता है, जिसके द्वारा उस पदार्थ का प्रभाव हमारे नेत्रों में पड़, मन में भासता है, तथा तन पर फलता है.

शि०– यहां तीर्थ किसे कहते हैं ?

गु०– उस शिलाके धोवन को,

शि०– अच्छा ! उसे क्यों पीते हैं ?

गु०– क्योंकि उसके द्वारा हमारी गयी हुई विद्युत शक्ति शिलापर चढ़े द्रव्यों के गुणों को ले, जल में घुल फिर से हममें आजाती तथा अमृत समान गुण करती है.

शि०– यदि हम उसे वापिस न लें, तो क्या होगा ?

गु०– हमारे शरीर की काँति तथा नेत्र की ज्योति घटेगी.

शि०– ध्येय शिला कितनी बड़ी चाहिये ?

गु०– जितनो छोटी हो उतनी अधिक श्रेष्ठ है.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि छोटी वस्तु पर हमारी विद्युत शक्ति का जितना प्रभाव पड़ सकता है, उतना बड़ी पर नहीं पड़ सकता.

शि०– किस तरह ।

गु०– जिस तरह पावभर कोयले का अग्नि, तोले भर सुवर्ण को जिस दशा तक पहुंचा सकता है, उस दशा तक मनभर सोने को नहीं पहुंचा सकता.

शि०– आप कह चुके हो कि, उस प्राकृतिक श्याम बिन्दु के अन्तर्गत ज्योति है, तो क्या श्याम बिन्दु प्रकाश का उत्पादक है ?

गु०– अवश्य.

शि०– क्या प्रमाण ?

गु०– तभी तो सूर्य तथा सूर्यकान्त मणिका श्याम बिन्दु, अग्नि उपजाता है.

शि०– तो फिर सूर्य तथा अग्नि का ही ध्यान क्यों नहीं करते ?

गु०– उसका ध्यान भी किया जाता है, किन्तु बहुत करने से नेत्र की ज्योति को हानी पहुंचती है, इसलिये दृष्टि योगवालों ने स्वेत कागज पर काला बिन्दु लगा, उसी से काम ले लिया.

शि०– किंतु यह इतना गुणकारी नहीं है, जितना नखपर लगा, काला बिन्दु है ?

गु०– अवश्य ! क्योंकि नख चमकीले तथा विद्युत के द्वार हैं.

शि०– किन्तु नखकी बिजली तो जहरीली है ?

गु०– इसलिये साधकों ने, गुप्तांजन, प्रेतांजन निकाला है.

शि०– किन्तु वह भी अपवित्र वस्तुओं से बनाया जाता है, और अधिक हितकर भी नहीं है.

गु०– इसलिये चमकीले काले पत्थर का ध्येय सर्वोपरि है.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि वह विषमता का नाशक है.

शि०– वह सर्वोपरि शिला कौनसी है ?

गु०– वह शालिग्राम शिला है, जिसे जौहरी लोग कसौटी भी कहते हैं.

शि०– इसमें क्या २ गुण हैं ?

गु०– यह काली है, चिकनी है, चमकीली है, तथा उस पर नेत्र का प्रकाश गिरते ही, उसमें तिल मात्र प्रकाश दिखाई देता है, जो

चिन्तनीय है, और उसके सब परमाणु विचित्र चमक से युक्त हैं; यह शिला नेत्र दृष्टि को हित पहुंचाने वाली, चिन्तक की विद्युत शक्ति को एकत्र करने तथा निरर्थक न जाने देने वाली और सुरति को शान्ति पूर्वक अन्तर्मुख करने वाली है, सिवाय उसका प्रक्षालन का जल गंगाजी के जल से सोलह गुणा अधिक प्रभाव-शाली है; जो ग्लानि, मूर्च्छा, परिश्रम, प्यास, दाह, वात, पित्त, कफ तथा नेत्र रोग को हरता है और बुद्धि तथा चिंतन शक्ति को बढ़ाता है; यह आपरे चुम्बक के धोवन से लाख दर्जे अच्छा है.

शि०— इस तीर्थ का क्या विचार ?

गु०— स्वल्प जल से, शंख या द्वारावती के पात्र में धोकर, बिना नख लगाये, पान करले, किन्तु पृथ्वी पर न गिरावे.

शि०— क्यों ?

गु०— क्योंकि शंख, द्वारावती के पात्र से उस विद्युत की रक्षा होती, अधिक जल से वटती, नख लगने से बिगड़ती, और गिर जाने से व्यर्थ चली जाती है.

शि०— द्वारावती शिला तथा शंख पात्र न हों, तो ?

गु०— स्वर्ण, रजत तथा ताम्रका रखना चाहिये.

शि०— उपरोक्त ध्येय शिला, रेशमी वस्त्र पर क्यों रखते हैं ?

गु०— जिसमें विद्युत शक्ति निरर्थक न चली जाय.

शि०— वैष्णवादिक तो अपने-अपने ध्येय के प्रक्षालन का तीर्थ लेते हैं; किन्तु शैवादिक क्यों नहीं लेते ?

गु०— क्योंकि वे अपने ध्येय को पृथ्वी पर स्थापन कर देते हैं, इसलिये उन्हें वह विद्युत, तीर्थ द्वारा नहीं मिल सकती.

शि०— फिर वे उसे किस तरह प्राप्त करते हैं ?

गु०— अभिषेक द्वारा.

शि०— अभिषेक किसे कहते हैं ?

गु०— लगातार जल की धारा, ध्येय पर छोड़ने को अभिषेक कहते हैं.

शि०— तो क्या ऐसा करने से उस पाषाण की विद्युत शक्ति, उस पर

चढ़ द्रव्यादिकों के गुणों को लेती हुई, अभिषेक करने वाले को प्राप्त हो सकती है ?

गु०— अवश्य !

शि०— वह क्या-क्या गुण करती है ?

गु०— वह अनेक प्रकार के रोगों को हरती तथा चिन्तन शक्ति को बढ़ाती है.

शि०— तो फिर दोनों मार्गों में क्या अन्तर है ?

गु०— केवल इतना ही अन्तर है, कि वैष्णव आकर्षणकारी तेज को, निराकरणकारी तेज में मिलाकर, और शैव निराकरणकारी तेज को आकर्षणकारी तेज में मिलाकर, अन्तर्मुखत्व प्राप्त करते हैं; जिसे वैष्णव प्रकृति पुरुष कहते हैं, उसी को शैव शक्ति शिव अथवा योनिलिंग कहते हैं; किन्तु वास्तविक में बात एक ही है.

शि०— चन्दन में क्या गुण हैं ?

गु०— यह विष, पित्त, कफ, दाह, प्यास, रक्त, प्रमेह, सोजाक, वमन, ज्वर, खाज, त्वचा रोग, नेत्र रोग, विवर्णता को हरता, पुष्टि करता, हृदय शक्ति तथा चिन्तन शक्ति को बढ़ाता है.

शि०— तुलसी में क्या गुण हैं ?

गु०— यह दाह, कुष्ट, खाज, प्रमेह, सोजाक, रक्त, पार्श्वशूल, वात, पित्त कफ, मंदाग्नि, विषम ज्वर को हरती, हृदय की ग्रहण शक्ति तथा चिंतन शक्ति को बढ़ाती है.

शि०— कुंकुम में क्या गुण हैं ?

गु०— यह बिजौरा रस, हल्दी तथा फिटकरी के योग से बनता है, इसलिये कुंकुम में तीनों के गुण मिश्रित हैं.

शि०— अच्छा ! बिजौरा के रस में क्या गुण हैं ?

गु०— यह शूल, अजीर्ण, मंदाग्नि, रक्त, कफ, वायु, श्वास, अरुचि, खांसी ज्वर, नेत्र रोग, त्वचा रोग को हरता है.

शि०— हल्दी में क्या गुण हैं ?

गु०— यह रक्त, नेत्र रोग, कर्ण रोग, मुख रोग, त्वचा रोग, पांडू रोग,

कफ, खांसी, मंदाग्नि, सूजन, प्रमेह, सोजाक, फोड़े, विवर्णता, वात, कृमी तथा नाना प्रकार के रोगों को हरती, और जल जन्तुओं की बाधा, तथा अन्य बाधाओं को दूर करती, सिवाय पित्त के रंग को स्वच्छ करती तथा बुद्धि को बढ़ाती है.

शि०— फिटकरी में क्या गुण हैं ?

गु०— यह कफ, पित्त, विष, फोड़े, कुष्ट, विसर्प, जल दोष, नेत्र दोष, खांसी, ज्वर, मंदाग्नि, तथा नारू को हरती है.

शि०— मिश्री में क्या गुण हैं ?

गु०— यह दाह, तृषा, प्रमेह, पित्त, रक्त, नेत्र रोग, अरुचि, निर्बलता, वमन, पांडू, मूत्र कृच्छ तथा ज्वर को हरती और हृदय की शक्ति को बढ़ाती है, इसी तरह अन्य चढ़ाये जाने वाले द्रव्य भी गुणकारी हैं, उनके गुण निघंट वैद्यक ग्रंथ में देख लो.

शि०— उस प्राकृतिक विचित्र प्रभायुत श्याम बिन्दु तथा अन्तर्मुखत्व की प्राप्ति के लिये साधकों ने और क्या किया ?

गु०— अपनी-अपनी रुचि के अनुसार दिव्य पुरुषों की श्याम, स्वेत तथा अनेक प्रकार की चमकीली मूर्त्तियां चिंतन के लिये निर्माण की.

शि०— क्या मूर्त्तियां भी चिन्तनीय समझी जाती हैं ?

गु०— मूर्त्तियां तो क्या, इस अनन्त संसार का हर पदार्थ चिन्तनीय है.

शि०— क्यों ?

गु०— क्योंकि वह सच्चिदानन्द प्रभू व्यापक व्याप्य भाव से अखिल ब्रह्मांडों में व्यापा हुआ है, जैसे जल में कज्जी और कज्जी में जल, अर्थात् ब्रह्मरूपी सरोवर में कज्जीवत यह अनन्त संसार आच्छादित है, उस पर कीटवत हम सब विचर रहे हैं. जिस तरह कज्जी पर विचरने वाला कीड़ा इच्छा होते ही जब चाहे तब और जहां चाहे तहां, नीचे सिर घुसा, जल पा लेता है; उसी तरह हम सब जब चाहें तब और जहां चाहें तहां भक्ति पूर्वक अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा उसे पा सकते हैं; इसीलिये संसार का हर एक पदार्थ चिन्तनीय है.

शि०— तो क्या हम अन्तर्मुख वृत्ति के प्राप्ति के लिये हर पदार्थ का ध्यान कर सकते हैं ?

गु०— अवश्य कर सकते हैं !

शि०— किसी पदार्थ के ध्यान से क्या लाभ है ?

गु०— यदि उस पदार्थ के ध्यान द्वारा वृत्ति अन्तर्मुख हो, तीनों आवरणों को पार कर जाय, तो उसे निर्गुण निराकार का दर्शन हो सकता है.

शि०— यदि वृत्ति कुंठित हो, उस साकार पदार्थ को पार न कर सकी, बरन उस बिम्बाकार को ग्रहण कर लय को प्राप्त हो गयी, तो उसके द्वारा क्या होगा ?

गु०— वह ध्याता उस ध्येय पदार्थ के सम्पूर्ण गुणों का ज्ञाता होकर वृत्ति के उत्थान होने पर, सर्व साधारण को विदित कर सकेगा, अर्थात् उसे, वही पदार्थ जन्य सिद्धि होगी.

शि०— यदि उस पदार्थ का आकार ध्याता के चित्त में चिरकाल के लिये बस जाय, तो क्या होगा ?

गु०— मरने बाद उसे वही जन्म प्राप्त होगा; जैसे जड़ भरत को मृग तथा पुरंजन राजा को स्त्री का देह प्राप्त हुआ था.

शि०— इसलिये किसका ध्यान करना चाहिये, जिसमें दुर्गति न हो ?

गु०— अपने सद्भावों को उत्तेजना देनेवाली, किसी दिव्य पुरुष की मूर्त्ति का.

शि०— तो क्या मूर्त्ति का भी प्रभाव मनुष्य के हृदय पर पड़ता है ?

गु०— अवश्य.

शि०— इसका क्या प्रमाण ?

गु०— तभी तो हमारी सरकार ने राजद्रोहियों के चित्र पास रखना बन्द कर दिया है, और जिसके पास निकल पड़ता है, उसे शिक्षा दी जाती है; यदि मूर्त्ति का प्रभाव कुछ भी न होता, तो क्यों कर ऐसी व्यवस्था की जाती.

शि०– तो क्या इसीलिये पृथक-पृथक स्वभाव की मूर्त्तियां साधकों ने स्वीकार की हैं ?

गु०– अवश्य !

शि०– यदि हम अपने ही स्वरूप का ध्यान करें, तो क्या होगा ?

गु०– जो वृत्ति तीनों आवरणों को पार कर गयी तो, ईश्वर का दर्शन होगा, यदि बिम्बाकार हो, लय हो गयी; तो मनुष्य शरीर की रचना सहित सर्व मानुषी सिद्धि प्राप्त हो सकेगी, और जो स्वरूप ही चित्त में बसा हुआ, देहान्त हो जाय, तो फिर से मनुष्य जन्म मिलेगा.

शि०– तो फिर अपना ही स्वयं ध्यान क्यों न करें ?

गु०– केवल एक बड़ी हानि के भय से !

शि०– वह क्या बात है ?

गु०– क्योंकि यह रजोगुणी, तमोगुणी नरदेह, अपरिमित पापों से युक्त है, इसके द्वारा फल भी तद्वत होना संभव है, जिस तरह दुष्ट आत्माओं के कारण पात्र को भी विपर्य्य ज्ञान होता है, इसलिये जिसे पुनः इसी भावमयी, तन की कांक्षा हो, वह अपने ही तन का ध्यान करे, नहीं तो किसी मुक्त, पवित्र, प्रतापी, सतोगुण सम्पन्न, दिव्य पुरुष की मूर्त्ति को अपना प्रिय ध्येय, बनाना चाहिये.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि जो वृत्ति तीनों आवरणों को पार कर गयी, तो उस निराकार का दर्शन होगा. यदि वृत्ति पवित्र आत्मा के ध्यान में मग्न हो गयी, तो वह दिव्य गुणों से पूर्ण हो जायगा, और उसे नर देह सम्बन्धी सब सिद्धियां भी प्राप्त हो जावेंगी, और जो उसी दृढ़ भावना में मर गया, तो तद्वत दिव्य पुरुष का जन्म पावेगा. या सालोकादिक को प्राप्त होगा.

शि०– किन्तु यह सिद्धि भी तो तभी प्राप्त होगी, जब उसकी चैतन्य

मूर्त्ति का ध्यान करेगा, वरना जड़ मूर्त्ति के ध्यान से कदाचित् ध्याता की वृत्ति पथरा जावे ?

गु०— तो भी कुछ चिन्ता नहीं.

शि०— क्यों ?

गु०— क्योंकि वृत्ति पथरा जाने से भी सुख, दुख का भान नहीं होता, जैसे सुषुप्ति अवस्था में.

शि०— किन्तु यह अज्ञान दशा का मोक्ष है; जैसे क्लोरो फार्म के द्वारा सुख, दुख का अभाव होता है ?

गु०— इसलिये उस दिव्य पुरुष की मूर्त्ति में उसकी दिव्य चैतन्य आत्मा की प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिये.

शि०— किस तरह ?

गु०— विधिवत दृढ़ भावना से.

शि०— यह बात कब संभव हो सकती है ?

गु०— ईश्वर ने वृत्ति को ऐसी ही अद्भुत शक्ति दी है, जो भावना मात्र से तद्वत गति हो सकती है.

शि०— तो क्या भावना मात्र से उसकी आत्मा उस मूर्त्ति में आ जावेगी?

गु०— अवश्य ! विधिवत दृढ़ भावना से आ जावेगी.

शि०— किस तरह ?

गु०— जिस तरह चक्र चिन्तन में दृष्टि योग द्वारा तिपाई में या पात्र पर आत्मा, आ उपस्थित हो सकती है.

शि०— यदि उसकी आत्मा न आ सकती हो तो ?

गु०— तो अपनी दृढ़ भावना ही से उस मूर्त्ति को सजीव तथा उस दिव्य पुरुष के दिव्य गुणों से परिपूर्ण मानले.

शि०— किन्तु सत्कार क्यों करे ?

गु०— क्योंकि पात्र में आयी हुई, पवित्र आत्मा के सत्कार के लिये, उसी पात्र पर पुष्पादि डाले जाते हैं, और उसके सन्मुख प्रार्थना आदि की जाती है, किन्तु यह सत्कार पात्र का न समझा जाकर, उसी पवित्र आत्मा का समझा जाता है.

शि०— इस भाव से उसकी पूजा क्यों करे ?

गु०— क्योंकि यदि उसके ध्यान द्वारा हमारी अन्तर्मुख वृत्ति न भी हुई, तो भी उस दिव्य पुरुष की कृपा तथा प्रभाव से तद्वत गति या सालोकादिक की सिद्धि तो अवश्य होगी, नहीं तो दिव्य जन्म.

शि०— तो क्या महानुभावों का भी पूजन किया जा सकता है ?

गु०— अवश्य किया जा सकता है, क्योंकि पूजन का अर्थ सत्कार है, और यह पुरानी सभ्यता का गौरव है.

शि०— मूर्त्ति के सन्मुख नाना प्रकार के वाद्य क्यों बजाये जाते हैं ?

गु०— क्योंकि वे नाद, अनहद की प्रतिच्छाया मात्र हैं, और जब तक हमें नादों का व्यवहारिक ज्ञान न हो जावेगा, तब तक हम अनहद गत अभिलाषित नाद को किस तरह पा सकेंगे, तथा उसकी सूक्ष्म ध्वनि में किस तरह वृत्ति लीन कर सकेंगे, सिवाय इसके द्वारा चिन्तक का मन प्रफुल्लित हो, कांक्षित नाद ध्वनि के साथ-साथ अपने ध्येय में लवलीन होकर, दिव्य आत्मा की बधाई मनाता है.

शि०— आरती क्यों की जाती है ?

गु०— क्योंकि यह, उस अनहद गत प्रभा की प्रति छटा दर्शाती, ध्येय की दीप्ति बढ़ाती, तथा दिव्यात्मा का सन्मान प्रदर्शित करती हुई, चिन्तक को उत्साहित कर, उसकी भक्ति दृढ़ाती है और अनेक दोषों को हरती है.

शि०— यदि हमारी वृत्ति उस बाह्य मूर्त्ति में प्रविष्ट हो लय प्राप्त कर सके, तो क्या होगा ?

गु०— परकाया प्रवेश तथा अन्य रूप धारण की शक्ति प्राप्त हो जावेगी.

शि०— क्यों ?

गु०— क्योंकि इस, रेचक प्राणायाम के संयम द्वारा प्राण को बाहर स्थित करने से शरीर बंधन के संस्कार शिथिल हो जाते हैं.

शि०— क्या दिव्य पुरुष की मूर्त्ति में ईश्वर का भी ध्यान कर सकते हैं ?

गु०— उस मूर्त्ति में ही क्या, किन्तु अखिल संसार के हर स्थूल तथा सूक्ष्म पदार्थ मात्र में उस प्रभू का ध्यान किया जा सकता है.

शि०— क्यों

गु०— क्योंकि परमात्मा सब में व्यापक व्याप्यभाव से व्यापा हुआ है, जिस तरह जल में कज्जी और कज्जी के हर अंश में जल व्याप्त है. उसी तरह ब्रह्म में जगत और जगत के हर अंश में ब्रह्म व्याप्त है. और जिस तरह कज्जी पर विचरने वाला कीड़ा इच्छा होते ही जब चाहे तब; और जहां चाहे तहाँ, झट नीचे सिर घुसा, जल पा लेता है. उसी तरह हम दृढ़ प्रेम से जब चाहें तब, और जहां चाहें तहां, अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा उसे पा सकते हैं.

शि०— इस सिद्धांत द्वारा, हम उसका पूजन तथा कीर्त्तन किस तरह कर सकते हैं ?

गु०— क्योंकि जिसको, जहां, जिस मार्ग होकर स्वर्ण प्राप्त हुआ है, या प्राप्त हो सकता है, वह उसी स्थान तथा उसी मार्ग सहित स्वर्ण को अपना सर्वस्व समझ उसका आदर तथा गुण कीर्त्तन करता है, या अभिरुचि रखता है; उसी तरह हमको जिसके अन्तर्गत, अन्तर्मुखत्व द्वारा वह प्राप्त हुआ है, या प्राप्त हो सकता है, उसी को हम अपना सर्वस्व समझ, उसका पूजन तथा कीर्त्तन करते हैं.

शि०— जब कि वह सर्वव्यापो है, तो फिर क्योंकर उसका एक ही, ध्येय स्थल निर्माण कर लेना योग्य है ?

गु०— क्योंकि प्रतिदिन, नित नये ध्येय के बदलते रहने से वृत्ति अत्यन्त चंचल हो जायगी, तो फिर वह अन्तर्मुखत्व को क्योंकर प्राप्त हो सकेगी; तब क्या ईश्वर, विदेह. मुक्ति, जीवन मुक्ति, जड़ मुक्ति, सालोकादि मुक्ति, दिव्यदेह, नरदेह, शारीरिक ज्ञान, दिव्य ज्ञान, सामर्थ्य, सिद्धि, परकाया प्रवेश आदि में से एक का भी प्राप्त होना संभव है ?

शि०— जब हमारी वृत्ति अन्तर्मुख हो, उस पद तक पहुंच जावेगी, तब तो हमें किसी ध्येय की आवश्यकता न रहेगी ?

गु०— तब तो अखिल संसार ही, ब्रह्ममय दर्शेगा, फिर आवश्यकता किस बात की.

शि०– जिनके माता, पिता, स्वामी, स्वामिनी, गुरु आदि विद्यमान हों, तथा जिन्हें उनकी अहोरात्र सेवा, शुश्रुषा करनी पड़ती हो, उसकी वृत्ति किस तरह अन्य के ध्यान में लग सकती है.

गु०– उन्हें परकीय ध्यान की कोई आवश्यकता नहीं !

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि वे इतर मूर्त्ति के समान उन्हीं को प्रकृति पुरुष, शिव शक्ति, दत्तात्रय आदि मान, निच्छल सेवा करते हुए, किसीमें वृत्ति लीन कर दें; तो भी उन्हें उपरोक्त सिद्धि हो सकती है.

शि०– यदि वे विद्यमान न रहें तो ?

गु०– तो उनकी प्रति मूर्त्ति को उसी पूज्य भाव से देखते हुए, वृत्ति को लीन करें, तो भी तद्वत ही फल प्राप्त होगा.

शि०– अन्त समय कोई काम न आवेगा, ऐसा क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि अन्तको अधर्मका साथी कोई नहीं होता, इसलिये किसी के वास्ते अधर्म करना ठीक नहीं.

शि०– तो क्या माता, पिता की सेवा न करते हुए, उन्हें त्याग देना ठीक है ?

गु०– नहीं ! नहीं !! कदापि नहीं !!!

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि जिनके उपकार का बदला देना ही असंभव है, उनके साथ ऐसा निन्दनीय वर्त्ताव करना भयंकर कृतघ्नता है; मनुस्मृति देखो ! इसलिये ऋणी के समान यावज्जीवन उनकी सेवा आदि कर उऋण होना चाहिये.

शि०– फिर क्यों भरत, ध्रुव तथा शुकदेवजी ने त्यागे ?

गु०– (१) भरत जी केवल अपनी माता की कुबुद्धि के कारण अप्रसन्न हो गये थे, किन्तु त्यागा नहीं; बल्कि जन्म तक निर्वाह किया.

(२) ध्रुवजी माता की आज्ञा से ही तप करने गये थे और फिर लौट कर उन्होंने माता पिता की यथा योग्य सेवा की.

(३) त्यक्त माता पिता के दुखित होने से शुकदेव सरीखे महाज्ञानी को भी बड़ी तपश्चर्या द्वारा न आत्मज्ञान, न ब्रह्मज्ञान और न कुछ सिद्ध हुआ, अन्तको जब वापिस आकर उनकी सेवा की और आशीर्वाद पाया, व जब उनकी आज्ञा से जनक जी के पास गये, तब कहीं उन्हें आत्मज्ञान आदि प्राप्त हुआ.

शि०– ऐसा क्यों ?

गु०– क्योंकि अवज्ञा, परपीड़ा, अपकार आदि के कुसंस्कार; आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान, तथा सुकार्य्य के अवरोधक हैं.

दोहा

ओतप्रोत प्रभु जग रमे, जल कज्जी कृमि न्याव ।
याते ताही भक्ति सों, चाहे जामें ध्याव ।।१।।

याही ते हर शास्त्रने, भिन्न बताया ध्यान ।
जामन जामें रत भया, ताव्है तामें ज्ञान ।।२।।

नाम रूप कज्जी विषै, जहं चाहे तहं पैंठ ।
कृमि साधक आपहि लखे, निश्चय कर तज ऐंठ ।।३।।

जल के पात्र अनेक में, रवि दर्शै वो एक ।
बड़ में होय न वो बड़ो, लघु में होय न नेक ।।४।।

तिमि जगकी सब वस्तु में, प्रभु दर्शै वो एक ।
भिन्न-भिन्न के कारणे, होय विषमना नेक ।।५।।

दुख दे आवागमन ये, नाना योनि भ्रमाय ।
दुर्लभ नर तनके बिना, कबहुं न मुक्ती पाय ।।६।।

अन्त रहै जो ध्यान मन; जीव वही तन पाय ।
रचो अधोगति सों डरी, नरको ध्येय नराय ।।७।।

होय दिव्य सों दिव्य गति, सम सों होय समान ।
अध सों होवै अधोगति, ध्येय यथा रुचि मान ।।८।।

सोरठा

मूरत को ये गूढ़, रहस अलौकिक है महां ।
ता बरणौं कस मूढ़, कहँ ये अद्भुत मैं कहां ।।१।।
योग भक्ति को मूल, सब रिद्धी सब सिद्धि प्रद ।
नाशक भव त्रयशूल, देत स्वर्ग अपवर्ग पद ।।२।।
नतरु दिव्य तन देत, मनुज जन्म दुर्लभ तदा ।
मन सों जो ये घेत, लहैं न दुर्गति वे कदा ।।३।।

उपदेश २३

मन्त्र

शि०- मंत्र किसे कहते हैं ?

गु०- जिसका मनन किया जावे, उस मनन शील को मंत्र कहते हैं.

शि०- मंत्र क्या बात जताता है ?

गु०- इच्छा शक्ति तथा क्रिया शक्ति का प्राकृतिक उपयोग जताता है.

शि०- विचार, सम्मति, गूढ़ तथा गुप्त बात को भी मंत्र क्यों कहते हैं ?

गु०- क्योंकि मंत्र विचार शक्ति बढ़ाने वाले, उपयुक्त सम्मति देने वाले गूढ़ तथा गुप्त बात को दर्शाने वाले भी हैं.

शि०- ये अधिकार किन मंत्रों को प्राप्त है ?

गु०- वैदिक मंत्रों को !

शि०- मंत्र का अर्थ सत्कार क्यों होता है ?

गु०- क्योंकि मंत्रों द्वारा ईश्वर तथा दिव्य पुरुषों का सन्मान भी किया जाता है.

शि०- यह अधिकार किन मंत्रों को प्राप्त है ?

गु०- औपासनिक मंत्रों को.

शि०- मंत्र कितने प्रकार के हैं ?

गु०- चार प्रकार के हैं, अर्थात् वैदिक, पौराणिक, तांत्रिक तथा सिद्ध महात्माओं के वाक्य.

शि०- बीज मंत्रों की रचना किसके आधार पर हुई है ?

गु०- प्रकृति के.

शि०- अच्छा ! क्लीँ, को क्यों कामद तथा मोक्षद कहते हैं ?

गु०- (१) क्योंकि (क)=जल, (ल)=पृथ्वी, (ई)=शक्ति तथा(ँ) बिन्दु=अर्द्ध मात्रा; के योग से बना है, अर्थात् जल तथा पृथ्वी तत्व के योग से कफकारी पदार्थ उपजता है, पर कफकारी द्रव्य वीर्य्यवर्द्धक होता है, किन्तु वीर्य्य में शक्ति मिलने से काम उपजता है; पर अर्द्ध मातृ का उर्द्ध बिन्दु कर तुर्य्यातीत पद तक पहुंचा सकती है, इसलिये, क्लीँ कामद तथा मोक्षद बीज कहाता है.

(२) फिर देखो ! (क)=कंठ्य, (ल)=दंत्य, (ई)=तालव्य, (ँ)=सानुनासाक्य है; जिन चारों के योग से क्लीँ बना है, इसलिये क्लीँ के जपने से इन चारों स्थलों में एक साथ बारम्बार यजन होता है, किन्तु इन चारों ही स्थलों से सदा दिव्य जल टपका करता है, जो अमृत तुल्य गुणकारी है, इसलिये उस श्राव के यजन से कामद शक्ति उपजती है, और वही अर्द्ध मातृका के संयम से मोक्षद हो सकती है.

शि०- ये जल क्योंकर श्रवता है ?

गु०- क्योंकि कंठ से लेकर मूर्द्धन्य स्थान के ऊपर तक उदान वायु का निवास है, वह प्राण वायु से मिल जल बन श्रवता रहता है; अर्थात् बहुतसी जल की वाष्प, जो हम अहोरात्र निश्वास द्वारा बाहर निकाला करते हैं, उसका कुछ भाग निकलने के पूर्व ही, हम स्वास द्वारा प्राण वायु भीतर पहुंचाया करते हैं, जिससे भीतरी वाष्प प्राणवायु के संपर्क से जल बन, श्रवती रहती है.

शि०- यह जल अमृत समाम गुणकारी क्यों कर होता है ?

गु०- क्योंकि मस्तिष्क के अन्तर्गत एक अमृत समान गुणकारी द्रव पदार्थ है, उसके स्पर्श मात्र से वह वाष्पीय जल गुणकारी हो जाता है.

शि०– (हुँ) को, क्यों शिव तथा आकाश बीज कहते हैं ?

गु०– क्योंकि इसके लगातार जप के झटके से, चैतन्य हृदय सीधा हो, दिव्य प्रकाश में मग्न होता है, जिसके द्वारा महत् कल्याण होता है, इसीलिये इसे शिव अर्थात् कल्याण का अथवा दिव्य प्रकाश अर्थात् आकाश का बीज, कहते हैं.

शि०– ह्राँ ह्रीँ ह्रुँ आदिक किसके रूपान्तर हैं ?

गु०– इसी (हुँ) बीज के.

शि०– हकार का उच्चारण तो कंठ से होता है, वह क्यों कर चैतन्य हृदय को सीधा कर सकता है ?

गु०– क्योंकि वास्तविक में हकार की ध्वनि, नाभि चक्र के नीचे से उठ, त्रिकुटी तक पहुंचती है, कंठ से तो मात्र उसका उच्चारण विदित होता है. और सिवाय हकार के कोई वर्ण हृदय को वैसा झटका नहीं दे सकता.

शि०– फिर क्यों हर महाप्राण हृदय को झटका देता है, जैसे ख आदि ?

गु०– क्योंकि वह पिछले अल्प प्राण से, हकार मिल बना है, इसीलिये खकार भी आकाश बीज मानलिया गया है, किन्तु शेष महाप्राण अन्य २ काम में युत किये जाते हैं. अर्थात् निष्केवल हकार के और कोई वर्ण हकार का, वह काम नहीं कर सकता.

शि०– प्रणव को तार बीज क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि वह अपनी प्राकृतिक उर्द्ध ध्वनि द्वारा सब आवरणों को हटा, त्रिताप को हन, निज रूप में लय प्राप्त कर, उस निर्विकल्प पद तक पहुँचा, आवागमन के चक्कर से उद्धरता है; इसलिये उसे तार बीज कहते हैं.

शि०– किन मंत्रों से सर्व साधारण को लाभ पहुंच सकता है ?

गु०– जिनके द्वारा नाना प्रकार के रोग तथा विष वाधादिक निवृत्त हो सकती हैं.

शि०– मंत्र की सिद्धि कब हो सकती है ?

गु०– जब विधिपूर्वक सत्य संकल्प के साथ अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा मंत्र

का मनन करते हुए, उसी के ध्यान में लवलीन हो जाय, तब सिद्धि हो सकती है.

शि०– मंत्र का जपना वास्तविक में क्या है ?

गु०– इच्छा शक्ति का यजन करना है.

शि०– झाड़ना, फूंकना वास्तविक में क्या है ?

[illegible]– क्रिया शक्ति का यजन करना है.

शि०– यंत्र किसे कहते हैं ?

गु०– मंत्र के संक्षेप रूपान्तर को.

शि०– तंत्र किसे कहते हैं ?

गु०– व्यवस्था को.

शि०– यंत्र, तंत्र के प्रयोग, क्या लाभ पहुंचाते हैं ?

गु०– ये भी विषबाधा तथा रोगों के हरण करने में अद्वितीय होते हैं.

शि०– मंत्र, यंत्र, तंत्र की सिद्धि किसके द्वारा होती है ?

गु०– उसी इच्छा तथा क्रिया शक्ति के यजन द्वारा.

शि०– यजन की शक्ति किसके द्वारा जानी जाती है ?

गु०– योग तथा विज्ञान द्वारा.

शि०– इसलिये हमको क्या उचित है ?

गु०– कि हम सदा अपनी इच्छा शक्ति तथा क्रिया शक्ति के यजन करने तथा अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा सत्य संकल्प सिद्धि करने में लगे रहें, जिससे हमारी निस्केवल इच्छा ही सिद्ध मंत्र का काम दे सके, किन्तु मंत्र सिद्धि के लोभ से कभी उन धूर्त्त तथा ढोंगियों के जाल में न फसें, जो ठगने के लिये जाड़ा फूंकी तथा मंत्र तंत्रादिक का झूंठा आडंबर फैला सिद्ध बन बैठते हैं, और अन्त को हत्यारों के समान विश्वासघात करते हैं.

शि०– कौनसे मंत्रादिक त्याज्य हैं ?

गु०– जो सृष्टि नियम के प्रतिकूल उपदेश देते हों.

शि०– ऐसे भ्रष्ट मंत्रादिक किसने बनाये ?

गु०– भ्रष्टाचरणियों ने.

शि०– क्यों ?

गु०– लोगों को ठगने, धोका देने तथा अपने समान भ्रष्ट बनाने के लिये, जिसमें हमें कोई भ्रष्ट न कहे.

शि०– विद्वान लोगों ने, वैदिक मंत्र द्वारा क्या लाभ उठाया ?

गु०– उन्होंने मंत्रों के भावार्थ के अनुसार बड़े-बड़े यंत्र रच, उनके तंत्र के लाभ से जगत को आश्चर्यान्वित किया, तथा अनेक प्रकार की विद्या निकाल सबको कृतार्थ किया.

शि०– हम क्यों कर मंत्र, यंत्र तथा तंत्र को दोष लगाते हैं ?

गु०– क्योंकि हम नव दुर्गा के नवार्णव मंत्र के यंत्र का परिपूर्ण तंत्र नहीं जानते.

शि०– इसका भावार्थ क्या है ?

गु०– कि जब तक हम उस दुस्साध्य कर्षण शक्ति के नवों भेद का न विचार, न उपयोग, न विधि जानते हैं, और न तद्वत कुछ कर ही सकते हैं, तब तक सभी मंत्र, यंत्र तथा तंत्र मिथ्या प्रतीत होते हैं.

दोहा

वैदिक मंत्र विचार जो, यंत्र रचत विद्वान ।
विधिवत तिनके तंत्रसों, तिनको व्है कल्यान ।।१।।
मंत्र नवार्णव यंत्र का, ठीक न जाने तंत्र ।
तापर हम फूलत फिरें, नाहक निन्दें मंत्र ।।२।।
इच्छा कर्षण शक्ति को, भाव जतावत मंत्र ।
की इनके नित यजन सों, सिद्ध होत सब तंत्र ।।३।।
अन्तर्मुख संकल्प सत, मनन मंत्र युत ध्यान ।
विधिवत अस लवलीन जप, देवै सिद्धि महान ।।४।।

उपदेश २४

वेद

शि०– वेद क्या वस्तु है ?

गु०– न वे कागज वेद हैं, और न वह स्याही, किन्तु वही ईश्वर प्रणित

वैज्ञानिक नियम वेद हैं. जो चिरकाल विद्यमान रहकर, चरा-चर विश्व के समस्त कार्य्य अनायास सुसम्पन्न कर रहे हैं. इसीलिये उस ग्रंथ को भी वेद कहते हैं, जिसमें उन ईश्वर कृत नियमों का परिपूर्ण वर्णन किया गया है.

शि०– वेद शब्द किस धातु से बना ?

गु०– विद् धातु से.

शि०– विद का अर्थ क्या है ?

गु०– जानना, समझना, प्रकाशना, मनन करना, विचारना, विद्यमान रहना आदि.

शि०– इसलिये वेद का अर्थ क्या हुआ ?

गु०– जताने वाला, प्रकाशने वाला, विद्यमान रहने वाला, विज्ञान, प्रकाश, विचार आदि.

शि०– वेद किसका प्रकाशक है ?

गु०– उन विद्याओं का प्रकाशक है, जिसके द्वारा ब्रह्म तथा समग्र जगत यथार्थ बोध हो सकता है.

शि०– उन विद्याओं के क्या नाम हैं ?

गु०– परा, अपरा.

शि०– परा किसको कहते हैं ?

गु०– जिसके द्वारा ब्रह्मका ज्ञान होता है.

शि०– अपरा किसे कहते हैं ?

गु०– जिसके द्वारा सूक्ष्म से लेकर स्थूल तक का पूर्ण प्राकृतिक ज्ञान होता है.

शि०– मोक्ष किसके द्वारा होता है ?

गु०– (१) न केवल परा से, न केवल अपरा से, किन्तु दोनों से.

(२) न केवल कर्म्म से, न केवल ज्ञान से, किन्तु दोनों से.

(३) न केवल आकर्षण से, न केवल निराकरण से, किन्तु दोनों से.

(४) न केवल धन तेज से, न केवल ऋण तेज से, किन्तु दोनों से.

शि०— क्यों ?

गु०— क्योंकि अपरा द्वारा ही परा का ज्ञान होता है, फिर उस परा से ब्रह्मज्ञान हो, मोक्ष मिलता है, अर्थात् प्राकृतिक कर्मों के फल से ब्रह्मज्ञान, फिर उस ज्ञान से मोक्ष मिल सकता है; अवशेष का वर्णन कर्मादेश में हो चुका.

शि०— वेद किस तरह उपजे ?

गु०— ब्रह्मरूपी यज्ञ में, इच्छायुत क्रिया शक्तिरूपी हव्य के यजन से हुतरूपी वेद उपजे.

शि०— वेद कहां हैं ?

गु०— अखिल चराचर जगत में सूक्ष्म रूप से व्याप्त हैं.

शि०— वे प्रथम किस नरतनधारी को प्राप्त हुए ?

गु०— ब्रह्माजी को.

शि०— किनके द्वारा ?

गु०— अंगिरा, सूर्य, वायु तथा अग्नि के संयम द्वारा.

शि०— यहां अंगिरा का क्या अर्थ है ?

गु०— (अं) का अर्थ ब्रह्म है और (गिरा) का अर्थवाणी है, इसलिये ब्रह्मवाणी को अंगिरा कहते हैं.

शि०— ब्रह्मवाणी से ब्रह्माजी को क्या प्राप्त हुआ ?

गु०— उन्होंने ब्रह्मवाणीरूपी यज्ञ में विचाररूपी हव्य के यजन से हुत-रूपी सूक्ष्म वेद तथा फिर उसके प्रभाव द्वारा ब्रह्मज्ञान पाया.

शि०— फिर ब्रह्मा को चारों वेद किस तरह प्राप्त हुए ?

गु०— सूक्ष्म वेद सहित ब्रह्माने ज्ञान के आधार पर अग्नि के संयम से ऋक; वायु के संयम से यजु; सूर्य्य के संयम से साम; तथा सम्मिलित अन्य सब पदार्थों के संयम से अथर्व वेद पाया.

शि०— वेद को श्रुति क्यों कहते हैं ?

गु०— क्योंकि ब्रह्माने ईश्वराज्ञा के अनुसार संयम द्वारा समग्र वेद सुना. तत्पश्चात् अनुभवानुसार ज्यों का त्यों उसे एक वृहत्पुस्तकाकार

में लिखा, किन्तु उसे ऋक, यजु, आदि के विचार से पृथक-पृथक विभाजित न किया.

शि०— तो फिर उस वक्त के ऋषियों को उनका पृथक ज्ञान किस तरह होता था ?

गु०— मंत्रों के गुणों द्वारा होता था, क्योंकि उस वृहद्वेद में ऋक नाम की २१, यजु नाम की १०९, साम नाम की १००० तथा अथर्व नाम की ५० शाखाओं का विस्तार था.

शि०— उस वृहद्वेद को किसने विभाजित किया ?

गु०— व्यास ने.

शि०— क्यों ?

गु०— क्योंकि जब मनुष्यों की धारणा शक्ति घटने लगी, तब उनके अध्ययन के सुभीते के लिये, उस वृहद्वेद को क्रमानुसार विभाजित किया.

शि०— किस तरह ?

गु०— अर्थात् (१) ऋक नामक २१ शाखाओं के विस्तार का २४ संहिताओं में विभाजित कर, उस समग्र का बह्वृच् संहिता नाम-रख, पेल ऋषिको, (२) यजु नामक १०९ शाखाओं के विस्तार को १०१, संहिताओं में विभाजित कर, उसका नाम निगद संहिता रख, वैशम्पायन को (३) साम नामक १००० शाखा मंत्रों के विस्तार को १००० संहिताओं में धर उसका नाम छन्दोग् रख, जैमिनी को (४) अथर्व नामक ५० शाखाओं को १२ संहिताओं में धर, उसका नाम अथर्वांगिरस रख, सुमन्तु को पढ़ाया.

शि०— फिर चारोंने क्या किया ?

गु०— पेलने ऋक की २४ संहिता पृथक-पृथक अपने २४ शिष्यों को, और वैशंपायन ने यजुर्वेद की १०१ में से ८६ संहिता ८६ शिष्यों को, इसी तरह जैमिनीने हजार तथा सुमन्तु ने १२ शिष्यों को पृथक-पृथक संहिता पढ़ाई.

शि०— अच्छा ! तो फिर निगद नामक यजुर्वेद की शेष १५ संहित कहां गयी ?

गु०— इन संहिताओं का ब्राह्मण भाग पृथक न होने से उसमें वैशंपायन की गति कम थी, इसलिये उन्होंने उसे वैसाही रक्खा था, किन्तु जब तुच्छ बात पर अप्रसन्न हो, याज्ञवल्क्य से ८६ संहिता वापिस ले, निकाल दिया, तब याज्ञवल्क्यने सूर्य्य का संयम कर, उसका ब्राह्मण भाग छांट, संहिताओं के पीछे रख, अपने १५ शिष्यों को पढ़ाया.

शि०— ब्राह्मण भाग किसे कहते हैं ?

गु०— जो विधि, निषेध, नाम ध्येय, अर्थवाद तथा उपनिषद द्वारा वेद मंत्रों का निर्णय करता है.

शि०— वेद मंत्रों का गूढ़ रहस्य ब्राह्मण भाग में किस ढंगपर दिया होता है ?

गु०— बहुधा अलंकार रूप आख्यायिकाओं में.

शि०— किस वेद का कौन उप वेद है ?

गु०— ऋक का आयुर्वेद, यजु का धनुर्वेद, सामका गांधर्व वेद, तथा अथर्वण का शिल्प शास्त्रादि अनेक विद्या.

शि०— वेद के छः अंग कौनसे हैं ?

गु०— शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष.

शि०— आजकल ऋग वेद की कौन-कौन शाखाएं प्रचलित हैं ?

गु०— २४ शाखाओं में से केवल शाकली, अश्वलायन तथा शांखायन वाले पाये जाते हैं, किन्तु शाकली की संहिता है, पर ब्राह्मण भाग नहीं; और शेष दोनों के ब्राह्मण भाग हैं, पर संहिता नहीं; इस हिसाब से ऋग्वेद की २३ संहिता, २२ ब्राह्मण तथा २१ शाखायें लुप्त हो गयी; केवल एक संहिता दो ब्राह्मण तथा तीन शाखायें बची हैं.

शि०— यजुर्वेद की कौन-कौन शाखायें प्रचलित हैं ?

गु०— यजुर्वेद की १०१ शाखाओं में से केवल शुक्ल नामक माध्यान्दिनीं,

काण्वी तथा कृष्ण नामक तैत्तिरीवाले पाये जाते हैं, और उनकी तीनों संहिता व ब्राह्मण भी मिलते हैं; किन्तु शेष ९८ शाखावाले तथा उनकी उतनी ही संहिता व ब्राह्मण भाग लुप्त हो गये.

शि०— सामवेद की कौन-कौनसी शाखायें प्रचलित हैं ?

गु०— सामवेद की १००० शाखाओं में से केवल काथुमी और राणायनी वाले पाये जाते हैं, और उन दोनों की संहिता भी मिलती है, किन्तु राणायनी का ब्राह्मण नहीं मिलता; अर्थात् ९९८ शाखा तथा उनकी उतनी ही संहिता व ९९९ ब्राह्मण भाग लुप्त हो गये

शि०— अथर्वणवेद की कौन-कौन शाखा प्रचलित हैं ?

गु०— अथर्व वेद की ५० शाखाओं में से केवल पैप्पलादि और शौनकी शाखावाले पाये जाते हैं तथा उनकी दोनों संहितायें पायी जाती हैं; किन्तु शौन की का ब्राह्मण भाग नहीं मिलता; अर्थात् ४८ शाखा तथा उतनी ही संहिता और ४९ ब्राह्मण लुप्त हो गये,

शि०— एकन्दर शाखाओं में कितनी प्रचलित हैं ?

गु०— एकन्दर ११३७ शाखाओं में से ११२७ सर्वथा लुप्त हो गयी; केवल १० अवशिष्ट हैं, किन्तु उनमें से भी अर्द्ध लुप्त हैं, अर्थात् मात्र ५ शाखा ही पूर्ण रूप हैं.

शि०— एकन्दर संहिताओं में से कितनी पायी जाती हैं ?

गु०— ११३७ में से ८ संहिता और ७ ब्राह्मण पाये जाते हैं, शेष ११२९ संहिता तथा ११३० ब्राह्मण भाग का पता नहीं.

शि०— उपनिषद कितने थे ?

गु०— हर संहिता के पीछे एक २ उपनिषद के हिसाब से ११३७ थे, किन्तु आज कल केवल १०८ पाये जाते हैं.

शि०— हिरण्यगर्भ किसे कहते हैं ?

गु०— उस प्राकृतिक त्रिगुणात्मक महत्तत्वको कहते हैं, जिसके अन्तर्गत अनन्त ब्रह्माण्ड स्थित हैं; और जो सूर्य्यादिकों को प्रकाशता है.

शि०— वह कैसा है ?

गु०— वह अद्भुत सूर्य्याकार विचित्र तथा अकथनीय प्रकाश से युक्त है.

शि०— वह कहां पर स्थित है ?

गु०— ब्रह्म के किसी अंश में.

शि०— किस तरह ?

गु०— जिस तरह सरोवर के जिस अंश में प्राकृतिक विकार होता है, उसी अंश में कज्जी आदि उपजती हैं, किन्तु सर्वत्र नहीं; इसी तरह ब्रह्मरूपी सरोवर के जिस अंश में प्राकृतिक स्फुरणा होती है, उसी अंश में यह हिरण्यगर्भ प्रकटता है; किन्तु अन्य अंश में नहीं.

शि०— यह किन नामों से पुकारा जाता है ?

गु०— हिरण्यगर्भ, विराट पुरुष, यज्ञ पुरुष, प्रजापति, महाविष्णु, जगद्योनी, महत्तत्व आदि नामों से पुकारा जाता है.

शि०— यहां पुरुष का क्या अर्थ है ?

गु०— (पुर) का अर्थ अग्रसर होना, व्यापना और (उष्) का अर्थ नष्ट करना है. अर्थात् जो उत्पत्ति, स्थित तथा लयकारी और अनन्त सृष्टियों का पुर है, उसे पुरुष कहते हैं.

शि०— इसके द्वारा हमारा क्या लाभ हो सकता है ?

गु०— जो धीर, उस योनी के अन्तर्गत देखता है, उसे अनन्त ब्रह्मांड दिखायी देते हैं; और जो उस योनी के परे से भी परे पहुंचता है, वह इस आवागमन के दुःख से रहित हो, उस निर्विकार ब्रह्मानन्द को अनुभवता है, अन्य नहीं.

शि०— क्यों ?

गु०— क्योंकि हम इस वक्त उस हिरण्यगर्भ गत किसी एक सृष्टि के जीव हैं; और जब तक हम इस विकार से परे न होंगे, तब तक हमें वह निर्विकार पद नहीं मिल सकता.

शि०— किस तरह ?

गु०— जिस तरह कज्जी पर का कीड़ा, जब तक उस कज्जी के पार न होगा, तब तक उसे निर्विकार जल प्राप्त न होगा.

शि०— किन्तु हम योग द्वारा इस विकार को हटा, उसे पा सकते हैं ?

गु०— निष्केवल योग द्वारा कदापि नहीं.

शि०— क्यों ?

गु०— क्योंकि भक्ति रहित योग साधन का फल, उस नटकी समाधिवत होता है.

शि०— इसलिये वेद ने क्या किया ?

गु०— कर्म्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड के होते हुए भी, उपासनाकाण्ड का उपदेश दिया.

शि०— हिरण्यगर्भ अर्थात् महाविष्णु की सोलह कला कौनसी हैं ?

गु०— (१) ईक्षण (२) प्राण (३) श्रद्धा (४) आकाश (५) वायु (६) अग्नि, (७) जल (७) पृथ्वी (९) इन्द्रिय (१०) मन (११) अन्न (१२) वीर्य्य (१३) तप (१४) मंत्र (१५) कर्म्म (१६) नाम.

शि०— देव किसे कहते हैं ?

गु०— देने, चमकने तथा प्रकाशने वाले को.

शि०— देव शब्द किस धातु से बना है ?

गु०— दिव् धातु से.

शि०— दिव् का क्या अर्थ होता है ?

गु०— (१) क्रीड़ा करना (२) जीतने की इच्छा करना (३) व्यापार करना (४) सोना (५) अहंकार करना (६) तेजस्वी होना (७) स्तुति करना (८) आनन्द करना (९) इच्छा करना (१०) गति करना, ये दश अर्थ होते हैं.

शि०— गति किसे कहते हैं ?

गु०— चाल, दशा, ज्ञान, प्राप्ति को गति कहते हैं.

शि०— तेतीस देव कौनसे हैं ?

गु०— ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, १ इन्द्र, १ प्रजापति इन्हें मिलाकर कुल तेतीस देव हैं.

शि०— ८ वसु कौन से हैं ?

गु०— सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी.

शि०— इन्हें वसु क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि इन सब में जीवधारी बसते हैं, और सब में इन का तेज बसा हुआ है.

शि०– ११ रुद्र कौनसे हैं ?

गु०– प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय, और जीवात्मा मिल ग्यारह हैं.

शि०– इन्हें रुद्र क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि जब ये शरीर का त्याग करते हैं, तब उसे अथवा उस देही के संबंधियों को रुलाते हैं; इसीलिये रुलानेवाले को रुद्र कहते हैं.

शि०– १२ आदित्य कौनसे हैं.

गु०– क्योंकि यह सूर्य्य बारह संक्रांतियों के भोगानुसार सब पदार्थों का बारह प्रकार से आदन करता है, इसलिये सूर्य्य की ये बारह कलाएं आदित्य के नाम से पुकारी जाती हैं.

शि०– इनके नाम क्या हैं ?

गु०– (१) विष्णु (२) अर्य्यमा (३) विवस्वान (४) अंशुमान (५) पर्जन्य (६) वरुण (७) इन्द्र (८) धाता (९) मित्र, (१०) पूषा (११) भग (१२) त्वष्टा.

शि०– आदन किसे कहते हैं ?

गु०– आकर्षण तथा विकर्षण आदि करने को.

शि०– वे बारह आदित्य और किन नामों से पुकारे जाते हैं ?

गु०– गोविन्द, भानु, इन्द्र, रवि, गभस्ति, यम, स्वर्णरेता, दिवाकर, मित्र, विष्णु, अरुण, सूर्य्य के नाम से.

शि०– सूर्य्य की किरणें किन नामों से पुकारी जाती हैं ?

गु०– गो, गभस्ति, अभिषु, रश्मि, उस्र, वसु, मरीचि, नाड़ि, दीधिति, हस्त, भानु, कर, पाद, मयूख आदि नामों से.

शि०– मुख्य किरणें कितनी हैं ?

गु०– सात हैं; सुषुम्ण, हरिकेश, विश्वकर्म्मा, सूर्य्य, विष्णु, सम और सर्व बन्धु.

शि०– इन्द्र किसे कहते हैं ?

गु०– विद्युत शक्ति अर्थात् बिजली को.

शि०– विद्युत किन नामों से पुकारी जाती है ?

गु०– गो, चपला, दामिनि, इन्द्र, बिजली, वज्र.

शि०– प्रजापति किसे कहते हैं ?

गु०– उस महायज्ञरूपी महत्तत्व को प्रजापति आदि कहते हैं, जो चैतन्य की इच्छायुत क्रिया शक्ति के यजन से उपजा है, और जो अनन्त सूर्य्यों को प्रकाशता हुआ, उनके द्वारा वायु बहाता, अग्नि उपजाता जल वर्षाता, तथा अनेक पिंडों को गति आदि देता हुआ, सबकी उत्पत्ति, स्थिति तथा लय करता रहता है; इसी त्रिगुणों के कारण यही त्रिशक्ति तथा त्रिदेव कहलाता है, इसीलिये इस महत्तत्व को ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र भी कहते हैं.

शि०– यहां पर ब्रह्मा किसे कहते हैं ?

गु०– आकर्षण रूप वह वर्द्धक शक्ति जो सब पदार्थ उपजा रही है.

शि०– यहां पर रुद्र किसे कहते हैं ?

गु०– विकर्षण रूप वह नाशक शक्ति जो सब को नसाती है.

शि०– यहां पर विष्णु किसे कहते हैं !

गु०– आकर्षण विकर्षण की वह सम्मिलित स्थंभन शक्ति जो समग्र जगत को धारती, ठहराती तथा पालती है.

शि०– इससे तो यह सिद्ध होता है, कि सब देव जड़रूप हैं, फिर क्योंकर वेद में इनकी तथा हर पदार्थ की ईश्वर तुल्य स्तुति आदि की गयी है ?

गु०– यह उन पदार्थों की प्रार्थनादि नहीं, किन्तु तद्गत चैतन्य की है.

शि०– क्या प्रमाण ?

गु०– क्योंकि वह चैतन्य हर पदार्थ में व्यापा हुआ है, जिस तरह कज्जी में जल, किन्तु जिस पदार्थ का जो रस रूपी जल होता है, वह उसी पदार्थ के नाम से पुकारा जाता है; यथा कज्जी जल; अनार जल, अंगूर जल आदि; उसी तरह हर पदार्थ गत चैतन्य उसी नाम से पुकारा जाता है, जो स्वयं उस पदार्थ का नाम है, इसलिये जब जिस पदार्थ से काम लेना होता है, तब उसी नाम से तद्गत चैतन्य को ध्याया जाता है.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि जिसका काम उसी से लेना, यही वास्तविक सिद्धिदाता, योग विद्या की प्राकृतिक संयम की विधि है, और इसी सिद्धांत के प्रताप से महात्माओं में हर वस्तु के गुणदोष जान, अनेक विद्याएं निकाली. इसीलिये वेदने कहा है, कि सूक्ष्म से लेकर स्थूल तक जहां कहीं मन लगे, उसी के अन्तर्गत परमात्मा को ध्याओ.

शि०– ऐसा क्यों कहा ?

गु०– क्योंकि परमात्मा में यह समग्र संसार इस तरह स्थित है, जिस तरह सरोवर में कज्जी आदि और संसार के हर पदार्थ में वह उसी तरह व्याप्त है, जिस तरह कज्जी के हर भाग में जल, और जिस तरह कज्जी पर का कीड़ा इच्छानुसार चाहे जिस भाग में सिर घुसा, जल पा सकता है; उसी तरह हम भक्ति पूर्वक चाहे जिस पदार्थ में अन्तर्मुख हो, उस चैतन्य को पा सकते हैं.

शि०– किन्तु उसे किस नाम से ध्याना चाहिये ?

गु०– उसी नाम से ध्याना चाहिये, जिस प्रकार की सिद्धि हम चाहें.

शि०– किस तरह ?

गु०– जिस तरह हमारी इच्छा उन्नति की हो तो, ब्रह्मा. त्रितापनाशन की हो तो रुद्र निजरक्षण की इच्छा हो तो विष्णु या शिव, बल या वेग बढ़ाने की हो तो वायु या शक्ति, प्रताप बढ़ाने की हो तो सूर्य्य के नाम से तन्दत चैतन्य का अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा ध्यान करना चाहिये, इसी तरह और भी जानो.

शि०– उस चैतन्य प्रभू को ब्रह्मा क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि वह उत्पादक तथा वर्द्धक शक्ति में भी व्याप्त है.

शि०– उसे रुद्र क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि वह रुलाने वाली विनाशक शक्ति में भी व्याप्त है.

शि०– उसे विष्णु क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि वह सर्वत्र व्याप्त है.

शि०– यदि हम जिस प्रकार की सिद्धि चाहते हैं, उसके लिये विरुद्ध नाम से ध्यायें, तो क्या होगा ?

गु०– वैसा ही हाल होगा, जैसा कि दीवानी का आवेदन पत्र, फौजदारी में दे देने से होता है, अर्थात् वह निवेदन पत्र निरर्थक समझा जाता है, चाहे उन दोनों सीगों का अधिकारी एक ही क्यों न हो.

शि०– उसका ऐसा कौनसा नाम है, जो सब प्रकार की सिद्धि देता और सर्वत्र ध्याया जाता है ?

गु०— ॐ तथा राम नाम.

शि०— वह परमात्मा कैसा है ?

गु०— शुद्ध चैतन्य है.

शि०— तो फिर क्यों हर मत मतांतरवाले उसका एक न्यारे ही ढंगका रूप समझते हैं ?

गु०— अपनी-अपनी भावना के कारण.

शि०— तो क्या जैसी भावना करो, वह वैसाही भासता है ?

गु०— अवश्य.

शि०— क्यों ?

गु०— क्योंकि वृत्ति में ऐसा ही प्राकृतिक गुण है, तिसपर वह शुद्ध दर्पण के समान और हम सब पक्षी के समान हैं.

शि०— यह कथा कैसी है ?

गु०— उधर किसी एक कुटी में एक बड़ा दर्पण रखा हुआ था, किन्तु उसके सन्मुख एक पर्दा पड़ा हुआ था, इधर विचरते हुए कई पक्षी उस पर्दे के सन्मुख आ पहुंचे, और उनमें से हर एक ने यही चाहा कि, इस पर्दे के भीतर क्या है, सोच विचार सबसे पहिले हंस घुसा उसने उसके भीतर अपना ही सा अन्य हंस देख, बाहर आ सब से कहा, कि भीतर एक विचित्र हंस है, जो प्रतीत तो होता है, किन्तु पकड़ में नहीं आता; यह सुन मोर घुसा, किन्तु उसे हंस के बदले मोर दिखा, इसलिये उसने बाहर आ, सब से कहा कि हंस झूंठा है, वहां तो केवल एक विचित्र मोर है, जो प्रतीत तो होता है, परंतु पकड़ में नहीं आता; इस बात से हंस चिढ़ा और फिर दोनों परस्पर लड़ने तथा एक दूसरे को झूंठा कहने लगे, इनका मध्यस्थ बन, तोता भीतर घुसा, पर उसे सिवाय तोते के और कुछ न दिखाई दिया, उसने बाहर आ, ज्यों ही तोते का हाल कहा, दोनों उसे मारने दौड़े और कहने लगे, कि यह अपने ही पक्षकी बात बताता है, अन्तको संशय मिटाने के लिये हर पक्षी ने भीतर जा २ कर देखा, परंतु हर एक को अपना निजरूप ही दिखा; इस कारण हर एक के अनुभवका मिलान न होसका और न उनके आपस का झगड़ा मिट सका.

शि०— इसका भावार्य क्या है ?

गु०— अर्थात् वह चैतन्य प्रभू शुद्ध दर्पण के समान और हम सब जीव, पक्षी के समान हैं, इसलिये जो जिस भावना से उस दर्पण रूपी ईशको देखता है, उसे तद्वत ही वह प्रतीत होता है.

शि०— कब हमें उसके शुद्ध स्वरूप का ज्ञान हो सकता है ?
गु०— जब हमारी वृत्ति संकल्प विकल्प से रहित होकर, अन्तर्मुखता को प्राप्त हो.
शि०— परमात्मा सबमें व्यापा हुआ होकर भी निर्लिप्त कैसा है ?
गु०— जैसा आकाश, घट, पट आदि में व्याप्त होकर भी निर्लिप्त है.
शि०— हमारी देह किसके समान है ?
गु०— समग्र ब्रह्माण्ड के समान है.
शि०— क्यों ?
गु०— क्योंकि समग्र ब्रह्माण्ड संबंधि ऐसा कोई भी उदाहरण नहीं, जो इस शरीर पर न घट सकता हो ?
शि०— क्या वृक्ष पर नहीं घट सकता ?
गु०— हां ! किसी कदर घट सकता है.
शि०— क्या हर जड़ चैतन्य प्राणी में सृष्टि होना संभव है ?
गु०— अवश्य संभव है !

सोरठा

आगे रख विज्ञान, तीनों प्रश्न विचारिये ।
मिलै अलौकिक ज्ञान, प्रभुको व्है दृढ़ भक्ति तब ॥

दोहा

प्रेम पियारा जगत को, प्रेमहि से व्है योग ।
प्रेम बिना दो प्रियन में, निश्चय होय वियोग ॥१॥
याते कीजे भक्ति सह, नित प्रति योगाभ्यास ।
अन्तर्मुख व्है तजी तम, लख अन्तर्मुख काश ॥२॥
हटिये जभी विकार सब, दया प्रभू की होय ।
दे हैं दर्शन वे तभी, प्रेम लीन व्है जोय ॥३॥
बिन अपरा के परा जस, बिना कर्म्म जस ज्ञान ।
भक्ति बिना है योग तस, सुरति बिना जस ध्यान ॥४॥

उपदेश २५

मोक्षसार

स्वतंत्रता जीव मात्र की परमप्रिय वस्तु है; कोई परतंत्र तथा बद्ध हुआ नहीं चाहता; किन्तु मोहपाश ऐसी प्रबल है, कि जीव जान बूझकर आप ही उसके पास से बद्ध होकर, दुख पाता है; देखो ! मच्छी, स्वाद के मोह से बद्ध होकर, नष्ट होती है; भ्रमर, सुगंध के मोह से कमल में बद्ध होकर, नष्ट होता है, पतंग, रूप के मोह से दीपक में

गिरकर नष्ट होता है; हाथी, हथनी के मोहसे गर्त्त में गिरकर बद्ध होता है; मृग केवल शब्द के मोहसे बद्ध होकर नष्ट होता है।

देखो ! ये जीव एक-एक विषय के मोहसे बद्ध होकर नष्ट होते हैं; तो कहिये ! इन पांचों विषयों के मोहपाश से बद्ध हुआ–मनुष्य किस तरह मुक्त हो सकता है ? किन्तु जो इनके वशीभूत नहीं होता, वही स्वतंत्र है तथा वही धन्यवाद के योग्य है !

जो इस मोह पंचक को जीत, द्वेष, अभिमान को त्याग, सबको अपनी आत्मा समझ कर, सबका हित करता है; वही इस भूलोक में स्वर्ग तथा मोक्षका स्वाभाविक सुख अनुभवता है या वही चित्तकी वृत्तियों का निरोध कर सकता है, और उसीके शारीरिक संस्कार क्षीण हो सकते हैं !

जिसके स्थूल शरीर के संस्कार शिथिल हो जाते हैं, वह सूक्ष्म शरीर को पाकर इसी वातावरण में अपनी भावना के अनुसार स्वर्ग का सुख या सालोक्य तथा सामीप्य मोक्ष को अनुभवता है !

जिसके स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर के संस्कार शिथिल हो जाते हैं, वह कारण शरीर को पाकर इसी आकाशगत काशावरण में स्वर्ग का दिव्य सुख या सारूप्य तथा सायुज्य मोक्ष को अनुभवता है !

जिसके तीनों शरीर के संस्कार शिथिल हो जाते हैं, वह जीवन्मुक्ति को अनुभवता है ! जिसके तीनों शरीर के संस्कार क्षीण हो जाते हैं, वह विदेह मुक्ति को अनुभवता है !

जीवन्मुक्त तथा विदेहमुक्त जिस परमपद को पाता है, उसे कैवल्य कहते हैं ! जिसे पाकर जीव, आवागमन से रहित हो जाता है !

यदि यत्किंचित् संस्कार अवशिष्ट रह जांय, तो अनन्त कल्पके पश्चात् भी पुनः उत्थान हो जाता है, और फिर से जीव आवागमन के चक्कर में पड़ जाता है ! किन्तु जो सज्जन सदा स्वतः को उस प्रभू के शरण समझ कर, उसे निसदिन ध्याता है, और उसका भय रख कर, कुदरत के अनुसार चलता हुआ, सबका हित करता है, वही चिरकाल के लिये अनायास इस आवागमन के चक्कर से छूट जाता है ! !

दोहा

भैरव चाहत ना कदा, स्वर्ग मोक्ष सुख भोग ।
केवल चाहत प्रभु कृपा, स्वप्नहु में न वियोग ॥

॥ इतिश्री परम गुरुप्रेरित स्वधर्म सर्वस्व सारस्य
मोक्षादेशो नाम–चतुर्थो भागः समाप्तः ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तुः ॥ शुभं भवतु सर्वस्य ॥

॥ हरिः ॐ हर ॥

स्वधर्मसर्वस्व

पंचम भाग–अवतारादेश

उपदेश १

अवतार

शि०– अवतार शब्द किससे बना है ?

गु०– अवतर से.

शि०– अवतर किससे बना ?

गु०– अव उपसर्ग के आगे तृ धातु लगाने से.

शि०– इनका अर्थ क्या है ?

गु०– (अव) का अर्थ संरक्षण करना, (तृ) का अर्थ तारना तथा (अवतर) का अर्थ अवतरना है.

शि०– इसलिये अवतार का अर्थ क्या होगा ?

गु०– संरक्षण करने, तारने तथा अवतरनेवाला.

शि०– अवतार कितने प्रकार के हैं ?

गु०– चार प्रकार के हैं; अर्थात् :—

(१) दिव्यात्माओं के अवतार (२) उनके अंशावतार
(३) चैतन्यमहाप्रभू की स्फुरणा के द्वारा अवतरनेवाले अवतार
(४) अलंकाररूपी अवतार.

(I दिव्यात्मा)

शि०– दिव्य आत्माएं किन्हें कहते हैं ?

गु०– उन महोच्च पदस्थ आत्माओं को कहते हैं, जिनमें से हर एक के अधिकार में बहु संख्यक साधारण आत्माएं हों.

शि०– तो क्या अनेक आत्माओं पर एक मुख्य आत्मा का अधिकार होता है ?

गु०– अवश्य.

शि०– किस तरह ?

गु०– जिस तरह अनेक मनुष्यों पर, एक मुख्याधिकारी व अनेक मधुमक्खियों पर एक रानी, व अनेक दीमकों पर एक राजा होता है, उसी तरह इस जड़देह से रहित कई आत्माओं पर एक-एक दिव्य आत्मा अधिकारी होती है.

शि०– कोई अन्य उदाहरण दो ?

गु०– जिस तरह हर पत्ते के रसमें हजारों सूक्ष्म जीव होते हैं, इसी हिसाब से सम्पूर्ण वृक्ष में असंख्य जीव रहते हैं; किन्तु इन सबका मुख्याधिकारी जीव न्याराही है. वह वही जीव है, जो समग्र वृक्ष का कारण है. और जब तक वह उस वृक्ष में रहेगा, तब तक उसके अधिकारगत उपरोक्त अनेक जीवों की उत्पत्ति, स्थिति तथा नास्ति होती रहेगी.

शि०– और कोई प्रमाण दो ?

गु०– जिस तरह रक्त के हर बिन्दु में लक्षावधि सूक्ष्म जीव होते हैं; इसी हिसाब से हमारी सम्पूर्ण देह में अनन्त जीव निवास करते हैं; किन्तु इस देह पर हमारी आत्मा का अधिकार है, उसी तरह हर पर पदार्थ गत जड़ देह रहित आत्माओं पर भी एक-एक दिव्य आत्मा का अधिकार होता है.

शि०– वे दिव्य आत्माएं किन नामों से पुकारी जाती हैं ?

गु०– उन्हीं पदार्थों के नामों से पुकारी जाती हैं, जिन पदार्थगत आत्माओं पर उनका अधिकार है.

शि०– किस तरह ?

गु०– जिस तरह उसी जीव को मनुष्य कहते हैं, जिसकी आत्मसत्ता मनुष्य देह के अन्तर्गत अपना प्रभाव जमा, स्थित है; जिस देह के अन्तर्गत अनन्त सूक्ष्म जीव आदिक हैं. या आम्र, उस जड़ जीव

को कहते हैं, जिसकी आत्मसत्ता, आम्र वृक्ष के अन्तर्गत अपना प्रभाव जमा, स्थित है; जिसके अन्तर्गत अनन्त सूक्ष्म जीवादिक हैं. उसी तरह हर देव नामक पदार्थ का एक-एक दिव्यात्मा अधिकारी है, क्योंकि इस जड़देह से रहित, असंख्य आत्माएं, हरदेव नामक पदार्थ में उपस्थित हैं; किन्तु तिस पर भी किसी आत्मा की प्राकृतिक स्वतंत्रता नष्ट नहीं होती.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि ऐच्छिक कर्त्तव्य परायणता में हर आत्मा स्वतंत्र हैं, किन्तु केवल फल भोगने में परतंत्र है.

शि०– इस हिसाब से ब्रह्मा किसे कहते हैं ?

गु०– उस दिव्यात्मा अर्थात् देवको कहते हैं, जो आकर्षणकारी उत्पादक शक्ति के अन्तर्गत विराजनेवाली असंख्य आत्माओं का नेता है.

शि०– रुद्रदेव किसे कहते हैं ?

गु०– उस दिव्य आत्मा को कहते हैं, जो विकर्षणकारी नाशक शक्ति के अन्तर्गत बिराजनेवाली, असंख्य आत्माओं का नेता है.

शि०– विष्णुदेव किसे कहते हैं ?

गु०– उस दिव्य आत्मा को कहते हैं, जो सम्मिलित स्थंभन शक्ति अर्थात् महत्तत्व रूप हिरण्यगर्भ के अन्तर्गत बिराजने वाली, अनन्त आत्माओं का नेता है; इसी तरह अन्य देव, कहलाने का कारण समझ लो.

शि०– इन दिव्यात्माओं के शरीर कैसे हैं ?

गु०– इस जड़ देह से रहित अर्थात् मनोमयी हैं.

शि०– दिव्यात्मा कब अवतरते हैं ?

गु०– जब प्राकृतिक धर्म्म प्रणाली का लोप हो जाता है, तब उसके उपदेश ने तथा असाध्य विपत्ति को दूर करने के लिये मनुष्य का जन्म ग्रहण करते हैं.

(II अंश)

शि०– अच्छा ! दिव्यात्माओं के अंशावतार किस तरह होते हैं ?

गु०– यातो वे अपनी चैतन्य शक्ति का कोई अंश, सदाचारी मनुष्य को दे देते हैं, या स्वयं किसी अंश द्वारा जन्मते हैं.

शि०– तो क्या दिव्यात्मा एक साथ अनेक रूप धर सकते हैं ?

गु०– अवश्य.

शि०– क्योंकर ?

गु०– क्योंकि जिस दशा में जड़ देहधारी योगीराज भी, योगबल द्वारा अनेक रूप धर सकते हैं; उस दशा में मनोमय देहधारी, दिव्यात्याओं के लिये क्या आश्चर्य है.

शि०– अच्छा ! तो क्या दिव्यात्मा अपने तेज का अंश, अन्य को दे सकते हैं ?

गु०– अवश्य.

शि०– क्यों कर ?

गु०– क्योंकि जिस दशा में हम खुद दृष्टि योग द्वारा अपनी चैतन्य शक्ति का तेज औरों को दे सकते हैं, तो क्या उस दशा में दिव्यात्माओं के लिये ऐसा करना असंभव है.

शि०– अच्छा ! किस दिव्यात्माने, किस सत्पुरुष को अपनी चैतन्य शक्ति का तेजांश दिया ?

गु०– स्वयं विष्णुदेवने परशुराम ब्राह्मण को अपनी चैतन्य शक्ति का चतुर्थांश तेज दिया था, इसी कारण परशुराम, विष्णु के अवतार कहलाये; और जब वही स्वतेज, उन्हीं विष्णुने, रामावतार के वक्त रामरूप से वापिस ले लिया, तब वही परशुराम, पूर्ववत ब्राह्मण कहलाये.

शि०– इस तेज के देने लेने से क्या होता है ?

गु०– देने वाले का तेज घटाता और लेने वाले का बढ़ाता है, और साथ ही लेने वाले में, देने वाले के विचार तथा विकार भी पहुंच जाते हैं. और वापिस लेने के वक्त, देने वाले में पात्र के विचार तथा विकार आ पहुंचते हैं, और फिर वे मिश्रित विकार महा हानि पहुंचाते हैं.

शि०– इसलिये उचित क्या है ?

गु०– कि लेने देने वाले सदाचरणी तथा निर्विकार हों.

शि०– अच्छा ! उस तेज के बढ़ने तथा घटने से क्या होता है ?

गु०– ज्यो-ज्यों वह तेज बढ़ता जाता है; त्यों-त्यों ज्ञान, बल, पराक्रम आदि बढ़ता जाता है, और ज्यों-ज्यों तेज घटता है, त्यों-त्यों ये सब घटते जाते हैं.

शि०– हम, हमारे तेज की वृद्धि किसके द्वारा करें ?

गु०– संध्यादिक कर्म्म पूर्वक तत्वादिकों के तेज द्वारा.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि वह तेज सर्वत्र व्याप्त है.

शि०– तो फिर मनुष्यादिक द्वारा क्यों न लें ?

गु०– क्योंकि ऐसा करने से देनेवाले की हानि तो होती है, किन्तु लेने वाले को भी कमभय नहीं; सिवाय अपने हित के लिये, अन्य की हानि करना भी तो अधर्म्म है, और सब जीवों को उस तेज की जितनी आवश्यकता है, उतनी जड़ पदार्थों को नहीं; इसलिये प्राणियों को छोड़, अन्य पदार्थों ही से वह तेज ग्रहण करे ! क्योंकि निर्जीव पदार्थों को सुख दुख होने का संभव नहीं.

शि०– तो क्या फिर दृष्टियोग द्वारा, इस तेज का किसी मनुष्य पर प्रयोग न करें ?

गु०– केवल दीक्षा तथा उपदेश के लिये, विकार रहित शुभाचरणी पर उसका प्रयोग करें.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि सनातन ऋषि, मुनि सर्व साधारण को इसी के द्वारा दीक्षा देते आये हैं.

शि०– तो क्या फिर रोग हरण के लिये, किसी पर यह प्रयोग न करें ?

गु०– अवश्य करो ! किन्तु जब तुम स्वयं, उस रोग से बच सकते हो. या किसी महत्पुरुष के रक्षणार्थ.

शि०– उस विष्णु को नटवर क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि वह जनहितार्थ, जब चाहे तब, व जहां चाहे तहां, तथा जैसा चाहे वैसा, रूप धर लिया करता है.

(III स्फुरणा)

शि०– चैतन्य की स्फुरणा से क्या अवतरता है ?

गु०– यह अखिल ब्रह्मांड.

शि०– अच्छा ! अवतरने से पहिले, यह सब कहां होता है ?

गु०– उस प्रभू में संस्कार रूप से, अवस्थित होता है.

शि०– किस तरह ?

गु०– जिस तरह बीज के अन्तर्गत वृक्ष रहता है.

शि०– किन्तु वृक्ष तो, बीज से बाहर निकल प्रकटता है, तो क्या यह सब संसार, उस ब्रह्म से न्यारा है ?

गु०– नहीं.

शि०– फिर किस तरह है ?

गु०– जिस तरह जल जात पौधे जल ही में उपजते, ठहरते तथा लयको प्राप्त होते हैं.

शि०– लयके पश्चात् यह समग्र संसार कहां जाता है ?

गु०– पुनः संस्कार रूप से उसी प्रभू में स्थित हो जाता है और फिर जब प्रभू की इच्छा होती है, तब पूर्वस्मृति द्वारा पूर्वार्जित अवशेष संस्कारों के गुणःकर्मानुसार फिर से संसार में अवतरता है.

शि०– हर दिव्यात्मा की, अर्थात् देव की सहायक शक्ति क्या कहलाती है?

गु०– देवी, स्त्री, पत्नि आदि.

शि०– क्या हम भी दिव्यात्मा बन दिव्याधिकार पा सकते हैं ?

गु०– अवश्य !

शि०– किस तरह ?

गु०– जिस तरह इन्द्र नामक ब्राह्मण के दशों पुत्रों ने ब्रह्माका पद पाया

शि०– यह कथा कैसी है ?

गु०– किसी एक ग्राम में एक इन्द्र नामक दरिद्री ब्राह्मण रहता था, उसके दश पुत्र थे. वह भिक्षावृत्ति कर, अपने परिवार का भरण

पोषण किया करता था, पर अपने पुत्रों के शिक्षण में दत्तचित्त था, उसने उन्हें वेद वेदांग में पारांगत किया, किन्तु इस बीच में वह मर गया; और लड़कों की मां उसके साथ सती हो गयी; तब दशों निराश्रित हो विचारने लगे, कि अब क्या करें, (१) इतने में एक बोला कि वही अपनी भिक्षावृत्ति करनी चाहिये, पर शेषने इसको घृणाजनक नीचवृत्ति बता, खंडन किया; (२) इतने में दूसरा बोला, अपने ग्रामाधीश की नौकरी कर लें किन्तु शेषने पर बंधन का दुःख बता तथा उसे कूकरी के समान जता, उसका भी खंडन किया; (३) इतने में तीसरा बोला, कि अपने राजा के पास चल, उसे खुश कर स्वयं, किसी ग्राम के ग्रामाधीश बन जांय; परन्तु शेषने इसे भी राजबंधन का आश्रित पद बता खंडन किया (४) इतने में चौथा बोला, कि हम सब मिल, सैन्य बटोर किसी को जीत, स्वयं राजा बन जांय, पर शेषने राजकाज का दुःख तथा सार्वभौम की आधीनता जता, इसका भी खंडन किया; (५) इतने में पांचवां बोला, कि तप द्वारा इन्द्र पद प्राप्त करना चाहिये, किन्तु शेषने इसे ब्रह्मा के आधीन बता, खंडन किया; अन्त को सर्व सम्मिलित सम्मति से ब्रह्मा का पद प्राप्त्यर्थ तप करना स्थिर हुआ, इसलिये सबने एकान्त स्थल, उपयुक्त देख, अपने को ब्रह्मा मान, ब्रह्मा का रूप मन में धार दृढ़ासन लगा; प्रणव की उच्च ध्वनि कर, अर्द्धमातृका के सहारे, उच्चाति उच्च पहुंच, अन्तर्मुख हो, लय को प्राप्त हुए, इसी तरह समाधि सहस्त्रों वर्ष चढ़ी रही, इतने में प्रलय हुआ, सब की देह भस्म हो, जलादि में मिल गयी; और उनकी आत्मा महाकाश में जा, उसी भावना से स्थित हुई व अपने को न्यारे-न्यारे दश ब्रह्मांडों का ब्रह्मा बना, अनुभवती हुई; इतने में हमारी इस सृष्टि का ब्रह्मा जाग्रत हुआ और ज्यों ही उसने देखा, कि मेरे सामने के महाकाश में नवीन दश ब्रह्मा, दश सूर्य्य तथा दश ब्रह्मांड उपस्थित हैं, तब बहुत विस्मित हो, उसने उनमें के एक सूर्य्य के अधिपति को आवाहन

कर हाल जाना और उसे अपने यहां रहने को कहा-प्रार्थना सुन, वह एक रूप से इसी सृष्टि में रह गया, दूसरा रूप धर उस सूर्य्य लोक को चला गया; तात्पर्य यह कि प्रयत्न द्वारा सब कुछ मिल सकता है.

शि०– वह रहने वाला दिवात्मा क्या कहलाया ?

गु०– स्वयंभू मनु ब्रह्मा.

शि०– अच्छा ! तो हर देव को ईश्वर तथा भगवान के नाम से क्यों अलंकृत करते हैं ?

गु०– देवों को तो क्या, किन्तु मनुष्य तथा राक्षस भी इन नामों से अलंकृत किये जा सकते हैं.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि जो साधन द्वारा ईशत्वादि सिद्धियों को प्राप्त कर चुका है, उसे ईश्वर की उपाधि तथा जो महत्तत्वरूपी जगद्योनि गत ब्रह्म तेज को पा चुका है, उसे भगवान की पदवी देने की प्राकृतिक सनातन प्रथा है, जैसे मुनीश्वर, राक्षसेश्वर, व्यास भगवान, वशिष्ट भगवान आदि.

शि०– किस तरह ?

गु०– जिस तहर स्वामि, प्रभू आदि शब्द आजकल भी बड़े आदमियों के लिये उपयुक्त किये जाते हैं, किन्तु इन नामों से वे निर्विकार ब्रह्म नहीं बन जाते.

शि०– तो क्या प्राचीन काल में सामर्थ्य तथा मर्य्यादा अनुसार ही वे शब्द व्यवहृत किये जाते थे ?

गु०– अवश्य !

शि०– अच्छा ! तो उन देवों के विचित्र ही आकार क्यों हैं ?

गु०– प्राकृतिक नियमों के बोध के लिये हैं. जिसका कुछ वृत्तान्त पंचायतन तथा अलंकारावतारों द्वारा विदित होगा.

(IV अलंकार)

शि०– अलंकार रूपी अवतार किन्हें कहते हैं ?

गु०– जिनकी आकृति, संज्ञा तथा कथा-लौकिक पारलौकिक प्राकृतिक विज्ञान की गूढ़ता को प्रतिबिम्बित करती है.

शि०– उनकी आकृति किनके समान है ?

गु०– नक्शे के समान है.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि जिस तरह भूगोल शास्त्र के वेत्ता को, नक्शे द्वारा समग्र भूमण्डल का बहुत कुछ, प्राकृतिक तथा व्यवहारिक विवरण पथ अनायास ज्ञात हो जाता है. उसी तरह देवों की आकृति द्वारा वैज्ञानिक योगी को पथ लौकिक तथा पार लौकिक सिद्धियों का पथ अनायास विदित हो सकता है.

शि०– उन देवों के नाम किनके समान हैं ?

गु०– सूत्रों तथा पारिभाषिक शब्दों के समान.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि जिस तरह सूत्रों तथा पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या से उन नामवाले पदार्थों का स्पष्ट गुण विदित हो जाता है. उसी तरह देवों के नाम की व्याख्या द्वारा उनके प्राकृतिक गुण विदित हो जाते हैं.

शि०– देवों की कथा किसके समान है ?

गु०– निदान तथा विधान के समान.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि जिस तरह निदान के अनुसार उपचार; या विधान के अनुसार प्रक्रिया करने से सुफल अवश्य फलता है; उसी तरह कथा के मर्यादानुसार साधन करने से अवश्यमेव प्राकृतिक सिद्धियां प्राप्त हो सकती हैं.

शि०– प्रभावशाली मूर्त्ति तथा कथा द्वारा और क्या होता है ?

गु०– उसका प्रभाव मनुष्य के हृदय पटल पर पड़, प्रतिबिम्बित हो जाता है, जिसके द्वारा अलभ्य लाभ होता है; किन्तु दुष्ट पुरुष की मूर्त्ति तथा लेख से, मनुष्य का चित्त, कलुषित हो, कु फल उपजाता है.

शि०- क्या प्रमाण ?

गु०- देखो ! तभी तो हमारी सरकारने, राजद्रोहियों के चित्र तथा लेख, रखने वालों के लिये, दंड विधान की विधि बना दी है, इसलिये कोई उसे रख नहीं सकता.

सोरठ

जो जन जाने भेद, अवतारन के रहस को ।
ताके करतल वेद, निश्चय पावै अटल पद ।।१।।
जापै उतरे तेज, उघरैं, ता दृग ज्ञान के ।
लखै सकल विच वेज, धी बल बाढ़ै अपरमित ।।२।।
निर्णय करी बताय, भले बुरे को भेद फल ।
सत्य धर्म गहवाय, सतपथसो चलवाय वो ।।३।।

++++++++

उपदेश २

पंचायतन

शि०- पंचायतन शब्द कैसे बना है ?

गु०- (पंच+आ+यत्+अन) मिलकर.

शि०- (पंच) का अर्थ क्या है ?

गु०- पांच.

शि०- (आ) का अर्थ क्या है ?

गु०- ब्रह्म; अर्थात् चिर वृद्धिकर्त्ता, दिव्य, सीमा, हद्द, तक, उत्तम प्रकार से, सब तरह से.

शि०- (यत्) का अर्थ क्या है ?

गु०- यत्न करना, उद्योग करना, निश्चय करना.

शि०- (अन) का अर्थ क्या है ?

गु०- गति करने, व समर्थ होने वाला.

शि०- इसलिये पंचायतन का अर्थ क्या हुआ ?

गु०- पांच दिव्य प्रयत्नों द्वारा समर्थ करने वाला आदि.

शि०– यदि (आयतन) का अर्थ विस्तार मानें, तो पंचायतन का अर्थ क्या होगा ?

गु०– पांच विस्तार वाला.

शि०– वह पांच दिव्य प्रयत्नोंवाला या पांच विस्तारवाला कौन है ?

गु०– वह वही महत्तत्व मात्र है, जिसके अन्तर्गत अनन्त ब्रह्मांड हैं.

शि०– वह महत्तत्व कहां बिराजता है ?

गु०– उस चैतन्यरूपी महासागर के किसी एक अंश में.

शि०– अच्छा ! वह महत्तत्व किस तरह देखा जा सकता है ?

गु०– अन्तर्मुख दृष्टि से ध्यान करने पर, अन्धकार के हटते ही, प्रथम वही भासता है.

शि०– कहां ?

गु०– सर्वत्र.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि अखिल ब्रह्मांड उसके अन्तर्गत तथा उसीका विस्तार है, अर्थात् वह जग में ओतप्रोत है.

शि०– वह कैसा है ?

गु०– वह सर्वोत्कृष्ट, प्रकाशयुत, बृहत्सूर्य्याकार है, जिससे पंच महाभूत उपजे.

शि०– इन पंच महाभूतों के नाम क्या हैं ?

गु०– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश.

शि०– इनका वर्ण कैसा है ?

गु०– पृथ्वी का पीत, जल का शुक्ल, अग्नि का आरक्त, वायु का हरित शुद्ध धूम्रवर्ण, तथा आकाश का प्रभायुत श्याम वर्ण है.

शि०– इनको हम किस तरह देख सकते हैं ?

गु०– किसी मुद्रा पूर्वक, दर्शनादि संयम द्वारा.

शि०– हमें तो कोई सरल उपाय बताइये ?

गु०– नित्य प्रति ब्रह्म मुहूर्त में उठ, सिद्धासन से बैठ, नाशाग्र पर एक प्रहर तक, अचल दृष्टि रखा करो; तो छः मास के भीतर ही सब

तत्वों के रंग, महत्तत्व के अन्तर्गत तथा स्वास के अन्तर्गत भासने लगेंगे.

शि०– स्वास में भी क्यों भासेंगे ?

गु०– क्योंकि निश्वास, उन्हीं पंचभूतात्मक पदार्थों की सूक्ष्म वाष्प को रेचा करता है. जिनको हम खाते हैं, या जो इस पंच भौतिक शरीर तथा वायु मण्डल से संबंध रखते हैं, अर्थात् वह महत्तत्व सर्वत्र व्यापा हुआ है.

शि०– एक ही महत्तत्व पांच वर्णका क्यों भासता है ?

गु०– इन पांचों तत्वों के आयतन के कारण.

शि०– इसलिये कर्मकांडने क्या उपदेश दिया ?

गु०– इस पंचायतन अर्थात् इन पांचों विस्तारों का गुण, कर्म के अनुसार मूर्त्तिमान ध्येय रखने का उपदेश दिया, जैसा कि उनके पांचों अधिकारियों का स्वरूप, सूक्ष्म सृष्टि में विद्यमान है.

शि०– वह एक ही महत्तत्व कब किस नाम से पुकारा जाता है ?

गु०– जब वह आरक्त वर्ण भासे, तो गणेश; पीतवर्ण भासे, तो देवी; श्याम वर्ण भासे, तो विष्णु; स्वेत वर्ण भासे, तो शिव; तथा हरित शुद्ध धूम्र वर्ण भासे, तो सूर्य्य के नाम से पुकारा जाता है.

शि०– इनके नाम, आकार तथा इतिहास किसके समान हैं ?

गु०– इनके नाम सूत्र तथा पारिभाषिक शब्दों के समान, आकार नक्शे के समान, और इतिहास-भूगोल आदि के वर्णन के समान हैं.

(I गणेश)

शि०– अच्छा ! इस महत्तत्व को गणनायक क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि इसके अन्तर्गत समग्र तारागण अर्थात् अखिल लोक हैं.

शि०– उसे सिद्धिदाता तथा विघ्नहर्त्ता क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि उस आरक्त वर्ण महत्तत्व के अन्तर्गत ध्याने से सब सिद्धियां प्राप्त होती तथा विघ्न दूर होते हैं.

शि०– उसके बड़े पेट से क्या तात्पर्य निकलता है ?

गु०– अर्थात् महत्तत्व के अन्तर्गत सब कुछ है, इसलिये संतोष रक्खो.

शि०— उसके छोटे नेत्रों से क्या तात्पर्य्य निकलता है ?

गु०— कि उस आरक्त वर्ण महत्तत्व के अन्तर्गत ध्याने से सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त होती है, जिसके द्वारा योगी दूर-दूर के पदार्थ देख सकता है.

शि०— उसके बड़े-बड़े कानों से क्या तात्पर्य है ?

गु०— कि उस आरक्त वर्ण महत्तत्व के अन्तर्गत ध्याने वाला योगी दूर-दूर की बातें सुन सकता है.

शि०— उसकी लम्बी नासिका अर्थात् सूंड से क्या तात्पर्य है ?

गु०— कि उस आरक्त वर्ण महत्तत्व के अन्तर्गत ध्यानेवाला योगी दूर-दूर के पदार्थों का अवघ्राण कर सकता है.

शि०— उसके बड़े भारी मुख तथा जिव्हा से क्या तात्पर्य है ?

गु०— कि उपरोक्त ध्यानेवाला योगी, दूर-दूर के पदार्थों को चख सकता तथा श्रेष्ठ वक्ता हो सकता है.

शि०— उसके अत्यन्त मोटे तथा संकुचित पैरों से क्या तात्पर्य है ?

गु०— कि उपरोक्त ध्यानेवाला योगी, बिन पैरों के ही दूर-दूर तक जा सकता है, किन्तु साधनदशा में उसे अधिक न चलना चाहिये.

शि०— उसके चार हाथों से क्या तात्पर्य है ?

गु०— कि उपरोक्त ध्यानेवाला योगी, बिना हाथों के ही सब कुछ कर सकता तथा चारों वेदों सहित चारों पदार्थ पा सकता है.

शि०— जसके पाशांकुश धारण से क्या तात्पर्य्य है ?

गु०— कि उपरोक्त ध्यानेवाला योगी, भवपाश तथा त्रिताप से रहित हो जाता है.

शि०— उसके बड़े मस्तक से क्या तात्पर्य है ?

गु०— कि उक्त ध्यान करनेवाला योगी, धीमान् तथा प्रतापी हो जाता है.

शि०— उसके एक शुभ्र दंत से क्या तात्पर्य है ?

गु०— अर्थात् जो योगी, उस आरक्त वर्ण महत्तत्व की मध्यवर्त्ती शुभ्र ज्योति के अन्तर्गत ध्यान करता है, मात्र उसीको अद्वितीय ब्रह्म तथा सिद्धियां प्राप्त होती हैं.

शि०— उसके वक्रमुख व मूषक वाहन तथा बिन्दु के चिन्ह से क्या तात्पर्य है ?

गु०— कि दक्षिणावर्त्त हो, मूषक की चाल से, उक्त ज्योतिरूपी बिल में घुस, बिन्दुरूपी अर्द्ध मातृका की उच्चध्वनि के साथ लय प्राप्त करे, तब उपरोक्त सिद्धियां प्राप्त हो सकती हैं.

शि०— उसके कुंवारे रहने, मोदक के खाने, तथा दुर्वा के धारने से क्या तात्पर्य है ?

गु०— अर्थात् उपरोक्त साधन की सिद्धि के लिये अमोघ वीर्य की आवश्यकता है, इसलिये उसकी वृद्धि के लिये, ब्रह्मचर्य्य पूर्वक मोदक तुल्य पौष्टिक पदार्थ और दुर्वातुल्य वीर्य्यशोधक तथा पाचकपदार्थ सेवने चाहियें.

शि०— गणेश को मूलाधार वासी क्यों कहते हैं ?

गु०— क्योंकि यह महत्तत्व, उस ब्रह्मरूपी मूलाधार के सहारे स्थित है, और वही मूलचक्र में ध्याने से आरक्त वर्ण भासता है.

शि०— उसके पीताम्बर परिधान से क्या तात्पर्य है ?

गु०— कि वह तप्त सुवर्ण के समान, पीत रंग के अन्तर्गत है.

शि०— उसे देवी का पुत्र क्यों कहते हैं ?

गु०— क्योंकि वह देवी नामक, पीत रंग के अन्तर्गत है, इसीलिये वह सिन्दुर वर्ण भासता है.

शि०— उसे देवी ने अपने शरीर के मल से उपजाया.

गु०— अर्थात् वह शक्ति चालन द्वारा भासता है.

शि०— शिवने उसका मस्तकच्छेदन कर, देवी के प्रसन्नार्थ हाथी का सिर जोड़ा, जिसे विष्णु ने सिद्धि विनायक का पद दिया.

गु०— अर्थात् जब आरक्त वर्ण में, शुभ्र तेज छिद्रकर, श्याम तेज प्रतिष्ठित कर दे, तब उसके अन्तर्गत ध्याने से, उक्त शक्ति संबंधि सिद्धियां, प्राप्त हो सकती हैं.

(II शक्ति देवी)

शि०— महत्तत्व को शक्ति देवी क्यों कहते हैं ?

गु०— क्योंकि उस चैतन्य ब्रह्म की इच्छायुत त्रिगुणात्मक शक्ति की ज्योति ही, इस महत्तत्व के रूप में परिणित हो गयी है.

शि०— अच्छा ! पीतवर्णधारी महत्तत्व को, शक्ति देवी क्यों कहते हैं ?

गु०— क्योकि उसके अन्तर्गत ध्याने से योगी को आकर्षण, विकर्षण तथा स्थंभनकारी सिद्धियां प्राप्त होती हैं.

शि०— उसकी आरक्त वर्ण रोरीके नीचे, श्याम चिन्ह से क्या तात्पर्य है?

गु०— कि उस पीत के मध्यवर्त्ति, आरक्त के अन्तर्गत, श्याम तेज में वृत्ति लीन करो.

शि०— सिंह पर आरूढ़ हो, त्रिशूलादि आयुध धार, शक्ति देवी ने महिषासुर को मारा; तब देवों ने भेरी बजा, सुमन वर्षा, परमानन्द मनाया ?

गु०— अर्थात् सिंह चर्मपर बैठ, सिंह क्रांता मुद्रा सहित, सिंहासनस्थ हो, उड्डियान आदि तीनों बंध लगा, शक्ति चालन पूर्वक कुंडलनी को जगा, पवन को जीते; तब दिव्य तेज सहित भेरीनाद सुन पड़ेगा उसी में सुरति को लगा दे, तो परमानन्द की प्राप्ति होगी.

शि०— अन्य अर्थ क्या है ?

गु०— सिंहासन लगा, त्रिबंधयुत, शक्ति चालन द्वारा पवन को जीते, अथवा मेरुडंड गत रुकावट आदि को दूर करे; तब दिव्य तेजयुत भेरीनाद सुनाई देगा, उसीमें मन लगा दे, तो परमानन्द की प्राप्ति होगी.

शि०— अष्टभुजा से क्या तात्पर्य निकलता है ?

गु०— कि उपरोक्त ध्याने वाला योगी, अष्ट सिद्धि पाता है.

शि०— उसके खडग अंकुशादि अस्त्रों से क्या अभिप्राय है ?

गु०— कि वह भव बंधन को छेदने तथा त्रिताप को नष्ट करने वाला ध्यान है.

शि०— शक्ति ने शिव का वीर्य्य ले, अग्नि को दिया, उस अग्नि ने उसे गुप्त रूप से षट कृतिकाओं में प्रविष्ट किया, तब उन कृतिकाओं ने चुपचाप, उसे एक गर्त्त में जा फेंका, जिसके द्वारा षटमुख जन्मा, जो शिव का पुत्र कहाया ?

गु०– अर्थात् आकर्षण शक्ति द्वारा महत्तत्व का शुक्ल तेज जठराग्नि में पहुंचता है फिर वह योगी की षट क्रियाओं द्वारा हृदयरूपी गर्त्त में पड़, दिव्य ज्ञान उपजाता है; जिसके द्वारा उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, ऊर्द्ध, अध अर्थात् सब ओर भासने लगता तथा कल्याण होता है.

शि०– फिर षट मुखने तारकासुर को मार, देवों को अभय किया ?

गु०– अर्थात् षट मुखी मुद्रा द्वारा, उस तारक तेज के छिपाने वाले, अन्धकाररूपी असुर को नष्ट कर, उक्त दिव्य तेज को अचल किया.

शि०– शिव अपने दोनों पुत्र गणेश तथा षटमुख को संग ले विष्णु के पास पहुंचे ?

गु०– अर्थात् (१) षडांग योगी षटमुखी मुद्रा पूर्वक, हंसरूपी अजपा जपने वाले और (२) मूल बंध पूर्वक मकार की ध्वनि द्वारा वृत्ति के लय करने वाले, दोनों ही शुक्ल तेज सहित, श्याम तेज के निकट पहुंचते हैं.

शि०– कार्त्तिक स्वामी अपने हंस पर चढ़, अखिल ब्रह्मांड की परिक्रमा करने दौड़े, किन्तु गणेशने राम नाम युत विष्णु की परिक्रमा कर, वहीं बैठे-बैठे मोदक सहित सिद्धि विनायक का पद पा लिया ?

गु०– अर्थात् षडांग योगी बन, अजपा जपते हुए, अखिल ब्रह्माण्ड मय, लक्ष रखने की अपेक्षा, केवल शुक्ल तेजयुत, श्याम बिन्दु ही के अन्तर्गत मकार की ध्वनि के साथ, वृत्ति का लय करने से अनायास ब्रह्मानन्द सहित, सब सिद्धियां प्राप्त हो सकती हैं.

शि०– देवीने पीताम्बर परिधान किया है ?

गु०– अर्थात् वह सत्य, इसी पीत वर्ण की ओट में है.

(III विष्णु)

शि०– अच्छा ! उस महत्तत्व को विष्णु क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि वह व्यापक व्याप्य भाव से अखिल ब्रह्माण्ड में व्यापा हुआ है.

शि०— उसके कृष्ण वर्ण से क्या तात्पर्य है ?

गु०— कि वही अपनी आकर्षण शक्ति द्वारा सबका पालन, पोषण तथा रक्षण करता और अखिल ब्रह्माण्डों को थांमे हुए है.

शि०— उसके पिताम्बर धारण से क्या तात्पर्य है ?

गु०— अर्थात् वह सत्य ब्रह्म, इसी हिरण्यगर्भ की ओट में है.

शि०— उसके केशर के ऊर्द्ध पुण्ड्र से क्या तात्पर्य है ?

गु०— कि उस श्याम वर्ण महत्तत्व की मध्यवर्त्ती पीत ज्योति के अन्तर्गत ध्यान करो, वही शेष आवरणों को हटाने वाली है.

शि०— शंख या बंशी धारण तथा गरुड़ वाहन से क्या तात्पर्य्य है ?

गु०— कि अनहद गत शंख या बंशी की उच्चाति उच्च सूक्ष्म ध्वनि के साथ-साथ पक्षी की गति से, उक्त ज्योति के अन्तर्गत प्रविष्ट हो, लय प्राप्त करो.

शि०— विष्णु पद्मको धारे हैं ?

गु०— अर्थात् (१) विष्णु की गति अचल है, (२) किन्तु संसार में कमलवत रहना चाहिये. (३) तब विष्णु का अचल पद प्राप्त होता है.

शि०— विष्णु गदा को धारे हैं ?

गु०— अर्त्थात् (१) इस व्यापक महत्तत्व का ध्यान, भवताप को चूर्ण करता है. (२)उस व्यापकता को प्राप्त हो, दिव्य शब्दों (अनहद) का लय हो जाता है, (३) वे दिव्य शब्द केवल उस विष्णु पद तक पहुंचाते हैं.

शि०— विष्णु चक्र को धारे हैं ?

गु०— अर्थात् (१) वह श्यामल व्यापक महत्तत्व चक्राकार शुक्ल प्रभा से वेष्टित है. (२) वह विष्णु चक्राकार शुक्ल प्रभा को सर्वतोपरि धारे हुए हैं. (३) उस चक्र पूर्वक विष्णु का ध्यान, भवचक्र का नाशक है.

शि०— विष्णु शंख को धारे हैं ?

गु०— अर्त्थात् (१) शंखनाद ही उस विष्णु पद का प्रति वेदज्ञ है.

(२) शंखनाद ही उस व्यापक पद तक पहुंचा देता है. (३) यह व्यापक शून्यही शान्ति को धारे हुए है, इसलिये शांति के अर्थ, इस व्यापक शून्यका ही ध्यान करो.

शि०– लक्ष्मी बिष्णु की पत्नि है ?

गु०– अर्थात् (१) चिर लक्ष द्वारा वह व्यापक पद प्राप्त होता है. और (२) पीत वर्ण ज्योति के परे वह व्यापक पद है.

(IV शिव)

शि०– उस महत्तत्व को शिव क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि उसके अन्तर्गत ध्याने से कल्याण होता है.

शि०– उसके शुभ्र वर्ण से क्या तात्पर्य है ?

गु०– कि शुक्ल वर्णधारी महत्तत्व, दिव्य ज्ञान देकर, कल्याण कर्ता है.

शि०– पंच मुखी, शुक्ल वर्ण शिव के नीलकण्ठ तथा तृतीय नेत्र से क्या तात्पर्य निकलता है ?

गु०– अर्थात् पंच मुखो मुद्रा द्वारा, शुभ्र वर्ण महत्तत्व के मध्यवर्त्ती, श्याम बिन्दु के अन्तर्गत, ध्याने से दिव्य ज्ञानरूपी, तृतीय नेत्र प्राप्त होता है. जो अक्षयपद का दाता है.

शि०– वह नीलापन तो विषका कहा जाता है ?

गु०– किन्तु विषका अर्थ घुसना है, इसलिये वह वृत्ति के प्रविष्ट होने का मार्ग है.

शि०– शंख, घण्टा तथा नन्दी वाहन से क्या तात्पर्य है ?

गु०– अर्थात् उक्त शुक्ल प्रभायुत, श्याम बिन्दु के अन्तर्गत अपनी वृत्ति को अनहदवाले घंटे या शंख की ध्वनि के साथ-साथ वृषभ की चाल से सीधी चला, लय करो तब, दिव्य ज्ञान प्राप्त हो, परम आनन्दकारी अक्षय पद मिलेगा.

शि०– गोद में शक्ति के होने से क्या अर्थ निकलता है ?

गु०– अर्थात् जब शक्ति जाग्रत हो, मूलाधार से ले, ब्रह्मरंध्रतक पहुंचेगी तभी अचल समाधि लगेगी.

शि०– समाधि से क्या वास्ता ?

गु०– क्योंकि समाधि के बिना, दिव्यध्यान की स्थिरता नहीं रहती.

शि०– शिव के नग्नत्व, त्रिपुंड तथा डमरु से क्या तात्पर्य्य है ?

गु०– अर्थात् उपरोक्त ध्यान ही सत्य तथा कल्याणकारी है, इसमें कोई पर्दा या छिपाव नहीं रखा गया, यही तीनों आवरणों तथा तीनों तापों को हरता है. इसलिये दोनों पल्ले बराबर रख, बीच के संकीर्ण मार्ग को ग्रहण करो, इस बात का डमरु ढिंढौरा पीटता है.

शि०– शिव को कामारि कहना तथा बिल्व पत्र चढ़ना, क्या दर्शाता है ?

गु०– कि उस कल्याणकारी पद के, मिलने के पहिले, काम देव बहुत विघ्न करता है, इसलिये उसे ब्रह्मचर्य्य पूर्व्वक समाधि द्वारा जीतो, और बिल्व समान पौष्टिक तथा रोग नाशक पदार्थ खाओ.

शि०– शिव का व्याघ्रचर्म्म, गजचर्म्म, भस्म तथा जटा से क्या उपदेश मिलता है ?

गु०– अर्थात् ये सब पदार्थ, शरीर गत तेज के रक्षक तथा समाधि के अर्थ कल्याणकारी हैं.

शि०– जटा द्वारा गंगा प्रवाह से क्या तात्पर्य्य है ?

गु०– अर्थात् उच्च जल प्रपात के प्रवाह द्वारा, शरीर गत तेज की वृद्धि करो; क्योंकि उससे रुद्र तेज की रक्षा होती है.

शि०– इस क्रिया को कर्म्मकांड ने किस नाम से पुकारा है ?

गु०– अर्घ्य तथा अभिषेक के नाम से.

शि०– मस्तक पर चन्द्रमा बिराजने का क्या अर्थ है ?

गु०– सदा शान्त बुद्धि से काम करो, और मस्तिष्क की रक्षा करो.

शि०– सर्प की जनेऊ तथा खोपड़ियों की माला से क्या तात्पर्य्य है ?

गु०– कि अब जल्दी करो, उक्त ध्यान के करने में देर मत करो; नहीं तो भवभुजंग डस लेगा, जिससे आवागमनरूपी चक्कर में पड़ दुखी होंगे.

शि०– शिव योगीने त्रिपुरों को एक ही बाण से बेध तथा त्रिपुरासुर को वध, देवों को परमानन्दित किया ?

गु०– अर्थात् योगी, उपरोक्त ध्यान के एक ही लक्ष से, तीनों आवरणों को बेध तथा तद्गत अन्धकार हटा, दिव्य ज्ञान पा, ब्रह्मानन्द को अनुभवता है.

(V सूर्य्य)

शि०– इस महत्तत्व को सूर्य्य क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि वह सर्व श्रेष्ठ, विशाल सूर्य्याकार होकर सबका उपजाने, ठहराने तथा नशाने वाला है, इसलिये उसे सूर्य्य कहते हैं.

शि०– सूर्य्य को हरित या शुद्ध धूम्रवर्ण, क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि उसके अन्तर्गत सब तत्व, सूक्ष्म वाष्परूप से स्थित हैं.

शि०– उन सूक्ष्म वाष्परूपी तत्वों को, वेदने किस नाम से पुकारा है ?

गु०– अश्व, बाजि नाम से.

शि०– कितने अश्व सूर्य्य में विराजते हैं ?

गु०– सात; अर्थात् (१) पृथ्वी संबंधि, (२) जल संबंधि, (३) अग्नि संबंधि, (४) वायु संबंधि, (५) आकाश संबंधि, (६) महत्तत्व संबंधि, जिसमें सब तत्व तथा अनन्त चिदावलियां अर्थात् आत्म संबंधि तत्व और (७) कर्षण शक्ति संबंधि तत्व विराजते हैं.

शि०– आत्मा संबंधि कौन से सूक्ष्म तत्व हैं ?

गु०– चित्त, मन, बुद्धि, अहंकार तथा सभी सूक्ष्म इन्द्रियां.

शि०– सूर्य्य में कितने प्रकार के रंग या ज्योतियां हैं ?

गु०– सात प्रकार की.

शि०– इस सूर्य्याकार महत्तत्व के अन्तर्गत, अनेक प्रकार के नाद क्यों होते हैं ?

गु०– क्योंकि जिस तरह वायु चलने, जल बहने, वर्षा के होने, रगड़ के लगने आदि के द्वारा भिन्न-भिन्न शब्द उपजते हैं, उसी तरह उन सब सूक्ष्म तत्वों की वाष्प के प्रवाह, रगड़ तथा तरंगों के कारण अनेक प्रकार के शब्द हुआ करते हैं.

शि०- जिसमें सप्त अश्व जुते हुए हैं, ऐसे एक चक्र के रथ के द्वारा भ्रमता हुआ प्रभाकर, अपने प्रकाश से अपनी सृष्टियों को प्रकाशता है.

गु०- अर्थात् वही अत्यन्त सूक्ष्म वाष्प रूपी सप्त तत्व; एक चक्राकार गति के द्वारा प्रज्वलित हो, भ्रमते हुए, अपने प्रकाश से, निज सृष्टियों को प्रकाशित करते हैं.

शि०- वे प्रज्वलित क्यों हो उठते हैं ?

गु०- परस्पर घर्षण द्वारा.

शि०- अरूण इसका सारथी है ?

गु०- अर्थात् इसकी धन ऋण शक्ति सबको गति देने वाली है.

शि०- सूर्य्य को अपनी स्त्री प्रभा द्वारा, यम, यमुना और छाया द्वारा शनिश्चर, ताप्ती हुए.

गु०- अर्थात् सूर्य्य को प्रभा द्वारा ही कर्षण, विकर्षणकारी शक्ति उपजती है, जो गति को तीव्र करती है; किन्तु छाया द्वारा वह गति मन्द पड़ती तथा उष्णता घटती है.

शि०- सूर्य्य का पुत्र यमराज अर्थात् धर्म्मराज, जीवों को अपनी-अपनी करनी के अनुसार नर्क या स्वर्ग को ले जाता है ?

गु०- अर्थात सूर्य्य से उपजा आकर्षण विकर्षण ही जीवों को उर्द्धगति तथा अधोगति देता है; क्योंकि जिसकी प्रकृतिका प्रवाह जिस ओर होता है, वह उसी ओर खिचा चला जाता है.

शि०- धर्म्म का अर्थ तो स्वभाव होता है, तो फिर क्योंकर यमराज को धर्म्मराज कहते हैं.

गु०- क्योंकि सूर्य्य का कर्षणकारी स्वभाव है, इसलिये उस कर्षण अर्थात् यम को धर्म्म कहते हैं.

शि०- किन्तु कर्षण दो प्रकार का होता है, आकर्षण और विकर्षण ?

गु०- इसीलिये संकेतार्थ उस आकर्षण के धर्म्म और यम नाम रख लिये.

शि०- सूर्य्य ने अश्वरूप धर, अपनी स्त्री प्रभारूप अश्विनी से भोग किया, जिसके द्वारा उस अश्विनी की नाकसे, अश्विनी कुमार नाम के दो पुत्र जन्मे, जो देवों के वैद्य कहाये ?

गु०— अर्थात् प्रभायुत सूक्ष्म वाष्परूपी महत्तत्व के प्राकृतिक गमनागमन द्वारा स्वास, प्रस्वासकारी वायु उपजा, वही प्राण अपानरूप से समग्र देव नामक चराचर पदार्थों का उपचार करता है.

शि०— स्वास, प्रस्वास को अश्विनी कुमार क्यों कहा ?

गु०— क्योंकि स्वास में केवल वायु ग्रहण की जाती है, इसलिये उसे कुमार कहा, किन्तु प्रस्वास में वाष्पयुत त्यागी जाती है, इसलिये उसे अश्विनी कहा.

शि०— सूर्य्य की तपन द्वारा हमें क्या उपदेश मिला ?

गु०— महत्तत्वरूपी सूर्य्य का तपकर उर्द्ध गति प्राप्त करने तथा विस्तार बढ़ाने आदि का.

शि०— सूर्य्य के यजन द्वारा हमें क्या उपदेश मिला ?

गु०— यज्ञ, वर्षण, उपचार, प्राणायाम योग, वहन गति आदि वैज्ञानिक बातों का.

शि०— सूर्य्य के प्रकाश द्वारा हमें क्या उपदेश मिला ?

गु०— रंग, रूप के निर्णय आदि के ज्ञान का.

शि०— सूर्य्य की किरणों द्वारा हमें क्या उपदेश मिला ?

गु०— विद्युत आदि के प्रवेश, निवेश, मिश्रण, निराकरण आदि का.

शि०— सूर्य्य गत श्याम बिन्दुओं से हमें क्या उपदेश मिला ?

गु०— कर्षण, व्यापन तथा अग्नि उत्पादनकारी विद्याओं का.

शि०— किन्तु ऐसे अनन्त सूर्य्य उसी महत्तत्व के अंशस्वरूप है ?

गु०— इसीलिये सब प्रकार का ज्ञान प्राप्त होने के लिये, उस उत्कृष्ट तेजपुंज सूर्य्याकाररूपी महत्तत्व के अन्तर्गत ध्याना चाहिये.

शि०— इसमें किसके द्वारा लय प्राप्त करे ?

गु०— अनहदवाले मेघनाद गत, प्रणव की उच्च ध्वनि के साथ अर्द्ध मात्रा से लय करे, किन्तु उसी उज्ज्वल प्रकाश से युक्त श्याम बिन्दु के अन्तर्गत.

शि०— अच्छा ! तो फिर न्यारे-न्यारे मतवालों ने अपने न्यारे-न्यारे पंचायतन क्यों बनाये ?

गु०— उसी महत्तत्वके न्यारे-न्यारे प्राकृतिकगुण,कर्म्म विदितहोने केलिये.

शि०— अच्छा ! तो फिर न्यारी-न्यारी स्वेत, श्याम, रक्त, पीत, धूम्र-वर्ण आदि मूर्त्तियां क्यों बनायी ?

गु०— महत्तत्व के भिन्न-भिन्न गुण दर्शाने, दृष्टि स्थिर करने, अन्तर्मुख वृत्ति तथा तत्व सिद्धि आदि के प्राप्त करने के हेतु से.

शि०— किस तत्व की सिद्धि के लिये, किस रंग को ध्याना चाहिये ?

गु०— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश की सिद्धि के लिये, महत्तत्व के अन्तर्गत योग विधान के अनुसार क्रम से पीत, स्वेत, रक्त, धूम्र, कृष्ण वर्ण का ध्यान करना चाहिये.

शि०— जहां पंच तहां परमेश्वर, की कहावत कहां से जन्मी ?

गु०— पंचायतन से.

शि०— क्यों ?

गु०— क्योंकि इनके अन्तर्गत, अन्तर्मुख प्राप्त हो जाने से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है.

छन्द

मुद्रा पांचों नादा पांचों। पांचों संयम तत्वहि पांचों।
पांच धारणा प्राणहि पांचों। पंचायतनसु राजैं पांचों ।।

सार

पंचायतन सु सार यही है, इमी सदा तुम ध्यावो ।। टेक ।।
शुक्लतेजगत श्याम बिन्दु में, अन्तर्मुख व्है जावो ।।
ताके अन्दर ज्योति अद्भुत, शक्ती दर्शन पावो ।।
मकार की अति उच्च ध्वनीसे,नादहि बिन्दु मिलावो ।।
चले-चले सुन सान काश में, पा तन्मय हुल सावो ।।

मूस बतावै अगोचरी को, सिंह बतावत चाचरी।
गगन चरी को गरुड़ बतावै, बैल लखावत भूचरी ।।
मदत्तत्व की पांचों मुद्रा, सूर्य बतावत भाचरी।
जो को साधक इनको साधै, वाको सिद्धि होत खरी ।।

उपदेश 3

अलंकारावतार

शि०– अलंकारावतार कितने प्रकार के होते हैं ?

गु०– दो प्रकार के.

शि०– कौन से ?

गु०– (१) एक तो वे अवतार जो किसी दिव्यात्मा या उसके अंश से होकर, किसी वैज्ञानिक प्राकृतिक नियमों तथा उनकी प्रतिच्छाया को दर्शाते हैं, जिन पर पुराणों ने अलंकार बांधा

(२) और दूसरे वे अलंकृत अवतार, जो योग मुद्रादि के बोध के लिये व्यासादि ऋषियों द्वारा दर्शाये गये.

शि०– अच्छा ! तो वैज्ञानिक बातों पर अलंकार क्योंकर बांधे ?

गु०– क्योंकि जिस तरह मनुष्य, कहांनियां याद रख सकता है, उस तरह वैज्ञानिक सूत्र कदापि याद नहीं रख सकता.

शि०– अलंकृत बातें मुर्खों को भी, क्योंकर याद हो जाती हैं ?

गु०– क्योंकि यह रोचक होती हैं ?

शि०– किस तरह ?

गु०– जिस तरह उन पाटली पुत्र के मूर्ख राजपुत्रों को भी, राजनीति के गूढ़ तत्वों का ज्ञान, केवल विष्णु शर्मा कथित पंचोपाख्यान द्वारा ही हो गया; जिन्हें बड़े-बड़े विद्वान पंडित भी पढ़ा न सके थे.

शि०– पुराण किसे कहते हैं ?

गु०– जो वेद के पुरातन मर्म को, सदा जीवित रखते हुए, युक्तिपूर्वक जताता हुआ, अज्ञ को भी अधिकारी बना देता है.

शि०– पुराणों की कथा में क्या विलक्षणता है ?

गु०– उनकी कथाएं ऊपरी अर्थ से व्यवहारिक तथा परमार्थिक रीति, नीति, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार का उपदेश देती हुई मनुष्य को शूरवीर, शान्त तथा परोपकारी बना देती है. किन्तु गूढ़ार्थ द्वारा अनुपम विज्ञानशास्त्र का अद्भुत रहस्य सिखलाती है. जो भोग तथा मोक्ष का दाता है.

शि०– पुराणों में तो बहुत सी मर्यादा बिरुद्ध असंभव कथाएं लिखी हैं ?

गु०– वह कथाएं किसी गूढ़ वैज्ञानिक तत्व के रहस्य को दर्शाने तथा चिरस्मरण के लिये ही, अलंकृत की गयी है. उनका गूढ़ार्थ जान लाभ उठाना चाहिये.

शि०– क्या वे वैज्ञानिक तत्व, शिल्प के काम में भी आ सकते हैं ?

गु०– अवश्य आसकते हैं क्योंकि अपराद्वाराही पराकी शिक्षाप्राप्तहोतीहै.

उपदेश ४

भगवान का विष्णु अवतार

शि०– क्षीरसागर कहने से क्या तात्पर्य्य है ?

गु०– उस स्वयं प्रकाशरूपी सागर से.

शि०– सागर का तो कुछ जल कज्जी आदि में व्यापा हुआ तथा शेष निष्केवल होता है ?

गु०– उसी तरह स्वयं प्रकाशरूपी सागर के जलरूपी चैतन्य का कुछ अंश ब्रह्माण्डों में व्यापा हुआ और शेष निष्केवल है.

शि०– उस व्यापे हुए चैतन्य को किस नाम रे पुकारते हैं ?

गु०– सगुण साकार ब्रह्म, महाविष्णु, हिरण्यगर्भ, जगद्योनी, महत्तत्व, पुरुषोत्तम, यज्ञपुरुष आदि.

शि०– उस बिन व्यापे निष्केवल चैतन्य को किस नाम से पुकारते हैं ?

गु०– निर्गुण निराकार ब्रह्म, शेषनारायण आदि.

शि०– शेषनारायण का क्या अर्थ है !

गु०– कि शेष ही, नारका अयण हैं, अर्थात् वह निष्केवल शेष चैतन्य ही, उस महत्तत्व का निवास स्थान है.

शि०– क्षीर सागर में शेषजी पर, विष्णु भगवान लेटे हुए हैं ?

गु०– अर्थात् स्वयं प्रकाश सागर में, शेष शुद्ध चैतन्य पर, जगद्योनी व्यापक चैतन्य स्थित है.

शि०– किस तरह ?

गु०– जिसतरह सागर के, शेष जलके आश्रित, कज्जीगत व्यापा जल है.

शि०– वह निर्विकार, शेष चैतन्य किसके बल, इस जगद्योनी हिरण्य गर्भ को थांमे हुए है ?

गु०– अपनी दिव्य कर्षणकारी शक्ति द्वारा.

शि०– इसलिये उसे किस नाम से पुकारते हैं ?

गु०– संकर्षण नाम से.

शि०– इसका क्या तात्पर्य है, कि शेषजी के नीचे क्रम से कच्छप, वराह तथा मत्स्य हैं, जो संकर्षण के आश्रित हैं ?

गु०– अर्थात् उस चैतन्य रूपी संकर्षण की कूर्म्म, वराह तथा मत्स्य, गुणधारी तीन शक्ति यांही सबका स्थंभन, तथा गमनागमन, करने वाली हैं.

शि०– उन शक्तियों को इन जन्तुओं की उपमा क्यों दी ?

गु०– क्योंकि स्थंभन, आकर्षण तथा विकर्षण के गुण क्रम से कच्छप, वराह तथा मत्स्य में विराजते हैं.

शि०– स्थंभन शक्ति को कूर्म्म क्यों कहा ?

गु०– क्योंकि जिस तरह कूर्म्म, इच्छा होते ही, अपने अवयव बाहर तथा भीतर कर, अचल स्थित हो सकता है; उसी तरह प्रवेश निवेशकारी कर्षणशक्ति के द्वारा स्थंभन शक्ति उपजती है, और फिर उसके द्वारा प्रवेश निवेशकारी.

शि०– आकर्षण शक्ति को वराह क्यों कहा ?

गु०– क्योंकि जिस तरह वराह बिन मुड़े, अपनी सीध में भगा चला जाता है. उसी तरह आकर्षण शक्ति का सन्मुख प्रवाह है.

शि०– विकर्षण शक्ति को मत्स्य क्यों कहा ?

गु०– क्योंकि जिस तरह मत्स्य, जल प्रवाह के प्रतिकूल धार द्वारा चढ़ता चला जाता है. उसी तरह विकर्षणशक्ति उपरोक्त, आकर्षणशक्ति, के ठीक विपरीत गति करती है.

शि०– मधुकैटभ किसे कहते हैं ?

गु०– शुद्ध प्रकाश में बांधा उपस्थित करने वाले, पीतादि रंग को.

शि०– भगवान किसे कहते हैं ?

गु०– महत्तत्व के मध्यवर्त्ति बिन्दु को भग, तथा उस योनि के अन्तर्गत

बसने वाले दिव्य तेज को भगवान कहते हैं. किन्तु जो उस तेजको प्राप्त कर लेता है, उसे भी भगवान की उपाधि दी जाती है.

शि०— विष्णु, भगवान का अवतार कहने से क्या तात्पर्य निकलता है.

गु०— विष्णु अर्थात् व्यापक मुद्राद्वारा, उस महत्तत्वगत, भग के अन्तर्गत विराजने वाला दिव्य तेज, योगी में अवतरता है; जिसके द्वारा उसे विष्णुशक्ति के समग्र गुण प्राप्त होते हैं.

शि०— विष्णु भगवान ने मधुकैटभ को मारा ?

गु०— अर्थात् व्यापक मुद्रावाला योगी, उस महत्तत्वगत, योनि के अन्तर्गत बिराजने वाले, दिव्य तेज द्वारा रुकावट करने वाले पीतादि रंग को नष्ट कर देता है.

उपदेश ५

भगवान का ब्रह्मावतार

शि०— किनके योग से यह ब्रह्म शब्द बना ?

गु०— (बृह+म+आ) अथवा (बृह+मा) के योग से.

शि०— इसका अर्थ क्या है ?

गु०— चिरकाल उत्कृष्टतापूर्वक विस्तारनेवाली अथवा वृद्धि करनेवाली आकर्षणशक्ति का तेज या विस्तार.

शि०— पद्मजका अर्थ क्या है ?

गु०— ∵(पद्) = गति, (म) = चिरतेज, (ज) = जन्मनेवाला ∴ पद्मज= चिरतेज की गति से जन्मनेवाला अर्थात् उस व्यापक चैतन्य की स्फुरणा से, जो शक्ति में गति उपजी, उसी से यह आकर्षणकारी तेज उपजा; इसीलिए इस ब्रह्मदेव को विष्णु से उपजा, पद्मज कहते हैं.

शि०— विष्णु की नाभि से उपजे, नाल सहित कमलद्वारा ब्रह्मा उपजे ?

गु०— अर्थात् उस व्यापक महत्तत्वगत, इस सूर्य्य के कर्षण से जल और फिर उस जल के मलसे ब्रह्मा उपजे, अथवा इन सब पिंडों का

विस्तार हुआ; क्योंकि विष्णु=व्यापक महत्तत्व, नाभि=सूर्य्य, नाल=कर्षणशक्ति और क=जल है.

शि०– उसने अपने उत्पादक के ढूंढने के अर्थ, उस नाल के सहारे, कई बार गोते लगाये, पर कुछ पता न लगा, बरन जब भक्तिपूर्वक तप किया; तब प्रभु ने तत्काल प्रसन्न हो, दर्शन दिया ?

गु०– अर्थात् वह परमात्मा केवल उस प्रवेश निवेशकारी कर्षणशक्ति के योग से ही प्राप्त नहीं होता, बरन भक्ति पूर्वक योगसाधन द्वारा प्राप्त होता है.

शि०– ब्रह्मा किसे कहते हैं ?

गु०– चिरकाल सिद्धि करने वाली शक्ति को या हिरण्य गर्भ को.

शि०– ब्रह्मा ने कमल द्वारा पृथ्वी बनायी ?

गु०– अर्थात् जल के मलकी चिरवृद्धि द्वारा पृथ्वी बनी.

शि०– पृथ्वी को सप्तावरणी क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि वह मृत्तिका, जल, अग्नि, वायु, आकाश अर्थात् ईथर, महत्तत्व तथा शक्ति द्वारा वेष्टित है.

शि०– इनका परिमाण क्या है.

गु०– उत्तरोत्तर दशगुणा विस्तार बढ़ता गया है ?

शि०– इस भू-पिंड के तथा सप्तावरणों के परे क्या है ?

गु०– इस पृथ्वी के परे अन्य पिण्ड रूप सृष्टि की सीमा और सप्तावरणों के परे वही शुद्ध शेष चैतन्य है.

शि०– वह सीमा किसके द्वारा निर्फारित है ?

गु०– परस्पर की कर्षण शक्ति द्वारा.

शि०– सप्तद्वीप किन्हें कहते है ?

गु०– इन्हीं सप्तावरणों को.

शि०– चौदह लोक किन्हें कहते है ?

गु०– इन्हीं सप्तवरणों को (ऊर्द्ध तथा अध: विचार से).

शि०– किस तरह ?

गु०– जिस तरह सात पुड़ी रबर की गेंद को आर-पार छेदने से चौदह

पुड़ छिदते हैं. जिनमें से सात ऊपर को तथा सात नीचे को होते हैं.

शि०– फिर ऐसा क्यों कहा जाता है कि ऊपरी लोकों में देवता और नीचे के लोकों में राक्षस रहते हैं; तथा सबके ऊपर स्वर्ग और उसी तरह सबके नीचे महापाताल में एक ही भगवान विराजते हैं ?

गु०– अर्थात् जब योगी, ऊर्द्ध मुखी मुद्रा द्वारा, समाधिस्थ होता है, तो वह शीघ्र ही दिव्य तेज को पा, कैवल्य पद का अधिकारी बन जाता है, किन्तु अधोमुखी मुद्रा वाला, सिद्धियों के फन्दे में पड़, माया मोहादि राक्षसों से सताया जाता है, पर जो इनकी परवाह न कर, सब आवरणों को पार कर जाता है; वही सिद्धियों सहित परमपद का अधिकारी होता है; क्योंकि इन आवरणों के परे वही सच्चिदानन्द प्रभू है, चाहे ऊपर ध्यावों चाहे नीचे सर्वत्र वही है.

शि०– हमारी पृथ्वी के समान, हर पिण्डों में वह चैतन्य किस परिमाण से व्याप्त तथा पृथक है ?

गु०– यदि हर पृथ्वी संबंधी व्याप्ताव्याप्त चैतन्य का व्यास उत्तर से दक्षिण तक चौबीस अंगुल मान लिया जाय, तो चौदह अंगुल सप्तावरणों में व्याप्त और दश अंगुल निष्केवल शेष रहता है.

शि०– ब्रह्मा के चार मुख, हंस वाहन तथा पीतवर्ण, पीताम्बर धारण से क्या तात्पर्य्य है ?

गु०– अर्थात् चतुर्मुखी मुद्रा लगा, अजपा के सहारे, पक्षी की गति से पीतवर्ण धारी, हिरण्यगर्भ को पार कर, उस निर्विकार ब्रह्म को पावो !

शि०– भगवान का ब्रह्मावतार कहने से क्या तात्पर्य्य निकलता है ?

गु०– ब्रह्मा अर्थात् विस्तर मुद्रा द्वारा. उस हिरण्यगर्भगत, योनिके अन्तर्गत का दिव्य तेज योगी में अवतरता है, जिसके द्वारा उसे उत्पादक शक्ति के समग्र गुण प्राप्त होते हैं.

शि०– ब्रह्म की पुत्री सरस्वती से क्या तात्पर्य्य है ?

गु०– अर्थात् आकर्षण से उपजी विद्युत् अथवा गति.

शि०– ब्रह्माने सरस्वती से बल पूर्वक भोग करना चाहा, तो रुद्रने तत्काल उसका मुखच्छेदन किया ?

गु०– (१) अर्थात् आकर्षण और उसकी विद्युत शक्ति का प्रवाह; एक साथ एक ही दिशा में, कदापि नहीं हो सकता. सहसा करने पर, आकर्षण का मुखरूपी, रुखका विच्छेद विकर्षण द्वारा हो जाता है.

(२) धन ध्रुव से उपजी गति के पीछे, धन तेज केवल ऋण ध्रुव तक दौड़ सकता है, पश्चात मुख भंग हो, लौटना पड़ता है.

उपदेश ६

भगवान का रुद्रावतार

शि०– भगवान का रुद्रावतार कहने से क्या उपदेश मिलता है ?

गु०– अर्थात् यमपाश मुद्रा पूर्वक, लय प्राप्त करने से उस महत्तत्वगत, योनिके अन्तर्गत का दिव्य तेज योगी में अवतरता है, जिसके द्वारा रुद्र शक्ति के समग्र गुण प्राप्त होते हैं.

शि०– ब्रह्मा के भ्रू से जो केश पृथ्वी पर गिरा, उससे रुद्रदेव अवतरे ?

गु०– अर्थात् आकर्षण शक्ति के कारण जो ऊपर से जल आदि पदार्थ नीचे गिरते हैं, उनसे तथा केश, वायु आदि से निवेशकारी तेज, उत्पन्न हो उतराता है.

शि०– ब्रह्मा के कुपित होने से, रुद्रदेव का जन्म होना, क्यों कर कहा जाता है ?

गु०– क्योंकि आकर्षण शक्ति के प्रतिकूल, निराकरणकारी तेज अवतरता है.

उपदेश ७

भगवान का कूर्मावतार

शि०– विष्णु भगवान, मन्दाचल को गरुड़ पर रख, क्षीर सागर पर लाये ?

गु०— अर्थात् व्यापक मुद्रापूर्वक, योनि गत तेज द्वारा, अचल मन को पक्षी की गति से स्वयं प्रकाशरूपी, सागर के तट पर लावो.

शि०— कच्छप रूप धर, क्षीर सागर के मध्य में, भगवान अचल दीपवत स्थित हुए ?

गु०— अर्थात् कच्छप मुद्रा द्वारा स्वयं प्रकाशरूपी, सागर के मध्य में उस विष्णु योनिगत. दिव्य तेज को दीप के समान अचल करो.

शि०— फिर शेष को, मन्दराचल को लपेट देवासुर द्वारा क्षीरसागर मथा गया ?

गु०— अर्थात् फिर उस अवशिष्ट. चैतन्य की ओर, हर तरह से मन को अचल कर तेज तम के अन्तर्गत होते हुए, उस स्वयं प्रकाश में लवलीन हो जाओ.

शि०— असुरों ने शेषनाग का मुख और सुरों ने पूंछ पकड़, मन्दराचल द्वारा क्षीरसागर मथा ?

गु०— अर्थात् जिस तरह सर्प के सन्मुख विष और विमुख अमृत है; व जिस तरह नागरूपी कशिश के सन्मुख तम और विमुख तेज है, या जिस तरह कुंडलीनी रूपी, नागिन का मुख तम से और पुच्छ तेज से आवृत है, उसी तरह अवशिष्ट शुद्ध चैतन्य के बहिर्मुखतम और अन्तर्मुख तेज है. तथा जिस तरह सर्प का मुख और पुच्छ दोनों एक साथ पकड़ने से सर्प आधीन हो जाता है, उसी तरह उस शुद्ध चैतन्य के प्रीत्यर्थ, शुक्ल प्रभा संयुक्त श्याम तेज को धारण करते हुए, अपना तम उसके तम में और अपना तेज उसके तेज में लीन करके मन को अचल कर अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, उस स्वयं प्रकाश में मग्न हो जावो, किन्तु भीतर घुसने का मार्ग मुख ही है. पुच्छ नहीं, इसलिये बहिर्मुखता को छोड़, उस मुखरूपी श्याम बिन्दु के अन्तर्मुख हो, पुच्छरूपी तेज तुर्याया अर्द्ध मातृका के परे, उस स्वयं प्रकाश को, पा उसी में मग्न हो जावो, पर जिस तरह क्षीर के मथने से नवनीत प्राप्त होता है, उसी तरह नौवी क्रिया तथा शक्ति चालन पूर्वक, इस साधन के करने से, स्वयं प्रकाश की प्राप्ति होती है.

शि०— विष्णु भगवान के कर्मावतार द्वारा, चौदह रत्न प्राप्त हुए ?

गु०— अर्थात् कूर्मासनपूर्वक कूर्म मुद्रा द्वारा, विष्णु योनिगत, दिव्य तेज योगी में, अवतरता है, जिसके द्वारा उसे रत्नरूप, चौदह बातों का ज्ञान प्राप्त होता है.

शि०— मंथन द्वारा सबसे पहिले, अखिल संसार का नशानेवाला, अव्यर्थ विष निकला, जिसे शिवने ग्रहण किया, तथा फिर निज शान्ति के अर्थ, चन्द्रमा को धारण किया ?

गु०— अर्थात् उपरोक्त संयम द्वारा, योगी को प्रथम ही प्रथम शिव नामक महत्तत्व का मध्यवर्त्ती श्याम वर्ण, भवताप नाशक प्रविष्ट होने के मार्ग, विदित होता है. जो एक बड़े चंद्रमा के समान अत्यन्त शांति कारक शुभ्रवर्ण, मण्डल के अन्तर्गत है, इसीलिये कहा जाता है, कि शिवने विषको ग्रहण तथा चन्द्रमा को धारण किया.

शि०— फिर मंथन द्वारा कमल, कमला पांचजन्य शंख तथा कौस्तुभमणि निकला, जिन सबको विष्णुने ग्रहण किया ?

गु०— अर्थात् फिर उपरोक्त संयम द्वारा योगी को, विष्णुरूपी महत्तत्व के मध्यवर्त्ती कमलाकार मण्डल के अन्तर्गत, लक्ष्मी नामक पीत-वर्ण की ज्योति तथा शंखध्वनि और कौस्तुभ मणिवत, प्रतिभ नामक तारे की प्राप्ति होती है, जिनके द्वारा योगोपदेश में कही, समग्र सिद्धियां फलती हैं.

शि०— इन्द्रने अद्भुत आसन लक्ष्मी को दिया, नन्तर वह अपनी मर्जी से विष्णु भगवान के पास जा, उन्हें वरती हुई ?

गु०— अर्थात् विद्युत शक्ति के सहारे से (योगी) ध्यानी का लक्ष, उस विष्णु यौनिगत तेज के अन्तर्गत, आपही पहुंच जाता है.

शि०— किस तरह ?

गु०— जिस तरह विद्युत द्वारा भूषणपर, अनायास सुवर्ण पहुंच जाता है.

शि०— अनहदगत शंखध्वनि को, पांचजन्य क्यों कहते हैं ?

गु०— क्योंकि उसके द्वारा महत्तत्व का समग्र भेद जाना जाता है.

शि०— मंथन द्वारा सप्त सोंडयुत चार दंतवाला, परम तेजस्वी ऐरावत गजेन्द्र निकला, जो इन्द्रने ग्रहण किया ?

गु०— अर्थात् उपरोक्त संयम द्वारा, योगी को चारों पदार्थों की दाता, शब्दकर्त्ता सप्त भेदवाली, विद्युत शक्ति का ज्ञान होता है. (गजू=शब्द करना.)

शि०— मंथन द्वारा चन्द्रतुल्य स्वेतवर्ण प्रभावाला, उच्चैः श्रवा नामक सप्त मुखी अश्व निकला, जो सूर्य्य ने ग्रहण किया ?

गु०— अर्थात् उपरोक्त संयम द्वारा योगी को, उस ऊपर को खैंचने तथा घुमाने वाले, सूर्य्य के अन्तर्गत विराजनेवाले, शुभ्रवर्ण सप्तवाष्प तुल्य, तत्वों का परिपूर्ण ज्ञान होता है.

शि०— मंथन द्वारा कल्प वृक्ष तथा रंभानामक अप्सरा निकली, जो स्वर्गवासियों करके ग्रहण की गयी ?

गु०— अर्थात् उपरोक्त संयम द्वारा, स्वेच्छाचारी योगियों को, उनके संकल्प के अनुसार तत्काल फल देनेवाली तथा सर्वत्र ले जानेवाली परम रमणीक प्रभा प्राप्त होती है.

शि०— मंथन द्वारा कामधेनु निकली, जिसे ब्रह्मनादी ऋषियोंने ग्रहण की?

गु०— अर्थात् उपरोक्त संयम द्वारा, ब्रह्मनाद में लय पानेवाले योगियों को उनकी कामना के अनुसार, तत्काल फल देनेवाली ज्योति प्राप्त होती है.

शि०— मंथन द्वारा संसार की व्याधि हरनेवाले, विष्णु के समान आकार-वाले, अत्यन्त दैदीप्यमान श्याम प्रभावाले, धन्वन्तरि वैद्य निकले?

गु०— अर्थात् उपरोक्त संयम द्वारा, योगी को भवसागर के दुःखरूप आवागमन से रहित करनेवाले, उस श्यामवर्ण महत्तत्व की ऋण धनगतिका ज्ञान हो जाता है.

शि०— धन्वन्तरि के हाथ से अमृत घट छीन राक्षस भागे, किन्तु विष्णु भगवानने मोहिनी रूप धर, देवों को निकट बैठा अमृत तथा राक्षसों को दूर बैठा सुरा बांटी ?

गु०— अर्थात् जब उस ऋण धन गति के योग से, अमृतरूपी मोक्ष प्राप्त का समय आता है, तब अज्ञानरूपी राक्षस, अवश्यमेव सताता है, किन्तु जो मोहरहित हो, उस विष्णु योनि के अन्तर्गत बसनेवाले

चित्ताकर्षक दिव्य तेज में लवलीन रहता है, उसको वह अमृत पद मिलता है; और जो उस दिव्य तेज से दूर हो अन्धःकार में पड़ते हैं, उन्हें ज्ञान को शून्य करनेवाली सुरारूप अज्ञानता प्राप्त होती है.

शि०– आभासुर नामक राक्षसने देवरूप धर, चन्द्र सूर्य्य के मध्य में बैठ, कुछ अमृत पा लिया, जताने पर बिष्णु के चक्रने राक्षस के दो खंड कर दिये वेही राहु, केतु कहलाते हुए; अपना बदला लेने के लिये, दोनों का ग्रहण किया करते हैं ?

गु०– अर्थात् मध्यवर्त्ति पृथ्वी पर पड़नेवाली, सूर्य्य-चन्द्र की आभा में भी अमृत समान गुण है, किन्तु वही ओट में पड़, दानों की व्यापक चक्राकार गति से विभाजित हो, राहु, केतु कहाती हुई ग्रहण का कारण बनती हैं.

शि०– विष्णु भगवान के बिना बलि तथा इन्द्र भी मंद्राचल को धार न सके ?

गु०– अर्थात् उस विष्णु योनिगत, दिव्य तेज के बिना शक्ति तथा विद्युत भी मनको अचल नहीं कर सकती.

उपदेश ८

भगवान का वाराह अवतार

शि०– विष्णु भगवानने वराहावतार द्वारा पृथ्वी का उद्धार किया ?

गु०– अर्थात् वराह मुद्रा के संयम से, विष्णु योनिगत दिव्य तेज, योगी में अवतरता है, जिसके द्वारा उसे पृथ्वी तत्व की सिद्धि होती है.

शि०– ब्रह्मा के नाकसे बाहर गिर, एक सूक्ष्म वराह उपजा ?

गु०– अर्थात् स्वास को आकर्षण कर, छोड़ने से नाक द्वारा वर आह-रूपी सोहँ उपजा.

शि०– फिर वह वराह देखते ही देखते तत्काल महदाकार हो. अपनी दीप्ति से सब दिशाओं को प्रकाशता हुआ सूर्य्य के समान भासने लगा ?

गु०— अर्थात् (नाशाग्र दृष्टि द्वारा) उस सोहँ का एकाग्र चिंतवन करते-करते, वह महत्तत्व महदाकार हो, सूर्य्य के समान भासने लगता है.

शि०— उस वराह को सबने विष्णु भगवान का अवतार कहा ?

गु०— अर्थात् उस साकार सोहँ कोही, सब व्यापक योनिवान महत्तत्व कहते हैं.

शि०— हिरण्याक्ष किसे कहते हैं ?

गु०— मध्यवर्त्ति व्यापक पीतवर्ण या मध्य में एकत्र होनेवाले पीतवर्ण को हिरण्याक्ष कहते हैं.

शि०— हिरण्याक्ष पृथ्वी को पातालगत, क्षीरसागर में ले जाकर अपना तकिया बना चुका था, इसलिये विष्णु भगवानने वराह का रूप धरा !

गु०— अर्थात् जब पृथ्वी का, पीतवर्ण तेज, अधोमुखी मुद्रा द्वारा शुभ्र प्रकाशरूपी सागर के मध्य में अचल स्थित हो जाय, तब वह योगी जिसे उपरोक्त महत्तत्वगत योनि के अन्तर्गत का दिव्य तेज प्राप्त हो चुका है; वराह मुद्रा धारण करे.

शि०— फिर वह वराह क्षीरसागर में घुस, पृथ्वी को उठा, अपने एक शुभ्र दन्त पर धर, महान युद्ध कर, हिरण्याक्ष को मारता हुआ ?

गु०— अर्थात् फिर सोहँ वृत्ति किये हुए, समाधिस्थ हो स्वयं प्रकाश सागर में अपने दन्तरूप महत्तत्व की, शुक्ल ज्योति के अन्तर्गत, पृथ्वीरूपी, पीतवर्ण तेज को दृढ़ धारण कर, संयमरूपी युद्ध करे, तो उस मध्यवर्त्ति हिरण्याक्षरूपी पृथ्वी तत्व का जय होगा.

उपदेश ७

भगवान का मत्स्यावतार

शि०— विष्णु भगवानने मत्स्यावतार ले, शंखासुर राक्षस को मार, समग्र विद्यासहित, वेद को प्राप्त किया ?

गु०— अर्थात् मत्स्यासन अथवा मत्स्य मुद्रा द्वारा, विष्णु योनिगत दिव्य

तेज योगी में अवतरता है, फिर जो योगी उस तेज के अन्तर्गत शंखध्वनि के साथ लय प्राप्त करता है, उसीको समग्र विद्यासहित वेद का विज्ञान प्राप्त होता है.

उपदेश १०

अन्य मत से मत्स्यावतार

शि०— सत्यव्रत राजा, सूर्य्य पुत्र श्राद्धदेव, कृतमाला नदी का क्या अर्थ है ?

गु०— सत्यव्रत राजा=सदाचार से शोभित; सूर्य्य पुत्र श्राद्धदेव=सूर्य्य से उपजे प्रकाश में श्रद्धा करनेवाला; कृत=किया हुआ; माला= धारण कर लिया; नदी=चमकनेवाला प्रकाश.

शि०— मत्स्यावतार का क्या अर्थ है ?

गु०— ∵मत्=अहं से और स्य=का∴मत्स्यावतार=अहं से प्रकाश का अवतरानेवाला या विकर्षण शक्ति के तेज का प्राप्त करने वाला.

शि०— सत्यव्रत राजा जिसे सूर्य्य पुत्र श्राद्धदेव कहते हैं, कृतमाला नदी के तट पर बैठे हुए, संध्या कर रहा था; कि उसके अर्घ्य पात्र में एक सूक्ष्म मत्स्य आ गया ?

गु०— अर्थात् सदाचार से शोभित, सूर्य्य से उपजे प्रकाश में श्रद्धा करने- वाला, जिसने क्रिया योग द्वारा, उक्त प्रकाश धार लिया है; ऐसा मनुष्य संध्या करे तो उसके अर्घ्य प्रदान द्वारा, मत्स्यरूप कर्षण शक्ति का सूक्ष्म तेज, उसे प्राप्त होता है.

शि०— उसने दया पूर्वक जल में छोड़ दिया, किन्तु फिर वह अर्घ्य पात्र में आगया; इस तरह तीन बार छोड़ा, पर वह तीनों ही बार अर्घ्य पात्र में आ गया ?

गु०— अर्थात् संध्या में तीन अर्घ्य, सूर्य्य के सन्मुख दिये जाते हैं, किन्तु देने से हरबार वह निवेशकारी तेज पात्र में आ जाता और फिर डुबोने से वापिस जल में चला जाता है. इसलिये—

शि०— वह उसे फिर से जल में न छोड़ने लगा, तो वह मत्स्य बोला, कि हे राजन ! अब कृपा कर जल में न छोड़, मेरी रक्षा कीजिये ?

गु०— अर्थात् फिर उस प्राप्त मत्स्यरूपी, निवेशकारी विकर्षण शक्ति के तेज की रक्षा के लिये, अर्घ्य पात्र, जल में न डुबोना चाहिये !

शि०— यह सुन राजाने उसे क्रम से पात्र, घट, तथा सरोवर में रक्खा; किन्तु वह देखते ही देखते इतना बढ़ा, कि संसार भर में उसके समान योग्य कोई पात्र ही न दिखा और वह अपने महत प्रकाश से सब दिशाओं का प्रकाशित करने लगा ?

गु०— अर्थात् वह रक्षित तेज, पात्र द्वारा शरीर में घुस, हृदयरूपी सरोवर में आ, अचल ध्यान द्वारा, देखते-देखते महदाकार महत्तत्व हो भासने लगता है.

शि०— उस मत्स्यने सप्तर्षि सहित नाव में चढ़े हुए, उक्त राजा को महा-प्रलय का दृश्य दिखाया ?

गु०— अर्थात् जो उस निवेशकारी तेज द्वारा, सप्तावरणों का जय कर लेता है, वह चिरंजीवी निर्विघ्न हो, महाप्रलय का दृश्य देख सकता है.

शि०— हयग्रीव नाम किसे दिया गया है ?

गु०— शंख को.

शि०— क्यों ?

गु०— क्योंकि शंख का आकार, घोड़े की ग्रीवा के समान होता है.

शि०— फिर उस मत्स्य भगवानने, हयग्रीवासुर को मारकर, समग्र विद्याओं सहित वेद को प्राप्त किया ?

गु०— अर्थात् उपरोक्त साधक, उक्त योनिगत निवेशकारी तेज द्वारा, अनहद गत शंख ध्वनि, का जय करते ही, समग्र विद्याओं सहित वेद को पा सकता है.

उपदेश ११

नृसिंहावतार

शि०— विष्णु भगवान का नृसिंह अवतार कहने से क्या तात्पर्य है ?

गु०– अर्थात् सिंहाक्रान्ता मुद्रा द्वारा, महत्तत्वगत योनि के अन्तर्गत का दिव्यतेज योगी में अवतरता है.

शि०– उस नृसिंह भगवानने स्थंभ फाड़; हिरण्यकश्यप का उदर विदार राम भक्त प्रह्लाद का उद्धार किया ?

गु०– अर्थात् योगी उस योनिगत दिव्य तेज सहित, सिंहक्रान्ता मुद्रा द्वारा, अर्द्ध मात्रारूप ररंकार की ध्वनि में लय करने से, स्थंभ-रूपी अवरोधक आवरण को फाड़, हिरण्यगर्भ का गर्भ विदार, पार हो, ब्रह्मानन्द को अनुभवता है.

शि०– शूक्राचार्यने प्रह्लाद को रामभक्ति करने से बहुत रोका, पर वह न रुका ?

गु०– अर्थात् जब ब्रह्मानन्द को चाहने वाला, सबमें रंमन्नेवाला व्यापक ब्रह्म की उपासना करता है, तब कामदेव उसके पथ में अनेक बाधाएं उपस्थित करता है, पर भक्तजन काम के वशीभूत नहीं होते.

शि०– जब प्रह्लाद ने शुक्राचार्य्य का कहना न माना, तब हिरण्यकश्यपने बहुत समझाया, धमकाया तथा अनेक प्रकार से कष्टित किया किन्तु उसने रामभक्ति न छोड़ी ?

गु०– अर्थात् जब ब्रह्मानन्द का चाहने वाला, कामदेव को जीत लेता है, तब हिरण्यगर्भ जात अनेक प्रकार की सिद्धियां उसे लुभाती तथा उसके पथ का अवरोध करती हैं.

शि०– शस्त्र से न छिदना कौनसी सिद्धि है ?

गु०– आकाश तत्व की.

शि०– अत्यन्त ऊँचे से गिरने पर भी चोट न आना, कौनसी सिद्धि है ?

गु०– वायु तत्व की.

शि०– अग्नि से न जलना, कौनसी सिद्धि है ?

गु०– अग्नि तत्व की.

शि०– जल में न डूब मरना, कौनसी सिद्धि है ?

गु०– जल तत्व की.

शि०– पहाड़ से भी न कुचलना, कौनसी सिद्धि है ?

गु० - पृथ्वी तत्व की.

शि०– जब प्रह्लाद किसी तरह न मरा, तब उसे स्थंभ से बांध, ललचाया और धमकाया ?

गु०– अर्थात् जब ब्रह्मानन्द का चाहने वाला, पांचों तत्वों की सिद्धियों के विघ्न से बच जाता है, तब उसे सकल संसार के अवरोध करने वाले, स्थंभरूप महत्तत्व की सिद्धि होती है.

शि०– जब प्रह्लाद स्थंभ के बंधन से भी विचलित न हुआ, तब उस पर असि चलायी ?

गु०– अर्थात् जब ब्रह्मानन्द को चाहनेवाला, स्थंभरूप महत्तत्व की सिद्धि की भी परवाह नहीं करता, तब उसे शक्तितत्व की सिद्धि होती है.

शि०– किन्तु प्रहार के पूर्व ही नृसिंह भगवान स्तंभ फाड़ प्रगटे, तथा हिरण्यकश्यप का उदरविदार, आंतें पहिन, प्रहलाद को अभय करते हुए ?

गु०– अर्थात् शक्तितत्व को निर्विघ्न पार करनेवाला योगी, योनि गत दिव्य तेजयुत, सिंहाक्रान्ता मुद्रा द्वारा, स्थंभरूप आवरण को फाड़, हिरण्यगर्भ का गर्भरूप उदरविदार, पार हो, ब्रह्मानन्द को अनुभवता है.

उपदेश १२

हरि अवतार

शि०– गजराज का अर्थ क्या है ?

गु०– शब्दराज, अर्थात् सोहँ वृत्तिवाला जीव.

शि०– एक गजराज तृषित हो, ज्योंही सागर में धसा, त्योंही उसे एक बड़े ग्राहने पकड़ लिया ?

गु०– अर्थात् जीव विषयासक्त हो, संसार सागर में धंस, ग्राहरूपी मोह में फंस जाता है.

शि०— कभी तो गजराज उसे बाहर घसीट लाता, और कभी ग्राह उसे जल में खींच ले जाता ?

गु०— अर्थात् कभी तो जीव मोह द्वारा वैराग्य को प्राप्त होता और कभी मोह में लिप्त हो, विषयों में मग्न होता है.

शि०— इस प्रकार दिव्य सहस्र वर्ष तक युद्ध होता रहा ?

गु०— अर्थात् इस मोह के कारण, इस जीव का हजारों बार आवागमन होता है.

शि०— जबग्राह, उस गजराज को गंभीर जल में खींच ले गया, तब वह थकित हो, घबराया; और अपने उद्धार की चिन्ता करने लगा ?

गु०— अर्थात् जब मोहद्वारा, अनन्त विषयभोग कर, जीव दुखी हो जाता है, तब घबरा कर अपने उद्धार की चिन्ता करता है.

शि०— जब बचने का उपाय कुछ नहीं दिखा, तब एक कमल ले, शुद्ध चित्त से ईश्वर का यजन कर, उनके ध्यान में मग्न हुआ ?

गु०— अर्थात् जब जीव, संसार के दुःख से व्याकुल हो, बचने का कोई उपाय नहीं देखता, तब कमल मुद्रापूर्वक कमलासन लगा, योग द्वारा ईश्वर का चिंतन करता हुआ, समाधि को प्राप्त होता है.

शि०— तब गरुड़ पर चढ़, शीघ्रता पूर्वक आ, विष्णु भगवान ने ग्राह को मार गजका उद्धार किया ?

गु०— अर्थात् तब ग्रंथी मुद्रापूर्वक, खेचरी मुद्राद्वारा, पक्षी की गति से शीघ्रतापूर्वक, लय प्राप्त करनेवाले योगी में, महत्तत्वगत योनि के अन्तर्गत का दिव्य तेज, अवतरता है, जिसके द्वारा मोह का नाश हो, जीव का उद्धार होता है.

उपदेश ९३

यज्ञावतार

शि०— रुचि ऋषिकी आकूति पत्नि के गर्भ से यज्ञ भगवान अवतरे ?

गु०— अर्थात् भक्तिपूर्वक क्रियाशक्ति के संचालन द्वारा, हिरण्यगर्भरूपी यज्ञ का, योनिगत दिव्य तेज योगी में अवतरता है.

शि०- फिर उनके द्वारा दक्षिणा स्त्री में सुयम पुत्र उपजा ?

गु०- अर्थात् दक्षिणावर्त्त हो दक्षिण मार्गद्वारा, उस दिव्य तेज में लय प्राप्त करने से, दिव्य यम की सिद्धि होती है.

शि०- जिन्होंने अनेक पापियों को पाप रहित कर, यम पाश से मुक्त किया ?

गु०- अर्थात् यमपाश मुद्रापूर्वक, उपरोक्त साधन करने से, कुइच्छा के निवृत्त होते ही, प्राणियों की सद्गति होती है.

शि०- इसीलिये उस यज्ञ पुरुष भगवान को हरि कहते हैं ?

गु०- अर्थात् इसीलिये उस महत्तत्वगत, योनि के अन्तर्गत के व्यापक दिव्य तेज को हरि कहते हैं.

उपदेश १४

धन्वन्तरि अवतार

शि०- धन्वन्तरि शब्द किसके द्वारा बना ?

गु०- (धन्व्+अन्तरि) अथवा (धन्+उ+अन्तर्+इ) से.

शि०- इनका अर्थ क्या है ।

गु०- (१) धन्व्=जाना, स्थलांतर करना, परे से भी परे जाना; अन्तरि=भीतर.

(२) धन्=लगाना, जोड़ना; उ=तेज; अन्तर=घटाना, अलग करना; इ=शक्ति, गति;

शि०- (धन्व्+अन्तरि) के विचार से धन्वन्तरि का क्या अर्थ हुआ ?

गु०- भीतर ही भीतर परे से भी परे पहुंचाने वाला.

शि०- धन+उ+अन्तर्+इ) के विचार से धन्वन्तरि का क्या अर्थ हुआ ?

गु०- (१) शक्ति को गति देकर तेज को बटोरना ?

(२) धन ऋण शक्ति के तेज को मिलाना;

(३) धन ऋण तेज की गति को मिलाना;

(४) धन ऋण शक्ति को मिलाना;

(५) शक्ति और तेज की धन ऋण गति को मिलाना.

शि०— धन्वन्तरि भगवान अमृतका घट लिये हुए, क्षीरसागर से अवतरे?

गु०— अर्थात् घट या सम्पुट मुद्रापूर्वक, उस विष्णु योनि के अन्तर्गत होते हुए, परे से भी परे पहुंचने पर योगि को, उस स्वयं प्रकाशरूपी अमृत की प्राप्ति होती है.

शि०— वैद्य का अर्थ क्या है ?

गु०— परिपूर्ण ज्ञाता.

शि०— धन्वन्तरि भगवान को वैद्य क्यों कहते हैं ?

गु०— क्योंकि शक्ति तथा तेज की धन ऋण गति के योग पूर्वक, उस योनिगत दिव्य तेज के अन्तर्गत होते हुए, परे से भी परे वृत्ति पहुंचने पर उस निर्विकार पद का ज्ञान होता है.

शि०— वे धन्वन्तरि भगवान संसार के समग्र रोगों को हरते हैं ?

गु०— अर्थात् जब उस धन ऋण के योग द्वारा योनिगत तेज के अन्तर्गत अन्तर्मुखत्व प्राप्त होकर, वह निर्विकार पद प्राप्त होता है, तब संसार का आवागमनरूपी दुःख छूटता है.

शि०— जब तक्षक सर्प पीठ को डसा, तब धन्वन्तरि वैद्य की मृत्यु हुई ?

गु०— अर्थात् जब कुण्डलनी खड़ी हो, पृष्ट भाग को स्पर्शती है, और जब प्राणवायु पश्चिम मार्ग को भेद कर गति करता है, तब कहीं शक्ति तथा तेज की धन ऋण गति का जय होता है; जिनका योग परिपूर्ण ज्ञान का दाता है.

उपदेश १५

कपिलावतार

शि०— कर्द्दम का अर्थ क्या है ?

गु०— (कृ) = करना, (दम्) = दमन करना; ∴ कर्द्दम = इन्द्रियों का दमन करने वाला.

शि०– देवहुती का अर्थ क्या है ?

गु०– (देव) = प्रकाश; (हुती) = यजन के द्वारा प्राप्त; ∴ देवहुती = दिव्य तेज के अन्तर्गत, यजन द्वारा प्राप्त.

शि०– कपिलदेव का अर्थ क्या है ?

गु०– शुभ्र तेजयुत श्याम ज्योति.

शि०– कर्द्दम ऋषि की देवहुति पत्नि के गर्भ से कपिल देव अवतरे ?

गु०– अर्थात् इन्द्रियनिग्रह पूर्वक, उस हिरण्यगर्भगत दिव्य तेज के अन्तर्गत यजन द्वारा, वह शुभ्र तेजयुत श्याम तेज योगी में अवतरता है.

शि०– कपिलदेवजी ने अपनी माता देवहुति को, सांख्य का उपदेश दे मुक्त किया ?

गु०– अर्थात् शुभ्र प्रभायुत श्याम तेज के उपदेशरूप संयम द्वारा वह योगी मोक्ष का भागी होता है, जो उपरोक्त दिव्य तेज के अन्तर्गत यजन करता हुआ, अग्रसर होता है.

शि०– सांख्य का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵ स = सहित, उस; अंख्य = अग्रसर होने वाला.
∴ सांख्य = उसके सहित या उस ओर अग्रसर होने वाला या संख्या का ज्ञान जिसके द्वारा हो.

शि०– कपिलदेवजी ने किस मुद्रा का उपदेश दिया ?

गु०– सकल सिद्धियों की दाता, नासाग्र दृष्टिवाली अधोमुखी मुद्रा का.

◆◆◆◆◆◆◆◆

उपदेश १९

ऋषभावतार

शि०– ऋषभ का अर्थ क्या है ?

गु०– ऋष् = प्रविष्ट होना; भ = प्रकाश ∴ ऋषभ = प्रकाश के अन्तर्गत प्रविष्ट होने वाला.

शि०– नाभि राजा का अर्थ क्या है ?

गु०– सूर्य्य का राजा अर्थात् महत्तत्व.

शि०– सुदेवी का अर्थ क्या है ?

गु०– सर्वोत्तम दिव्य ज्योति.

शि०– नाभि राजा की स्त्री सुदेवी के गर्भ द्वारा ऋषभदेवजी अवतरे ?

गु०– अर्थात् महत्तत्व की मध्यवर्त्ति श्रेष्ठ ज्योति के अन्तर्गत प्रविष्ट होने वाले में दिव्य तेज अवतरता है.

शि०– फिर ऋषभदेव ने राजपाट त्याग, जड़वत स्थित हो, परमहंस वृत्ति द्वारा, लयकर कैवल्यपद पाया ?

गु०– अर्थात् विरक्त हो, जड़ समाधि लगा, हंस वृत्ति धार, उर्द्ध मुखी मुद्रा द्वारा, उपरोक्त दिव्य तेज के अन्तर्गत प्रविष्ट होता हुआ, वृत्ति का लय करने वाला कैवल्य पद पाता है.

◈◈◈◈◈◈◈◈

उपदेश १७

वामनावतार

शि०– वामन का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵ वा = पवन गति; और मन = चिन्तन करना, या स्थिर करना,
∴ वामन पवन गति का चिन्तक या स्थंभक.

शि०– वामन के लघुरूप ने किसका संकेत किया है ?

गु०– मौष्टिक मुद्रा का.

शि०– त्रिविक्रम का क्या अर्थ है ?

गु०– तीनों गतियों को जीतने वाला पराक्रम.

शि०– त्रिविक्रम का दीर्घ रूप किसका संकेत करता है ?

गु०– प्रलम्ब मुद्रा का ?

शि०– कश्यप का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵ कश् = मारडालना, दंड देना; और अप = ईश्वरीय सृष्टिनियम के प्रतिकूल;

∴ कश्यप = सृष्टि नियम के प्रतिकूल वर्त्तनेवाले को मार डालने या दुःख देने वाला अर्थात् आकर्षण शक्ति का तेज.

शि०- कश्यप को पश्यक क्यों कहते हैं ?

गु०- क्योंकि वह सूक्ष्म से लेकर स्थूल तक का दर्शक है, अथवा त्राटक करने वालों का भी दर्शक है.

शि०- आदितिका अर्थ क्या है ?

गु०- आदन करने वाली, सबको प्रकाशनेवाली, दिव्य तेज की गति.

शि०- यहां पर स्त्री, बलि, त्रिपद, स्वर्ग तथा ऋषि का क्या अर्थ है ?

गु०- (स्त्री) = विस्तारनेवाली; (बलि) = शक्ति; (त्रिपद) = त्रिगति, त्रिबलि; (स्वर्ग) = निज इच्छानुसार ऊर्ध्व गति पाना, या स्वयं ऊर्ध्व गति पाना; और (ऋषि) = घुसने वाला अर्थात् प्रवेश या निवेशकारी गति के द्वारा, अन्तर्मुखत्व देने या पानेवाला.

शि०- दैत्य, असुर तथा व्रत किसे कहते हैं ?

गु०- अन्धःकार को दैत्य, असुर आदि और तेज की वृद्धि करने को व्रत कहते हैं.

शि०- जब दैत्यों के कारण इन्द्र श्री हीन हो गया, तब आदिति, कश्यप ऋषि की आज्ञा ले, व्रत करती हुई ?

गु०- अर्थात् जब अज्ञानता से निज विद्युत् शक्ति, निस्तेज हो गयी हो, तो सबकी आदन करने वाली, कर्षण शक्ति की प्रवेश निवेशकारी ज्योति को मिला, स्वतेज की वृद्धि करो.

शि०- तब वामन भगवान उसके गर्भ से अवतरे ?

गु०- अर्थात् तब मौष्टिक मुद्रा पूर्वक पवन के रुकते ही, उस हिरण्यगर्भगत योनि के अन्तर्गत का सूक्ष्म तेज, योगी में अवतरता है.

शि०- फिर वे ब्रह्मचर्य्य को धार, बलि के यज्ञ में गये ?

गु०- अर्थात् तब ब्रह्मचर्य्य पूर्वक, शक्ति चालन करे.

शि०- फिर बलिराजा से त्रिपाद भूमि की याचना की ?

गु०- अर्थात् फिर जो आधार चक्र के ऊर्द्ध में त्रिपदा शक्ति, त्रिधावेष्टित हो स्थित है, उसे तीनों पदों से रहित करने का प्रयत्न करे.

शि०- ज्यों ही बलिराजा त्रिपाद भूमि देने को उद्यत हुआ, त्यों ही

शुक्राचार्य्यने उसमें बाधा उपस्थित की; किन्तु वामन भगवानने उसे कुश द्वारा एकाक्ष कर, निवृत्त किया ?

गु०– अर्थात् जब त्रिपदा शक्ति, अपनी त्रिधावक्रता को त्यागना चाहती है, तब उसमें कामदेव बाधा उपस्थित करता है, किन्तु मौष्टिक मुद्रा पूर्वक, उक्त योनिगत दिव्य तेज के चिन्तन तथा पवन के रोधन द्वारा, निवृत्त करना चाहिये.

शि०– कामदेव को एकाक्ष करने का क्या अर्थ है ?

गु०– अर्थात् काम से ऊपजी विषय दृष्टि को त्याग, उस कुश अर्थात् तेज द्वारा ज्ञान दृष्टि को रक्षे.

शि०– ज्यों ही बलिने खड़े होकर त्रिपाद का संकल्प छोड़ा, त्योंहि वामन भगवानने त्रिविक्रम रूपधर, एकपाद से अध, दूसरे से ऊर्ध्व लोक नाप लिये; तब देवोने सुमन वर्षा, आनन्द मनाया ?

गु०– अर्थात् ज्योंहि त्रिपदी शक्ति, अपनी त्रिवालि को त्याग, खड़ी हो जाती है; त्योंहि वह दिव्य योनिगत सूक्ष्म तेज, प्रलम्ब मुद्रा पूर्वक, उसके त्रिगुणात्मक पराक्रम द्वारा विस्तृत हो, नीचे की पादांमुष्ट और ऊपर को शिखाग्रतक व्याप जाता है, जिसके द्वारा नीचे के सातों तथा ऊपर के सातों आवरण नष्ट हो जाते हैं, तथा उस दिव्य तेज के अन्तर्गत, अन्तर्मुख वृत्ति करने से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है.

शि०– तीसरे पद के लिये बलि को बांध, भूमि पर पटक, उसकी पीठ नापली ?

गु०– अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र को रोक कर, बैठनेवाली शक्ति, जब खड़ी हो जाती है, तब सूक्ष्म स्वतेज उस रन्ध्र में हो, पृष्ट भाग से गमन कर जाता है; और शक्ति नीचे गिर, पूर्ववत त्रिबद्ध हो जाती है.

शि०– फिर इन्द्र को स्वर्ग और बलि को पाताल भेजा ?

गु०– (१) अर्थात् जब शक्ति नीचे बैठती है, तब (देवराज) दिव्य तेज ऊर्द्ध गति करता है, क्योंकि,

(२) जब आकर्षण शक्ति का प्रवाह नीचे की ओर होता है, तभी विद्युत ऊपर को चढ़ती है.

शि०– तब से सदा बलि के द्वार, वामन भगवान तिष्टते हैं ?

गु०– (१) अर्थात् जिस ब्रह्मरन्ध्र के मुखको शक्ति रोके थी उसके उद्‌घाटन होने के पश्चात्, सदा वह द्वार, उस सूक्ष्म दिव्य तेज से रक्षित रहता है.

(२) उस कुण्डलनी के मुख द्वारा ही पवन में गति उपजती है, अर्थात् स्वासा स्वास होता है.

(३) चित में स्फुरण उठने का द्वार वही है.

(४) हमारा वह सूक्ष्म चिन्मय तेज, उसी के विमुख स्थित है, जो जठराग्नि का बीज तथा जीवन का मूल है.

शि०– शक्ति तो कशिश को भी कहते हैं ?

गु०– तभी तो कशिश के द्वारा, वह दिव्य सूक्ष्म तेज प्राप्त होता है, जो उसके मुख के अन्तर्गत हो गमन करता है.

उपदेश १८

हंसावतार

शि०– नारद का अर्थ क्या है ?

गु०– नार=महत्तत्व; द=देनेवाला.∴.नारद=महत्तत्व का दर्शक तथा सिद्धि दाता.

शि०– देवर्षि किसे कहते हैं ?

गु०– दिव्य तेज के अन्तर्गत प्रविष्ट होनेवाले को.

शि०– मुनि किसे कहते हैं ?

गु०– मौन धारे हुए, एकाग्र चित्त से चिन्तन करनेवाले साधक को.

शि०– विष्णु भगवानने हंस का रूप धर, देवर्षि नारद मुनि को योग तथा आत्मज्ञान का निर्णित सहज साध्य उपदेश दिया ?

गु०– अर्थात् महत्तत्व के मध्यवर्त्ति श्याम बिन्दुगत, दिव्य तेज के अन्तर्गत, हंस की गति पूर्वक सुमुखी मुद्रा द्वारा, अजपा का एकाग्र चिन्तन करते हुए, धसकर लय प्राप्त करने से, अनायास योग सहित आत्मज्ञान की सिद्धि वही नार देता है.

शि०– हंसरूप से किन बातों का संकेत किया है ?

गु०– सुमुखी मुद्रा, अजपा जप, हंस की चाल और हंस के गुण का संकेत किया है.

शि०– हंस के गुण से क्या उपदेश मिलता है ?

गु०– अर्थात् जिस तरह दुग्ध में जल मिला, हंस के सन्मुख रखने पर भी वह जल को त्याग निष्केवल दुग्ध को ही ग्रहण करता है, इसी तरह हमें उचित है, कि हम भी मोहकारी विषय जल को त्याग, उस निर्विकार स्वयं प्रकाशरूपी दुग्ध को ग्रहण करें; अथवा औगुण त्याग, गुण को ग्रहण करें.

उपदेश १९

मन्वन्तरावतार

शि०– मन्वन्तर का अर्थ क्या है ?

गु०– मनु=मन, स्वभाव, वृत्ति; और अन्तर=भीतर, अन्तर्मुख; मन्वन्तर=अन्तर्मुख वृत्ति.

शि०– त्रिलोकी किसे कहते हैं ?

गु०– ऊर्द्ध, अध तथा मध्य में दिखनेवाले पिण्ड पदार्थादि.

शि०– विष्णु भगवानने मन्वन्तर अवतार से त्रिलोकी प्रकट, सब काम किये ?

गु०– अर्थात् महत्तत्व के मध्यवर्त्ति श्याम बिन्दुगत, दिव्य तेज के अन्तर्गत, अन्तर्मुख वृत्ति अर्थात् उन्मनी मुद्रा द्वारा, लय प्राप्त करने से ऊर्द्ध, अध, मध्य सर्वत्र का ज्ञान होकर, सब सिद्धियां प्राप्त होती हैं.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि यह परमात्मा के संकल्प मात्र से उपजी सृष्टि मनोमयी है, इसलिये इसका मन ही द्वारा ज्ञान होता है.

शि०– हर मन्वन्तर में क्रम से चौदह इन्द्र राज्य करते हैं.

गु०– अर्थात् मन के अन्तर्मुख होने के पश्चात् क्रम से चौदह प्रकार की विद्युत शक्तियों का ज्ञान होता है.

शि०– विद्युत शक्ति तो केवल सात ही प्रकार की होती है, वह चौदह प्रकार की किस तरह हो गयी ?

गु०– प्रवेश निवेशकारी गुण के कारण हर विद्युत के दो भेद हो जाते हैं, इस हिसाब से सात के चौदह भेद हो गये; और यदि हर पदार्थ के गुणानुसार विभाग किये जावें, तो अनन्त प्रकार की विद्युत कहां जा सकती है.

उपदेश २०

ध्रुवावतार

शि०– उत्तानपाद राजा का अर्थ क्या है ?

गु०– ऊपर को पैर किये हुए, उपजने वालों में श्रेष्ठ अर्थात् मनुष्य.

शि०– यहां ध्रुव का अर्थ क्या है ?

गु०– अचल नियम, सनातन नियम.

शि०– यहां उत्तम का अर्थ क्या है ?

गु०– हित, उपकार.

शि०– यहां स्त्री का अर्थ क्या है ?

गु०– विस्तार या उन्नति करनेवाली.

शि०– उत्तानपाद राजा की सुनीति तथा सुरुचि नामक दो स्त्रियें थीं ?

गु०– अर्थात् सुनीति और सुरुचि दोनों, मनुष्य की उन्नति करने वाली हैं.

शि०– जिसमें सुनीति बड़ी और सुरुचि छोटी स्त्री थी, किन्तु तिस पर भी उत्तानपाद राजा छोटी पर अधिक प्रीति रखता था ?

गु०– अर्थात् सुरुचि से सुनीति का पद बड़ा है, किन्तु तिस पर भी मनुष्य सुरुचि को अधिक चाहता है.

शि०– एक दिन उत्तानपाद राजा, अपनी सुरुचि के पुत्र, उत्तम को गोद लिये बैठा था, उतने में सुनीति के पुत्र, ध्रुवने आकर उसके पास बैठना चाहा, किन्तु सुरुचिने उसे हटा दिया ?

गु०— अर्थात् जब मनुष्य सुइच्छा से कोई हितकारक काम करने लगता है, तब सुनीति का अटल नियम भी अपनी मर्य्यादा स्थिर रखना चाहता है, किन्तु प्रबल सुइच्छा, उसका उल्लंघन कर देती है.

शि०— उधर ध्रुव अपना अपमान देख, माता सुनीति की आज्ञा ले तप करने चला गया, इधर उत्तम, यक्षराज के दूतों के हाथ से मारा गया; और सुरुचि, उनकी लगाई दावानल में भुलस गयी ?

गु०— अर्थात् सुनीति के अचल नियम की मर्य्यादा भंग करने से प्राकृतिक अथवा नृपको द्वारा, वह सुइच्छा का तदनुष्ठान नष्ट होकर, सुइच्छा भी मुरछा जाती है.

शि०— परम वैराग्यवान ध्रुवने, नारद के उपदेश द्वारा, वासुदेव भगवान का तपकर स्वराज्य सहित अचल पद पाया ?

गु०— अर्थात् यदि फिर वह मनुष्य परम वैराग्यवान हो, प्राकृतिक सुनीति के अचल नियम को धार, सिद्धिदाता महत्तत्व का पूर्वोक्त उपदेश पा, जो वासुदेव भगवान अर्थात् महत्तत्व के मध्यवर्त्ति, उस श्याम बिन्दुगत दिव्य तेज का तप करता है, वह अपने कांक्षित अनुष्ठान को सिद्ध कर मुक्त होता है.

शि०— तप सिद्धि के पश्चात् ध्रुवने घर आ, सुनीति माता से मिल, पिता को प्रसन्न कर, यक्षराज से लड़, सुरुचि तथा उत्तम को जिलवाया ?

गु०— अर्थात् जब मनुष्य सज्ञानी हो, सुनीति के प्राकृतिक अचल नियम को, स्वीकार तद्वत वर्त्तता है, तभी विघ्नरहित हो, अपनी सदिच्छा तथा सद्नुष्ठान को पूर्ण कर सकता है.

शि०— विष्णु भगवान, ध्रुव रूप से अवतर, नारद देवर्षि के उपदेश द्वारा मर्यादा को रक्षते हुए, उस अविचल पद को प्राप्त हुए ?

गु०— अर्थात् अचल एक मुखी मुद्रा पूर्वक, सिद्धि दाता महत्तत्व के दिव्य तेज में, लय प्राप्त करने से, योगी में वह विष्णु योनिगत, दिव्य तेज अवतरता है; जिसके द्वारा सनातन नीति के नियम की रक्षा हो, कैवल्य पद प्राप्त होता है.

उपदेश २१

नरनारायण अवतार

शि०— नरका अर्थ क्या है ?

गु०— आवागमनकारी तत्व, प्राण, जीव, मनुष्य.

शि०— नारायण का अर्थ क्या है ?

गु०— ईश, महत्तत्व, हिरण्यगर्भ.

शि०— नारका अर्थ क्या है ?

गु०— महत्तत्व, जल.

शि०— क्यों ?

गु०— क्योंकि; (१) जो नरों (समग्र तत्वों) को उपजाता, रखाता आदि है; उसे नार (महत्तत्व) कहते हैं,

(२) वह महत्तत्व नर (तत्व) में भी पाया जाता है, इसलिये भी उसे नार कहते हैं. सिवाय जीवों के (नर) आवागमन का हेतु होने से जल को भी नार कहते हैं.

शि०— नरनारायण का एक साथ कहना, किसका संकेत करता है ?

गु०— जीव ईश योग तथा द्विमुखी मुद्रा का.

शि०— दक्ष, मूर्त्ति, धर्म्म, वृक्ष, तथा रम्भा का अर्थ क्या है ?

गु०— दक्ष = वृद्धि करने में निपुण; मूर्त्ति = प्रतिबिम्ब रूप बंधन में डालनेवाली; धर्म्म = चैतन्य की स्वाभाविक प्रकृति; वृक्ष = युक्त करना; रम्भा = सर्व सिद्धि प्रदा रमणीक प्रभा.

शि०— यहां पर कन्या का अर्थ क्या है ?

गु०— (कं = चाहना; या = जाना, गति, देना) ∴ कन्या = इच्छानुरूप गति देनेवाली.

शि०— यहां आशा धारण शब्द किसे कहते हैं ?

गु०— सोहँ वृत्ति को.

शि०— इसलिये आशा धारण तप के, प्रभाववाला गर्भ कौन हुआ ?

गु०— हिरण्यगर्भ, महत्तत्व, सोहमात्मक सविता.

शि०- दक्ष मूर्त्ति कन्या नामक धर्म्म की स्त्री से, आशा धारण तप के प्रभाववाला, नरनारायण का अवतार हुआ ?

गु०- अर्थात् वृद्धि करने में निपुण, प्रतिबिम्बरूपी बन्धन में डालनेवाली तथा इच्छानुरूप गति देनेवाली, उस चैतन्य की स्वाभाविक प्रकृति ही से विस्तृत हो, तत्वों सहित हिरण्य गर्भ अवतरा.

शि०- बद्रिकाश्रमका अर्थ क्या है ?

गु०- बद् = निश्चल होना, स्वस्थ होना; रि = टपकना; क = जल; आश्रम = स्थान; ∴ बद्रिकाश्रम = अचल आनन्दकारी टपकनेवाला जल का स्थान; अर्थात् तालु मूर्द्धा का ऊर्ध्व भाग.

शि०- बद्रिकाश्रम पहुंच, बद्री वृक्ष के तले बैठ, नरनारायण समाधिस्थ हुए ?

गु०- अर्थात् (१) अचल आनन्दकारी टपकनेवाले जल के स्थान पर पहुंच, उस दिव्य श्राव से युक्त होते ही, प्राण हिरण्यगर्भ से मिल लय को प्राप्त होता है अथवा (२) द्विमुखी मुद्रा पूर्वक तालु मूर्द्धा के ऊर्ध्व पहुंच, उस श्रावसे मुक्त हो, जीव ईश से मिलता है.

शि०- द्विमुखी मुद्रा किसे कहते हैं ?

गु०- जिह्वा बन्ध पूर्वक खेचरी मुद्रा को.

शि०- इसका स्पष्टीकरण क्या है ?

गु०- अर्थात् भीतर से जिह्वा को उलट, तालू पर चढ़ा मूर्द्धा को दबा उस श्राव को रोके और बाहर से नेत्रों को उलट, भ्रू के मध्य भाग की ओर चढ़ा, मूर्द्धागत ज्योति देखता हुआ अन्तर्मुख होवे.

शि०- नरनारायण भगवान का अवतार ?

गु०- अर्थात् द्विमुखी मुद्रा पूर्वक, उस योनि के मध्यवर्त्ति, तेज के अन्तर्गत अन्तर्मुख वृत्ति होते ही, योगी में वह हिरण्यगर्भगत, दिव्य तेज अवतरता है, जिसके द्वारा जीव, ईश से जा मिलता है.

शि०- तप के प्रभाव से काम को जीत, रंभादिकों को परास्त कर, नरनारायण निज स्वरूप में मग्न हुए ?

गु०- अर्थात् ब्रह्मचर्य्य पूर्वक, योगाभ्यासादि के द्वारा, काम तथा उस

सर्व सिद्धिप्रदा रमणीक प्रभा को जीत, जीव अपने ही में, ईश से मिल ब्रह्मानन्द को प्राप्त होता है.

उपदेश २२

दत्तात्रेयावतार

शि०— अत्रि का अर्थ क्या ?

गु०— (अ = ब्रह्म, जल; त्रि = तीन) ∴ अत्रि = ब्रह्म की त्रिगुणात्मक शक्ति अथवा जल की त्रिगुणात्मक शक्ति.

शि०— आत्रेय किसे कहते हैं ?

गु०— जो अत्रि से उपजे उसे आत्रेय कहते हैं, अर्थात् ब्रह्म की त्रिगुणात्मक शक्ति से उपजनेवाला (महत्तत्व) अथवा जल की त्रिगुणात्मक शक्ति से उपजने वाला दिव्य तेज.

शि०— दत्तात्रेय का अर्थ क्या है ?

गु०— उक्त त्रिगुणात्मक शक्ति के दिव्य तेज को देनेवाला.

शि०— ऋषि का अर्थ क्या है ?

गु०— रिसने तथा फुरने वाला अर्थात् निराकरण तथा आकर्षणकारी अथवा प्रवेश निवेशकारी.

शि०— अनुसुय्या किसे कहते हैं ?

गु०— अनु = पूर्वस्मृतिका या आज्ञा का अनुसरण करना; सु = जनना, उत्पन्न करना, गर्भ धारना; या = गति, जाना, जो; अर्थात् पूर्व स्मृति के अनुसार अथवा प्रभु इच्छानुसार जो उत्पन्न करे, गति करे या गर्भ धारे, उसे अनुसुय्या कहते हैं.

शि०— अत्रि ऋषि की पत्नि अनुसुय्या हैं ?

गु०— अर्थात् जिस तरह (अ) जल की (त्रि) त्रिगुणात्मक शक्ति (ऋषि) अपनी प्रवेश निवेशकारी (पत्नि) गति की (अनु या) अनुगामिनी हो (सु) उत्पत्ति आदि करती है; उसी तरह (अ) ब्रह्म की (त्रि) त्रिगुणात्मक शक्ति (ऋषि) अपनी प्रवेश निवेश-

कारी (पत्नि) गति से (अनु या) पूर्व स्मृति की या प्रभु इच्छा की अनुगामिनी हो (सु) उत्पत्ति आदि करती है.

शि०– अत्रि ऋषि के संयोगवश अनुसुय्या के गर्भ से दत्तात्रेय अवतरे ?

गु०– अर्थात् जिस तरह (अ) जल की (त्रि) त्रिगुणात्मक शक्ति की (ऋषि के संयोग वश) प्रवेश निवेशकारो गति के संयोग तथा (अनु या) अनुगमन से (सु) उप से, (गर्भ से) अन्तर्गत तेज द्वारा (दत्तात्रेय अवतरे) उक्त जलात्मक दिव्य तेज अवतरता है; उसी तरह ब्रह्म की त्रिगुणात्मक शक्ति की प्रवेश निवेशकारी गति के संयोग तथा अनुगमन से उपजे, अन्तर्गत तेज द्वारा, वह त्रिगुणात्मक महत्तत्व अवतरता है.

शि०– दत्तात्रेय, भगवान का अवतार ?

गु०– अर्थात् त्रिमुखी मुद्रा पूर्वक, उस योनी के मध्यवर्त्ति तेज के अन्तर्गत अन्तर्मुखत्व प्राप्त होते ही, योगी में उस त्रिगुणात्मक महत्तत्व का दिव्य तेज अवतरता है.

शि०– त्रिमुखी मुद्रा किसे कहते हैं ?

गु०– मूलबन्ध, जिह्वा बन्धयुत खेचरी मुद्रा को.

शि०– इसका स्पष्टी करण क्या है ?

गु०– अर्थात् अपान को खैंच प्राण में, जिह्वा को खैंच मूर्द्धा में, तथा दृष्टि को खैंच तन्दत ज्योति में युक्त करने को, त्रिमुखी मुद्रा कहते हैं.

शि०– दत्तात्रेयने चौबीस गुरु किये ?

गु०– अर्थात् इस त्रिमुखी मुद्रा पूर्वक, इस त्रिगुणात्मक महत्तत्व का ध्यान करने से, तमहारक चौबीस तत्वों का ज्ञान तथा चौबीस मुद्रा की सिद्धि अनायास हो जाती है.

शि०– दत्तात्रेय के सहोदर भ्राता चन्द्रमा और दुर्वासा हैं ?

गु०– जिस तरह जल की त्रिगुणात्मक शक्ति के दिव्य तेज के अन्तर्गत चन्द्रमारूपी आकर्षणकारी और दुर्वासारूपी निराकरणकारी तेज है; उसी तरह ब्रह्म की त्रिगुणात्मक शक्ति के दिव्य तेज(महत्तत्व)

के अन्तर्गत आकर्षणकारी चन्द्रमा और निराकरणकारी सूर्य्य वर्त्तमान है. इसीलिये जब चन्द्रमा, सूर्य्य में मग्न होता है, तभी इस पृथ्वी का नाश होता है, जिस तरह जब हमारी चन्द्र नाड़ी को सूर्य्य नाड़ी पान कर जाती है, तभी हमारे शरीर का पतन होता है.

शि०– चन्द्र में प्रभा तथा शीतलता कहां से आयी ?

गु०– जो चन्द्र मण्डल का भाग सूर्य्य की ओर होता है, उस पर अवश्य धूप पड़ती है; सिवाय इस भू-मण्डल के, महासागरों पर पड़ा, सूर्य्य का तेज, उसे और भी सुशोभितकर देता है; और जब वह प्रकाश छायारूपी रात्रि में होकर यहां तक आता है, तभी वह अपने जलात्मक स्वभाव के कारण शीतल हो जाता है.

शि०– अलर्क, यदु और सहस्रार्जुन का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵ (अल्=पूर्ण करना; अर्क=सूर्य्य) ∴ अलर्क=सूर्य्य द्वारा पूर्त्ति करने का नियम अर्थात् अर्घ्य; और ∵ (यत्=प्रयत्न करना, एकत्र करना; उ=शिव तेज) ∴ यदु=शिव के प्रयत्न द्वारा, एकत्र करने का नियम अर्थात् अभिषेक; और ∵ (सहस्र=सहगमन, हजार; अर्ज=जोड़ना; उन=घटाना) ∴ सहस्रार्जुन=सहस्रधारा या सहगमन पूर्वक धन, ऋण गति के नियम.

शि०– दत्तात्रेय के शिष्य अलर्क, यदु और सहस्रार्जुन है ?

गु०– अर्थात् जल की त्रिगुणात्मक शक्ति, अपना दिव्य तेज का अंश, अर्घ्य, अभिषेक और सहस्रधारा या सहगमन पूर्वक अपनी धन ऋण गति के द्वारा देती है. (शिष्य=शेष का अंश)

उपदेश २३

सनकादिक अवतार

शि०– सनकादिक किन्हें कहते हैं ?

गु०– सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार को.

शि०– सनक का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵सन् = दान देना, सत्कार करना, मर्यादा करना; और अक = वाला; इसलिये सनक = मर्य्यादा, सत्कार तथा दान करनेवाला.

शि०– सनन्दन का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵स = वह, ब्रह्म; नंद् = नवगतियों से युक्त होना, वृद्धि करना, आनन्दन करना, उपकार मानना, चाहना; अन = समर्थ होनेवाला ∴सनन्दन = उसकी नवगतियों के अनुसार उपकार, वृद्धि तथा ब्रह्मानन्द चाहनेवाला.

शि०– सनातन का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵सन् = मर्य्यादा; आ = ब्रह्म, अच्छी तरह से; तन = विस्तारना; ∴सनातन = ब्रह्म की मर्य्यादा को अच्छी तरह से मानने और विस्तारनेवाला.

शि०– सनत्कुमार का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵स = सहित, नत् = नम्रता पूर्वक, नमना; कुमार = ब्रह्मचर्य्य धारना; ∴सनत्कुमार = नम्रता पूर्वक ब्रह्मचर्य्य धारनेवाला.

शि०– (१) सनक (२) सनन्दन (३) सनातन (४) सनत्कुमार से हमें क्या उपदेश मिलता है ?

गु०– (१) सदा सबका मर्य्यादानुसार सत्कार करो और मर्य्यादा पूर्वक सत्कार के साथ सुपात्र को दान दो.

(२) सदा सब पर उपकार करो, और उपकार मानो, उसकी नवगतियों के सानुकूल रहकर, ऐसा वृद्धि जनक साधन करो, जिसका परिणाम हितकारक तथा ब्रह्मानन्द कारक हो.

(३) सदा सब तरह से, ईश्वरीय सृष्टि नियम की मर्य्यादा को स्वीकार उसका विस्तार करो.

(४) सदा सबको नमो, तथा नम्रता पूर्वक रहकर, अखण्ड ब्रह्मचर्य्य को धारो.

शि०– इन चारों को ऋषि क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि ये चारों ही स्वीकारने तथा मनन करने के योग्य हैं.

शि०– इन चारों को ब्रह्मा का पुत्र क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि ये चारों ही चिर वृद्धिकर्त्ता हैं.

शि०– ये चारों विष्णु भगवान का अवतार हैं ?

गु०– अर्थात् इन चारों नियमों को पालते हुए, चतुर्मुखी मुद्रापूर्वक, उस योनिगत तेज के अन्तर्गत लय प्राप्त करने से योगी में, वह व्यापक तेज अवतरता है.

शि०– सनकादिक ऋषिने ब्रह्मदेव की आज्ञा ले, जगहित ऐसा उपदेश दिया कि जिसके मनन मात्र से आत्मज्ञान होता है ?

गु०– अर्थात् सनकादिक उपदेशों के स्वीकारने से हिरण्यगर्भ गत तेज का ऐसा दिव्य ज्ञान होता है, कि जिसके मनन मात्र से परम हितकारक आत्मज्ञान होता है.

शि०– यहां ब्रह्मदेव तथा आज्ञा का अर्थ क्या है ?

गु०– (ब्रह्मदेव = हिरण्यगर्भ गत तेज;) (आ = दिव्य; ज्ञा = ज्ञान) आज्ञा = दिव्यज्ञान.

◆◆◆◆◆◆◆◆

उपदेश २५

हयग्रीवावतार

शि०– हयग्रीव का अर्थ क्या है ?

गु०– घोड़े की ग्रीवा के समान आकारवाला अर्थात् शंख.

शि०– यहां हयग्रीव कहने से क्या हेतु है ?

गु०– अनहद गत शंख ध्वनि का.

शि०– यहां अश्व का अर्थ क्या है ?

गु०– समग्र तत्वों की अत्यन्त सूक्ष्म वाष्प.

शि०– यहां हिरण्यवर्ण अश्व से किसे सूचित किया है ?

गु०– उस हिरण्यगर्भ को सूचित किया है. जिसके अन्तर्गत समग्र तत्व सूक्ष्म वाष्परूप से बिराजते हैं.

शि०– श्वास द्वारा वेदवाणी प्रकटी ?

गु०– अर्थात् श्वास निश्वास रूपी, प्रवेश निवेशकारी सोहँ वृत्ति के अन्तर्मुखत्व तथा बहिर्मुखत्व के विचार द्वारा वेद में कही वाणी का ज्ञान हो जाता है.

शि०– यहां नामक का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵नम्=शब्द करना; ∵नामक=शब्द करनेवाला.

शि०– हयग्रीव से किस मुद्रा का संकेत किया है ?

गु०– पंचमुखी मुद्रा का.

शि०– भगवानने हयग्रीव नामक हिरण्यवर्ण, अश्वका रूप धर, श्वास द्वारा वेद वाणी प्रकटी.

गु०– अर्थात् पंचमुखी मुद्रा पूर्वक, शंखध्वनि द्वारा हिरण्यवर्ण महत्तत्व-गत, दिव्य योनि के अन्तर्गत अश्वरूप सूक्ष्म तत्वों में लय प्राप्त करने से वेद वाणी का यथार्थ ज्ञान होता है.

◆◇◇◇◇◇◆◇

उपदेश २५

पृथु अवतार

शि०– अव धातु का अर्थ क्या है ?

गु०– उत्पन्न करना, संरक्षण करना, नाश करना, शक्तिमान् होना, स्वामि होना, कांतिमान होना; इत्यादि.

शि०– अवध किसे कहते हैं ?

गु०– (१) जो अव धातु के समग्र गुण धारे हुए हैं, उसे अवध अर्थात् हिरण्यगर्भ कहते हैं.

(२) वध से रहित अर्थात् आत्मा परमात्मा या शक्ति.

शि०– पुरि का अर्थ क्या है ?

गु०– अन्तर्गत हो अग्रसर होना या अग्रभाग में जाना.

शि०– प्रजा का अर्थ क्या है ?

गु०– प्रयान करनेवाली, जायमान, उत्पन्न होनेवाली.

शि०– यहां दुष्ट का अर्थ क्या है ?

गु०– कठिनता से आधीन होनेवाला.

शि०– वेणु का अर्थ क्या है ?

गु०– बीन, वेणुनाद, अनहदगत बीन की ध्वनि.

शि०– यहां ब्राह्मण का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵वह=वृद्धि करना; मण्=अस्पष्ट रूप से कहना; ∴ब्राह्मण =वृद्धि के लिये संकेत करनेवाला. अर्थात् ब्राह्मण नामक वेद का अंग.

शि०– यहां ऋषियों का अर्थ क्या है ?

गु०– प्रवेश निवेशकारी शक्तियां.

शि०– यहां श्राप का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵श्रा=सिद्ध करना, पक्व करना, चुआना; ∴श्राप=सिद्धकर पाना

शि०– यहां राज का अर्थ क्या है ?

गु०– जीतना.

शि०– यहां मूर्च्छित का क्या अर्थ है ?

गु०– बढ़ी हुई, वृद्धिगत होना, वीस्तीर्ण.

शि०– यहां अंग का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵अ=महत्तत्व; गत; ∴अंग=महत्तत्व के अन्तर्गत.

शि०– यहां मथने का अर्थ क्या है ?

गु०– अन्तर्मुख हो पाना या ढूंढना.

शि०– पृथु का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵पृथ्=फेंकना, उडाना, प्रेरणा करना, भेजना; और=दिव्य तेज है.∴पृथु=दिव्य तेज का प्रेरक.

शि०– अर्चिका अर्थ क्या है ?

गु०– ज्योति.

शि०– वर का अर्थ क्या है ?

गु०– श्रेष्ठ, चाहना गति.

शि०– आरोहा का अर्थ क्या है ?

गु०– अर्द्ध गति करनेवाली, ऊपर चढ़नेवाली.

शि०– यहां व्याकुल का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵वि = विशेष; आ = उत्तम प्रकार से; कुल = तद्वत वर्त्तना ∴व्याकुल = बहुत अच्छी तरह से लयलीन होना या तत्पर होना.

शि०– यद्यपि अवधपुरी की प्रजा, वेणु द्वारा व्याकुल हो उठी, तदपि उसने कुछ भी परवाह न की !

गु०– अर्थात् यदि महत्तत्व के अन्तर्गत अग्रसर हो, जायमान वेणुनाद में विशेष तत्पर होने पर भी उसका जय न हो सके. तो;

शि०– तब ब्राह्मणों और ऋषियों ने मिल, विचार, निश्चयकर, हाथ द्वारा जल छोड़, दुष्ट वेणुराज को श्राप दिया ?

गु०– तब ब्राह्मणग्रन्थ और प्रवेश निवेशकारी शक्तियों को विचार, उनका तत्वजान, अर्घ्य प्रदान की युक्ति द्वारा, दुःसाध्य वेणुनाद का जयकर, सिद्धि प्राप्त करे.

शि०– फिर वेणुराज के मूर्च्छित अंग को मथने से पृथु तथा एक अर्चिवरारोहा नामक स्त्री उपजी ?

गु०– अर्थात् फिर विजित वेणुनाद सहित, विस्तीर्ण हिरण्यगर्भ के अन्तर्गत अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, लय प्राप्त करने से दिव्य तेज की प्रेरक तथा ऊर्द्ध गति देनेवाली, एक सर्वोत्कृष्ट विस्तृत ज्योति प्राप्त होती है.

शि०– उस स्त्री से लग्न होने के पश्चात् पृथु को विदित हुआ कि, पृथ्वी सबके बीज निगल बैठी है ?

गु०– अर्थात् उस प्रेरक ज्योति में लवलीन होने के पश्चात् विदित होता है, कि पृथ्वी तत्व के अन्तर्गत सबके कारण उपस्थित हैं.

शि०– इसलिये वह उसेमारने दौड़ा, यह देख, पृथ्वी गौ का रूप धर सब लोकों में भगती फिरी, किन्तु उसने पीछा न छोड़ा.

गु०– अर्थात् जब साधक पृथ्वी तत्व का जय करना चाहता है, तब दृष्टि स्थिर न होने के कारण, वह ध्येयरूपी पृथ्वी की ज्योति चंचल

हो, लक्ष से हटती हुई, सर्वत्र भ्रमती है; किन्तु कदापि उस पर से लक्ष न हटाना चाहिये.

शि०– अन्त को श्रम से थकित हो, पृथु के शरण जा खड़ी हो गयी, और सबके बीज दुहने का उपाय बता दिया ?

गु०– अर्थात् अन्त को दृढ़ाभ्यास द्वारा आप ही लक्ष स्थिर हो, पृथ्वी-तत्व का जय होता है, और तब सबके कारण स्वतः विदित हो जाते हैं.

शि०– विष्णु भगवान के पृथुरूपने, पृथ्वी को आधीनकर, उसके गौरूप द्वारा, सबके बीज दुहलिये ?

गु०– अर्थात् उस व्यापक महत्तत्वगत, श्याम बिन्दु के अन्तर्गत, उक्त प्रेरक दिव्य तेज सहित, षटमुखी मुद्रा द्वारा, लय प्राप्त कर, पृथ्वी तत्व का जय करने से, सबके सकारण विदित हो जाते हैं.

शि०– गौरूप से किसका संकेत किया है ?

गु०– धेनु मुद्रा या षटमुखी मुद्रा या पृथ्वीगत विद्युत शक्ति का.

शि०– पृथुने मनु को वत्स बना कर पात्र में अन्नों के बीज दुह लिये ?

गु०– अर्थात् उपरोक्त साधन द्वारा विदित हुआ कि–"स्वभाव को प्रेरक तेज में युत कर संयम द्वारा, अन्नों के कारण जाने".

शि०– ऋषियों ने वृहस्पति को वत्स बना, इन्द्रियरूपी पात्र में वेदरूप दुग्ध को दुह लिया ?

गु०– अर्थात् उपरोक्त साधन से विदित हुआ कि–"बृहस्पतिरूप महत्तत्व की, प्रवेश निवेशकारी गति के कारण, इन्द्रियों द्वारा वेद का अनुभव प्राप्त होता है.

शि०– देवों ने इन्द्रको वत्स बना, सुवर्ण पात्र में अमृत, ओज, वीर्य्य बल को दुह लिया ?

गु०– अर्थात् उपरोक्त साधन से विदित हुआ कि,–"हमें विद्युत शक्ति के दिव्य तेज से, सुवर्ण पात्र द्वारा, अमृत समान नीरोगता, अनुपम बुद्धि, अमोघ वीर्य्य, तथा महाबल प्राप्त होता है."

शि०– दैत्यों ने प्रह्लाद को वत्स बना, लोह पात्र में सुरा तथा आसव दुहा ?

गु०— अर्थात् उपरोक्त साधन द्वारा विदित हुआ कि,—"लोह पात्र में अर्क तथा आसव रख, अन्धकार में गाड़ देने से, महा आनन्दकारी हो जाते हैं".

शि०— सिद्धों ने कपिल को वत्स बना, संकल्प के पात्र में आणिमादिक को दुह लिया ?

गु०— अर्थात् उपरोक्त साधन से विदित हुआ कि,—"कपिल की बताई आणिमादिक सिद्धियां संकल्प के संयमानुसार प्राप्त होती हैं".

शि०— इसी तरह सबके बीज युक्ति पूर्वक दुह लिये ?

गु०— अर्थात् उपरोक्त साधन द्वारा, सबके कारण विदित हो जाते हैं.

शि०— जब पृथु के यज्ञका अश्व, इन्द्र चुरा ले गया, तब पृथु उसे मारने को उद्यत हुआ, किन्तु ब्रह्माने उसे निवारण किया, और विष्णु ने अपराध क्षमा कराया, तथा सनत्कुमारने मोक्ष का उपदेश दिया ?

गु०— अर्थात् यज्ञरूप महत्तत्व के विस्तारे हुए, वाष्परूप अदृश्य सूक्ष्म तत्वों को, विद्युत शक्ति गुप्त रूप से, स्थानान्तर करती, प्रेरक दिव्य तेज उनका जय या विभाग करता, आकर्षण शक्ति मध्यस्थ हो, वृद्धि करती तथा स्थंभन शक्ति व्याप्त हो, संरक्षती है; इतना जानता हुआ, जो चिर ब्रह्मचर्य्यादि सहित, उपरोक्त साधन करता है, वही मोक्ष पाता है.

उपदेश २६

परशुरामावतार

शि०— परशुराम शब्द किस तरह बना ?

गु०— (पृ+अश्+उ+राम) मिलकर.

शि०— इनका पृथक-पृथक अर्थ क्या है ?

गु०— पृ=पालना, पोषणा, पूर्ण करना, भरना, तृप्त करना.

अश्=फैलाना, व्यापना, पहुंचना, पाना, प्राप्त करना, बटोरना एकत्र करना.

उ=दिव्य तेज, उग्रतेज; राम=सब में रमनेवाला.

शि०– इसलिये परशुराम का अर्थ क्या हुआ ?

गु०– पालने, फैलाने, पहुंचाने तथा बटोरनेवाला, सर्वव्यापी तेज.

शि०– परशु से किसका संकेत किया है ?

गु०– शकट तथा संहार मुद्रा का.

शि०– यमत् का अर्थ क्या है ?

गु०– यमवाला, वायु से, प्राणायाम से.

शि०– यमदग्निका अर्थ क्या है ?

गु०– पवन से उपजा अग्नि अर्थात् पवनात्मक विद्युत.

शि०– ऋचिक, कौशकी, नदी, रेणुका, रेवा, वसुमान का अर्थ क्या है?

गु०– ऋचिक=आछादित; कौशकी=कुशक द्वारा उपजी; नदी=चमकनेवाली, ज्योति; रेणुका=बालू, रज, ज्योति; रेवा=बहनेवाली, स्थानान्तर करनेवाली; वसुमान=जो तेज सब पदार्थों में बसा हुआ है.

शि०– माहेश्वरीपुरी किसे कहते हैं ?

गु०– महाऐश्वर्य्य की जननी, सर्व्व सिद्धियों की माता, ईशानवाहिनी शक्ति.

शि०– सहस्रार्जुन राजा किसे कहते हैं ?

गु०– सहस्रधारा की धन ऋण गति का तेज अथवा धनऋण गति के सहगमन द्वारा प्राप्त हुआ तेज.

शि०– यहां पर क्षत्री का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵क्षत्=घाव या घाव करना; री=टपकना, नीचे गिरना ∴क्षती=संताप तथा अधःपतनकारी विघ्न.

शि०– रेणुका सुत, का अर्थ क्या है ?

गु०– बालू संबंधि तेज, पृथ्वी संबंधि तेज.

शि०– ऋचिक की पत्नी, कौशकी नदी के गर्भ से जमदग्नि हुए ?

गु०– अर्थात् (ऋचिक की) आच्छादन की हुई (पत्नि) नीचे उतरती हुई, (कौशकी नदी के गर्भ से) गीले कुश के अन्तर्गत हो बहनेवाली

ज्योति के द्वारा, (यमदग्नि हुए) पवनात्मक तेज प्राप्त होता है.

शि०– यंमदग्नि की रेणुका स्त्री के गर्भ से परशुराम हुए ?

गु०– अर्थात् जब पवनात्मक तेजरजात्मक ज्योति से मिलता है; तब फैलाने, बटोरने तथा पहुंचानेवाला सर्वव्यापी तेज प्राप्त होता है.

शि०– जमदग्नि की आज्ञा, पाकर, परशुरामने रेणुका को मार डाला, और भाई वसुमान को जमलोक पहुंचा दिया ?

गु०– अर्थात् पुनः पवनात्मक ज्योति के प्रेरित होते ही, वह फैलाने, पहुंचानेवाला सर्व व्यापी तेज, बालू को छिन्न भिन्न कर देता, और तद्गत तेज को निराकरण द्वारा अन्यत्र पहुंचा देता है.

शि०– और पुनः पिता को प्रसन्न कर, दोनों को जिला दिया ?

गु०– अर्थात् फिर दोनों तेजों के मिलजाने पर, वह बालू एकत्र हो जाती तथा अन्यत्र का तत् संबंधि तेज, लौट जाता है.

शि०– ऐसा क्यों होता है ?

गु०– क्योंकि ऋण से ऋण, अथवा धन से धन, तेज मिल वस्तुओं को हटाता और धन ऋण के योग से मिलता है.

शि०– सहस्रार्जुन माहेश्वरी पुरी का राजा है ?

गु०– अर्थात् (१) सहगमन पूर्वक या सहस्रधारा के द्वारा, प्राप्त हुई धनऋण ज्योति, ईशान वाहिनी शक्ति में बिराजती है; अथवा (२) वह ज्योति महान् ऐश्वर्यों को देनेवाली है.

शि०– जल क्रीड़ा के अर्थ, सहस्रार्जुनने रेवाका जल रोका ?

गु०– अर्थात् (१) जिस तरह (जल) दिव्य (क्रीड़ा के अर्थ) कौतुकों के अर्थ (सहस्र) सहस्रधारा की (अर्ज) धन (उन) ऋण (रेवा) गति के (जल) तेज को (रोका) ग्रहण करते हैं. (२) उसी तरह (जल) प्रकाश द्वारा (क्रीड़ा के अर्थ) मन को अमनस्कता प्राप्त कराने के अर्थ उस (सहस्र) सहस्रधारा की (अर्जुन) धन ऋण (रेवा) गति के (जल को) तेज को (रोका) धारण करो.

शि०– ज्योंही रेवानदी का उलटा प्रवाह रावण तक पहुंचा ? त्योंही वह वहां आया, किन्तु सहस्रार्जुनने क्रीड़ा वश, उसे बांध, सभा में रख, उस के दशों सिरों पर जोत जलाई ?

गु०– अर्थात् ज्योंही उस गति की ज्योति का निवेशकारी तेज का प्रभाव (रावण तक) सोहँ वृत्तिवाले जीव या मनतक पहुंचता है, त्योंही वह कर्षित हो, उस सहस्रधारा की धनऋण ज्योति द्वारा, अमनस्कता को पा, स्तब्ध हो (स+भा) उसकी ज्योति के अन्तर्गत मग्न हो जाता है. जिसके द्वारा उसे दशों दिशाओं में प्रकाश ही प्रकाश दिखायी देता है.

शि०– तब सहस्रार्जुन ने रावण को दीन जान छोड़ दिया ?

गु०– अर्थात् तब उस धन ऋण गति के सहगमन द्वारा, मन आधीन हो, संसार से विरक्त हो जाता है.

शि०– फिर सहस्रार्जुन, जमदग्नि को मार कामधेनु छीन लाया ?

गु०– अर्थात् फिर उक्त धन ऋण तेज के सहारे, पवनात्मक तेज को जीतने से, मनोभिलाषित फल देनेवाली, दिव्य तुर्य्या प्राप्त होती है.

शि०– यह सुन परशुरामने सहस्रार्जुन को मार, कामधेनु छीन ली ?

गु०– अर्थात् इसी तरह उक्त रजात्मक तेज द्वारा, इस जलात्मक तेज को जीतने से, वही तुर्य्या प्राप्त होती है.

शि०– जमदग्नि, उस कामधेनु को इन्द्र से मांग लाये थे ?

गु०– अर्थात् जब पवनात्मक तेज, मेघज तेज में मिलता है, तब भी तुर्य्या प्राप्त होती है.

शि०– इन तीनों युक्तियों से और क्या काम लिया जा सकता है ?

गु०– कामधेनु नामक यंत्र तथा अन्य यंत्र बनाये जा सकते हैं.

शि०– परशुराम भगवानने अवतर २१ बार पृथ्वी को निक्षत्र किया ?

गु०– अर्थात् संहार मुद्रा पूर्वक, उक्त पृथव्यात्मक तेज के सहारे, वह योनि गत दिव्य तेज, योगी में अवतरता है, जिसके द्वारा पृथ्वी के २१ आवरणरूपी विघ्न निवृत्त हो जाते हैं.

शि०– पृथ्वी के २१ आवरण किस तरह हुए ?

गु०– रज, तम, सत् के योग से, हर एक तीन-तीन प्रकार का हो जाता है; इसलिये सात आवरणों के २१ भेद हो गये.

शि०– परशुराम, विष्णु भगवान के तप द्वारा अवतार कहाये ?

गु०– अर्थात् पृथव्यात्मक तेज की, धन ऋण गति के व्यापक तेज द्वारा, वह योनिगत दिव्यतेज, योगी में अवतरता है.

उपदेश २७

रामावतार

शि०– दशरथ का अर्थ क्या है ?

गु०– दशगति, दश इन्द्रियां या दश गतिवाला, मन, तन.

शि०– राजा का अर्थ क्या है ?

गु०– विराजना, निग्रह करना, जय करना, स्वामि.

शि०– दशरथ राजा से किसका संकेत किया है ?

गु०– महत्तत्व, देह, मन, जितेंद्रिय, तथा योगी का.

शि०– दशरथ राजा की तीन पटरानियां ?

गु०– अर्थात् (१) महत्तत्व की तीन शक्तियां अथवा (२) शरीर की मुख्य तीन नाड़ियां.

शि०– कौशल्या का अर्थ क्या है ?

गु०– जल के तेज को धारने वाली, या सब कला कौशल से परिपूर्ण.

शि०– केकई का अर्थ क्या है ?

गु०– शब्द तथा प्रकाश करनेवाली.

शि०– सुमित्रा का अर्थ क्या है ?

गु०– (दोनों से) प्राकृतिक मित्रता रखनेवाली.

शि०– कौशल्या से किसका संकेत किया है ?

गु०– (१) प्रवेशकारी आकर्षण शक्ति का अथवा (२) ईड़ा नामक चन्द्र नाड़ी का.

शि०– केकई से किसका संकेत किया है ?

गु०– (१) निवेशकारी विकर्षण अर्थात् निराकरणशक्ति अथवा (२) पिंगला नामक सूर्य नाड़ी का.

शि०- सुमित्रा से किसका संकेत किया है ?

गु०- (१) प्रवेश निवेश के संयोग से उपजी स्थंभनशक्ति अथवा (२) उभय स्वरा नामक सुषुम्ना अर्थात् अग्नि नाड़ी का.

शि०- वशिष्ट ऋषिका अर्थ क्या है ?

गु०- वहनशील निष्केवल विद्युत, मेघज विद्युत, वृत्ति.

शि०- शृंगी ऋषि का अर्थ क्या है ?

गु०- भृकुटीगत द्विदल के ऊपर विरानेवाली, आवागमनकारी सोहँ वृत्ति या तुर्य्यागत सोहँ वृत्ति या शृंगीनाद.

शि०- पायस का अर्थ क्या है ?

गु०- क्षीर, प्रकाश, फैलाव, विस्तार, प्रयत्न करना, संरक्षण करना.

शि०- मेघ का अर्थ क्या है ?

गु०- जानना, ज्ञान, धारना.

शि०- पुत्रेष्टी का अर्थ क्या है ?

गु०- ∵पु=पवित्र करना; तृ=तारना, संरक्षण करना; इष्=व्यापना, चाहना, धसना, गति; पुत्रेष्टी=(पवित्र करने, तारने, संरक्षण करने, व्यापने, चाहनेवाला आदि) अर्थात् त्रिगुणात्मक शक्ति, महत्तत्व, त्रिनाड़ी अथवा उक्त कामनावाला, या पुत्र कामनावाला.

शि०- वशिष्ट ऋषिने दशरथ की प्रार्थना श्रवण कर शृंगी ऋषि को बुलाया ?

गु०- अर्थात् मेघज तेज के सहारे, जब मनुष्य प्रयत्नपूर्वक श्रवणादि संयम करता है, तब तुर्य्यागत शृंगीनाद या सोहँ वृत्ति प्राप्त होती है.

शि०- फिर दशरथने वशिष्ट के सहारे, शृंगी ऋषि के द्वारा, अश्वमेध कराके पुत्रेष्टी यज्ञ करवाया ?

गु०- अर्थात् जब मनुष्य मेघज विद्युत के सहारे, तुर्य्यागत शृंगीनाद या सोहँ वृत्ति के द्वारा, उन बाष्परूपी सूक्ष्म तत्वों को जान लेता है, तब उस त्रिगुणात्मक शक्तिवाले, महत्तत्व का यजन हो सकता है.

शि०- उस यज्ञ से अग्निदेवने प्रकट, पायस दिया, जो तीनों पटरानियों को बांटा गया ?

गु०- अर्थात् (१) उस महत्तत्व से अग्नि तुल्य तेज प्रकट, सर्वत्र फैल जाता है, जो तीनों शक्तियों द्वारा विभक्त है; अथवा (२) उस योगाग्नि द्वारा तेज प्रकट, सर्वत्र फैल जाता है, जो तीनों नाड़ियों द्वारा विभक्त है.

शि०- उस पायस के प्रभाव से, तीनों ने गर्भ धार, चार पुत्र जने ?

गु०- अर्थात् (१) उस विस्तृत तेज के प्रभाव से ही तीनों शक्तियों के अन्तर्गत वह तेज विद्यमान है, जो चारों पदार्थों का दाता है; अथवा (२) वही तेज प्रयत्न के प्रभाव से तीनों नाड़ियों के गर्भ से प्रकटता है, जिसके द्वारा धर्म्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है.

दोहा

धर्म्म राम लछमन अरथ, भरत काम ता केर ।
मोक्ष शत्रुहन वृत्तिकर, शक्ति तेज प्रभु प्रेर ।।

शि०- राम का अर्थ क्या है ?

गु०- सर्वत्र रमनेवाला, सर्वव्यापी, तुर्यावस्थास्थित योगी, रमा हुआ, लवलीन, तन्मय.

शि०- लक्ष्मण का अर्थ क्या है ?

गु०- (लक्ष्+मण)=अनहदगत किसी शब्द पर लक्ष रखना अथवा सोहँ, ॐ, अथवा मकार की अर्द्ध मातृकापर लक्ष रखना.

शि०- भरत का अर्थ क्या है ?

गु०- (भृ+अत)=सदा संरक्षण, धारण, तथा संहार करने की गति देनेवाला अथवा (भ+रत)=प्रभा में रत होना.

शि०- शत्रुघ्न का अर्थ क्या है ?

गु०- सब विघ्नरूप शत्रुओं का नाशक.

शि०- कौशल्या द्वारा रामचन्द्र अवतरे ?

गु०- अर्थात् (१) सर्वगुण सम्पन्न आकर्षण शक्ति द्वारा, अथवा (२) पूरक सहित ईड़ा नाड़ी द्वारा, सर्वत्र रमनेवाला, चन्द्र तुल्य शीतल तेज प्राप्त होता है.

शि०- केकई द्वारा भरत अवतरे ?

गु०- अर्थात् (१) शब्द युत प्रकाशवाली, विकर्षण शक्ति द्वारा, अथवा (२) रेचक सहित पिंगला नाड़ी द्वारा, सूर्य तुल्य प्रभा में रत हो चिरसंरक्षक, धारक, तथा संहारक शक्ति पा सकता है.

शि०- सुमित्रा द्वारा लक्ष्मण, शत्रुघ्न अवतरे ?

गु०- अर्थात् (१) हित प्रद स्थंभन शक्ति द्वारा, अथवा (२) केवल कुंभक सहित, अग्नि नाड़ी द्वारा, उक्त नाद का चिन्तन करनै से, सब विघ्नों का नाश होता है.

शि०- राजा दशरथ के राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न जाये हैं ?

गु०- अर्थात् (१) महत्तत्व के सर्वव्यापी नाद से लक्षसहित, प्रभा में रत होने से, सब विघ्नों का नाश होता है, इसलिये तुम भी महत्त-त्वगत उस सर्वव्यापी नाद के लक्षसहित, उसी प्रभा में रत हो, सब विघ्नों को नष्ट करो.

शि०- श्यामवर्ण राम के साथी गौरवर्ण लक्ष्मण तथा श्यामवर्ण भरत के साथी गौरवर्ण शत्रुघ्न हैं ?

गु०- अर्थात् प्रथम शुक्ल तेज से वेष्टित, श्याम तेज के अन्तर्गत सर्व-व्यापी नाद का लक्ष करो; फिर उस शुक्ल आभा से वेष्टित श्याम प्रभा में रत (मग्न) हो, सब विघ्नों से रहित हो जाओ.

शि०- राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न परस्पर की प्रीति के कारण एक हैं?

गु०- अर्थात् भक्तिपूर्वक कामादि विघ्नों को जीत, सर्वव्यापी नाद के लक्ष द्वारा; उक्त प्रभा में रत हो, (एक) तन्मय हो जाओ.

शि०- ब्रह्मचर्यपूर्वक राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न ने गुरु वशिष्ट से अल्पकाल में सब विद्या पढ़ ली ?

गु०- अर्थात् जब ब्रह्मचर्य पूर्वक, उस सर्वव्यापी नादके लक्षसहित, उस प्रभा में रत हो, सब विषयरूपी शत्रुओं को अच्छी तरह दमन करे; तो उस तमहारक वृत्ति द्वारा, अनायास सब विद्या प्राप्त हो सकती है ?

शि०- वशिष्ट ने ब्रह्मचर्य व्रतधारी, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को अल्पकाल में सब विद्या पढ़ा दी ?

गु०– अर्थात् अखण्ड ब्रह्मचर्य पूर्वक, तेज वृद्धि कर, नभात्मक विद्युत द्वारा, सर्वव्यापी नाद के लक्ष को, उक्त प्रभा में लय करने से (योगी) विघ्न रहित हो, अनायास सब विद्या पा लेता है.

शि०– विश्वामित्र का अर्थ क्या है ?

गु०– जगत का मित्र अर्थात् अग्नि.

शि०– वशिष्ट ऋषि के समझाने पर, दशरथ राजा ने, यज्ञरक्ष के लिये, विश्वामित्र ऋषि को राम लक्ष्मण सौंपे ?

गु०– अर्थात् जब तक आकाशज विद्युत की सहायता न ली जाय, तब तक अकेली पावकज विद्युत, दशों इन्द्रियों की चंचलता के कारण, सर्वव्यापी नाद चिन्तन के यजन को, स्थिर नहीं कर सकती.

शि०– ताड़का, सुबाहु, तथा मारीच से किसका संकेत किया है ?

गु०– क्रम से पूरक, कुंभक तथा रेचक प्राणायामका.

शि०– फिर विश्वामित्र के साथ राम, लक्ष्मण ने जा, ताड़का, सुबाहु को मार, मारीच को समुद्र पार फेंक, यज्ञ की रक्षा की ?

गु०– अर्थात् फिर पावकज विद्युत के सहारे, सर्वव्यापी नाद के लक्ष पूर्वक रेचक को, अच्छी तरह उदर के बाहर फेंक, पूरक तथा कुंभक को जीत, यज्ञरूप प्रवेश निवेशकारी गति का रक्षण करो.

शि०– जनकपुर का अर्थ क्या है ?

गु०– सब को उत्पादक गति देनेवाला अर्थात् वरुणात्मक महत्तत्व,

शि०– गौतम ऋषिका अर्थ क्या है ?

गु०– जो मन, वाणी, जल, इन्द्रियों का प्रेरक अर्थात् चन्द्रात्मक महत्तत्व या उसकी ज्योति.

शि०– यहां धनुष्य का अर्थ क्या है ?

गु०– (धन+उष)=(धन+ऋण)=प्रवेश निवेशकारी गति.

शि०– वैदेहीका अर्थ क्या है ?

गु०– तुर्य्या, देह विरहित अवस्था.

शि०– अहल्या का अर्थ क्या है ?

गु०– चांदनी, प्रभा, ज्योति.

शि०– सीता का अर्थ क्या है ?

गु०– स्वेत प्रभावाली, तुर्य्या, वृत्ति.

शि०– जानकी का अर्थ क्या है ?

गु०– सबकी उत्पन्न करनेवाली, प्रकृति, वृत्ति, तुर्य्या, वरुणात्मक ज्योति, शक्ति, अहँवृत्ति.

शि०– फिर विश्वामित्र गंगा के किनारे हो, राम लक्ष्मण को साथ ले, जनकपुर की ओर चले ?

अर्थात् विश्वामित्र गंगा के किनारे हो, राम लक्ष्मण को साथ ले, जनकपुर की ओर चले ?

गु०– अर्थात् पश्चात् पावकात्मक तेज के सहारे, ईड़ा नाड़ी में अन्तर्मुख हो, सर्व व्यापी उस नादके लक्ष सहित, वरुणात्मक महत्तत्व की ओर अग्रसर होवो.

शि०– तब राम के पदस्पर्श से, गौतम ऋषि की स्त्री, अहल्या का उद्धार हुआ ?

गु०– अर्थात् तब बीच ही में, उस तन्मय गति के योग से, चन्द्रात्मक महत्तत्व की विस्तृत चांदनी प्रकट होगी,

अथ क्षेपक

शि०– जिस अहल्या से, इन्द्र को भोग करते देख, गौतमने श्राप दे, शिला बनायी थी ?

गु०– जिस चांदनी के अन्तर्गत विद्युत का तेज गमन कर रहा है, वह चन्द्र के अर्घ्य प्रदान द्वारा प्राप्त होता है.

शि०– जो गौतम के श्राप से, सहस्र भगवाला इन्द्र हो गया था, वही ब्रह्मा के प्रसाद से सहस्र नेत्रवाला हो गया ?

गु०– अर्थात् चन्द्र के अर्घ्य प्रदान के सहारे, अन्तर्गत गमन करता हुआ, विद्युत का तेज प्राप्त होता है, वही संयम पूर्वक वृद्धि को प्राप्त हो, सर्वत्र ले जानेवाला या दिखानेवाला हो जाता है.

(इति क्षेपक)

शि०– अहल्या को उद्धार, जनकपुर, पहुंच, शिव का धनुष्य तोड़, विदेह पुत्री जानकी से लग्न किया ?

गु०– अर्थात् उस चन्द्रात्मक विद्युत को ग्रहण कर, वरुणात्मक महत्तत्व में लय प्राप्त करो, तब उस कल्याणकारी, उज्ज्वल ज्योति की धन ऋण गति का जय होकर, तुर्य्यावस्था में मग्नता प्राप्त होगी.

शि०– उतने में परशुराम आ, कुपित हुए, किन्तु राम लक्ष्मणने, अपने प्रभावद्वारा उन्हें परास्त कर विदा किया ?

गु०– अर्थात् उस शुद्ध प्रकाश में, पृथ्वी की पवन द्वारा उपजी विद्युत, अपने फैलाव विस्तार से बाधा उपस्थित करती है; किन्तु उस पीत धूम्रज्योति को, उस सर्वव्यापी नादके अचल लक्ष द्वारा निवृत करो.

शि०– अयोध्या तथा अवध का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵अज=जन्म रहित; ∴अयोध्या=जिसका ध्यान जन्म रहित करे; और अवध=वध रहित; नाश रहित पद.

शि०– सरस्वति का अर्थ क्या है ?

गु०– अग्रसर होनेवाली, अन्तर्मुख वृत्ति.

शि०– मंथरा का अर्थ क्या है ?

गु०– स्थिर मनवाला योगी.

शि०– वर्ष का अर्थ क्या है ?

गु०– भिदना, गीला होना, तन्मय होना.

शि०– वन का अर्थ क्या है ?

गु०– सेवना, साधना, तुर्य्या.

शि०– कुछ दिन के पश्चात् जब दशरथ राजा, राम को अवध का राज देने के लिये तत्पर हुए ?

गु०– अर्थात् जब कुछ दिन के पश्चात्, इन्द्रियों का निग्रह हो जाय, तब योगी को मुक्ति प्राप्ति का साधन करना चाहिये.

शि०– किन्तु देव प्रेरित सरस्वती के कारण, मंथरा के उपदेश द्वारा, दशरथ को छल, केकई ने भरत को राज दिला, वैदेही सहित राम लक्ष्मण को, चौदह वर्ष का वनवास दिलाया ?

गु०– अर्थात् तब वह उपरोक्त तेज से अन्तर्मुख हुआ, स्थिर मना योगी, दशों इन्द्रियों की गति रोक, पिंगला नाड़ी द्वारा उक्त प्रभा में रत हो, तुर्य्या सहित रमता हुआ, नादके लक्ष पूर्वक चतुर्दश आवरणों को क्रम से पार करे.

शि०– सुमंत का अर्थ क्या है ?

गु०– श्रेष्ट मन से, सुरति से.

शि०– श्रृंगमेरपुर का अर्थ क्या है ?

गु०– भृगुटी के निकटस्थ द्विदल में पहुंचना या श्रृंगी नाद में–

शि०– भरद्वाज का अर्थ क्या है ?

गु०– महत्तत्व रूपी सूर्य प्रभागत सूक्ष्मतत्व.

शि०– प्रयाग किसे कहते हैं ?

गु०– जहां तीनों नाड़ियां मिलती हैं, उस त्रिकुटी स्थान को; जहां प्राकृतिक यजन होता हैं.

शि०– वाल्मीक का अर्थ क्या है ?

गु०– आवरणों की तन्मात्रा का ज्ञान करानेवाला.

शि०– चित्रकूट किसे कहते हैं ?

गु०– अत्यंत गुप्त रहस्य के दिखाने वाले सहस्रदल को.

शि०– गुह निषाद किसे कहते हैं ?

गु०– उक्त भँवर गुफा के अन्तर्गत बसनेवाली, सोहँ वृत्ति को.

शि०– दशरथ की आज्ञा से सुमन्त उन्हें अश्वों के रथ में बैठा, श्रृंगमेरपुर तक ले गया, किन्तु फिर वह वहां से लौटा दिया गया ?

गु०– अर्थात् दशों इन्द्रियों का प्रेरक श्रेष्ट मन, उन सूक्ष्म तत्वों की (मननशील) गति से भृकुटि के निकटस्थ द्विदल में पहुंच, अमनस्कता को प्राप्त होता है.

शि०– उधर लौटे हुए सुमन्त के द्वारा, उनके बन गमन का हाल, दशरथने पा, तन त्यागा ?

गु०– अर्थात् पूर्वोक्त साधन द्वारा, मन उन्मनी अवस्था को प्राप्त होते ही, दशों इन्द्रियों का जय हो जाता है.

शि०— इधर इन्होंने प्रयाग पहुंच, भरद्वाज का दर्शन किया ?

गु०— अर्थात् त्योंही उपरोक्त लक्ष त्रिकुटी में पहुंच, (अध्यात्म सूर्य की) प्रभा में रत हो, तदन्त बाजरूपी सूक्ष्मतत्वों को देखता है.

शि०— फिर वे वाल्मीक ऋषि से मिल, चित्रकूट पहुंचे ?

गु०— अर्थात् उक्त तत्वावरण की तन्मात्रा का ज्ञान होते ही, सहस्रदल में पहुंच, अत्यन्त गुप्त रहस्य, जानने की गति प्राप्त करता है.

शि०— वहां भरत शत्रुघ्न अपनी तीनों माताओं सहित, समस्त प्रजा को लिये हुए आये, किन्तु मिलने के पश्चात् सबको लौटा दिया ?

गु०— अर्थात् उक्त प्रभारत जितेन्द्रिय योगी को त्रिगुणात्मक शक्ति से उपजी समस्त सिद्धियां प्राप्त होती हैं, किन्तु वह उनके मोहको त्याग देता है.

शि०— श्रृंगमेरपुर से चित्रकूट तक, पहुंचाने का काम गुह निषादने किया?

गु०— अर्थात् भृकुटिगत द्विदल से लेकर सहस्र दल तक, उपरोक्त गति देनेवाली सोहँ वृत्ति है.

शि०— सहस्र दल किसे कहते हैं ?

गु०— सब आवरणों को चीरते हुए अग्रसर होने को.

शि०— जयन्त का क्या अर्थ है ?

गु०— जय का अन्त करनेवाला, चंचल चित्त या कामदेव.

शि०— विराध का अर्थ क्या है ?

गु०— पूरी सिद्धि पाना.

शि०— सरभंग का अर्थ क्या है ?

गु०— पांचों तन्मात्राओं के विघ्न भंग करना.

शि०— शूर्पनखा का अर्थ क्या है ?

गु०— माया, पृथ्वी की प्रवेश निवेशकारी शक्ति.

शि०— शबरी का आश्रम का अर्थ क्या है ?

गु०— शव्=समीप जाना; री=झरना, टपकना; ∴शबरी का आश्रम= झरनेवाले स्थान के निकट पहुंचना.

शि०— कबन्ध किसे कहते हैं ?

गु०— अमृत समान जल की अवरोधक नाड़ी को.

शि०— उच्चिष्ट का अर्थ क्या है ?

गु०— ऊपर से गिरा, शेष (जल).

शि०— जब जयन्तने वैदेही का अपमान किया, तब रामने उसे एकाक्ष कर छोड़ा ?

गु०— अर्थात् जब चंचल चित्त, तुर्य्या से विमुख होना चाहे, तब बहिर्लक्ष त्याग केवल अचल अन्तर्लक्ष द्वारा उसे वश्य करे.

शि०— फिर वे अग्रसर हो अत्रि ऋषि से मिले, और अनुसुय्याने वैदेही को पतिव्रत धर्म का उपदेश दिया ?

गु०— अर्थात् फिर उस लक्ष के सहित, अग्रसर होने पर जल की त्रिगुणात्मक शक्ति को पाकर, उसकी अनुयायी वृहच्चन्द्राकार ज्योति द्वारा, तुर्य्यावस्थावाले को, तेजवृद्धि की स्वाभाविक गति का ज्ञान प्राप्त होता है.

शि०— फिर विराध को मारा ?

गु०— अर्थात् फिर उस चन्द्र ज्योति की सिद्धि प्राप्त होती है.

शि०— फिर सरभंग मुनिका दर्शन किया ?

गु०— अर्थात् फिर पंच तन्मात्राओं के विघ्न निवृत्ति का ज्ञान हो जाता है.

शि०— फिर सुतीक्षण से मिल, अगस्ति से मिले ?

गु०— अर्थात् फिर क्षुधा, तृषा निवृत हो जाती है.

शि०— पश्चात् पंचवटी में प्रवेश किया ?

गु०— अर्थात् उपरोक्त सिद्धियों के पश्चात्, पंचमहाभूतों के जयका प्रयत्न किया जाता है.

शि०— वहां शूर्पनखा लुभाने को आयी, किन्तु राम के संकेत से लक्ष्मणने नाक, कान काट उसे विदा किया ?

गु०— (१) अर्थात् उपरोक्त सिद्धियों की माया से योगी का चित्त, विषयों की ओर आकृष्ट होता है, तब उसे बहिर्दृष्टि पूर्वक, अन्तर्लक्ष से हटाना चाहिये.

(२) अथवा फिर पृथ्वीतत्व की प्रवेश निवेशकारी माया योगी को ललचाती है; तब उसे नाशाग्र दृष्टिपूर्वक, श्रवणगत लक्ष द्वारा जीतना चाहिये.

शि०— यह सुन खर, दूषण, त्रिशिरा चढ़ आये, तब वैदेही रक्षा के लिये, लक्ष्मण तो गुहाके द्वारपर खड़े रहे, और रामने उन्हें मार गिराया ?

गु०— (१) अर्थात् उपरोक्त सिद्धियों में आशक्त होने से योगी को क्रोध, काम तथा लोभ सताता है, इसलिये तुर्य्यावस्था से रक्षित अपना स्थिर लक्ष, उस भँवर गुफागत शब्द पर रख, तीनों विकारों को हरना चाहिये.

(२) अथवा फिर जल तत्व के त्रिदोष योगी को सताते हैं, उन्हें उपरोक्त लक्ष से जीत, जल तत्व की सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये.

शि०— फिर अग्नि को वैदेही सौंप, माया की जानकी रची ?

गु०— (१) अर्थात् फिर अग्नितत्व की धारणा से तुर्य्यावस्था में मग्न हो सृष्टि रचना की अद्भुत शक्ति का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये.

(२) अथवा फिर तुर्य्या द्वारा, अग्नि की धारणा कर, उक्त शक्ति प्राप्त करे.

शि०— उधर वैदेही के कहने से रामने जा, मारीच मृगको मारा, इधर रावण आ, आकाश मार्ग से, जानकी हर ले गया ?

गु०— अर्थात् ज्योंही तुर्य्या में रमनेवाला योगी, रेचक प्राणायाम पूर्वक (उपरोक्त लक्ष द्वारा) वायु की धारणा कर, वायु तत्व का जय करता है त्योंही उसकी वृत्ति आकाश तत्वगत, अहंकार को प्राप्त होती है.

शि०— इसका तात्पर्य क्या है ?

गु०— कि उसकी वृत्ति सब पदार्थों में अहंभावना करती है, अर्थात् वह योगी अहंकारमय, सब जगत को देखता है; जैसे शिवोऽहं, रामोऽहं, चन्द्रमहं, जलमहं इत्यादि;

शि०— तब लक्ष्मण सहित राम, अत्यन्त व्याकुल हो, चराचर से उसका पता पूछते हुए आगे चले ?

गु०— अर्थात् जब वह तुर्य्या में, रमनेवाला उपरोक्त लक्ष सहित, अहं-वृत्ति में लवलीन हो, सर्वत्र ही उसे देखता हुआ, अग्रसर होता है.

शि०— फिर रावण द्वारा हत जटायु गृद्धने, जानकी का पता बताया ?

गु०— अर्थात् फिर अहंकार द्वारा, जटागत तेज का जय करने से अहं-वृत्ति के साधन का कुछ मार्ग विदित होता है.

शि०— फिर जिसका मुंह पेट में था, ऐसे कबन्ध राक्षस को मार, शबरी के आश्रम पर जा, उसके उच्छिष्ट फल खा, कृतार्थ किया; उसने भी जानकी का पता बताया ?

गु०— अर्थात् अमृत समान गुणकारी जल को नाभि में पहुंचा, नष्ट करनेवाली, कबंध नामक जिव्हाकी नाड़ीको छेद, ऊपर चढ़ा, उस झरनेवाले स्थान के निकट पहुंचा, निश्चल हो, ऊपर से गिरे, शेषश्रावको चख, सद्गति प्राप्त करने से, अहँवृत्ति का साधन पथ, कुछ अधिक विदित होता है.

शि०— फिर हनुमान द्वारा सुग्रीव से मिल, सप्ततालों को एक ही बाण से बेध, बालि को मार, सुग्रीव को पंपापुर का राज दिया ?

गु०— अर्थात् फिर पवन से उपजी, विद्युत द्वारा (सूर्य्य नाड़ी गत) शंखध्वनि को पा, उस एक ही लक्ष से सप्तावरण बेध, शक्ति के उत्थान पूर्वक केशज विद्युत को जीत, शंखनाद द्वारा, उस अमृत-पान की धारणा का जय करे.

शि०— फिर सुग्रीव का प्रेरा हनुमान, संपाती के दिखाये मार्ग द्वारा, बीच के विघ्न हटा, लंका पहुंच, जानकी से मिल, लंका जलाकर आया?

गु०— अर्थात् फिर अध्यपात की विद्युत मे उत्तेजित, पवन की विद्युत द्वारा शंखध्वनि के लक्ष सहित अग्रसर हो, विघ्न हटा, हिरण्यगर्भ के अन्तर्गत लक्ष प्राप्त करने से, उस प्रकृति रूपा अहंवृत्ति का बोध तथा उस महत्तत्व के प्रकाश का जय होता है.

शि०– अंगद ने जा, रावण का मानमर्द्दन किया ?

गु०– अर्थात् फिर प्रणव के संयम द्वारा, अहंकार का मानमर्द्दन किया जाता है.

शि०– फिर लक्ष्मण द्वारा मेघनाद मारा गया, तब रामने कुम्भकर्ण तथा रावण को मारा ?

गु०– अर्थात् जब मकार की अर्द्ध मात्रा के लक्ष द्वारा अनहदगत मेघध्वनि का जय हो जाता है, तब योगी मोह तथा अहंकार से रहित हो जाता है.

शि०– फिर विभीषण को लंका का अखण्ड राज दिया ?

गु०– अर्थात् महाक्रान्ता मुद्रा के निर्भय सेवन द्वारा, हिरण्यगर्भ का परिपूर्ण जय होता है.

शि०– फिर प्रचण्ड ज्वाला के अन्तर्गत हो, निकलने पर जानकी को स्वीकारी ?

गु०– अर्थात् फिर उस अखण्ड ज्योति के अन्तर्गत लय प्राप्त करने से प्रकृति तत्व का जय होता है.

शि०– फिर पुष्पकयान पर चढ़, अवध अर्थात् अयोध्यापुरी में आ अखण्ड राज किया ?

गु०– अर्थात् उपरोक्त शक्ति तत्व का जय करने पर, स्वेच्छाचारी योगी जीवन मुक्त हो, आवागमन को अच्छी तरह जीत, अखण्ड ब्रह्मानंद को प्राप्त होता है.

उपदेश २८

कृष्णावतार

(शिक्षा १)

शि०– यदुकुल का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵यत्=प्रयत्न करना; उ=तेज, वीर्य्य; कुल=बटोरना;

∴यदुकुल=प्रयत्न पूर्वक तेज या वीर्य्य बटोरना.

शि०– भजमान का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵भज=भजन करना; मान्=ज्ञान प्राप्ति की इच्छा करना; ∴भजमान=भजन द्वारा ज्ञान प्राप्ति की इच्छा करना.

शि०– पृथिकु का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵पृथ्=प्रेरणा करना; इ=जाना; कु=भ्रमरनाद करना या जल का तेज; ∴पृथिकु=भ्रमरनाद द्वारा अग्रसर होना या जल के तेज के द्वारा अग्रसर होना.

शि०– विदुरथ का अर्थ क्या है ?

गु०– विद्=जानना; उ=तेज; रथ=गति; ∴विदुरथ=तेज की गति को जानना.

शि०– सूरसेन किसे कहते हैं ?

गु०– वृहत् सूर्य्याकार महत्तत्व को.

शि०– मरिष्या का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵मृ=मारना; इष्=जाना, गति; ∴मरिष्या=गतिका जय करना

शि०– वसुदेव का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵वसु=पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, और नक्षत्र समूह ये अष्ट वसु हैं; देव=प्रकाश, तेज, ∴वसुदेव=अष्ट वसुओं में बसनेवाला तेज, अथवा तेज में बसनेवाले.

शि०– रोहिणी किसे कहते हैं ?

गु०– उर्द्ध गति प्राप्त करानेवाली अर्थात् तुर्य्यावस्था.

शि०– प्रथम यदुकुल में भजमान हुए ?

गु०– अर्थात् प्रथम प्रयत्न पूर्वक तेज बटोर, भक्ति द्वारा ज्ञान प्राप्ति की इच्छा करे.

शि०– फिर भजमान से पृथिकु हुए ?

गु०– अर्थात् फिर भजन पूर्वक ज्ञान प्राप्ति की इच्छा से भ्रमरनाद के सहारे आगे बढ़े ?

शि०– फिर पृथिकु से विदुरथ हुए ?

गु०– अर्थात् फिर भ्रमरनाद द्वारा अग्रसर हो, उस तेज की गति जाने.

शि०– फिर विदुरथ से सूरसेन हुए ?

गु०– अर्थात् फिर तेज की गति के ज्ञान द्वारा, वृहत् सूर्य्याकार महत्तत्व प्राप्त होता है.

शि०– फिर सूरसेन की मरिष्या स्त्री द्वारा वसुदेव हुए ?

गु०– अर्थात् फिर उस वृहत् सूर्य्याकार महत्तत्व की विस्तृत गति के जय द्वारा, उन वसुओं का तेज प्राप्त होता है.

शि०– फिर वसुदेवने रोहिणी के साथ लग्न किया ?

गु०– अर्थात् तब वस्वात्मक तेज के द्वारा, तुर्य्यावस्था में मग्नता प्राप्त होती है.

(शिक्षा २)

शि०– मथुरापुरी का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵ मथ्=मथना, विचारना, मनन करना, खोजना; उर=अन्तर्गत, हृदय में या गति; आ=दिव्य, अच्छी तरह; पुर्=अग्रसर होना; इ=गति; ∴ मथुरापुरी=(१) जहां पर अग्रसर होनेवाली दिव्य ऋण धन गति का मथन हो रहा है, (२) मनन पूर्वक उरके अन्तर्गत, अच्छी तरह उस गति द्वारा, अग्रसर होना या लय प्राप्त करना; (३) कर्षण शक्ति.

शि०– आहुक का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵ आ=दिव्य, श्रेष्ट; हुक=यज्ञकर्त्ता; ∴ आहुक=दिव्य यज्ञ करनेवाला, यमात्मक महत्तत्व, शक्त्यात्मक महत्तत्व, यज्ञपुरुष.

शि०– उग्रसेन किसे कहते हैं ?

गु०– सोहमात्मक सूर्य्य.

शि०– देवक का अर्थ क्या है.

गु०– प्रकाशक.

शि०– रेषा का अर्थ क्या है ?

गु०– रेषा, शब्द करना, कर्षण करना.

शि०– द्रुमलिक का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵द्रु = जाना, गति; मल = धारना, पकड़ना, पहिरना, लटकाना= ∴द्रुमलिक = गतिको धारने व पकड़नेवाला.

शि०– कालनेमि का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵काल = यम, समय; नेमि = दर्शक, निग्रह कर्त्ता; ∴कालनेमि= कालका दर्शक या निग्रह कर्त्ता.

शि०– कंस का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵कंस् = जाना, नष्ट करना, आज्ञा करना, शासन करना, दंड देना; ∴कंस = वृत्ति, मन.

शि०– वृत्ति या मन को कंस क्यों कहा ?

गु०– क्योंकि वृत्ति में उपरोक्त सामर्थ्य है.

शि०– कंस से किसका संकेत किया है ?

गु०– रिद्धि सिद्धि चाहनेवाली वृत्ति का.

शि०– गर्भ का अर्थ क्या है ?

गु०– गमनशील प्रभा.

शि०– प्रथम मथुरापुरि के राजा आहुक हुए ?

गु०– अर्थात् अग्रसर होनेवाली दिव्य गतियों का मथन करनेवाला, केवल विराजमान यज्ञ पुरुष है.

शि०– उस आहुक से उग्रसेन तथा देवक हुए ?

गु०– (१) अर्थात् उस यज्ञ पुरुष द्वारा, सोहमात्मक सूर्य्य तथा उसका प्रकाश उपजता है. (२) अथवा वह यज्ञ पुरुष ही, इस प्रचण्ड सूर्य्य का उत्पादक तथा प्रकाशक है.

शि०– फिर उग्रसेर मथुरापुरि के राजा हुए ?

गु०– अर्थात् उपजने के पश्चात् यह सूर्य्य भी उन अग्रसर होनेवाली, गतियों को मथने लगता है.

शि०– उग्रसेम की मात्र एक पवन रेखा स्त्री थी ?

गु०– (१) अर्थात् उस सोसमात्मक सूर्य्य प्रेरित, केवल एक पवन ही, उस ध्वनिको सर्वत्र विस्तारती है.

(२) अथवा इस सूर्य्य द्वारा ही, यह पवन विस्तृत हो, सबको विस्तारती है.

(३) अथवा उस सूर्य्य की केवल सोहँ वृत्ति है.

शि०– उस उग्रसेन की स्त्री पवन रेखा से, द्रुमलिक राक्षस अर्थात् कालनेमिने भोग किया ?

गु०– (१) उसे सोहमात्मक सूर्य्य द्वारा विस्तारित, पवनात्मक ध्वनि, केवल गति द्वारा, रक्षण धारण करती हुई, कालको दर्शाती है.

(२) अथवा उस सूर्य्य प्रेरित, पवनात्मक कर्षण ही, अपनी गति द्वारा, सबका धारण, रक्षण करती हुई, कालका निग्रह करती है.

(३) अथवा उस सूर्य्य प्रेरित, सोहँ वृत्ति ही, सबका धारण, रक्षण करती हुई, काल द्वारा भुक्तमान होती है.

शि०– उस उग्रसेन के घर, पवन रेखा के गर्भ से कंस उपजा, जिसने समस्त प्रजा को व्याकुल किया ?

गु०– (१) अर्थात् उस सोहमात्मक सूर्य्यगत, पवनात्मक ध्वनि की गमनशील प्रभा द्वारा, जो वृत्तिउपजती है, वह समस्त इन्द्रियोंका अच्छी तरह निग्रह कर सकती है.

(२) अथवा इस सूर्य्य की क्रान्ति मंडल युक्त पवन की, कर्षणकारी गमनशील प्रभा द्वारा जो वृत्ति उपजती है, वह भी समस्त इन्द्रियों का परिपूर्ण निग्रह कर सकती है.

शि०– समझाने पर उग्रसेन से छीन, कंस स्वयं मथुरापुरि की समस्त प्रजा का राजा बन बैठा ?

गु०– अर्थात् किन्तु जब वृत्ति (अग्रसर होनेवाली) दिव्य गति के द्वारा सूर्य्य का तेज ग्रहण कर, मननपूर्वक उसके अन्तर्गत अच्छी तरह लय प्राप्त करती है, तब सब इन्द्रियां वशीभूत होती हैं.

शिक्षा ३

शि०– (१) गो (२) इन्द्र (३) आज्ञा का अर्थ क्या है ?

गु०– (१) विद्युत (२) आकाशज विद्युत (३) दिव्य ज्ञान.

शि०– तब पृथ्वी गोरूप धर, इन्द्र के पास, इन्द्र उसे ले ब्रह्मा के पास, ब्रह्मा उन सहित रुद्र के पास और फिर सब मिल, विष्णु के पास पहुंच ?

गु०– अर्थात् जब धरात्मज विद्युत चल, आकाशज विद्युत से मिलती है. तब प्रवेश निवेशकारी गति के संयोग द्वारा, अचल व्यापक गति प्राप्त होती है.

शि०– फिर विष्णु भगवान की आज्ञा से, व्रज मंडल में जा, सब देव अवतरे ?

गु०– अर्थात् फिर उस व्यापक महत्तत्वगत, श्याम तेज के अन्तर्गतवाले दिव्य ज्ञान द्वारा, इस भ्रमणकारी, आकाश मण्डल के मध्यवर्त्ति समस्त पिण्डरूप भगणों का ज्ञान प्राप्त होता है.

शिक्षा ४

शि०– बलराम, कृष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध ?

गु०– (१) अर्थात् सर्वत्र रमनेवाली शक्ति के कर्षण द्वारा, सर्वोत्कृष्ट विद्युत प्राप्त होती है, जिसके द्वारा समग्र शत्रुरूप विघ्नों का रोधन होता है.

(२) अथवा सर्वव्यापी शक्ति के आकर्षण पूर्वक, उपजी दिव्य ज्योति में मग्न होते ही समस्त इन्द्रियों का निग्रह हो जाता है.

शि०– रुक्मिणी का अर्थ क्या है ?

गु०– (मनके विरुद्ध वर्त्तनेवाली गति) = अन्तर्मुख वृत्ति = अपनस्कता = तुर्य्या; ज्योति.

शिक्षा ५

शि०– कंस की आज्ञा से उग्रसेन के भ्राता, देवककी की कन्या देवकी का लग्न सूरसेन के पुत्र वसुदेव के साथ हुआ ?

गु०– अर्थात् जब वृत्ति को सोहमात्मक सूर्य्य की दिव्य प्रकाशक ज्योति की ऋणधन गति का परिपूर्ण ज्ञान हो जाता है, तब महत्तत्व जात वसुओं के तेज के अन्तर्गत मग्नता प्राप्त हो सकती है.

शि०- आकाशवाणी ने कहा, अरे कंस ! इसके अष्टम गर्भ द्वारा तेरी मृत्यु होगी ?

गु०- अर्थात् आकाशज अनहद ध्वनि के सहारे, उपरोक्त साधन द्वारा, अष्टम वसुका तेज, प्राप्त होने पर, वृत्ति का जय हो सकता है.

शि०- जब नारद ने आकाशवाणी का तात्पर्य्य समझाया, तब कंस ने वसुदेव के छे पुत्र मारे ?

गु०-अर्थात् जब विधिपूर्वक, महत्तत्व के अन्तर्गत, अनहद ध्वनि के सहारे वृत्तिका लय किया जाता है, तब वृत्ति द्वारा, षट् वसुओं के तेज का जय हो सकता है.

शि०-फिर विष्णु भगवान ने नेत्रों से योगमाया उपजाई ?

गु०-अर्थात् तब उस व्यापक महत्तत्व के मध्यवर्ति प्रकाश के अन्तर्गत, एकाग्र चिन्तन करने से, ऋण धन गति का योग होता है; अथवा त्राटक योग की शक्ति प्राप्त होती है.

शि०-फिर योगमाया ने गोकुल पहुंच, रोहिणी के पेट में देवकी का सप्तम गर्भ जा धरा ?

गु०-अर्थात् धन ऋण गति के योग द्वारा, विद्युत बटोर उसके अन्तर्गत अन्तर्मुखत्व के सहारे, तुर्य्या अवस्था के प्राप्त होते ही उसके अन्तर्गत सप्तम वस्वात्मक तेज प्राप्त होता है.

शि०-गोकुल का अर्थ क्या है ?

गु०-इन्द्रियों का निग्रह या विद्युत का संग्रह.

शि०-जब कंस ने सप्तम गर्भ श्रावका हाल सुना, तब उसने अष्टम गर्भ के भय से वसुदेव देवकी को कैद किया ?

गु०-अर्थात् उपरोक्त साधन द्वारा, षट वसु तेजका जय होते ही, सप्तम वसु तेज आप ही विस्तृत हो जाता है; तब अष्टम वसु तेज प्राप्ति के लिये, वृत्ति द्वारा सप्तम वसु तेज की ज्योति को स्थिर करना पड़ता है

शि०-जब कृष्ण अवतरे तब सब रक्षक सो गये, और वसुदेव देवकी के बन्धन खुल गये ?

गु०— अर्थात् उपरोक्त साधन द्वारा, जब अष्टम वसु का श्याम तेज अवतरता है; तब सब इन्द्रियां स्थगित हो जाती है. तथा सप्तम व स्वात्मक ज्योति का मध्यवर्त्ति आवरण नष्ट हो जाता है.

शि०— वसुदेव ने कृष्ण को ले, यमुना उत्तर, गोकुल पहुंच, नन्द की स्त्री यशोदा के पास जा धरा ?

गु०— अर्थात् सप्तम वसु की शुक्ल प्रभागत श्याम तेज के, अन्तर्गत विकर्षणपूर्वक विद्युत बटोरने पर, आनन्द देने वाली ऋद्धियां तथा यश देने वाली सिद्धियां प्राप्त हो सकती हैं.

शि०— जमुना का जल वसुदेव के नाक तक पहुंचा, किन्तु कृष्णांगुष्ट के छूते ही झट उतर गया ?

गु०— अर्थात् विकर्षण द्वारा उपजा प्रकाश ज्यों ही नाशाग्र स्थित, सप्तम वसु के तेज को पार कर, श्याम तेज से जा मिलता है त्योंही लक्ष, सूर्य नाड़ी को छोड़, तुरन्त ऊपर चला जाता है.

शि०— फिर यशोदा से उपजी योगमाया लाकर देवकी को दी, त्योंही पूर्ववत बंध गये ?

गु०— (१) अर्थात् ज्योंही यश देनेवाली, ऋण धन गति का योग, उक्त ज्योति को प्राप्त होता है, त्योंही सप्तम वस्वात्मक प्रभा, स्वयं अचल हो जाती है.

(२) अथवा ज्योंही यश देने वाली, सप्तम वस्वात्मक ज्योति की ऋण धन गति का योग हो जाता है त्योंही वह अचल हो जाती है.

शि०— कंस ने उस माया को पटकना चाहा, किन्तु वह तुरन्त आकाश में चली गयी ?

गु०— अर्थात् केवल वृत्ति द्वारा ही, ऋण धन गति के योग का जय नहीं हो सकता. किन्तु उसे आकाशगत दिव्य प्रकाश की अत्यन्त आवश्यकता है.

शि०— जब योगमाया द्वारा कंस को, कृष्ण के अवतरने का समाचार मिला, तब वह उसे मारने का उपाय सोचने लगा ?

गु०– अर्थात् जब ऋण धन गति के योग द्वारा, वृत्ति को उस श्याम तेज का ज्ञान हो जाता है; तब उसके जय का अभ्यास किया जाता है.

शिक्षा ६

शि०– पूतना का क्या अर्थ है ?

गु०– ∵पू=पालन, पोषण, धारण करना; तना=विस्तारने वाली; ∴पूतना=पृथ्वी की तन्मात्रा.

शि०– जब कंस ने पूतना भेजी, तब कृष्ण ने उसका दुग्ध मुख द्वारा खैंच, प्राण हर लिया ?

गु०– अर्थात् जब वृत्ति, पृथ्वी की तन्मात्रा की ओर झुकती है, तब आकर्षण द्वारा, तद्गत विद्युत खैंच, अन्तर्मुख हो उसका जय करे.

शि०– दग्ध करने पर पूतना के तन से ऐसी सुगन्ध निकली; कि जिससे सब संसार सुगंधित हो गया ?

गु०– अर्थात् पृथ्वीगत तन्मात्रा के सिद्ध होते ही, संसार के दूरस्थ पदार्थों की भी गंध जानी जाती है.

शि०– फिर कंस ने शकटासुर को भेजा, तब कृष्ण ने पदांगुष्ट चुसते हुए, पद प्रहार द्वारा उसे मार गिराया ?

गु०– अर्थात् फिर जब वृत्ति, तृयक गति वाली जल तन्मात्रा की ओर झुकती हैं. तब आकर्षण द्वारा, जल की विद्युत खैंच, उसकी गति को मार, अन्तर्मुख होने से दूर-दूर का रस ज्ञान होता है.

शि०– फिर कंस ने तृणवृत्त को भेजा, वह श्रीकृष्ण को आकाश में ले उड़ा, जब श्रीकृष्ण ने वहां पर सबका चिल्लाना सुना, तब उसे घुमाय, आंगन में लाय, सिला पर दे मारा ?

गु०– अर्थात् जब वृत्ति वायु की तन्मात्रा की ओर झुकती है, तब पवन के उर्द्धाकर्षण पूर्वक भ्रमण तथा अधः पतन द्वारा जो विद्युत प्राप्त होती है, उसके अन्तर्गत लय प्राप्त करने से दूर-दूर का शब्द सुना जा सकता है.

शि०– फिर गर्ग मुनि ने आ, कंस के भय से एकान्त में, रामकृष्ण का नाम धर, भविष्यत वाणी कही ?

गु०– अर्थात् फिर जब अग्नि की तन्मात्रा की ओर, निवेशकारी वृत्ति झुकती है, तब सर्वत्र रमनेवाली कर्षण शक्ति द्वारा, उसे प्राप्त कर भविष्यतवाणी कही जा सकती है; (गर्ग=सर्वभक्षी=ज्ञानकर्त्ता =अग्नि).

शि०– गर्ग मुनि ने रोहिणी के पुत्र का नाम, संकर्षण, बलदेव, कालिन्दीभेदन आदि बताया ?

गु०– अर्थात् आकर्षण पूर्वक शक्ति के तेज द्वारा, सूर्य नाड़ी के भेदन करने से ऊर्द्धगति देने वाली तुर्य्या के अन्तर्गत, अग्नि की तन्मात्रा प्राप्त होती है.

(शिक्षा ७)

शि०– जब कृष्ण ने मृत्तिका खाई, तब यशोदा ने मुख के भीतर देखा, तो उसमें त्रिलोकी दिखी ?

गु०– अर्थात् जब आकर्षण द्वारा, भूम्यात्मक विद्युत का जय हो जाता है, तब यश देनेवाली, अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा सब लोक दृष्टिगोचर होते हैं.

शि०– फिर रस्सी द्वारा ऊषल से कृष्ण को बांधा ?

गु०– अर्थात् फिर जलात्मक विद्युत की, ऋण धन गति द्वारा, कर्षण शक्ति को स्थिर करने का प्रयत्न करे.

शि०– कुबेर के पुत्र नलकुवर, जो नारद के श्राप से यमलार्जुन वृक्ष हो खड़े थे, उन्हें कृष्णने ऊषल अड़ा उखाड़ डाला ?

गु०– अर्थात् भ्रमरनाद के सहारे इच्छा को रोक, जलात्मक विद्युत के द्वारा उसकी प्रवेश निवेशकारी धन ऋण गतिको मिला, स्थित करे, और कर्षण शक्ति द्वारा उसकी धन ऋण गति को जीते, अथवा फिर से दोनों को भिन्न करे.

शि०– ऊषल का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵ऊष्=बटोरना; अल=निवारना; ∴ऊषल=धन ऋण गति॰

शि०– कुबेर का अर्थ क्या है ?

गु०– (कु+बेर)=भ्रमर नादकी गति, या भ्रमर नादके सहारे अग्रसर होना.

शि०– नलकुवर का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵नल=रोकना; कु=भ्रमर नाद करना; वर=इच्छा करना; ∴नलकुवर=भ्रमर नादके सहारे इच्छा को रोकना, अथवा भ्रमर नादकी धन ऋण गति या जल के तेज की धन ऋण गति.

शि०– फिर जब कंसने वत्सासुर को भेजा, तब कृष्णने उसके पिछले पद पकड़, फिराय दे मारा ?

गु०– अर्थात् जब वृत्ति, पावकज विद्युत की ओर अग्रसर होती है, तब आकर्षण द्वारा, उसकी अन्तिम गति को भ्रमाय कर जीते.

शि०– कंसके भेजे बकासुरने यमुनातट पर आ, कृष्ण को चोंच से दबालिया, तब अत्यन्त उष्ण हो गये ?

गु०– वृत्ति प्रेरित पवनात्मक विद्युत, निराकरण के सहारे उतर, आकर्षण से मिल, ऋण धन को जोड़ देती है, तब; अत्यन्त उष्णता प्रकटती है.

शि०– इसी से उसने तत्काल उगाल दिया, त्योंही कृष्णने चीर उसे फेंक दिया ?

गु०– अर्थात् इसीसे उसकी निराकरण से आकर्षण अलग हो, उस धन ऋण गति को अलगा देती है.

शि०– फिर कंस प्रेरित अघासुररूपी अजगरने मुंह फाड़, ऐसा श्वासखेंचा कि गोप सहित कृष्ण उसके पेट में चले गये ? तब उसने मुंह बन्द करलिया, किन्तु कृष्ण इतने बढ़ कि उसका पेट फट गया, और सब ज्यों के त्यों निकल आये ?

गु०– अर्थात् वृत्ति प्रेरित मेघज विद्युत की ऋण धन गति के योग द्वारा, तत्वों सहित कर्षण शक्ति स्थिरता को प्राप्त होती है, किन्तु आकर्षण की वृद्धि फिर से उन्हें भिन्न कर, चलायमान कर देती है.

(शिक्षा ८)

शि०– ब्रह्मा प्रथम बच्चों को, फिर गौओं को, फिर गोपों को गुप्त रीति से हर ले गया ? किन्तु कृष्णने सब ज्यों के त्यों बनालिये, अन्तको ब्रह्माने लौट, अपराध क्षमा करा, सबको लौटा दिया ?

गु०– अर्थात् वही आकर्षण रूप, उत्पादक शक्ति, प्रथम वत्सरूप वाष्पमय तत्वों को, फिर गौरूप विद्युतों को, फिर गोपरूप तत्वों को, गुप्त रूप से हरा करती है; और व्यापक शक्ति, उस न्यूनताको पूर्ण किया करती है, किन्तु अन्तको (संहार होते ही) वे सब उत्पादक द्रव्य, निवेशकारी शक्ति द्वारा, जहां के तहां पहुंच जाते हैं.

शि०– गर्दभ का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵गृ=निगलना (धन); दभ=आज्ञा करना (ऋण); ∴गर्दभ= धन ऋण गति.

शि०– धेनुक किसका संकेत है ?

गु०– पृथ्वी तत्वका.

शि०– कंस प्रेरित धेनुक नामक गर्दभ के पिछले पद, पकड़, मिला, घुमाकर बलदेवजीने दे मारा ?

गु०– अर्थात् जब वृत्ति पृथ्वी की ओर झुकती है, तब उसकी धन ऋण गति को, नीचे की ओर शक्ति चालन के तेज द्वारा, मिला, घुमाकर जीते.

शि०– कन्दुक किसका संकेत है ?

गु०– जलतत्व, बिन्दु या अर्द्ध मातृका का.

शि०– कदम्ब वृक्ष का अर्थ क्या है ?

गु०– (कद्+अम्ब्+वृक्ष)=वृत्ताकार गति में युक्त करना.

शि०– यमुना के किनारे कृष्ण बलराम कन्दुक का खेल, उभय पक्ष बना, खेल रहे थे ?

गु०– अर्थात् पिंगला नाड़ी के सहारे, आकर्षण निराकरण के संयोग द्वारा जल की, धन ऋण गति का जय हो सकता है.

शि०– ज्योंही कन्दुक जमुना में गिरा, त्योंही कन्दुक के लिये, कृष्णने यमुनातट के कदम्ब वृक्ष पर चढ़, कालीदह में कूद, कालीनाग नाथ, रमणकद्वीप को पहुंचाया ?

गु०– अर्थात् ज्योंही जलात्मक तेज, निराकरणकारी गति करता है, त्योंही उसके सहारे, आकर्षण को निराकरण में मिला, वृत्ताकार गति दे, श्याम प्रभा में मग्न हो, उस श्याम तेज के परे पहुंचते ही परमरमणीक प्रभा प्राप्त होती है.

शि०– कृष्ण अग्नि को पान कर गये और उसके द्वारा घिर जाने पर भी न जले ?

गु०– अर्थात् कर्षण शक्ति सबके तेज को खैंच सकती है, किन्तु तेज से व्याप्त होने पर भी जल नहीं सकती, इसलिये जो आकर्षण द्वारा, अग्नि का जय कर लेता है, उस पर अग्नि का प्रभाव नहीं पड़ता.

शि०– यहां प्रलम्बासुर किसे कहा है ?

गु०– पृथ्वी के चारों ओर हिलगे हुए विस्तीर्ण वायु को.

शि०– जब कंसने प्रलम्बासुर को भेजा, तब कृष्ण का संकेत पा, बलरामने मुष्टि प्रहार द्वारा उसे मार गिराया ?

गु०– अर्थात् जब वृत्ति, वायु की गति की ओर झुकती है, तब आकर्षण को निराकरण में मिला, शक्ति चालन कर, मौष्टिक मुद्रा द्वारा उसे जीते.

शिक्षा ६

शि०– वृन्दावन का अर्थ क्या है ?

गु०– (वृन्द्+आ+बन)=(समूह+दिव्य+शून्य)=जिस दिव्य शून्य के अन्तर्गत समस्त भगण हैं, वह आकाश.

शि०– व्रज मंडल का अर्थ क्या है ?

गु०– (व्रज+मण्डल)=घूमना+वृत्ताकार=वृत्ताकार घूमनेवाला,= आकाश मण्डल.

शि०– व्रज मण्डल की गोपियां, जो नग्न हो जल में क्रीड़ा कर रही थी, उनके सब वस्त्र चुरा, कृष्ण कदम्ब पर जा बैठे, किन्तु फिर लौटा दिये ?

गु०– अर्थात् आकाश मण्डल के समस्त पिण्ड खुले प्रकाश में भ्रमण कर रहे हैं, उनके वस्त्ररूपी तत्वावरणों को आकर्षण शक्ति अपनी वृत्ताकार गति द्वारा हरती तथा लौटाती रहती है.

शि०– ब्राह्मण याजकों ने कृष्ण के गोपसखाओं को भोजन नहीं दिया ? किन्तु उनकी स्त्रियों ने, तुरन्त जाकर सबको खिलाया.

गु०– अर्थात् वृद्धि आदि करनेवाले यजनकर्त्ता, सूर्यादिकों से सीधे आकर्षण गत, तत्वों को आवश्यकतानुसार समस्त पदार्थों के रस नहीं मिलते; किन्तु उनकी विद्युत शक्तियों द्वारा मिलते रहते हैं.

शि०– इन्द्र के विरुद्ध कृष्णने व्रज मण्डल गत, समस्त गोपी-गोपों द्वारा, गोवर्धन पर्वत पुजवाया तथा उनके दिये पक्वानों को अन्य रूप से ग्रहण किया ?

गु०– अर्थात् विद्युत के विरुद्ध गमन करनेवाली आकर्षण शक्ति हो वृत्ताकार गति देनेवाले आकाश मण्डल गत समस्त पिण्डों तथा तत्वों द्वारा, विद्युत की गति को बढ़ाती रहती है, और उनसे प्राप्त पदार्थों के रस निराकरण शक्ति द्वारा, ग्रहण करती रहती है.

शि०– उसी से इन्द्रने कुपित हो, घोर वर्षण किया, तब कृष्णने नख पर गोवर्धन पर्वत धार व्रज मण्डल के समस्त गोपी--गोपों की रक्षा की ?

गु०– अर्थात् उसी रस के द्वारा, विद्युत जल बरसाती है. तब आकर्षण अपनी निराकरण शक्ति द्वारा, विद्युतकी बढ़ती हुई गतिको रोक, आकाश मण्डल गत, समस्त पिण्डों तथा तत्वों की रक्षा करती है.

शि०– गोवर्द्धन पर्वत का अर्थ क्या है ?

गु०– विद्युत की बढ़ती हुई गति या विद्युत के बढ़ानेवाली गति या विद्युत की गति को बढ़ाना.

शिक्षा १०

शि०– अर्द्ध रात्रि के उपरान्त व्रतस्थ नन्दराय यमुना जल में पैठे, तो वरुण के दूत, उन्हें पकड़ वरुणालय ले गये, किन्तु कृष्णने जा, उन्हें छुड़ा लिया ?

गु०– अर्थात् अर्द्ध रात्रि के उपरान्त व्रतस्थ ऋद्धियों का साधक ज्योंही विकर्षण गत तेज के अन्तर्गत अन्तर्मुख होता है, त्योंही जलात्मक महत्तत्व की धन ऋण गति मिलकर उसे अपनी मध्यवर्त्ति अद्भुत प्रभा दर्शाती है, किन्तु पुनः आकर्षण उत्थान कर देती है.

शि०– कृष्ण अपने गोप सखाओं को लिये हुए, वृन्दावन में गौएं चराते फिरते थे ?

गु०– अर्थात् आकर्षण शक्ति, समस्त तत्वों को लिये हुए, उस शून्यरूपी दिव्य बनके अन्तर्गत (जिसमें अखिल पिंडों का वृन्द है) विद्युतों का गमना गमन करती रहती है.

शि०– ज्योंही व्रज मण्डल के बन में कृष्णने बंशी बजाई त्योंही सब गोपियां, भगती हुई, उसी यमुना तटपर आ पहुंची ?

गु०– अर्थात् आकाश मण्डल गत, विस्तृत मैदान के अन्तर्गत जो आकर्षण गति के कारण बंशी की ध्वनि हो रही है. उसी सीधपर विकर्षण के सहारे, समस्त पिंड खिंचे हुए चले जाते हैं.

शि०– वृन्दावन में गोपियों के साथ कृष्णने रासक्रीड़ा की ?

गु०– अर्थात् आकाश मण्डल के, समस्त पिण्डों के समूह को आकर्षण शक्ति भ्रमा रही है.

शि०– कृष्णने अनेक रूप धर, प्रति गोपी से मिल, रास किया ?

गु०– अर्थात् एक ही आकर्षण शक्ति, अपने भिन्न-भिन्न तरंगों से, भिन्न-भिन्न पिण्डों को, भिन्न-भिन्न गति देती हुई, भ्रमा रही है.

शि०– कृष्णनें प्रतिदिन गोपियों के गृह में घुस, दूध, दही, माखन चुराया करते तथा अपने गोप सखाओं को खिलाया अथवा लुटाया करते थे ?

गु०– अर्थात् आकर्षण ही चिरकाल पृथ्वी आदि पिण्डों के अन्तर्गत घुस, जल, वायु, अग्नि के रस, अपहरण किया करती है तथा उनका रस तत्वों को दे, उनकी पूर्त्ति किया करती है.

शि०– यशोदा नित्य कृष्ण को माखन मिश्री देती थी ?

गु०– अर्थात् नित्य आकर्षण पूर्वक, आकाशज तेज में पावकज तेज मिलाने से, समस्त यश देनेवाली सिद्धियां प्राप्त होती हैं.

शि०– कृष्णने गोपियों से प्रेमालिगनादि किया ?

गु०– अर्थात् आकर्षण शक्ति व्यापक व्याप्य भाव से, समस्त पिण्डों को, अवधारणादिक करती है.

शि०– यमुना का जल भरते समय, कृष्ण नित्य गोपियों को छेड़ा करते थे ?

गु०– अर्थात् विकर्षणकारी प्रकाश की ओर जानेवाले पिण्डों की आकर्षण शक्ति उसके प्रतिकूल है.

शि०– ज्योंही सरस्वती में स्नान कर, आम्बिका को नन्द पूज चुके, त्योंही एक अजगररूपी विद्याधरने आ, उनका पद पकड़ लिया, तब कृष्णने उसे मार, तारा ?

गु०– अर्थात् ज्योंही तुर्य्या में मग्न हुआ योगी, शक्ति की नवों ऋद्धियां पा चुकता है, त्योंही समस्त विद्या धारनेवाली, आकाश की ऋण धन गति का योग हो जाता है, तब आकर्षण द्वारा, उस आकाश का जय पूर्वक उद्धार होता है ?

शि०– सरस्वति का अर्थ क्या है ?

गु०– (सरः+वति)=अग्रसर होनेवाली, तुर्य्या, सुषुम्ना.

शि०– अजगर का अर्थ क्या है ?

गु०– (अज्+गर)=(जाना+निगलना)=(ऋण+धनगति).

शि०– विद्याधर का अर्थ क्या है ?

गु०– (वित्+आ+धर)=(दिव्यप्रभा या दिव्यज्ञान का धारनेवाला)= आकाश.

(शिक्षा ११)

शि०– सहसा गोपियों को घेर, आगे ले भागने वाले, कुबेर के सेवक शंखचूड़ यक्ष को, श्रीकृष्णने मारा ?

गु०– अर्थात् जिसके दिखाये मार्ग से, सब पिण्ड आगे हो चलते हैं उस भ्रमरनादात्मक गति द्वारा प्रेरित, शंखनाद का जय, आकर्षण शक्ति द्वारा होता है.

शि०– फिर ज्योंही कंस प्रेरित, वृषभासुर आया, त्योंही कृष्णने पद पर पद दे, सींग पकड़, मरोड़ फेंका ?

गु०– (१) अर्थात् जब वृत्ति कामदेव की ओर झुकती है, तब आकर्षण की गति से उसकी गति रोक, कन्द स्थान को दबा, ऊपर को खैंच, वृत्ताकार घुमा उसे जीते.

(२) अथवा जब वृत्ति कामदेव की ओर झुके, तो खड़ा हो, पांव पर पांव दे, अग्रभाग की त्वचा पकड़, आकर्षण द्वारा खैंच कर मरोड़े, तो उसका दमन पूर्वक जय होता है. (यह युक्ति नागे साधु करते हैं)

शि०– जब कंस प्रेरित केशी, अश्वका रूप धर आया, त्योंही कृष्णने उसके मुख में कर घुसेड़, मार डाला ?

गु०– अर्थात् जब वृत्ति, केशात्मक सूक्ष्म तत्वों की ओर झुकती है, तब आकर्षण द्वारा, उसके अन्तर्गत, अन्तर्मुख हो, उसे जीते.

शि०– जब कंस प्रेरित, वृक रूप धारी व्योमासुर, सब गोपों को, गुफा में बन्द कर आया ? तब कृष्णने उसका गला घोंट, घूंसे जमा, प्राण हर लिया ?

गु०– अर्थात् जब वृत्ति मेघनाद गत, प्रणव द्वारा पांचों तत्वों के परे, पहुंचती है, तब आकर्षण पूर्वक, जालन्धर बंधयुत मौष्टिक मुद्रा द्वारा, प्रणव का जय किया जाता है.

शि०– शंखचूड़ यक्ष का अर्थ क्या है ?

गु०– (शंख के आवरण का सत्कार)=शंखनाद का साधन.

शि०– वृक का अर्थ क्या है ?

गु०– स्वीकार, प्रणव, ॐ

(शिक्षा १२)

शि०– फिर कंस प्रेरित अक्रूरजी को, श्री कृष्णजी ने यमुना जल के अन्तर्गत दर्शन दिया ?

गु०– अर्थात् प्रणव के जय के पश्चात् जब वृत्ति दया को प्राप्त करती

है, तब आकर्षण द्वारा, विकर्षणकारी तेज के अन्तर्गत मग्न होते ही, उस अष्टम वसुका दर्शन होता है. (जिसके अन्तर्गत अनन्त ब्रह्मांड हैं.)

शि०– फिर कंस प्रेरित अक्रूरजी, कृष्ण बलदेव सहित, समस्त गोपों को मथुरापुरि ले गये ?

गु०– अर्थात् जब वृत्ति दयालू हो जाती है, तब आकर्षण शक्ति के तेज सहित, समस्त तत्वों का हृदय में दिव्य मनन या विचार, उपस्थित होता है.

शि०– यहां रजक किसे कहते हैं ?

गु०– (१) बालू के अर्घ्य प्रदान द्वारा प्राप्त, ज्योति को.
(२) अथवा प्रणव द्वारा प्राप्त तुर्य्यागत ज्योति को.

शि०– फिर कंस के रजक का सिर तोड़, कृष्ण ने वस्त्र छीन लिये ?

गु०– अर्थात् जब वृत्ति उक्त ज्योति के अन्तर्गत अन्तर्मुख होती है, तब आकर्षण द्वारा तत्वावरणों की धारणा का प्रारंभ होता है.

शि०– फिर कंस के सूजीने प्रेम पूर्वक, सखाओं सहित कृष्ण को वस्त्र पहिरा दिये ?

गु०– अर्थात् जब वृत्ति भक्ति पूर्वक, उस सूर्य के अन्तर्गत स्थित हो जाती है, तब सब तत्वावरणों की धारणा, साधने योग्य होती है.

शि०– फिर कंस के सुदामा मालीने, कृष्ण सहित सब गोपों को माला पहिराई ?

गु०– अर्थात् जब वृत्ति उस चन्द्र मण्डल के अन्तर्गत अन्तर्मुख होती है, तब आकर्षण सहित सब तत्वावरणों की धारणा सिद्ध होती है.

शि०– यहां केशर का अर्थ क्या है ?

गु०– (के+शृ)=(शब्द करना+मारडालना)=हुंकार शब्द का जय.

शि०– चन्दन का अर्थ क्या है ?

गु०– (चन्द्+अन)=आनन्द कारक प्रभा की गति.

शि०– फिर कंस की कुबड़ी दासी कुब्जा के हाथों से राम कृष्णने केशर चन्दन लगवाया ?

गु०– अर्थात् फिर जब वृत्ति, अपनी प्रेरक कुटिल कुण्डलनी के अन्तर्गत प्राप्त होती है, तब सर्वव्यापी आकर्षण शक्ति द्वारा, हुंकार के जय पूर्वक, आनन्दकारी प्रभा की गति प्राप्त होती है.

शि०– फिर श्री कृष्णने कुब्जा को पैर से दबा, दो अंगुलियों से टुढ्ढी को उचका, सीधा किया ?

गु०– अर्थात् आकर्षण पूर्वक कुंडलनी स्थल को पैर से दबा तथा दोनों नसों द्वारा टुढ्ढी को उचका, उसे सीधा करे.

शि०– फिर श्री कृष्णने तीन ताड़ प्रमाण ऊंचा शिव का धनुष्य तोड़ा ?

गु०– अर्थात् तब आकर्षण द्वारा, त्रिगुणात्मक शक्ति की, कल्याणकारी धन ऋण गति का भंग होता है.

शि०– फिर कृष्णने कुवलिया गजको मार, उसका एक दांत उखाड़ लिया ?

गु०– अर्थात् फिर आकर्षण द्वारा भ्रमरादि शब्दावरण की गति जीत, तद्गत केवल प्रणव को ग्रहण करे.

शि०– चाणूर का अर्थ क्या है ?

गु०– ∵चण=आवाज करना; उर=चलना; ∴चाणूर=(अर्द्धमातृ का) की ध्वनि के साथ चलना.

शि०– फिर कृष्ण चाणूर को मार, कंसवाले मंच पर चढ़ गये ?

गु०– अर्थात् आकर्षण पूर्वक, अर्द्ध मातृका का जय होते ही वृत्ति अनायास ऊपर पहुंच जाती है.

शि०– फिर कृष्णने, कंस की चोटी पकड़ उसे मार गिराया ?

गु०– अर्थात् फिर आकर्षण द्वारा, वृत्ति के सूक्ष्म भाग को ग्रहण कर उसको जीते.

(शिक्षा १३)

शि०– फिर कृष्णने वसुदेव देवकी से मिल बन्धन काटे ?

गु०– अर्थात् आकर्षण द्वारा, वृत्ति का जय होते ही, योगी, समस्त वसुओं के विघ्नों से रहित हो जाता है.

शि०– फिर उग्रसेन को मथुरापुरी का राज दे, श्री कृष्णचन्द्र उनके अनुगामी बने ?

गु०– अर्थात् फिर सोहमात्मक सूर्य के अन्तर्गत मनन पूर्वक लय प्राप्त करके, आकर्षण द्वारा, उस चन्द्र को उस सूर्य के मध्य में स्थित करे,

शि०– अवन्तिका का अर्थ क्या है ?

गु०– (अव् + अन्त + इका)=अवकी अन्तिम सीमावाली.

शि०– अव् का अर्थ क्या है ?

गु०– संरक्षण, तृप्त, भ्रमण, प्रेम, ज्ञान, संतुष्ट, प्रवेश, निवेष, प्रभुत्व, आज्ञा, इच्छा, कान्ति, प्राप्ति, आलिंगन, नाश, ग्रहण, उत्पन्न, शक्ति, दहन, विभाग, श्रवण, याचन, प्रतारण, वर्त्तन आदि करना.

शि०– काशी का अर्थ क्या है ?

गु०– प्रकाशनेवाली.

शि०– संदीपन ऋषि का अर्थ क्या है ?

गु०– दिव्य प्रकाश युत ऋण धन गतिवाली अर्थात् मेघज विद्युत.

शि०– संयमनी का अर्थ क्या है ?

गु०– अच्छी तरह कर्षण करने वाली, अर्थात् विकर्षण शक्ति.

शि०– यहां धर्म का अर्थ क्या है ?

गु०– सबको चिरधारने वाली, अर्थात् आकर्षण शक्ति.

शि०– फिर रामकृष्णने ब्रह्मचर्य धार, अवन्तिकापुरी के सन्दीपन ऋषि के पास जा, सब विद्या पढ़ी, जो काशी भर में बड़े पंडित थे ?

गु०– अर्थात् फिर ब्रह्मचर्य पूर्वक, सर्वत्र रमने वाली कर्षण शक्ति द्वारा, अग्रसर हो, उस अवकी अन्तिम सीमावाली आकाशज विद्युत के सहारे, सब विद्या प्राप्त करे, क्योंकि वह सर्वोत्कृष्ट प्रकाश, विशद ज्ञान देकर पंडित बना देता है.

शि०– फिर कृष्ण समुद्र में धस, शंखासुर को मार, उसे धार, संयमनीपुरि में पहुंच, धर्मराज से मिल, गुरु का मृत पुत्र वापस लाये ?

गु०– अर्थात् फिर आकर्षण पूर्वक, उस बृहत्प्रकाश में धस, शंखध्वनि को जीत, उसके सहारे अग्रसर हो, विकर्षण में आकर्षण मिला,

उसका जय करे; तब उस तमहारक प्रकाश द्वारा, मृत कभी सजीव हो सकता है.

शि०– फिर रामकृष्णने उद्धव को गोपी गोपों के प्रति ज्ञान उपदेश देने के लिये वृन्दावन भेजा ?

गु०– अर्थात् फिर सर्वत्र रमनेवाली कर्षण शक्ति के सहारे, उर्द्धगति प्राप्त कर लेने पर, आकाश मण्डल गत, तत्वों सहित समस्त पिण्डों का परिज्ञान होता है.

शि०– किन्तु जब उद्धव वृन्दावन पहुंचे, तब अपना ज्ञान भूल, उनकी भक्ति देख चकित हुए ?

गु०– अर्थात् जब उर्द्ध गति के सहारे, आकाश मण्डल का परिपूर्ण ज्ञान हो जाता है; तब तन्मय हो परा भक्ति सहित आकर्षण की दिव्य महिमा जान, चकित होता है.

शि०– कृष्ण उद्धव को साथ ले, कुब्जा के घर गये; जब वह कृष्ण के पास आ खड़ी हुई, तब कृष्णने उसे अपने पास बिठा, मनोरथ पूर्ण किया.

गु०– अर्थात् ज्योंही उर्द्ध गति को प्राप्त हुई कर्षण शक्ति, कुंडलनी के पास पहुंचती है, त्योंही कुंडलनी खड़ी हो जाती है, किन्तु आकर्षण के स्थिर होते ही, वह उसके साथ बैठ जाती है, यही कुंडलनी, आकर्षण द्वारा सब मनोरथ पूर्ण करती है.

(शिक्षा १४)

शि०– फिर कंस की दोनों स्त्रियें खाना, पीना, सोना छोड़ अपने भ्राता-जरासिन्धु के पास चली गयी ?

गु०– अर्थात् तब क्षुधा, तृषा, निद्रा कम हो जाती है, जब वृत्ति की धन ऋण गति मिल एक हो जाती है.

शि०– वृत्ति के अठारह भेद किस तरह हो जाते हैं ?

गु०– जब त्रिगुणात्मक वृत्ति, तीनों शक्तियों से पृथक-पृथक मिलती है, तब वृत्ति के नो भेद बनते हैं. फिर उनके ऋण धन के कारण, अठारह भेद हो जाते हैं.

शि०- जब कृष्णने सत्रह बार जरासिंधु को हराया, तब नारदने जा कालयमन को भेजा ?

गु०- अर्थात् जब कर्षण द्वारा, वृत्ति के सत्रह भेदों का जय हो जाता है, तब जलात्मक महत्तत्व के सहारे, काल के निग्रह करने का यत्न किया जाता है.

शि०- कृष्ण को भगते देख, कालयमन उनके पीछे दौड़ा ?

गु०- अर्थात् सबका निग्रह करनेवाला काल, कर्षण गति का अनुगामी है.

शि०- कृष्ण धौलागिरि की गुफा में घुस, मचकुन्द को पीताम्बर उढ़ा, छिप गये ?

गु०- अर्थात् आकर्षण शक्ति उस शुक्ल प्रभा के अन्तर्गत घुस, पीतावरण से परे पहुंच, सत्य ज्योति को पा, लय को प्राप्त होती है.

शि०- ज्योंही कालयमनने पीताम्बर हटा, मुचकुन्द को लात मारी, त्योंही वह उसकी दृष्टि द्वारा, जलकर भस्म हो गया ?

गु०- अर्थात् ज्योंही कालको वश्य करने की इच्छा रखनेवाला, हिरण्यावरण हटा, सत्य ज्योति को पाता है, त्योंही तद्गत अन्तर्मुख दृष्टि द्वारा, उस निग्रहकारी काल का नाश हो जाता है.

शि०- मुचकुन्द का अर्थ क्या है ?

गु०- (मुच्+कुन्द)=(त्याग देना, मिथ्या भाषणादि)=असत्य का त्याग, अर्थात् सत्य.

शि०- जब अठारहवीं बार जरासिन्धुने आक्रमण किया, तब कृष्ण रण छोड़ भागे ?

गु०- अर्थात् संयुक्त वृत्ति के अठारहवें भेद के साधन द्वारा, आकर्षण शक्ति का जय होता है.

शि०- जब जरासिन्धुने, कृष्ण को गौतम पर्वत पर चढ़ते देखा, तब उसे चारों ओर से जला दिया, किन्तु कृष्ण अदृश्य हो द्वारका पहुंचे ?

गु०- अर्थात् जब उस संयुक्त वृत्ति के सहारे, आकर्षण की सर्वोत्कृष्ट विद्युत गति प्राप्त होती है, तब उस ज्वलित तेज के अन्तर्गत हो, आकर्षण द्वारा, अनायास दशम द्वार तक पहुंच सकते हैं.

शि०– फिर कृष्णने क्रम से सोलह हजार एक सौ रानियां तथा आठ पट रानियां प्राप्त की ?

गु०– अर्थात् फिर आकर्षण के सहारे, क्रम से आठ प्रेरक ज्योतियां तथा सोलह हजार एक सौ अन्य ज्योतियों का ज्ञान प्राप्त होता है.

(शिक्षा १५)

शि०– पहिले कृष्णने कुण्डलपुर के राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी को स्वीकारा ?

गु०– अर्थात् प्रथम आकर्षण के सहारे, काम सहित कुण्डलनी को जीत, हुंकार कारणी मन के अन्तर्मुख करनेवाली, ज्योति को प्राप्त करे.

शि०– रुक्म, शिशुपाल को चाहता था; किन्तु कृष्ण बल पूर्वक रुक्मिणी को हर ले गये ?

गु०– अर्थात् हुंकार मोह को प्राप्त हुआ चाहता है, किन्तु आकर्षण के सहारे, बल पूर्वक हुंकार कारणी ज्योति को प्राप्त करे.

शि०– शिवने कामदेव को दग्ध किया ?

गु०– अर्थात् निवेशकारी शक्ति के तेज द्वारा कामदेव का जय होता है.

शि०– वही प्रद्युम्न हो, रुक्मिणी के गर्भ से अवतरा ?

गु०– अर्थात् कुंडलनी गत ज्योति के अन्तर्गत, अन्तर्मुख होने से सर्वोत्कृष्ट काम ज्योति प्राप्त होती है.

शि०– उसे शंबरने समुद्र जल में फेंका ?

गु०– अर्थात् मन के शमन पूर्वक, उक्त ज्योति द्वारा, स्वयं प्रकाश प्राप्त होता है.

शि०– फिर उसने एक मच्छी गत, मच्छ के उदर से निकल, रति से मिल शंबरासुर को मारा ?

गु०– अर्थात् मच्छासन या मच्छ मूद्रा पूर्वक, मच्छ की गति से, उपरोक्त तेज में मग्न हो, मन को शमन करे.

शि०– शंवर का अर्थ क्या है ?

गु०– (शं+वर)=(शमन करना+इच्छा करना)=इच्छा को शमन करना=मन को शमन करना.

दोहा

जारति को माता कही, शंबर को कहि बाप ।
ये ना चूक्यो तिन प्रती, तौ पर की क्या दाप ।।

शि०– फिर उस प्रद्युम्न के घर अनिरुद्ध हुए ?

गु०– अर्थात् उस सर्वोत्कृष्ट कन्दर्प ज्योति के अन्तर्गत मग्न होने से इन्द्रियों का दमन तथा विघ्नों का शमन होता है.

शि०– जब कृष्णने बाणासुर को हराया और शिवने मेल कराया, तब उसने अपनी पुत्री ऊषा का लग्न अनिरुद्ध के साथ किया ?

गु०– अर्थात् आकर्षण के सहारे, पंच शब्दों का जय कर लेने पर, आकर्षण में विकर्षण मिला, तद्‌गत ज्योति बटोर तन्मय हो, सब विघ्नों को निवृत्त करे,

(शिक्षा १६)

शि०– सत्राजित का अर्थ क्या है ?

गु०– (सत्र+अजित)=(अजित यजन करनेवाला) अर्थात् मूलाधार स्थित अपान वायु.

शि०– सत्यभामा किसे समझें ?

गु०– उस मूलाधार स्थित, अपान वायु गत ज्योति को.

शि०– प्रसेन किसका संकेत है ?

गु०– हुंकार का.

शि०– पहिले तो सत्राजितने कृष्ण को, सुमंतक मणि की चोरी लगायी, फिर लज्जित हो सत्यभामा ब्याह दी ?

गु०– अर्थात् जब अपानाकर्षण पूर्वक, लय प्राप्त करने से, मन प्रतिभा सम्पन्न हो जाता है. तब अपान वायु द्वारा मूलाधार स्थित, सत्य ज्योति प्राप्त होती है.

शि०– कृष्णने अश्व सहित सत्राजित के भ्राता प्रसेन तथा उनके हंतक सिंह को, गुफा के द्वार पर मरा देखा ?

गु०– अर्थात् आकर्षण पूर्वक सिंहाक्रांता मुद्रा द्वारा, अपान वायु की

हुंकार सहित, सूक्ष्म वाष्प नाभिगत छिद्र के पास पहुंच, लय को प्राप्त होती है.

शि०– कृष्णने उस गुफा में घस, जांबुवंत को जीत, उसकी कन्या को ब्याह, सुमंतक मणि पा, सत्राजित को ला दिया ?

गु०– अर्थात् आकर्षण पूर्वक उस रन्ध्र में घस, श्याम तेज को जीत, उसकी ज्योति से युत होते ही, मन प्रतिभा सम्पन्न हो जाता है, किन्तु वह प्रतिभ तेज, अपान वायु में निवास करता है.

शि०– स्यमन्तक या सुमन्तक मणि किसे कहते हैं ?

गु०– उस प्रतिभ नामक तारक तेज को कहते हैं, जिसके द्वारा मन प्रतिभा सम्पन्न हो जाता है; या सुमति, या सुमन.

शि०– सतधन्वा किसे कहते हैं ?

गु०– अपान वायु की ऋण धन गति को.

शि०– फिर अक्रूर और कृतवर्मा के बहकाने से, सतधन्वाने सत्राजित को मार, सुमन्तक मणि अक्रूर को लादी ?

गु०– अर्थात् दया और उद्योग के सहारे, उसकी ऋण धन गति को मिला, अपान वायु को जीतने से, दयालु मनुष्य का मन प्रतिभा सम्पन्न हो जाता है.

शि०– सत्यभामा प्रेरित कृष्ण के भय से, सतधन्वा मिथिलापुरि को भागा ?

गु०– अर्थात् मूधाधार गत ज्योति प्रेरित आकर्षण द्वारा, अपान की ऋण धन गति को मिला, अग्रसर होना चाहिये.

शि०– फिर कृष्णने सुदर्शन चक्र द्वारा, मिथिलागत सतधन्वा को मारा ?

गु०– अर्थात् फिर आकर्षण के दिव्य तेज द्वारा, उस संयुक्त ऋण धन गति को वृत्ताकार गति दे जीते.

(शिक्षा १७)

शि०– सुफलक किसे कहते हैं ?

गु०– (१) जिसका परिणाम हितकर हो या जो हित करे.

(२) जिसका परिणाम प्राकृतिक हो या जो प्रकृति के अनुसार फल करे, अर्थात् हित साधन, परहित साधन, स्वधर्म या सनातन धर्म.

शि०– गाधिनी किसे कहते हैं ?

गु०– खोजनेवाली बुद्धि.

शि०– सुफलक की गाधिनी स्त्री द्वारा, मात्र अक्रूर उपजे ?

गु०– अर्थात् किस कर्म का परिणाम हितकर है, इस बात को विचार पूर्वक, खोजने से विदित हुआ कि वह केवल "दया" है.

शि०– अक्रूर के पिता सुफलक और माता गाधिनी है ?

गु०– अर्थात् दया का उत्पादक, सनातन धर्म और निर्वाहक, विचार शालिनी बुद्धि है.

शि०– जब स्यमंतक मणि सहित अक्रूर, कृतवर्मा चले गये, तब प्रजा में आलस्य, फूट, व्यभिचार, पाप, हिंसा, रोग, शोक, सन्ताप, अल्प मृत्यु, अकाल, अवर्षण, हानि, दरिद्रता, महामारी आदि विघ्न आ घुसे ?

गु०– अर्थात् जब सुइच्छा सहित दया, उद्योग का लोप हो जाता है, तभी उपरोक्त आधि व्याधि प्रजा में फूट निकलती है.

शि०– जब प्रजाने व्याकुल हो, श्री कृष्ण की सत्य प्रेम से आराधना की, तब उन्होंने सुमंतक मणिवाले अक्रूर, कृतवर्मा को वापिस लाने की सलाह दी ?

गु०– अर्थात् जब प्रजा उपरोक्त दु:ख से अत्यन्त व्याकुल हो, सच्चे प्रेम से ईश्वर की आराधना करती है; तब वह उसे सुमति दे, दया, उद्योग की प्रेरणा करता है.

शि०– जब प्रजा, स्यमन्तक मणिवाले अक्रूर जी सहित, कृतवर्मा को लायी, तब आलस्य सहित, कुवासना, फूट मिटी, परस्पर प्रेम बढ़ा, आधिव्याधि गयी, अल्प मृत्युनसी, जल वर्षा, सुकाल हुआ और प्रजा, पशु, धान्य, पुत्र, पौत्रादिक से युत हो गयी; घर-घर मंगलाचार होने लगे.

गु०— अर्थात् जब प्रजा सुमति के सहारे दया पूर्वक उद्योग में प्रवृत्त हो जाती है, तब सब प्रकार सुखी होती है.

शि०— फिर अक्रूर का दिया स्यमन्तक मणि, कृष्णने जा सत्यभामा को दिया ?

गु०— (१) अर्थात् दया द्वारा, सुइच्छा खिंच, सत्य ज्योति को प्राप्त कराती है ?

(२) अथवा जब दयालु पुरुष का मन, प्रतिभा सम्पन्न हो जाता है, तब आकर्षण द्वारा, मूलाधार गत सत्य ज्योति में वह मन लीन होता है,

(शिक्षा १८)

शि०— रुक्मिणी, जाम्बुवती, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्या, भद्रा, लक्ष्मणा, ये कृष्ण की अष्ट पटरानियां हैं ?

गु०— अर्थात् ये अष्ट आधार गत, आकर्षण की अष्ट प्रेरक ज्योतियां हैं.

शि०— फिर कृष्णने भौमासुर अर्थात् नरकासुर को मार, सोलह हजार एक सौ रानियां ब्याही ?

गु०— अर्थात् जब आवागमनकारी इस देहका जय होता है, तब सोलह हजार एक सौ अन्य ज्योतियां का ज्ञान प्राप्त होता है.

शि०— इस तरह कृष्ण की सोलह हजार एक सौ आठ रानियां हुई ?

गु०— अर्थात् इस देहगत, आकर्षण की सोलह हजार एक सौ आठ ज्योतियां हैं.

शि०— नारदने हर रानी को कृष्ण सहित पाया ?

गु०— अर्थात् महत्तत्व के ध्यान द्वारा विदित हुआ कि (जहां ज्योति) तहां आकर्षण और जहां आकर्षण तहां ज्योति बिराजती हैं.

(शिक्षा १९)

शि०— कृष्णने सरटरूपी नृग को, जो अनन्त गो का दानी था, उद्धारा ?

गु०— अर्थात् आकर्षण के सहारे, सरट मुद्रा पूर्वक, गमना गमनकारी गति को भ्रमाने से, अनन्त विद्युत प्राप्त होती है.

शि०- फिर बलरामने ब्रज मण्डल में जा, रास किया ?

गु०- अर्थात् फिर उस सर्वत्र रमनेवाली शक्ति का ज्ञान हो जाता है. जो समस्त आकाश मण्डल को भ्रमा रही है.

शि० - फिर कृष्णने, वासुदेव पौनृक को मारा ?

गु०- अर्थात् तब उस आकर्षण द्वारा, उस आवागमनकारी वस्वात्मक तेज का जय होता है.

शि०- फिर बलरामने दुविन्द कपिको मारा ?

गु०- अर्थात् फिर सर्व व्यापी शक्ति द्वारा, उसकी गति का जय होता है.

शि०- फिर कृष्णने भीम द्वारा, जरासिन्धु को चिरवा डाला ?

गु०- अर्थात् फिर आकर्षण पूर्वक, पवनात्मक शक्ति द्वारा वृत्ति की ऋण धन गति के योग का जय होता है,

शि०- फिर कृष्णने शिशुपाल, दन्तावक्र को मारा ?

गु०- अर्थात् तब आकर्षण पूर्वक, मोह, अहंकार का नाश होता है.

शि०- फिर कृष्णने सालव को मारा ?

गु०- अर्थात् तब आकर्षण पूर्वक, अधोगति रूप भवताप का नाश होता है.

शि०- फिर बलरामने कुश फेंक, सूत को मारा ?

गु०- अर्थात् फिर सर्व व्यापी शक्ति के प्राप्त होने पर, कुश तथा सूत्र का त्याग किया जाता है.

शि०- फिर कृष्णने सुदामा के आने पर, उसकी स्त्री को ऐश्वर्य्य सम्पन्न किया ?

गु०- अर्थात् फिर आकर्षण पूर्वक, अध्यात्म चन्द्रमा की विशद चांदनी से समस्त वैभव प्राप्त होते हैं.

(शिक्षा २०)

शि०- कुरु क्षेत्र किसे कहते हैं ?

गु०- उस अनहद मण्डल को कहते हैं, जहां पर अनेक शब्द हो रहे हैं.

शि०- सहकुटुम्ब कृष्ण बलराम सूर्य ग्रहण नहाने गये; वहां नन्द जसोदा गोपी-गोप आदि भी आ मिले ?

गु०– अर्थात् आकर्षण पूर्वक शक्ति को जगाय, सूर्य की धारणा कर अनहद नाद में, तन्मय होने पर समस्त ऋद्धि, सिद्धि, भुवन ज्ञान, तत्व ज्ञान (ज्योति ज्ञान, गति ज्ञान, वृत्ति ज्ञान) सहित पिछली सब सिद्धियां प्राप्त होती हैं.

शि०– धृतराष्ट्र किसे कहते हैं ?

गु०– इस शरीर को तारने तथा धारनेवाले (सोहँ) शब्द को.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि इसके निकल जाते ही, शरीर का पतन होता है.

शि०– उसे अन्ध तथा ज्ञान नेत्र क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि (सोहँ) शब्द आंखों का विषय नहीं है, तो भी ज्ञानचक्षु का प्रदाता है.

शि०– दुर्योधन और दुःशासन धृतराष्ट्र के सुत हैं ?

गु०– अर्थात् जिसका जय करना दुःसाध्य ऐसा (सो) और जिस पर शासन करना दुःसाध्य है ऐसा (अहँ) दोनों ही, इस शरीर के धारनेवाले (सोहँ) के जाये हैं.

शि०– धृतराष्ट्र के कौरव नामक सौ पुत्र थे ?

गु०– अर्थात् अनहद गत शत शब्द भी इसी सोहँ द्वारा उपजे हैं.

शि०– वे भी इस देह के धारक हैं, इसका क्या प्रमाण ?

गु०– तभी तो अनहद शब्द के बन्द होते ही सात दिन के भीतर इस देह का पतन होता है या उसी दिन.

शि०– कुरु के पुत्र धृतराष्ट्र और पांडु हैं ?

गु०– अर्थात् शब्द द्वारा ही सोहँ तथा वायु उपजा.

शि०– पांडु किसे कहते हैं ?

गु०– आवागमनकारी देहस्थ वायु को.

शि०– पांडु के पांच पुत्र थे ?

गु०– अर्थात् इस देह की धारक वायु पांच प्रकार की है.

शि०– (१) युधिष्ठिर (२) भीम (३) अर्जुन (४) नकुल (५) सहदेव.

गु०– अर्थात् (१) समान (२) उदान (३) व्यान (४) अपान (५) प्राण

अथवा (१) कूर्म (२) नाग (३) धनंजय (४) कृकल (५) देवदत्त.

शि०- युधिष्ठिर को धर्म का अंश क्यों कहते हैं ?

गु०- क्योंकि समान वायु जीवन को धारता है, और वही कूर्म के समान चारों पवनों को गमना-गमन कराता है.

शि०- भीम को पवन का अंश क्यों कहते हैं ?

गु०- क्योंकि उदान वायु पवन का सार भाग है, जो नाग के तुल्य भयंकर बल दर्शाता है.

शि०- अर्जुन को इन्द्र का अंश क्यों कहते हैं ?

गु०- क्योंकि सर्व देह व्यापी व्यान वायु की, धनंजयरूपी धन ऋण गति विद्युत के समान प्रकाशने वाली है.

शि०- नकुल को अश्विनी का अंश क्यों कहते हैं ?

गु०- क्योंकि अपान वायु अपने तेज से तत्वों की सूक्ष्म वाष्प बना त्यागता रहता है, और हुंकाररूपी (कृकल) शब्द करता है,

शि०- सहदेव को कुमार का अंश क्यों कहते हैं ?

गु०- क्योंकि जिस प्रकार क्रीड़ावश बालक को गोद में ले लेते हैं, उसी तरह प्राण वायु लिया जाता है, जो ब्रह्मचर्य का साधक है; और यह जठराग्नि को उद्दीप्त करता है, इसीलिये इसे सहदेव या देवदत्त कहते हैं ?

शि०- द्रोपदी किसे कहते हैं ?

गु०- स्थिर गति अथवा आवागमनकारी गति को.

शि०- एक ही द्रोपदी को पांचों पांडव भोगते थे ?

गु०- अर्थात् उक्त गति पांचों पवनों में भुक्तमान होती है, अथवा पांचों पवन इस एक ही गति में भुक्तमान होते हैं.

शि०- पांडु के मरने के बाद पांडवों को, कौरवों ने हर तरह सताया ?

गु०- अर्थात् देहस्थ वायु का जय होते ही, पांचों पवनों के स्थान में अनहद ध्वनि छा जाती है और तद्गत समग्र सिद्धियां भी क्रम से प्राप्त हो जाती हैं.

शि०- पांचों पांडवों ने कृष्ण के सहारे, समस्त कौरवों का समूल नाश किया ?

गु०- अर्थात् प्रवेश निवेशकारी पांचों पवनोंके, आकर्षण द्वारा, अनहद-गत समस्त नादों का परिपूर्ण जय हो जाता है.

शि०- कृष्ण भगवान ने अवतर, दुष्टों को मार, भक्तों का उद्धार किया ?

गु०- अर्थात् वज्रोलि तथा मुग्दर मुद्रा पूर्वक, आकर्षण द्वारा योगी में उक्त योनिगत, तेज अवतरता है, जो अज्ञानान्धःकार रूपी दुष्ट को मार, भक्तरूपी ज्ञान के प्रकाशक तेज को उद्धारता है.

दोहा

वज्रोली मुग्दर करी, शक्ति कर्ष जगाय ।
विद्युत धन ऋणयुत करी, साधक सब कछु पाय ॥

उपदेश २९

मोहिनी अवतार

शि०- भस्म चर्चन से भस्मासुर राक्षस उपजा ?

गु०- अर्थात् भस्म लगाने से, शरीर गत तेज की रक्षा होती है.

शि०- उसने शिव को प्रसन्न किया ?

गु०- अर्थात् उस तेज द्वारा कल्याण होता है.

शि०- उसे रुद्रने वर दिया ?

गु०- अर्थात् उसकी निराकरण गति है.

शि०- जब वह रुद्र के सिर पर हाथ रखने को दौड़ा, तब रुद्र भगे ?

गु०- जब निराकरणकारी तेज, शीर्ष की ओर जाने लगता है, तब शीर्ष गत निराकरणकारी तेज भागने लगता है.

शि०- जब वह विष्णु के बहकाने से अपने ही सिर पर हाथ रख, जल कर राख हुआ, तब रुद्र की रक्षा हुई ?

गु०- अर्थात् जब जटामें भस्म धारी जाती है, तब व्यापकता के कारण उस निराकरणकारी रुद्रात्मक तेज की रक्षा होती है.

शि०– इसका तात्पर्य क्या है ?

गु०– अर्थात् सब तन पर भस्म लगा लेने पर भी, उस निराकरणकारी तेज की रक्षा नहीं होती, जब तक शीर्ष पर भी न लगाली जाय.

शि०– क्यों ?

गु०– क्योंकि जटा में भस्म लगाने से प्रवेशकारी गति उपज, पूर्वोक्त निवेशकारी से मिल, स्थिरता को प्राप्त होती है.

शि०– विष्णु भगवानने मोहिनी अवतार ले, भस्मासुर को मार, रुद्र की रक्षा की ?

गु०– अर्थात् भस्म के मर्द्दन पूर्वक उस आकर्षणकारी के सहारे निराकरणकारी तेजका जय कर, (शकट तथा योनि मुद्रा पूर्वक अन्तर्मुख होते ही योगी में) वह व्यापक योनिगत दिव्य तेज अवतरता है.

दोहा

भस्म लगा तन शीश पै, राखी मध्य प्रकाश ।
शकट योनि मुद्रा सहित, अवतर तन्मय काश ।।

उपदेश 30

व्यासावतार

शि०– व्यास का अर्थ क्या है ?

गु०– (वि+आस्)=विशेष करके उपस्थित होना.

शि०– पराशर का अर्थ क्या है ?

गु०– (परा+शृ)=परा शक्ति का जय करना.

शि०– सत्यवती का अर्थ क्या है ?

गु०– सत्य ज्योति से युत.

शि०– पराशर की स्त्री सत्यवती के गर्भ से व्यासने अवतर, वेद को विभक्त कर पुराण रचे ?

गु०– अर्थात् जय करके प्राप्त, पराशक्ति की विस्तृत सत्य ज्योति के

अन्तर्गत अन्तर्मुख होने से, वेदों का तत्व तथा पुराणों की रचना का मर्म, अच्छी तरह उपस्थित हो जाता है.

दोहा

मुद्रा कीजै सम्मुखी, पराशक्ति को जीत ।
सतजोती लवलीन व्है, वेद पुराण उदीत ।।

उपदेश 39

बौद्धावतार

शि०– बौद्ध किसे कहते हैं ?

गु०– जिसके द्वारा बोध होवे, अर्थात् वितत मुद्रा.

शि०– अजिन का अर्थ क्या है ?

गु०– अज्ञेय अर्थात् निराकार ब्रह्म.

शि०– यहां सुत का अर्थ क्या है ?

गु०– होता है, उपजता है.

शि०– मायासुर का अर्थ क्या है ?

गु०– (मा+या+सुर)=(आना+जाना+विद्युत)=धन ऋण विद्युत.

शि०– कीटक का अर्थ क्या है ?

गु०– (कीट्+अक्)=(स्थिर करना+गति करना)=गति को स्थिर करना.

शि०– गया किसे कहते हैं ?

गु०– निवेशकारी शक्ति को.

शि०– प्रदेश का अर्थ क्या है ?

गु०– (प्र+दिश्)=प्रकृति का ज्ञान होना; ∴प्रदेश=प्रकृति का ज्ञान करानेवाला.

शि०– अजिन सुत बौद्ध–कीटक गया प्रदेश में अवतरे ?

गु०– अर्थात् प्रकृति के ज्ञान पूर्वक, विकर्षण शक्ति द्वारा, गति को स्थिर करने से, अज्ञेय का भी ज्ञान हो जाता है.

शि०– बौद्धने मायासुर के लोक में बैठ, दैत्यों को वेद च्युत किया ?

गु०– अर्थात् वितत मुद्रा पूर्वक, उपरोक्त साधन द्वारा, विद्युत की धन ऋण गति को स्थिर करने; अन्धःकार विरहित वेद का ज्ञान होता है.

शि०– दैत्य किसका संकेत है ?

गु०– अज्ञान, अन्धःकार का.

उपदेश ३२

कलंकि अवतार

शि०– यशा का अर्थ क्या है ?

गु०– गुणानुवाद गानेवाला या प्रयत्न करने वाला.

शि०– कलंकि का अर्थ क्या है ?

गु०– (कल्+अंक्+इ)=(शब्द करना+अंकित होना+जाना)=शब्दांकित हो, अग्रसर होना या शब्दांकित होनेवाला.

शि०– निग्रोध का अर्थ क्या है ?

गु०– (निक्+रोध)=शुद्धता पूर्वक रोधन करना, अथवा इन्द्रियों का निग्रह करना.

शि०– कवि का अर्थ क्या है ?

गु०– कव=कविता करना या प्रतिबिम्बित होना,∴कवि=कविता करने वाला या तदाकार होने वाला.

शि०– शुषेण का अर्थ क्या है.

गु०– (शुष्+एन)=(शुष्क करना+पाप)=पापों को शुष्क करनेवाला या पापों को नसाना.

शि०– विष्णु यशा की स्त्री सुमति ?

गु०– (१) अर्थात् सुइच्छा पूर्वक व्यापक शक्ति का प्रयत्न करे; अथवा (२) सद्भक्ति पूर्वक ईश्वर का गुणानुवाद गावे.

शि०– कलंकि, निगोध, कवि, शुषेरण ?

गु०– (१) अर्थात् शब्द के सहारे अग्रसर हो, इन्द्रियों को रोक, पापों से रहित हो कविता रचे; अथवा

(२) नाम के सहारे अग्रसर हो, इन्द्रियों को रोक, तन्मय हो, पापों से छूटे.

शि०– विष्णु यशा की सुमति स्त्री के गर्भ द्वारा, कलंकि, निग्रोध, कवि, शुषेरण अवतरे ?

गु०– (१) अर्थात् सुइच्छा पूर्वक, ईश्वर का गुणानुवाद गा, उस श्याम तेज के अन्तर्गत अन्तर्मुख हो, नाम के सहारे आगे बढ़, इन्द्रियों को रोक, तदाकार हो, पापों का शोषरण करे या पाप रहित हो, कविता रचे.

(२) अथवा सुमति पूर्वक, उस व्यापक श्याम तेज का प्रयत्न कर, उसके अन्तर्गत अन्तर्मुख हो, नाद के सहारे आगे बढ़, शुद्धता पूर्वक उसकी ऋरण धन गति रोक, तदाकार हो, पापों से बचे.

शि०– इसमें किस मुद्रा का वर्णन है ?

गु०– पल्लव मुद्रा का.

शि०– पल्लव का अर्थ क्या है ?

गु०– (पद्+लव)=स्थिर गति करना या प्रेम सहित स्थिर गति को पाना या अचल गत्ति से लवलीन होना; और कल्कि का अर्थ गति का चूर्ण करना है.

उपदेश 33

अग्नि

शि०– अग्नि शब्द किसका सूचक है ?

गु०– सब प्रकार के तेजों का.

शि०– वेद में जो अग्नि के स्वरूप का वर्णन है, उसमें इसे चार शृंग,

तीन पाद, दो शीर्ष, सातहस्त, त्रिधाबद्ध, वृषभ, मेषघ्वज, सर्वतो-
मुख आदि कहा है; किन्तु मुझे ये बातें निरर्थक जंचती हैं.

गु०– बिना बिचारे ऐसा कह देना बड़ी भारी भूल है.

शि०– अच्छा ! इसके चार शृंग कौन से हैं ?

गु०– शब्द, ज्ञान, उत्पत्ति, और नाश.

शि०– अग्नि के तीन पाद कौन से हैं ?

गु०– आकर्षण, निराकरण और स्थंभन.

शि०– अग्नि के दो शीर्ष कौन से हैं ?

गु०– प्रवेश, निवेश.

शि०– अग्नि के सप्त हस्त कौन से हैं ?

गु०– सात प्रकार की ज्योतियां.

शि०– इसके तीन बंध कौन से हैं ?

गु०– सत, रज, तम.

शि०– इसको वृषभ क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि यह प्रकाश का विस्तारक और कामदेव समान पराक्रम
का दाता है.

शि०– इसे मेषध्वज क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि इसकी स्वाभाविक गति अध और ऊर्द्ध को रहती है.

शि०– तिस पर इसे सर्वतो मुख क्यों कहते हैं ?

गु०– क्योंकि यह सब ओर प्रकाशता, दिखाता तथा गति कर सकता है.

शि०– सप्त ज्योति और किन-किन नामों से पुकारी जाती है.

गु०– सप्त हस्त, सप्त जिव्हा, सप्त देव, सप्तार्चि, सप्तर्षि आदि नामों
से पुकारी जाती है.

उपदेश ३५

भूगोल

शि०– पुराणों में भूगोल का वर्णन दिया है, वह सिद्धान्तादिकों से क्यों
नहीं मिलता ?

गु०– क्योंकि उनके अन्तर्गत भूगोल के स्वरूप में योग संबंधि सगुण-निर्गुण उपासना का गुप्त रहस्य दर्शाया है, केवल इसीलिये महत्तत्वादिकों को, द्वीप, समुद्र, देव, ऋषि, वृक्ष, ग्रह, नदी, पर्वत, पुर, पुरि, लोक आदि अनेक नामों से उनके गुणानुसार अलंकृत किया है.

शि०– गंगा किसका संकेत है ?

गु०– इड़ा नाड़ी, चन्द्र नाड़ी, आकर्षण शक्ति, अमृत जल का संकेत है.

शि०– अमृत जल किसे कहा है ?

गु०– मस्तिष्क के अर्द्ध भाग के छिद्र से टपकने वाले जल को.

शि०– वह नीचे कैसा आता है ?

गु०– मस्तिष्क के निचले भाग में चार छिद्र हैं, उन चारों से, चारों दिशाओं में बहता हुआ, तालू पर आकर सम्पूर्ण शरीर को सींचता हुआ तृप्त करता है.

शि०– जमुना किसका संकेत है ?

गु०– पिंगला नाड़ी, सूर्य नाड़ी, विकर्षण शक्ति का.

शि०– सरस्वति किसका संकेत है ?

गु०– सुषुम्ना नाड़ी, अग्नि नाड़ी, स्थंभन शक्ति, तुर्या, अन्तर्मुख वृत्ति का.

उपदेश ३५

सप्तद्वीप

शि०– प्रियव्रत का अर्थ क्या है ?

गु०– जिसकी तेज वृद्धि सबको प्रिय लगती है, अर्थात् शक्तयात्मक महत्तत्व.

शि०– द्वीप का अर्थ क्या है ?

गु०– आवरण, प्रकाश, बृहज्ज्योति.

शि०– प्रियव्रत के रथ के चक्र से सप्त समुद्र सहित, सप्तद्वीप विभक्त हुए ?

गु०— अर्थात् शक्तयात्मक महत्तत्व के द्वारा ही, सप्त तत्व, सप्तावरणों में विभक्त होते हैं.

शि०— इन सातों को पुराणों ने किस नाम से पुकारा है ?

गु०— सप्तद्वीप, सप्त समुद्र, सप्तपर्वत, सप्तनदी, सप्तावरण, सप्तवर्ण, सप्तर्चि, सप्तज्योति, सप्तव्यावृति, सप्तर्षि, सप्तग्रह, सप्तकमल, सप्तभूमिका, सप्तकाश, सप्तपाताल, सप्तपुरि, सप्तवार आदि नामों से.

शि०— अखिल ब्रह्माण्ड का विस्तार पच्चीस'कोटि योजन क्यों बताया है?

गु०— अर्थात् उपरोक्त तत्व पच्चीस प्रकार से युक्त हो, अखिल ब्रह्माण्ड-रूपी नरतनको विस्तारते हैं.

उपदेश ३९

जम्बूद्वीप

शि०— जम्बूद्वीप किसे कहते हैं ?

गु०— शक्तयात्मक महत्तत्व के मध्यवर्त्ति श्याम तेज को.

शि०— जम्बु वृक्ष का अर्थ क्या है ?

गु०— (ज्+अम्बु+वृक्ष्)=जाय मान अम्बु को योजित करनेवाला अर्थात् अमृत समान गुणकारी जल देनेवाला.

शि०— क्षारका अर्थ क्या है ?

गु०— बिखरा हुआ, टपका हुआ, या टपकने से प्राप्त.

शि०— जम्बुद्वीप के चारों ओर क्षार समुद्र व मध्य में जम्बु वृक्ष है ?

गु०— अर्थात् उस श्याम तेज के चारों ओर "शुभ्र" प्रकाश बिखरा हुआ है, जो अमृत तुल्य अम्बु को योजित करता है.

शि०— जम्बुद्वीप का आदि देव संकर्षण है ?

गु०— अर्थात् वह श्याम तेज त्रिगुणात्मक कर्षण शक्ति का है.

शि०— जम्बु वृक्षवाले, जम्बुद्वीप के चारों ओर क्षार समुद्र है, उसका देवता संकर्षण है ?

गु०– अर्थात् संकर्षण रूपी महत्तत्व, अपने प्रकाश द्वारा, सब और अमृत तुल्य दिव्य जल चुआता है. इसलिये, उसके लिये, उस श्याम तेज का यजन करना चाहिये.

शि०– सूर्य की किरण द्वारा जम्बुफल फट, उसका रस वह, दिव्य सुवर्ण उपजता है, जिसे देव स्त्रियां ले जातीं हैं ?

गु०– अर्थात् सूर्यात्मक महत्तत्व की ज्योति द्वारा, उस श्याम तेज के अन्तर्गत अन्तमुख हो, अग्रसर होने पर, (पृथ्वी तत्व की) पीतवर्ण विस्तृत दिव्य प्रभा प्राप्त होती है.

शि०– जम्बुद्वीप में आठ पर्वत तथा नव खण्ड हैं ?

गु०– अर्थात् उस श्याम तेज में अष्ट गति तथा नव गुण है.

शि०– इस कर्षण शक्ति के तेज की आठ गतियां कौनसी हैं ?

गु०– जो अष्ट वसुओं में विराजती हैं.

शि०– इसके नव गुण क्यों माने गये हैं ?

गु०– क्योंकि उसकी आकर्षण, विकर्षण तथा स्थंभन शक्ति में से हर एक में पृथक पृथक तम, रज, सत मिलाने से नवगुण उपजते है.

शि०– इसकी अष्ट गतियों से क्या लाभ है ?

गु०– अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती हैं.

शि०– इनका संकेत क्या है ?

गु०– अष्ट पर्वत, अष्टिगति, अष्टसिद्धि, अष्टवर्ग, अष्टभुजा, यशोदा.

शि०– इसके नवगुणों से क्या लाभ हैं ?

गु०– नवनिधियां प्राप्त होती हैं.

शि०– इनका संकेत क्या है ?

गु०– नवखण्ड, नवगुण, नवतन्तु, नवग्रह, नवदुर्गा, नवसूत्र, नवनन्द, उपनन्द, नवार्णव.

(१)

इलावृत खण्ड

शि०– इलावृत खण्ड का अर्थ क्या है ?

गु०– (इला+आ+वृत्त+खण्ड) ∵ इला=विलास करना; आ=दिव्य;

वृत्त=वर्त्तना; खण्ड=अन्तर्मुख होना; ∵.इलावृत खण्ड=अन्तर्मुख हो वर्त्तन से, दिव्य आनन्द प्राप्त होता है.

शि०– जम्बुद्वीप के इलावृत खण्ड का संकर्षण देवता है ?

गु०– अर्थात् उस संकर्षण शक्ति के श्याम तेज के अन्तर्गत अन्तर्मुखत्व पूर्वक अग्रसर होने से दिव्य आनन्द प्राप्त होता है.

(२)

भद्राश्व खण्ड

शि०– भद्राश्व खण्ड का अर्थ क्या है ?

गु०– भद्र=कल्याण; अश्व=अत्यन्त सूक्ष्मतत्व; खण्ड=अन्तर्मुख होना ∵ भद्राश्व खण्ड=सूक्ष्मतत्वों के अन्तर्गत लय प्राप्त करने से कल्याण होता है.

शि०– जम्बुद्वीप के भद्राश्व खण्ड का हयग्रीव देवता है ?

गु०– अर्थात् उस श्याम तेज गत, सूक्ष्मतत्वों के अन्तर्गत शंखध्वनि पूर्वक लय प्राप्त करने से परम हित होता है.

(३)

हरिवर्ष खण्ड

शि०– हरिवर्ष खण्ड का अर्थ क्या है ?

गु०– हरि=हरनेवाला, नष्ट करनेवाला; वर्ष=गीला करनेवाला, लिप्त करनेवाला; खण्ड=अन्तर्मुख होना ∵.हरिवर्ष खण्ड=अन्तर्मुख होने से सब आवरणों के विघ्न नाश होते हैं.

शि०– जम्बुद्वीप के हरिवर्ष खण्ड का नृसिंह देवता है ?

गु०– अर्थात् उस श्याम तेज के अन्तर्गत, उस सिंहाक्रान्ता मुद्रा द्वारा लय प्राप्त करने से, सब आवरणों के विघ्न नष्ट होते हैं.

(४)

केतुमाल खण्ड

शि०– केतुमाल खण्ड का अर्थ क्या है ?

गु०– केत्=बुलाना; उ=दिव्य तेज; मल=धारण करना; ∵.केतुमाल खण्ड=अन्तर्मुख होने से दिव्य तेज की धारणा सिद्ध होती है.

शि०– जम्बुद्वीप के केतुमाल खण्ड का देवता काम है ?

गु०– अर्थात् श्याम तेज के अन्तर्गत योनि मुद्रा पूर्वक लय प्राप्त करने से दिव्य तेज की धारणा सिद्ध होती है.

(५)

रम्यक खण्ड

शि०– जम्बुद्वीप के रम्यक खण्ड का मत्स्यावतार है ?

गु०– अर्थात् उस श्याम तेज के अन्तर्गत मत्स्य मुद्रा पूर्वक लय करने से सर्वत्र रमने तथा व्यापने की गति प्राप्त होती है.

(६)

हिरण्यमय खण्ड

शि०– जम्बुद्वीप के हिरण्य खण्ड का कच्छावतार है ?

गु०– अर्थात् उस श्याम तेज के अन्तर्गत, कूर्म मुद्रा पूर्वक लय करने से, हिरण्यगर्भगत सिद्धियां प्राप्त होती हैं.

(७)

उत्तरकुरु खण्ड

शि०–जम्बुद्वीप के उत्तरकुरु खण्ड का देवता यज्ञ पुरुष है ?

गु०– अर्थात् उस श्याम तेज के अन्तर्गत, यमपाशमुद्रा पूर्वक लय करने से, उर्द्धगति प्राप्त होती है.

(८)

किंपुरुष खण्ड

शि०– जम्बुद्वीप के किंपुरुष खण्ड के देवता श्रीरामचन्द्र के दास हनुमान हैं ?

गु०– अर्थात् उस श्यामतेज के अन्तर्गत, महाक्रान्ता मुद्रा पूर्वक पवनात्मक विद्युत द्वारा, लय प्राप्त करने से, ब्रह्मज्ञान सहित जीवन मुक्ति प्राप्त होती है.

(९)

भरत खण्ड

शि०– जम्बुद्वीपगत भरत खण्ड के देवता नरनारायण अप्रकट रूप से विराजते हैं ?

गु०- अर्थात् उस श्याम तेज के अन्तर्गत, द्विमुखी मुद्रा पूर्वक लय प्राप्त करने से, योगी स्वयं प्रभा में लीन हो, विदेहमुक्त होता है.

उपदेश ३७

प्लक्षद्वीप

शि०- प्लक्ष, इक्षु, रसका अर्थ क्या है ?

गु०- प्लक्ष=खाना, भोजन करना; इक्षु=देखनेवाला; रस=आवागमन करनेवाला.

शि०- प्लक्षवृक्षवाले प्लक्षद्वीप के चारों ओर इक्षुरस का समुद्र है, उसका देवता सूर्य है ?

गु०- अर्थात् सूर्यात्मक महत्तत्व, अपने प्रकाश द्वारा सब ओर भक्षण, निरक्षण तथा गमना-गमन करता है, और वही भोजन योजित करता है.

शि०- इसमें सातपर्वत, सात नदियां, सात खण्ड और सात ही राजा है?

गु०- अर्थात् सूर्य में सात गति, सात ज्योति, सात वर्ण तथा सात तत्व विराजते हैं.

++++++++

उपदेश ३८

शालमलीद्वीप

शि०- शालमली का अर्थ क्या है ?

गु०- (शाल्+मली)=दु:ख का नसानेवाला.

शि०- यहां मदिरा का अर्थ क्या है ?

गु०- (मद्+इरा)= आल्हादकारी.

शि०- शालमली वृक्षवाले शालमली द्वीप के चारों ओर मदिरा का समुद्र है, उसका देवता चन्द्र है ?

गु०- अर्थात् चन्द्रात्मक महत्तत्व अपने प्रकाश द्वारा सब ओर का ताप हरके, आल्हाद करता है, इसलिये वह ताप रहित होने के लिये

युक्त किया जाता है.

शि०– इसमें भी सात पर्वत, सात नदियां, सात खण्ड तथा सात ही राजा हैं ?

गु०– अर्थात् चन्द्रात्मक महत्तत्व में भी, सात गति, सात ज्योति, सात वर्ण तथा सात तत्व बिराजते हैं.

उपदेश ३९

कुशद्वीप

शि०– कुश, घृत का अर्थ क्या है ?

गु०– कुश=प्रीति करना, चमकना; घृत=चमकने, टपकने तथा गीला करनेवाला.

शि०– कुशवाले कुशद्वीप के चारों ओर घृत समुद्र है, उसका देवता अग्नि है ?

गु०– अर्थात् अग्न्यात्मक महत्तत्व अपने प्रकाश द्वारा, सब ओर अपनी प्रीति तथा प्रभा को सींचता है, इसलिये संयोग वियोगार्थ उसे युक्त करना चाहिये.

शि०– इसमें भी सात पर्वत, सात नदियां, सात खण्ड तथा सात ही राजा हैं ?

गु०– अर्थात् अग्नि में भी सात गति, सात ज्योति, सात वर्ण और सात तत्व बिराजते हैं.

उपदेश ४०

क्रौंचद्वीप

शि०– क्रौंच का अर्थ क्या है ?

गु०– समीप जाने आनेवाला, वक्र गति से घूमनेवाला, गमना-गमनकारी, त्रियक गति दाता.

शि०- दुग्ध का अर्थ क्या है ?

गु०- निकालने, मारने तथा दोहन की शक्ति धारनेवाला.

शि०- क्रौंचवल्लीवाले क्रौंच द्वीप के चारों ओर दुग्ध का समुद्र है, उसका देवता वरुण है ?

गु०- अर्थात् ऊर्द्ध, अधगति देनेवाला वरुणरूपी जलात्मक महत्तत्व, अपने प्रकाश द्वारा सब ओर गमनागमनकारी वक्राकार त्रियक गति देता है, इसलिये आवागमन से रहित होने के लिये इसे साधना चाहिये.

शि०- इसमें भी सात पर्वत, सात नदियां, सात खण्ड तथा सात ही राजा हैं ?

गु०- अर्थात् जल में भी सात गति, सात ज्योति, सात वर्ण और सात ही तत्व विराजते हैं.

उपदेश ४१

शाकद्वीप

शि०- शाक का अर्थ क्या है ?

गु०- सामर्थ्य देनेवाला, शक्तिमान करनेवाला.

शि०- दधि का अर्थ क्या है ?

गु०- अर्पण, धारण, पालन तथा दानकर्त्ता.

शि०- शाक वृक्षवाले शाक द्वीप के चारों ओर दधि का समुद्र है, उसका देवता वायु है ?

गु०- पवनात्मक महत्तत्व चारों ओर प्रकाशता हुआ, अपने सामर्थ्य द्वारा सबका धारण, पोषणकर्त्ता है, इसीलिये इसे साधना चाहिये.

शि०- इसमें सात पर्वत, सात नदियां, सात खण्ड तथा सात ही राजा है?

गु०- अर्थात् पवनात्मक महत्तत्व में भी सात गति, सात ज्योति, सात वर्ण और सात ही तत्व विराजते हैं.

शि०- इन्द्रने दिति के पेट में घुस, वायु के सात भाग कर, पुनः हर एक के सात-सात खण्ड किये ?

गु०– अर्थात् यदि मेघज विद्युत का प्रवेश, पृथ्वी की निवेशकारी शक्ति में कराया जाय, तो उसके द्वारा वायु के ४९ भेदों का पता लगता है, जो ४९ पवनों के नाम से प्रसिद्ध हैं.

उपदेश ४२

पुष्करद्वीप

शि०– पुष्कर का अर्थ क्या है ?

गु०– (पुष्+कृ)=पालन, धारण, पोषण, विभाग तथा नाश करनेवाला.

शि०– मिष्ट जल का अर्थ क्या है ?

गु०– सेवन करने योग्य अत्यन्त सूक्ष्म तथा शुद्ध प्रकाश.

शि०– पुष्करवाले पुष्कर द्वीप के, चारों ओर मिष्ट जल का समुद है, उसका देवता आकाश है ?

गु०– अर्थात् आकाशात्मक महत्तत्व चारों ओर अपने दिव्य तेज से प्रकाशता है, तथा उसके द्वारा सबका पालन, पोषण, धारण, विभाग तथा संहार करता है.

शि०– आकाशतत्व किसे कहते हैं ?

गु०– जो वायु मण्डल के परे दिव्य प्रकाश है, उसे आकाशतत्व कहते हैं.

शि०– इसके कितने भाग हैं ?

गु०– केवल दो हैं, अर्थात् शब्द और प्रकाश.

शि०– इसके परे हिरण्य वर्ण स्वच्छ दर्पणवत भूमि है ?

गु०– अर्थात् अनन्त ब्रह्माण्डों को अपने उदर में रखनेवाला, हिरण्यगर्भ महत्तत्व है.

शि०– इसके परे लोका लोक पर्वत हैं ?

गु०– अर्थात् लोक के परे अलोक है.

शि०– लोक अलोक का अर्थ क्या है ?

गु०– जहां तक दृश्य पदार्थ हैं वहां तक लोक और उसके परे अलोक है. अर्थात् सगुण के परे निर्गुण है

शि०– लोक को श्रलोक से भिन्न करनेवाले यही पर्वत हैं ?

गु०– अर्थात् लोक को श्रलोक से भिन्न करनेवाली केवल गति है.

शि०– इस सीमा के रक्षक पर्वतस्थ दिग्गज हैं ?

गु०– अर्थात् लोका लोक की सीमा के रक्षक तथा दर्शक गति सहित शब्द हैं.

शि०– गति देनेवाली कौन है ?

गु०– त्रिगुणात्मक शक्ति.

शि०– सीमा के दर्शक शब्द किस तरह हैं ?

गु०– अर्थात् जहां तक शब्दावरण है, वहांतक लोक है, उसके परे रूप तथा शब्द से रहित स्थान हैं.

शि०– यहां तक पहुंचने का सामर्थ्य किसे है ?

गु०– केवल योगी को.

उपदेश ४३

परीक्षित

शि०– (१) परीक्षित राजा (२) स्वर्ण मुकुटधार (३) धनुष्यबाणले, (४) अश्व पर चढ़ (५) मृगया के अर्थ गया ?

गु०– अर्थात् (१) अच्छी तरह परीक्षा करके देख लिया गया है, कि (२) हिरण्य गर्भ की धारणा पूर्वक (३) धन ऋण गति को मिला (४) सूक्ष्मतत्वों के अन्तर्गत, अन्तर्मुख हो (५) वायु के जीतने का प्रयत्न करे.

शि०– (१) वहां कलियुग को दबा (२) पृथ्वीरूप गो तथा (३) धर्म-रूप वृषभ की रक्षा की ?

गु०– अर्थात् (१) उसकी उभयगति को रोक (२) पृथ्व्यात्मक विद्युत तथा (३) उसके स्वाभाविक सिंचक तेज की रक्षा करे; (ब्रह्म-चर्य पूर्वक.)

शि०– (१) जब मरा हुश्रा सर्प (२) लोमष ऋषि के गले में डाल दिया (३) तब शृंगी ऋषिने श्राप दिया ?

गु०– अर्थात् (१) जब जीता हुआ पवन (२) रोमों के मध्य अर्थात् भ्रुओं के मध्य में स्थित होता है, (३) तब तुर्यावस्था प्राप्त होती है.

शि०– सात दिन के पश्चात् वह तक्षक नाशाग्र को काटा ?

गु०– अर्थात् नाशाग्र दृष्टि पूर्वक, इस प्रकार वायु का जय करने से सातों आवरण नष्ट हो जाते हैं.

शि०– किन्तु शुकदेवजी ने, परीक्षित को, यह सब भागवत की कथा सुना कृतार्थ किया ?

गु०– अर्थात् (कल्याणकारी शक्त्यात्मक) तेज की गति के सहारे, इन सब बातों की अच्छी तरह परीक्षा हो गयी है, कि वह दिव्य योनिगत तेज सद्गति दाता है.

सोरठा

ज्योतिष वेद पुराण, लखबो सुनबो जानबो ।
पढ़िबो कहिबो ज्ञान, इष्ट बिना सब भ्रष्ट है ।। १ ।।

दोहा

सब कछु है निज धर्म में, जो चाहे ले खोज ।
देत गुरु आदेश ये, आगे तेरी मौज ।। २ ।।

उपदेश ४४

अवतारसार

(१) किसी आत्मा के अवतरने को अवतार कहते हैं.

(२) दिव्यात्माओं का तेज जिनमें अवतरता है; उन्हें उन आत्माओं का अवतार या अंशावतार कहते हैं.

(३) प्रभु इच्छा से अवतरनेवाली हर एक आत्मा तथा अवतरने वाला यह चराचर विश्व भी अवतार है.

(४) किसी योग युक्ति से उस तेज का अवतरना भी अवतार कहाता है; जिसका वर्णन मात्र इस अवतारादेश में चतुर्वर्ग की सिद्धि के लिये किया गया है.

प्रार्थना

श्रीगुरुतारक, भीतमहारक, ज्ञानप्रचारक, महामती ।
तू गणनायक, तूबरदायक, तूसबलायक, सत्यगती ।।
तू भवव्यापक, धर्मसुस्थापक, मनहीमापक, लोकपती ।
तू शिवकारक, त्रैरुजहारक, काजसुसारक, योगमती ।।

दोहा

तुही ब्रह्म शिव शक्ति तू, तुही कृष्ण तू राम ।
तू गुरु ज्ञान स्वरूप नित, व्यापिरह्यो सब धाम ।

चौपाया छन्द

दुर्लभ भे बहु दिन सो दर्शन, भो गुरु अब तो रीझिये ।
शरण शरण हों शरण तिहारे, दे दर्शन अघ मींजिये ।।
तेरी माया अपर बली है, हौं शिष तवरख लीजिये ।
तब बिन मो भव लखै नदूजो, करी क्षमा स्व कीजिये ।।

दोहा

योग भ्रष्ट अति पतित मैं, त्वा तजि सहसा दीन ।
करो कृपा प्रभु शरण तव, लखी दास आधीन ।।१।।
अहो भक्तजन सब मिली, मो लखि निज पद धूर ।
दास जान अपनाइये, दोष कीजिये दूर ।।२।।
सुखी करो राजा प्रजा, अवरोधक जड़ छेद ।
भैरव के तन मन बसो, विश्वरूप वर वेद ।।३।।

◆◆◆◆◆◆◆◆

इतिश्री परमगुरु प्रेरित स्वधर्म सर्वस्वसारस्य
अवतारादेशो नाम पंचमो भागः समाप्तः ।।

ॐ तत्सब्रह्मार्पणमस्तु ।। शुभं भवतु सर्वस्य ।।

॥ हरिः ॐ हर ॥

शुद्धि पत्रक

उपदेश	पृष्ठ	अशुद्धि	शुद्धि
धर्मादेश	६	कर	करें
	६	खोज	खोंच
	१०	मात	मान
	४७	में	मैं
	४६	स्वधर्मा	स्वधर्मा
		भीमान	भिमानी
अर्थादेश	११६	अवश्य	अशक्य
	१२०	स्वानीनता	साधीनता
	१२१	राक्षक	राक्षश
	१२६	धरोड़	धरोहड़
	१५३	में लगाई,	में न लगाई
	१६४	धन	धन
	१७५	३७५	१७५
	१७५	जिसने	जिससे
	२२७	बात	बात का
		प्रमाण	प्रमाण
	२६२	मुद्रित	मुदित
	२६४	अल्पना	कल्पना
	२६५	तस्ववेत्ता	तत्ववेत्ता
	२७६	भी जेता	विजेता
कर्मादेश	३१६	किष्कामता	निष्कामता
	३१६	उठाता	उठाया
	३२५	निज	जिन
	३२५	सड़क	चरस
	३३६	तेजाण	तेजाणु
	३४४	कुल्ल	कुल्ला
	३५०	वायु	आयु
	३५७	मगों	लोगों
	३६४	अचमन	आचमन
	३६८	उपदेश ३२	माला
	४०५	केवक	केवल
	४५०	पहले	पतले
	४५३	ध्रूम	धू म्र
मोक्षादेश	४७२	गिर	घिर
	४७८	उतर	उतार
	४८१	हृष्टान्त	दृष्टान्त
	५०३	जपजा	उपजा
	५१०	दुष्टि	दृष्टि
	५२३	कुतज्ञता	कृतज्ञता
	५२३	कुतघ्न	कृतघ्न
	५७२	जगत	जगत का
		यथार्थ	यथार्थ
अवतारा देश	६१२	निर्फारित	निर्धारित
	६१५	पूवक	पूर्वक
	६१८	दानों	दोनो
	६५१	विराने	विराजने
	६५४	यज्ञरक्ष	यज्ञरक्षा
	६६२	मान्ता	मात्रा
	६६५	उग्रसेर	उग्रसेन
	६७२	बढ़	बढ़े